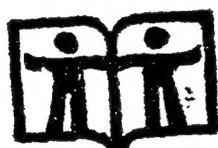
महाकवि भास

MAHAKAVI BHAS



ublished by Madhya Pradesh Hindi Granth Academy under the Centrally Sponsored Scheme of Production of Books and Literature in Regional Languages at the University Level, of the Government of India in the Ministry of Education and Social Welfare (Department of Culture), New Delhi.

संस्कृत के आदि नाटककार

महाकवि भास

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

एम० ए० (संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी)

पी-एच० डी०, डी० लिट्०



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

MAHAKAVI BHAS
By Dr. Nemi Chandra Shastri

प्रकाशक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल







प्रथम संस्करण
१९७२



मूल्य
पुस्तकालय संस्करण : २२ रुपये
साधारण संस्करण : २० रुपये



मुद्रक
धारा प्रेस, कटरा, इलाहाबाद-२

प्रस्तावना

महाकवि भास संस्कृत के आद्य नाटककार हैं। यदि यह कहा जाये कि वे नाटक क्षेत्र के बाल्मीकि हैं, तो भी अनुपयुक्त न होगा। भास से पूर्व भी संस्कृत ग्रन्थों में नाटकों का उल्लेख मिलता है किन्तु उनके विवरणों से यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि वे नाटक विकसित कोटि के नहीं थे, चाहे 'महेन्द्र विजय' हो या 'कंसवध' या 'लक्ष्मी-स्वयंवर', सभी एक परिपाटी पर चलने वाले और देवों का उत्कर्ष प्रदर्शित करने वाले थे। ऐसा लगता है कि ईसापूर्व तीसरी शताब्दी तक जन-सामान्य में खेले जाने वाले नाटक मुख्यत: इन्द्रादिक देवों की विजय से सम्बन्धित थे। पाणिनि और पतञ्जलि भी इस कथन के साक्षी हैं और नाट्य-शास्त्र तक से इस धारणा की पुष्टि होती है। 'रंग-मंच' के पार्श्व में जर्जर की स्थापना और मत्तवारणी का निर्माण—देवासुर सम्बन्धी नाटकों के प्रयोग के समय असुरों द्वारा किये जाने वाले उत्पात की शान्ति के लिए ही किया जाता था क्योंकि इन नाटकों में न केवल असुरों का पराभव प्रदर्शित किया जाता था, अपितु उनके चरित्र को भी निम्न-कोटि का चित्रित करने की परम्परा-सी चल पड़ी थी। भास के नाटकों में इस एक-रसता से पहली बार मुक्ति मिली है।

यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पहले एकांकियों का निर्माण हुआ या पूर्ण-नाटकों का, क्योंकि भास से पूर्व किसी एकांकी का उल्लेख हमें नहीं मिलता। फिर भी यह सहज बोध-गम्य है कि नाटकों से पहले एकांकियों का निर्माण हुआ होगा, ठीक उसी तरह जैसे प्रबन्ध-काव्य से पूर्व मुक्त रचनाएँ पायी जाती हैं। संस्कृत में एकांकी नाटकों के प्रथम उदाहरण भास की कृतियों में ही उपलब्ध हैं।

भास का जन्म ऐसे युग में हुआ जब रामायण और महाभारत की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। हो सकता है उनके समय में इन काव्यों के आधार पर

छोटे-मोटे नाटक लिखे और मंच पर खेले जाते हों और भास ने भी इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए इन महाकाव्यो को अपने नाटको का अङ्ग बनाया हो।

भास की शैली पुरानी है। उनके नाटक सामान्य दर्शको के लिए हैं—पण्डितो के लिए नही। भाषा सरल और छन्द गद्य के स्थानीय हैं। अर्थात् वे गद्यात्मक अभिव्यक्ति के ही स्थानापन्न हैं। कई स्थानों पर तो उनको हटा देने पर कथावस्तु ही खण्डित हो जाती है। परवर्ती नाटको मे ऐसा नही है। उनमे लेखकों की दृष्टि काव्य-क्षमता के प्रदर्शन की ओर अधिक है। परवर्ती नाटकों में प्राप्त श्लोकों को यदि बिलकुल हटा दिया जाये तो भी उनकी नाटकीयता को कोई क्षति नही पहुँचती। इस दृष्टि से भास भरत के उद्देश्यो के अधिक समीप हैं, यद्यपि वे भरत से पूर्ववर्ती हैं। उन्होने नाट्यशास्त्र के सारे नियमों का अनुसरण नही किया है।

भास की लोकप्रियता का एक प्रमाण यह भी है कि उनके नाटक आज भी उतनी ही रुचि से पढ़े जाते हैं, जितनी रुचि से उनके काल में देखे जाते रहे होंगे। 'मृच्छकटिक' जैसे प्रसिद्ध प्रकरण पर भास का जो ऋण है उससे सभी परिचित हैं।

भास की इस महत्ता के कारण तथा इस विचार से कि अनेक विश्वविद्यालयो मे विशेष कवि के रूप मे भी भास का विशिष्ट अध्ययन कराया जाता है, अकादमी ने यह उचित समझा कि सरस्वती के इस आराधक के ऊपर एक समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। सस्कृत और प्राकृत के अनुभवी विद्वान् एव प्राध्यापक डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इस अनुरोध को स्वीकार कर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। डॉ० शास्त्री की विद्वत्ता, अनुभव एव साहित्य-सेवा से सारा संस्कृत जगत् परिचित है। मेरे विचार से यह ग्रन्थ सस्कृत समीक्षा क्षेत्र की एक बडी कमी को पूरा करता है। अतः निश्चय ही इसे विद्वज्जनों का स्नेह-सम्मान प्राप्त होगा।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल।

(डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री)
सचालक

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

—बाहर—

प्रथम अध्याय

भास का जीवन-वृत्त, जन्म स्थान, समय निर्धारण एवं कृतियों की प्रामाणिकता

प्रास्ताविक

महाकवि भास ने जनसाधारण के मनोभावों, हृदय की वृत्तियों एवं विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले मानसिक विकारों का चित्रण बड़ी कुशलता से सम्पन्न किया है। राग-द्वेष, हर्ष-विषाद, प्रेम-करुणा, उत्साह-अवसाद प्रभृति जितने भाव मानव हृदय की सम्पत्ति हैं, उनका सरस और मधुमय वातावरण में निरूपण किया गया है। भारतीय संस्कृति के अमर संदेश-वाहक नाटककार भास ने जीवन की उन शाश्वतिक समस्याओं—धर्म-काम, धर्म-अर्थ, प्रणय-कर्त्तव्य, स्वार्थ-परमार्थ आदि का उद्‌घाटन किया है; जिनका मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मानव जीवन के विवेचक और विश्लेषक नाटककार भास भारतीय जीवन और संस्कृति के प्रमुख गायक हैं। निश्चयतः भास की नाट्‌य-कला में विविधता और बहुमुखता विशेष रूप से समवेत हैं। प्रकृति के नाना रूपों के जागरूक द्रष्टा भास की नाट्‌य-कला एक ऐसा दर्पण है, जिसमें प्रकृति और जीवन दोनों ही प्रतिबिम्बित हैं। यह दर्पण सामान्य दर्पण नहीं है, अपितु वर्ण-मय रश्मियों को संसृत और प्रकाशित करने वाला है।

भास के नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृति न होकर जीवन की सजीव प्रतिलिपि होने के साथ वास्तविक प्रतिच्छवि भी हैं। यही नहीं, वे यथार्थतः आन्तरिक जीवन का ऐसा 'ऐलबम' हैं, जिसमें कला और जीवन के विविध चित्र संकलित हैं। जीवन की चित्रमयता नाना प्रकार के वेष-विन्यासों एवं भाव-भंगिमाओं द्वारा अभिव्यक्त हुई है। यही कारण है कि भास की कृतियों में भावनाओं, अतीतकालीन गौरव गाथाओं, इतिहास-पुराणों, सफलता-विफलताओं उत्थान-पतनों, शुचिता-अशुचिताओं आदि की जीवन्त अवतारणा प्राप्य है। निस्संदेह जीवन के समान ही भास के नाटकों का क्षेत्र एवं परिधि अत्यन्त विस्तृत और विशाल है। मानवता, मानव मूल्यों, मनुष्य के चिरन्तन भावों, अनुभूतियों एवं समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन किया गया है। सभ्यता,

समाज, धर्म, प्रेम, स्नेह-बन्धन, सवेदन, जातीय गौरव, भारतीय आदर्श एवं प्रकृति के रमणीय रूप का यथार्थ चित्रण भास की कृतियो की प्रमुख विशेषता है। जीवन के विविध भावो का सूक्ष्म और गहन विश्लेषण कालिदास के समान ही भास की रचनाओ मे भी उपलब्ध है।

नाट्य-कला की दृष्टि से भास का आसन जितना उन्नत है उससे कहीं अधिक वह कथा-तत्व की मौलिकता की दृष्टि से समुन्नत है। कथा की भागीरथी सरल और समानान्तर रूप में प्रवाहित होती हुई प्रेक्षकों के सम्मुख उपस्थित होती है। गतिशीलता और रसात्मकता का अपूर्व सम्मिश्रण भास के कथा-तत्व में सन्निहित है। भास ने कही भी औचित्य की सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है। उनकी कृतियो मे वस्तु और रस इन दोनो का मजुल सामंजस्य विद्यमान है। न तो कही रस का अतिरेक ही है और न वस्तु का दूर विच्छेद ही। भास ने कथावस्तु को रस, अलकार तथा नाट्य सकेतो से समलकृत कर स्निग्धता और चारुता उपस्थित की है। अतः वस्तु-गठन की सार्वभौमिक सत्ता भास की प्रमुख विशेषता है। हम भास के कलागत सौन्दर्य विश्लेषण के पूर्व भास के जीवन-वृत्त, समय-निर्णय एव कृतियो की प्रामाणिकता आदि पर विचार प्रस्तुत करेंगे।

भास का जीवन-वृत्त

भास सस्कृत के ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने अपनी कृतियो मे अपने सम्बन्ध में कुछ भी निर्देश नही किया है। जहाँ सस्कृत के अन्य नाटककारों ने अपने नाटको की प्रस्तावना मे अपना नाम, कृति एव परिषद् आदि का उल्लेख किया है, वहाँ भास ने अपने नाम को भी छोड़ दिया है। अतः भास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी प्राप्त करना कठिन है। यह सत्य है कि भास के जीवन के सम्बन्ध मे अनेक किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं तथा उनकी रचनाओ मे भी कुछ ऐसे सकेत विद्यमान हैं, जिनसे उनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश पड़ता है। अतएव हम बाह्य और आभ्यन्तर सामग्री के आधार पर भास के जीवन-वृत्त पर विचार प्रस्तुत करेंगे।

भास के सम्बन्ध मे प्रचलित दन्तकथाएँ

भास के विषय में कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। एक दन्तकथा मे बताया गया है कि वे जाति के धोबी या धावक थे। इस तथ्य की पुष्टि मम्मट के काव्य-

प्रकाश में अंकित 'काव्यं यशसेऽर्थकृते.......' आदि श्लोक की 'श्री हर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्'[१] उल्लेख से की गयी है। बताया गया है कि श्री हर्ष की रत्नावली आदि नाटिकाओं के प्रणयन में धावक कवि सहायक था और उसको धन दिया गया था। यद्यपि श्री हर्ष और धावक का समय भास के समय से बहुत उत्तरकालवर्ती है तथा यह धावक कवि कौन हैं, यह भी स्पष्ट नहीं हो पाया है, तो भी कतिपय विद्वान भास की उपाधि धावक मानते हैं। संभवतः इस विचार श्रेणी के मनीषी धावक को श्री हर्षकालीन मानकर भास का समय सातवीं शताब्दी सिद्ध करते हैं। उनका अनुमान है कि श्री हर्ष के रूपकों का प्रणेता यह धावक कवि है, जिसका वास्तविक नाम भास है।

यहां यह विचारणीय है कि धावक और भास का अभिन्नत्व स्वीकार करने पर कालिदास द्वारा निर्दिष्ट भास के साथ समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है? कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में भास का आदर के साथ उल्लेख किया है और उन्हें 'प्रथितयश' कहा है। स्पष्ट है कि कालिदास के पूर्व भास का यश पूर्णतया व्याप्त हो चुका था और वे एक श्रेष्ठ नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतएव कालिदास के पूर्ववर्ती होने के कारण भास को श्री हर्ष का समकालीन नहीं माना जा सकता है।

कुछ विद्वान कवित्व के लिए जाति और कुल की उच्चता आवश्यक नहीं मानते और वे यह तर्क देते हैं कि भास निम्न जाति में उत्पन्न हो कर भी श्रेष्ठ नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। उन्होंने प्रियदर्शिका और रत्नावली की रचना की थी। श्री हर्ष ने इन दोनों रूपकों में यत्किंचित परिवर्तन कर और धावक को धनादि देकर सन्तुष्ट कर इन्हें अपने नाम से प्रचलित कर दिया है। श्री विद्याचक्रवर्ती-प्रणीत सम्प्रदाय प्रकाशनी काव्य प्रकाश की टीका[२] से

---

१. डा० आर० सी० द्विवेदी द्वारा सम्पादित काव्य प्रकाश, पद्य २ की व्याख्या; प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, देहली, सन् १९६६, पृ० ४ तथा Indian Historical Quarterly, Calcutta-1, pp. 105-105; 5 pp. 552-554 Survey of Sanskrit Literature By C.K. Raja, Bombay, 1962.

२. 'धावको रत्नावली-प्रणयन-सहायः'—काव्य प्रकाश, विद्याचक्रवर्ती प्रणीता सम्प्रदाय-प्रकाश टीका, पृ० ४।

भी उक्त तथ्य सम्पुष्ट होता है। 'इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली' में कतिपय पद्य[१] प्रकाशित हुए हैं, जिन पद्यों में धावक और भास की अभिन्नता बतलायी गयी है। पर भास के समय और श्री हर्ष के राज्य-काल पर विचार करने से उक्त तथ्य तर्कशून्य प्रतीत होते हैं तथा भास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में प्रचलित प्रथम दन्तकथा सारहीन प्रतीत होती है।

भास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में एक दूसरी दन्तकथा यह है कि भास जाति के धोबी थे और उन्हीं का नाम घटकर्पर था। समीक्षा करने पर यह दन्तकथा भी तथ्यशून्य है, क्योंकि घटकर्पर कालिदास के समकालीन हैं। सम्राट विक्रम की राजसभा के नवरत्नों में कालिदास और घटकर्पर का नाम आता है। अतएव भास और घटकर्पर की अभिन्नता स्वीकार नहीं की जा सकती है।

कुछ विद्वान् कवि विमर्श के आधार पर भास और धावक दोनों की अभिन्नता स्वीकार करते हैं तथा बतलाते हैं कि राजशेखर के 'सरस्वती पवित्राणाम्' और 'अहोप्रभावोवाग्देव्या.' में एक कुलाल की तुलना व्यास से की है एवं मातंगदिवाकर की बाण और मयूर से। इसी प्रकार एक धोबी—धावक की भास से तुलना की गयी है। प्रियदर्शिका और नागानन्द के लेखन की परम्परा को सत्य बतलाया है। भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के स्थापत्य के आधार पर 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' के स्थापत्य का

---

१. कारणं तु कवित्वस्य न सम्पन्नकुलीनता।
धावकोऽपि हि यद्भासः कवीनामग्रमोऽभवत्॥
आदौ भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका,
निरीर्ष्यस्य रसज्ञस्य कस्य न प्रियदर्शना।
तस्य रत्नावली नूनं रत्नमालेव राजते,
दशरूपककामिन्याः वक्षस्यत्यन्तशोभना।
नागानन्दं समालोक्य यस्यश्रीहर्ष विक्रम.।
अमन्दानन्दभरित. स्वसभ्यमकरोत् कविम्।

K. R. Pisharati, Indian Historical quarterly, Calcutta–I, pp. 105, 106; 5 pp 552-554; A K Pisharati, Criticism, pp. 13-14, Raja Journal of Oriental Research, Madras—I, pp. 226-227.

गठन स्वीकार किया है। इस तुलना के आलोक में भास की समक्षता धावक के साथ बतलायी गयी है। अतएव धावक और भास अभिन्न न होकर भिन्न व्यक्ति हैं और व्याख्या में 'धावक कवि भास इव' यह मान लेने से धावक कवि भास के तुल्य सिद्ध होता है, भास नहीं, क्योंकि भास और धावक को स्थापत्य विशेष के आधार पर अभिन्न नहीं माना जा सकता है। प्रथम दन्तकथा में आये हुए तथ्य कवि विमर्श के आधार पर भी सिद्ध नहीं हो सकते हैं। अतः भास और धावक की अभिन्नता पूर्णतया संदिग्ध है। दूसरी बात यह है कि नाटक-चक्र में प्राप्त तथ्यों के आधार पर भास को रजक जाति का नहीं माना जा सकता है। वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्था व्यक्त होने से भास को हम ब्राह्मण ही मान सकते हैं, अन्य वर्ण का व्यक्ति नहीं।

तीसरी दन्तकथा में बताया गया है कि एक बार व्यास और भास में प्रतिष्ठा के लिए झगड़ा हुआ। व्यास अपने को श्रेष्ठ और प्रतिभाशाली कवि मानते थे और भास अपने को। निर्णय के लिए दोनों के ग्रन्थ अग्नि को अर्पित किये गये। कहा जाता है कि व्यास के ग्रन्थों को अग्नि ने भस्म कर दिया, पर भास के नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' अग्नि में भस्म न हो सका। उनके अन्य नाटक अग्नि में जल कर भस्म हो गये। इस किम्वदन्ती की पुष्टि राजशेखर के निम्नलिखित कथन से भी होती है। राजशेखर ने बताया है कि अग्नि ने भास के अन्य नाटकों को तो भस्म कर दिया पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' को वह न जला सकी।

भास नाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्,
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।

इस पद्य की व्याख्या में यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक अत्यन्त उच्च कोटि का है, इसे समय की अग्नि का प्रभाव स्पर्श नहीं कर सका और यह अपनी श्रेष्ठता के कारण आज भी विद्वद्वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। डॉ॰ राजा ने भी उक्त तथ्य की पुष्टि की है।[1]

---

1. It is interesting to see how Dr. Raja comes to the meaning. Bhasa's dramas contained conflagration scenes. These fires burnt all other dramas (i. e. excelled them). But Svapna alone remained safe. So according to this interpretation the Svapna was a rival to Bhas's works.
—Journal of Oriental Research, Madras, 1, p. 227.

डॉ० राजा ने प्रस्तुत श्लोक की व्याख्या एक नये प्रकार से भी की है। उनका अभिमत है कि भास के नाटकों में दैहिक दृश्यों का बाहुल्य है। इन दृश्यों के दहन में अन्य सभी नाटक जल कर भस्म हो गये, पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' नहीं जल सका। इसका अन्योक्तिपरक अर्थ यह भी है कि प्राचीन नाटककार भास की नाट्य-कला के समक्ष ठहर न सके। यथार्थ समीक्षा करने पर भी 'स्वप्नवासवदत्तम्' उच्च कोटि का नाटक सिद्ध होता है। महाकवि कालिदास के पूर्व भास, सौमिल्ल आदि नाटककार उपस्थित थे तथा उनकी कृतियों का भी समाज में पर्याप्त सम्मान था। पर समय के प्रवाह ने भास को छोड़ अन्य सभी नाटककारों को तिरोहित कर दिया। भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्' केवल नाट्य-कला की दृष्टि से ही उत्तम नहीं है, अपितु जीवन मूल्यों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि राजशेखर ने अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा भास का महत्व स्थापित किया है।

व्यास और भास के कलह वाली घटना में कुछ तथ्य हो या न हो पर इतना स्पष्ट है कि भास भी व्यास के समान प्राचीन एवं यशस्वी कवि हैं। इन्होंने आत्मदर्शन की उन मधुमयी झाकियों को मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत किया है जिनके स्पर्श मात्र से ही युग-युग के कालुष्य धुल जाते हैं, जीवन पवित्रतम हो उठता है, जगत प्रकाशमय हो जाता है एवं सामाजिक व्यक्ति विशेष न रह कर सम्पूर्ण विश्व से भावमय तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस दन्तकथा से निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत होते हैं—

१. भास, व्यास के समान प्राचीन हैं।

२. भास यदि कालिदास के पश्चात्वर्ती होते तो इस घटना का सम्बन्ध व्यास के साथ न जोड़ कर कालिदास के साथ जोड़ा जाता। पर, दन्तकथा में भास का कलह कालिदास के साथ नहीं दिखलाया गया है। अतः भास की प्राचीनता और महत्ता स्पष्ट है।

३. भास और व्यास के उक्त कल्पित कलह से यह भी ध्वनित होता है कि नाटककार भास महाकवि व्यास के समान अनेक कृतियों के लेखक हैं। विद्वत्ता और कवित्व-शक्ति का अपूर्व मणि-कांचन संयोग उनमें विद्यमान है।

प्रो० ध्रुव का मत है[१] कि गोत्र के नाम पर व्यक्ति के नामकरण की प्रथा प्राचीन समय में प्रचलित थी। पतञ्जलि, योगन्धरायण, काश्यप आदि नाम गोत्र के आधार पर ही प्रयुक्त हैं, अगस्त्य गोत्र की हेमोदक शाखा में 'भाष' गोत्र है, इसी गोत्र में नाटककार भास का जन्म हुआ है। यतः 'भाप' गोत्र का अपभ्रंश रूप भास है। अतएव भास नाम गोत्र के नाम के आधार पर प्रचलित हुआ है।

'भास' जाति के ब्राह्मण थे और वर्णाश्रम धर्म के पोषक थे। यज्ञ के प्रति इनकी अपूर्व आस्था अभिव्यक्त होती है। कर्णभार में कवि ने लिखा है—

शिक्षाक्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति,
हुतंचदत्तंचतथैव तिष्ठति ॥—कर्णभारम् १।२२

अनेकयज्ञाहुतितर्पितोद्विजैः,
किरीटवान् दानवसंघमर्दनः। —कर्णभारम् १।२३

क्रतुव्रतैस्ते तनु गात्रमेतत् सोढुं वल शक्ष्यसि पीडयानी—पंचरात्रम्। १।२९

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि नाटककार भास की यज्ञानुष्ठान के प्रति पूर्ण आस्था है। ब्राह्मण और गौ के संरक्षण में भी कवि आस्थावान दिखलायी पड़ता है। अतएव कवि को ब्राह्मण मानना अधिक उपयुक्त है।

१—Prof. Dhruva says that there was a tradition of the name of one's Gotra and it is in accordance with that we get such names as Patanjali, Yaugandharayana. Bhasa is a Gotra in Haimodaka division of Agastya gotra aud Bhasa is the corrupt form. That he was a Brahman, an orthodox follower of the caste-system, a firm believer in the practice, utility and efficiency of sacrifice etc. seems to follow from the views he takes of these things. We have already shown that Dhavak is quite a distinct person from our author and hence it follows that the description of the latter as "washer-man" by caste on the strength of the alleged identity is not correct. There is no internal evidence to support the inference.

See—Svapnani Sundari inip. p. 14 & Bhasa—A study
—Pulsaker, p. 108.

कृतियों के आधार पर भास का जीवन-वृत्त

पुसालकर ने शकर के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'अविमारक' रूपको के मगलाचरण मे प्रयुक्त 'त्वाम्' और 'ते' पद से यह ध्वनित होता है कि भास शासक नृपति थे। वे इन रूपको के प्रथम अभिनय मे स्वय सम्मिलित रहे होगे और उन्होने उपस्थित सामाजिको के लिए आशीर्वाद के रूप मे 'त्वाम्' और 'ते' पदो का उपयोग किया होगा। प्रस्तुत सन्दर्भो मे 'त्वाम्' और 'ते' पद का प्रयोग कवि की उपस्थिति के साथ उसके प्रशासक होने का भी सूचक है, अत. भास को शासक नृपति मानना अनुचित नही है।

'प्रतिज्ञा', 'पचरात्र' और 'प्रतिमा' रूपको के मगलाचरण मे कवि राजा की उपस्थिति को निश्चित रूप से प्रतिपादित नही करता। वह सामाजिको के कल्याण का आशीर्वाद 'व पातु' पद द्वारा प्रदान करता है। अतएव इन रूपको के मगल श्लोको से भास किसी राजसभा मे निवास करने वाला राजकवि सिद्ध होता है।

मगल पद्यो से यह भी ज्ञात होता है कि कवि विष्णु भक्त है और यह पचरात्र दर्शन से सुपरिचित है। उसने राम और कृष्ण को अवतार के रूप मे वर्णित किया है। 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' मे राम तथा 'दूतवाक्य' और 'बालचरित' मे कृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त की गयी है। निश्चयतः नाटककार-भास की वैदिक क्रियाकाण्ड के प्रति अपार आस्था है। वह धर्मभीरु, सकल शास्त्रो का ज्ञाता, विनीत, प्रत्युत्पन्नमति, हास्य-प्रिय, शिष्ट, गुरुजनो का आज्ञाकारी एव कुशल भाषणकर्ता सिद्ध होता है। चाटुकारिता से रहित स्पष्टवादी और राष्ट्रकवि के रूप मे भास को माना जा सकता है।

भास की रचनाओ से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कवि मे देशभक्ति कूट-कूट कर भरी है। इसी कारण विदेशी राजा के विनाश तथा एकच्छत्र राज्य की कामना करता है। नाटको के अन्तरग परीक्षण से भास का राष्ट्रप्रेम भी सिद्ध होता है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे महिषी वासवदत्ता का राज्यप्राप्ति के हेतु आपदाओ से अभिभूत हो कर सपत्नी भाव को वहन करना नाटकीय सफलता के साथ-साथ राष्ट्र की वीरागनाओ के हेतु स्पृहणीय चरित्र प्रस्तुत करता है। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण मे कर्मठ तथा सफल मन्त्री का अपने स्वामी के मगल हेतु प्रतिज्ञा करना और उस कठोर व्रत का तत्परता एव बुद्धिमत्ता से पालन करना

मन्त्रियों के लिए आदर्श की वस्तु है। मन्त्रित्व के इतने सफल अंकन से भास के किसी राजा के यहाँ मन्त्री होने की सूचना मिलती है। ऐसा ज्ञात होता है कि वे परम राजभक्त मन्त्री थे और किन्हीं कारणों से उनका देश निर्वासन किया गया था, अथवा स्वयं शत्रु या किसी विदेशी राजा के यहाँ जा कर रहना पड़ता हो, और दक्षिण में उन्होंने शरण ली हो। दक्षिण में इनकी कृतियों की प्राप्ति का यही कारण है।

नाटककार भास का भाग्य और पुरुषार्थ दोनों पर विश्वास है। एक ओर वह भाग्यवाद का समर्थन करता है तो दूसरी ओर पुरुषार्थ का। यथा—

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः। स्वप्नवासवदत्तम् १।४
अर्थात् भाग्यदशा पहिये के आरों की भाँति ऊपर-नीचे होती रहती है।

न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिःसुपरीक्षितानि॥
स्वप्नवासवदत्तम् १।११

अर्थात् भवितव्यता सिद्धों के सुपरीक्षित वचनों का उल्लंघन नहीं करती।

भास मनुष्य, स्वभाव और प्रकृति के पारखी हैं। इनकी रचनाओं से यह संकेतित होता है कि इनका कौटुम्बिक जीवन सुखी था। ये कर्त्तव्यपरायण पुत्र, निष्ठावान पति, एवं संतानप्रिय पिता थे। अविभक्त परिवार के प्रति इनकी अपार आस्था थी। ये आशावादी व्यक्ति थे। न्याय और स्वतन्त्रता के प्रेमी थे। राजकुलों से सम्बन्ध रहने के कारण राज प्रासाद और अन्तःपुरों के सजीव चित्रण में विशेष रुचि प्रदर्शित की गयी है। अमात्य, सेना, दूत, युद्ध आदि के चित्रणों से भी यह सिद्ध होता है कि भास का सम्बन्ध किसी राजकुल से अवश्य था।

जहाँ भवितव्यता पर आस्था है, वहाँ पुरुषार्थ पर भी। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में पुरुषार्थ की महत्ता बतलाते हुए लिखा है कि उत्साही व्यक्ति के लिए इस विश्व में कोई भी असाध्य कार्य नहीं है। प्रयत्नशील साहसी व्यक्ति संसार की बड़ी से बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर लेता है।

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्,
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां,
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण १।१२

अर्थात् अतिशय रगड़ करने पर काष्ठ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। खोदने

पर पृथ्वी से जल मिल जाता है। उत्साह सम्पन्न मनुष्यो के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। समुचित रीति से किये गये प्रयत्न सफल होते हैं। पुरुषार्थी अलभ्य वस्तु को भी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार आभ्यान्तर प्रमाणो से सिद्ध होता है कि नाटककार भास धर्म-भीरु ब्राह्मण थे और वे किसी राजा की राजसभा मे राजकवि के पद पर प्रतिष्ठित थे। ब्राह्मण धर्म और वैदिक सस्कृति के प्रति उनकी अपार निष्ठा थी। उनकी शिक्षा-दीक्षा किसी अच्छे गुरुकुल मे सम्पन्न हुई थी। ये सद्गृहस्थ और सम्मिलित परिवार के सदस्य थे। माता-पिता, गुरुजन, बन्धु-बान्धव एवं पत्नी और सन्तान के प्रति भी वे उत्तरदायी थे।

भास का जन्म-स्थान

प्राय सस्कृत के समस्त मूर्धन्य कवियो और नाटककारो के जन्म-स्थान और जन्म-काल के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है। भास ने अपने जन्म से भारत के किस भू-भाग को अलकृत किया था, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

इनके रूपको की उपलब्धि केरल मे होने से कतिपय मनीषि इनका जन्म-स्थान दक्षिण भारत मानते हैं, पर नाटककार भास ने उत्तर भारत के देश, नगर, नदी, वन-पर्वत आदि का जैसा चित्रण किया है वैसा दक्षिण भारत के स्थानों का नहीं। इनके नाटको मे समाहित भौगोलिक सामग्री का अध्ययन करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये उत्तर भारत के निवासी थे। इनका दक्षिण भारत का ज्ञान रामायण और महाभारत के ज्ञान तक ही सीमित है। रामायण की कथावस्तु को ग्रहण करने पर भी इन्होंने 'रामेश्वरम्' जैसे प्रसिद्ध तीर्थ का उल्लेख नहीं किया। अत भौगोलिक निर्देशों के आधार पर भास को दक्षिण का निवासी नहीं माना जा सकता। यह सम्भव है कि अपने उत्तरार्द्ध जीवन मे भास दक्षिण के प्रवासी रहे हो। अयोध्या, उज्जयिनी और मथुरा के चित्रण मे भास की रुचि विशेष दिखलायी पड़ती है। 'हिमवद्विन्ध्य-कुण्डलाम्'[१] से स्पष्ट है कि इन्होंने उत्तर भारत की सीमा या मध्यदेश को ही वर्णित किया है। मनुस्मृति में मध्यदेश की जो सीमा बतलायी गयी है, उसी सीमा का निर्देश भास के रूपको मे मिलता है।

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, ६।१९

सामाजिक दृष्टि से भास द्वारा निरूपित रीति-रिवाज एवं प्रथाएँ उत्तर भारत की हैं, दक्षिण भारत की नहीं। अतएव यह स्पष्ट है कि भास का जन्म उत्तर भारत में ही हुआ है।

नाटककार भास ने अपने जन्म से उज्जयिनी, मगध और बद्रीनाथ, इन तीन स्थानों में से किस स्थान को अलंकृत किया है, यह विचारणीय प्रश्न है। यहाँ सर्वप्रथम बद्रीनाथ के पार्श्ववर्त्ती प्रदेश पर विचार किया जाता है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में नाटककार भास ने 'उत्तरकुरुवासः मयानुभूयते' कहा है। यहाँ आया हुआ 'उत्तरकुरु' शब्द चिन्तनीय है। 'उत्तरकुरु' उस प्रदेश का प्राचीन नाम है, जहाँ आजकल बद्रिकाश्रम या बद्रीनाथ का मन्दिर है। इस मन्दिर के चारों ओर की चार-चार कोसवर्त्ती भूमि उत्तरकुरु कहलाती थी। यह स्थान प्रकृति की रमणीयता के कारण अत्यन्त सुखद माना जाता था। 'वासवदत्ता' इसी स्थान के सुख का अनुभव करती है। इससे यह ध्वनित होता है कि नाटककार भास को 'उत्तरकुरु' विशेष प्रिय है। इसी कारण वह वासवदत्ता से उत्तरकुरुवास के अनुभव की चर्चा कराता है। जन्मभूमि स्वर्ग के समान सुखद मानी जाती है। अतः सम्भव है कि उत्तरकुरु कवि का जन्म-स्थान रहा हो और इसी कारण उन्होंने जन्मभूमि के प्रेम से प्रेरित हो कर 'वासवदत्ता' के मुख से उक्त तथ्य कहलवाया हो। विचार करने पर इस मत की पुष्टि के लिए अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलता है। अतः पुष्ट प्रमाणों के अभाव में 'उत्तरकुरु' को कवि का जन्म-स्थान नहीं माना जा सकता।

उज्जयिनी विचार

कवि का जन्म-स्थान उज्जयिनी है। इस मत पर विचार करने से प्रतीत होता है कि मौर्यकाल में उज्जयिनी की समृद्धि अत्यधिक थी। यों तो अभिलेखों से यह भी प्रमाणित है कि ई० पू० ४०० के लगभग ही यह नगरी प्रसिद्ध हो चुकी थी। 'सूर्यसिद्धान्त' में वर्णित याम्योत्तररेखा लंका, उज्जैन, कुरुक्षेत्र और मेरु से हो कर निकलती है। उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों में भी उज्जयिनी की प्रसिद्धि मानी गयी है। इसके नामान्तर भोगवती, हिरण्यवती, अमरावती, शिवपुरी आदि भी बताये गये हैं। अतः उज्जयिनी की प्राचीनता में किसी को भी आशंका नहीं हो सकती। भारतीय साहित्य में जिन सोलह जनपदों का उल्लेख आया है, उनमें अवन्ती भी एक है। यह अवन्ती जनपद दो भागों में विभक्त था—उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जयिनी थी और दक्षिणी भाग की माहिष्मती। उज्जयिनी में महासेन प्रद्योत

नामक राजा बुद्ध के समय मे राज्य करता था। महाराज प्रद्योत के गोपाल, पालक और कुमार, ये तीन पुत्र थे तथा वासवदत्ता नाम की कन्या। नाटककार भास ने उदयन और वासवदत्ता की कथा 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे अंकित की है। अत. भास का जन्म-स्थान उज्जयिनी होना चाहिये, क्योंकि उज्जयिनी के प्रति इनकी ममता सर्वाधिक है। उज्जयिनी कवि का जन्म-स्थान है, इसके लिए निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

(१) नाटककार भास ने उज्जयिनी के विभिन्न स्थानो का इतना सूक्ष्म और सागोपाग वर्णन किया है, जो आँखो से देखे विना कभी सम्भव नही। कल्पना मात्र से कवि किसी दृश्य को मूर्तिक रूप दे सकता है, पर भौगोलिक विशेषताओ का अकन अवलोकन किये बिना नहीं कर सकता। भास ने 'कनकतालवन' से निकलते हुए प्रद्योत का चित्रण इतना स्पष्ट किया है जिससे यह मानने मे किसी को विप्रतिपत्ति नही हो सकती कि कवि का जन्म-स्थान उज्जयिनी का भू भाग है। कवि कहता है कि दूर्वांकुर के समान स्निग्ध नीलमणि जटित सुवर्ण के केयूरो को पहने हुए महाराज प्रद्योत चम्पक और तालवृक्षों से युक्त 'कनकतालवन' मे उसी प्रकार दौडते हुए निकले जिस प्रकार 'शरवण' से कार्तिकेय।[१] कवि ने इस सन्दर्भ में 'कनकतालवन' से निकलने वाले प्रद्योत का चित्रण उक्त वन का अवलोकन कर के ही किया है। प्राचीन उज्जयिनी के पार्श्ववर्ती प्रदेशो मे 'कनकतालवन' भी रहा है। अतएव इस वर्णन के आधार पर नाटककार भास का जन्म-स्थान उज्जयिनी मानना असंगत नही है।

(२) 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' नाटक मे बताया गया है कि सिप्रा नदी के आघातों के कारण भूमि का कुछ भाग कट गया था, जिससे भूमि विषम अर्थात् ऊँची-नीची हो गयी थी। फलत , कालाष्टमी की रात्रि को 'वासवदत्ता' यक्षिणी के मन्दिर मे पूजा के लिए जाने लगी तो उसे प्रसिद्ध राजमार्ग के कट

१ दूर्वाङ्कुरस्निग्धनीलमणिप्ररोहै-
पीनाङ्गदै परिगतं परिजीवितासः।
अस्माद् घनात् कनकतालवनैकदेशा-
न्निर्धावित शरवणादिव कार्त्तिकेय.॥
—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, २।२

जाने के कारण कारागार के द्वार के सामने से जाना पड़ा, जिससे उदयन की दृष्टि वासवदत्ता पर पड़ी और दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया।[1] इस प्रसंग से भी स्पष्ट है कि नाटककार भास उज्जयिनी से पूर्ण परिचित है और यही कारण है कि उन्होंने वहाँ के स्थानों का स्पष्ट चित्रांकन किया है।

(३) इसी नाटक में आया है कि अग्नि-गृह से चारों ओर मार्ग जाता था। यहाँ अग्नि-गृह का अर्थ यज्ञशाला है। उज्जयिनी की यज्ञशाला का वर्णन स्कन्दपुराण के अवन्तिका खण्ड में भी आया है। इससे ज्ञात होता है कि भास उज्जयिनी के निवासी थे और उन्होंने यज्ञशाला से निःसृत होने वाले मार्गों का निर्देश किया है।

(४) भास ने उज्जयिनी की समृद्धि का स्वयं अनुभव किया था। इसी कारण उन्होंने यक्षिणी के उस मन्दिर की चर्चा की है, जिसका अस्तित्व मौर्य-काल के पहले ही विद्यमान था। कुमारी कन्याएँ कालाष्टमी के दिन अपनी अभीष्टपूर्ति के लिए यक्षिणी की पूजा करने जाती थीं। यक्षिणी का यह आयतन सिप्रा नदी के तट पर था। बौद्धकाल में यक्ष और यक्षिणियों के आयतनों का बहुत प्रचार था। प्रायः प्रत्येक नगर के बाहर यक्ष या यक्षिणी का मन्दिर रहता था।

अतएव उक्त भौगोलिक वर्णनों के आधार पर भास का जन्म-स्थान उज्जयिनी मानना सम्भव प्रतीत होता है।

मगध-जन्म-स्थान पर विचार

भास के रूपकों में मगध के प्रति भी श्रद्धा और आस्था दिखलायी पड़ती है। कवि ने राजगृह के समीपवर्ती वन प्रदेश और आश्रम का सजीव चित्रण किया है। मौर्य-काल में आश्रमों की व्यवस्था राजाओं की ओर से सम्पन्न की जाती थी। राजमाताएँ या राजपरिवार के वृद्ध व्यक्ति आश्रमों में पवित्र जीवन-यापन के लिए निवास करते थे। राजमाता राजगृह के निकटवर्ती आश्रम में निवास करती है और पद्मावती उनके दर्शन के लिए जाती है। यहाँ

---

१. या सा कालाष्टमी अतिक्रान्ता, तस्यां तत्रभवती वासवदत्ता नाम.......
शिविकायामवघट्टित प्रणाली प्रस्तुत सलिलविषमं राजमार्गं परिहृत्य यत्रद् बन्धनद्वारस्याग्रतो भगवत्या यक्षिणयाः स्थानं, तस्मिन् देवकार्यं कर्तुं गतासीत्।

—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक ३, पृ० ६३-६४

राज कर्मचारियो ने जितनी तत्परता दिखलायी है और जैसा आचरण किया है वह मौर्य-कालोचित है। अत मगध जनपद के आश्रमों का सूक्ष्म चित्रण रहने से भास का जन्म-स्थान राजगृह या उसके आस-पास का प्रदेश होना चाहिये, यह सम्भव है।

मगध नृपति दर्शक की बहन पद्मावती के समीप वासवदत्ता का न्यास रूप मे रहना भी भास को मगध का निवासी सिद्ध करता है। भास ने शत्रु को चन्द्रमा से ग्रसित होने की उपमा कई स्थलो पर दी है। इससे यह अनुमान होता है कि सम्भवत धनानन्द के मन्त्री राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के पराजित किये जाने की ओर सकेत किया है। यह घटना मगध की है। अत. मगध से भास का सम्बन्धित होना तर्कसगत है। इसी प्रकार 'प्रतिज्ञा०' नाटक मे 'श्रमणक' का प्रयोग जीवसिद्धि के लिए किया है, जिसने चाणक्य को पाटलि-पुत्र के कार्यों मे सहायता दी थी। चन्द्रगुप्त का नन्दवश की राजकुमारी 'दुर्धरा' के साथ विवाह होना मगध राजकुमारी पद्मावती के विवाह का सकेत करता है। अत यह स्पष्ट है कि भास ने मगध की राजनीति का पूर्ण चित्रण किया है।

भास के भरत वाक्यो मे 'राजसिंह' पद आया है। यह 'राजसिंह' चन्द्रगुप्त का व्यजक है। अत नाटककार भास इस चन्द्रगुप्त मौर्य की राज-सभा में अमात्य कवि के रूप में मान्य रहे हैं। इससे भी कवि का सम्बन्ध मगध के साथ सिद्ध होता है।

भास ने अपने नाटको मे सर्वत्र नक्षत्र मुहूर्त्त का उल्लेख किया है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे 'अज्ज एव्व किल सोभण णक्खत्त' लिखा[1] है। 'प्रतिमा' नाटक मे बताया है -

एकनाडिकावशेष कृत्तिकाविषय. । तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्या-मयोध्या प्रवेक्ष्यति कुमार. ।[2]

इन उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि भास के नाटको मे नक्षत्र-मुहूर्त्त का उल्लेख आया है। नक्षत्र-मुहूर्त्त की परम्परा प्राचीन होने के साथ मगध से सम्बद्ध है। उज्जयिनी मे तिथि-मुहूर्त्त का प्रचार था और मगध मे नक्षत्र-मुहूर्त्त का। आज भी मगधवासी कृषि कार्यों मे नक्षत्र-मुहूर्त्त का उपयोग

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, अंक २, पृ० ८१

२. 'प्रतिमा नाटकम्', अक ३, पृ० ७४

करते हैं। वर्तमान में रोहिणी में बीज वपन और पुनर्वसु में धान रोपण करते हैं। हस्त नक्षत्र की वर्षा कृषि के लिए अधिक उपयोगी मानी जाती है। व्यवहार में शोभन नक्षत्र को महत्व दिया जाता है। अतएव भास का नक्षत्र मुहूर्त्तानुयायी होना उज्जयिनी से अधिक मगध के पक्ष में है।

भास के रूपकों के अध्ययन से इतना तो बिल्कुल स्पष्ट है कि भास उत्तर भारत के निवासी थे। उज्जयिनी और मगध इन दोनों से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। मगध यदि जन्मभूमि है तो उज्जयिनी प्रवास-भूमि और उज्जयिनी जन्मभूमि है तो मगध प्रवास-भूमि। राजगृह और उज्जयिनी ये दोनों ही स्थान भास के लिए विशेष सुपरिचित है। अतः इन दोनों में भौगोलिक महत्व की दृष्टि से उज्जयिनी और सांस्कृतिक वर्णनों की प्रमुखता की दृष्टि से राजगृह भास की जन्म-भूमि सम्भाव्य है। मेरी दृष्टि में उज्जयिनी जन्म-भूमि है और राजगृह कर्म-भूमि। भास चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा के अमात्य कवि थे।

समय-निर्धारण

कालिदास, भवभूति प्रभृति कवियों के समान महाकवि भास ने भी अपनी रचनाओं में अपनी तिथि के सम्बन्ध में कुछ निर्देश नहीं किया है। भास के समय-निर्धारण में अभी तक विद्वानों में मतभेद है। डॉ० पुसालकर, ए० एस० पी० अय्यर आदि विद्वानों ने भास के समय पर विचार कर कुछ निष्कर्ष उपस्थित किये हैं। यहाँ डॉ० पुसालकर[1] द्वारा प्रतिपादित विभिन्न मान्यताओं का निर्देश कर भास के समय-निर्धारण का प्रयास किया जायगा।

भिडे, दीक्षित, गणपति शास्त्री, हरप्रसाद शास्त्री खुपेरकर, किरत और टटके	ई० पू० ६-४ शताब्दी
जागीदार, कुलकर्णी, शेम्बवनेकर, चौधुरी ध्रुव एवं जायसवाल	ई० पू० तृतीय शताब्दी
कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सोली एवं वेलर	ई० सन् द्वितीय शती
बनर्जी, शास्त्री, भण्डारकर, जेकोबी, जौली एवं कीथ	ई० तृतीय शती

1. Bhasa—A Study, revised edition, 1958, p. 63.

लेस्नी और विण्टरनित्ज	ई० सन् चतुर्थ शती
शंकर	ई० सन् पचम, षष्ठ शतक
वार्नेट, देवधर, हीरानन्द शास्त्री, निहुरकर पिशरोती और सरस्वती	ई० सन् सातवी शताब्दी
काणे और डॉ० कुन्हनराजा	ई० सन् नवी शताब्दी
रामावतार शर्मा	ई० सन् दसवी शताब्दी
रेड्डी शास्त्री	ई० सन् ग्यारहवीं शताब्दी

महाकवि बाणभट्ट ने भास के नाटक चक्र का निर्देश किया है, अत. ई० सन् सातवी शताब्दी के पश्चात् की मान्यताओ पर विचार करना निरर्थक है। भास की रचनाएँ बाण के समय में उपलब्ध थी, इसी कारण बाण ने भास की नाटकीय विशेषताएँ प्रतिपादित की हैं।

डॉ० पुसालकर ने भास की रचनाओ के अन्त परीक्षण के आधार पर इनका समय ई० पू० ४-५ शताब्दी माना है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'[1], 'अविमारक' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे जिन प्राचीन राज्यों का उल्लेख किया है उनका अस्तित्व मौर्यकाल के पूर्व महापद्मनन्द के समय में (ई० पू० ३८४) वर्तमान था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मे छोटे-छोटे गणतन्त्र विलीन हो कर बृहत्तर भारत मे मिल गये थे। फलतः भास द्वारा उल्लिखित राज्यो के आधार पर उनका समय ई० पू० चौथी शताब्दी माना जा सकता है। 'स्वप्न-वासवदत्तम्' मे उज्जैन के राजा प्रद्योत, कौशाम्बी के राजा उदयन एव मगध के राजा दर्शक का उल्लेख आया है। इन राजाओ का शासनकाल ई० पू० छठी शती के बाद नहीं[2] हो सकता है।

भास ने दर्शक के समय मे मगध की राजधानी राजगृह को बताया है।

---

१. अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो,वाङ्ग. सौराष्ट्रो मैथिल· शूरसेनः।
एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्माम्, कस्तेष्वेतेषा पात्रता याति राजा ॥
—प्रतिज्ञा० २१८

२. Smith, Early History of India, p. 38-39, 51; Jayaswala, Journal of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1913, p. 267-269.

अजातशत्रु के समय में मगध की राजधानी राजगृह से हट कर पाटलिपुत्र में स्थापित हो गयी थी। अतः नाटककार भास का समय मौर्यकाल से पूर्व है।

भास की रचनाओं में भरत के नाट्यशास्त्र के नियमों का विरोध पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके समय तक 'भरतनाट्यशास्त्र' की रचना नहीं हुई थी। भरत ने प्रस्तावना में नान्दी पाठ के अनन्तर काव्य के नाम निर्देश का निरूपण किया है[1], किन्तु भास की रचनाओं में यह नहीं मिलता। भरतनाट्यशास्त्र के अनुसार प्रतिज्ञायोगन्धरायण चार अंकों का होने से तथा दिव्यस्त्री कारणोपगत युद्ध होने से ईहामृग[2] होना चाहिये, पर नाटककार ने स्वयं ही इस नाटक के प्रारम्भ में इसे प्रकरण[3] कहा है। भास ने 'दूत घटोत्कच'[4] को उत्सृष्टांक नाम दिया है, पर भरतनाट्यशास्त्र के अनुसार उत्सृष्टांक में स्त्री पात्रों का बाहुल्य अपेक्षित है और इस रचना में स्त्री पात्रों की कमी है, अतः इसमें उक्त रूपक का लक्षण घटित नहीं होता।[5]

भरतनाट्यशास्त्र में मंच पर युद्ध, वध, आक्रमण एवं रुदन का निषेध किया गया है, किन्तु भास ने अपनी रचनाओं में इनका स्वच्छन्दतापूर्वक प्रयोग किया है। बालचरित[6] में दामोदर द्वारा अरिष्टर्षभ मुष्टिका वध, उरुभंग में दुर्योधन-भीम युद्ध और अभिषेक में राम-रावण युद्ध वर्णित है। प्रतिमा में[7] दशरथ की मृत्यु, अभिषेक में[8] वालि की मृत्यु तथा विभिन्न स्थानों पर शयन आदि का वर्णन आया है। इससे स्पष्ट है कि भास ने भरतनाट्यशास्त्र के नियमों का अनुसरण नहीं किया है। अतएव भास को भरत से पूर्ववर्ती स्वीकार करना तर्कसंगत है।

---

१. नान्दी पदानां मध्ये........प्रस्तावना कृतः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम्—भ० ना० ५।१५८-१६१
२. दिव्यपुरुषाश्रय.... ईहामृगस्तु कार्यश्चतुरंकविभूषितश्च—भा० ना० १८।१३०, १३२
३. वयमपि प्रकरणमारभामहे—प्रतिज्ञा०, पृ० १
४. दूत घटोत्कचं नामोत्सृष्टिकाङ्कः समाप्तम्—दू० घ०, अन्तिम पंक्ति
५. स्त्रीपरिदेवित बहुलो ह्युत्सृष्टांकस्तु—भ० ना० १८।१४६-१४८
६. बालचरित ३।१५
७. प्रतिमा २।२१
८. अभिषेक १।२२

वात्स्यायन से भी भास अपरिचित हैं, क्योंकि प्रतिमा नाटक में ब्राह्मण-वेषी रावण के द्वारा राम के अपने अध्ययन की चर्चा में वात्स्यायन के काम-सूत्र का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होना। काम-सूत्र के प्रसग का अभाव भास के समय मे वात्स्यायन की अविद्यमानता का सूचक है। भास के नाटकों में जो प्रेम सन्दर्भ आये हैं, उनमे बाभ्रव्य का ही अनुकरण किया गया है, वात्स्यायन का नहीं। बाभ्रव्य ने मन्दिर गमन, भ्रमण, उद्यानविहार, जलक्रीडा, विवाह, उत्सव, दुर्घटना, पर्व, अग्निकाण्ड, चोरी, दृश्य दर्शन हेतु गमन द्वारा प्रेमोद्भव का कथन किया है। भास के नाटको मे प्रेमोद्भव के उक्त सभी हेतु मिल जाते हैं। 'चारुदत्त' मे वसन्त सेना का झुकाव चारुदत्त के[१] प्रति तथा 'अविमारक' नाटक मे कुरगी का[२] मन अविमारक की ओर विहार समय में दुर्घटना मे सहायता करने से आकृष्ट हो जाता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे भी उदकस्नान हेतु वासवदत्ता के गमन से ही उदयन के साथ निर्गमन की पुष्टि होती है।[३] 'स्वप्नवासवदत्तम्'[४] में भी अग्निदाह की दुर्घटना के प्रसग मे दग्ध पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उसके गुणो के स्मरण के कारण पद्मावती का हृदय राजा की ओर आकृष्ट हो जाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि नाटक-कार भास ने वात्स्यायन को अनुकरण नही किया और न वात्स्यायन का उन पर कुछ भी प्रभाव है।

दूसरी बात यह है कि वात्स्यायन के वर्णन पर 'अविमारक' कथा के अध्ययन की छाया स्पष्ट है।[५] प्रथम समय कन्या को आकृष्ट करने में वात्स्यायन ने अविमारक का वर्णन किया है। अत. भास वात्स्यायन से पूर्व-वर्ती हैं। वात्स्यायन से भास की प्राचीनता सिद्ध करने में एक प्रमाण यह है कि काम-सूत्र मे अहिल्या, शकुन्तला एव अविमारक की कथाओ का सकेत प्राप्त होता है। वात्स्यायन के समय मे इन कथाओ की लोकप्रियता का

---

१. आ कामदेवयानात् प्रभृति चारुदत्तवटुक कामयेत—चारु०, पृ० २०३
२. यदाहस्तिसम्भ्रमदिवसे कुन्तिभोजदुहिता कुरगी दृष्टा—अवि०, पृ० ११८
३. क कालोऽद्य वासवदत्तायाः उदके क्रीडितुकामाया ....प्रेष्ये—प्रतिज्ञा०, पृ० ६५
४. स्वप्नवासवदत्तम्, पृ० ११-१६
५. वात्स्यायनकामसूत्रम्, पृ० २००-२०५

आभास मिलता है। अश्वघोष ने बुद्धचरित में अहिल्या[1] और शकुन्तला[2] का वर्णन किया है। अविभारक की कथा उत्तरकालीन साहित्य में लुप्त-सी हो गयी। यदि अहिल्या और शकुन्तला के आख्यान को महाभारत से गृहीत माना जाय, तो अविभारक की कथा को तो भास की मौलिक उद्भावना मानना ही पड़ेगा।

वात्स्यायन का समय चोल[3]-चित्रसेना, कुन्तल शातकर्ण शात वाहन—मलयवती एवं कुपाणि नरदेव चित्रलेखा के आख्यानों के प्राप्त होने के कारण ई० सन् १४०-२०० के लगभग है। भास इनसे पूर्ववर्ती हैं।

भास की रचनाओं के अध्ययन प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि इनकी भाषा में पाणिनि से यत्र-तत्र भिन्नता विद्यमान है। 'अवन्त्याधिपतेः'[4] च 'विगाह्य उल्कां'[5] और 'हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमोधम्' आदि प्रयोगों में सन्धि के नियमों का अतिक्रमण किया है। इसी प्रकार आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद, परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद, अकर्मक धातुओं का सकर्मक के समान प्रयोग, अनियमित समास, अनियमित प्रत्यय आदि भी भास की कृतियों में उपलब्ध है। अतएव भास का समय पाणिनी से पूर्व अथवा पाणिनि के समकालीन होना चाहिये। भास के अपाणिनीय प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि पाणिनि का व्याकरण भास के समय तक प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं कर सका था, अन्यथा भास उनके नियमों की अवहेलना नहीं करते।

संस्कृत नाट्य परम्परा में 'शूद्रक' के 'मृच्छकटिक' पर भास के चारुदत्त का स्पष्ट प्रभाव है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि 'चारुदत्त' का विकसित रूप ही मृच्छकटिक है। विसेन्ट स्मिथ ने शूद्रक का शासनकाल ई० पू० २२०-१९७ माना है। अतएव भास का समय ई० सन् की तृतीय शताब्दी के पूर्व है।

महाकवि भास ने नागवन, वेणुवन, राजगृह एव पाटलिपुत्र का उल्लेख किया है। ये सभी स्थान बुद्ध के समय में प्रसिद्ध हो चुके थे। अतः इनका समय

---

१. बुद्ध चरित, ४।७२
२. वही, ४।२०
३. स्मिथ द्वारा लिखित इतिहास, पृ० ४८२ तथा २२१
४. स्वप्न० ५।५
५. बालचरित ~

बुद्ध के पश्चात् मानना युक्तिसगत है। अतएव डॉ० गणपति शास्त्री की यह मान्यता खण्डित हो जाती है कि भास बुद्ध-पूर्व स्थित थे।[1]

प्रतिमा नाटक में रावण के मुख से अनेक शास्त्रो के अध्ययन का वर्णन किया गया है। इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भास के समय मे उक्त शास्त्र प्रसिद्ध रहे हैं—

साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये मानवीय धर्मशास्त्रं माहेश्वर योगशास्त्रम् ।
बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं मेधाऽतिथेर्न्यायशास्त्रं प्राचेतस श्राद्धकल्पच ॥

'सागोपाग वेदम्' के अन्तर्गत शाखा और उपशाखाओ के अध्ययन को ग्रहण किया गया है। वेदो के इस प्रकार के अध्ययन की परम्परा ई० पू० ८-७वी शती तक ही प्रचलित रही है। ऋग्वेद की शाकल, वाष्कलऽ अश्वलायन, साख्यायन एव माण्टकायन ये पाँच शाखाएँ ई० पू० छठी शती तक ही विद्यमान थी। सामवेद की सहस्रो शाखाएँ बतलायी गयी हैं, पर उनका अस्तित्व भी ई० पू० ६-५वीं शती तक ही मिलता है। अत 'सागोपाग' वेदाध्ययन की परम्परा ई० पू० ४थी शती से लुप्तप्राय होने के कारण भास के उक्त उल्लेख को ई० पू० ५-४ शती तक का मानना न्यायोचित है।

रावण द्वारा 'मानवीय धर्मशास्त्रम्' के अध्ययन की चर्चा की गयी है। यह मानव धर्मशास्त्र मनुस्मृति का पूर्व रूप है तथा यही मूल है। मनुस्मृति का सकलन ई० सन् द्वितीय शती मे हुआ है। बूल्हर के अनुसार गौतम धर्मशास्त्र सबसे प्राचीन है और इसमे मनु का उल्लेख आया है। भास की रचनाओ पर भी मनु का प्रभाव है। मनुस्मृति मे[2] मृगया आदि व्यसनों के वर्णन मे जुआ खेलने का निषेध किया गया है। किन्तु आपस्तम्ब और विष्णुधर्म[3] मे राजसी मनरञ्जण प्रसग मे यह स्वीकृत किया गया है। द्यूत विषयक निन्दा तथा ग्लानि की स्वीकृति भास ने अपने नाटक 'पचरात्र'[4] तथा 'ऊरुभग' मे प्रदर्शित की है। पचरात्र मे द्रोण युधिष्ठिर को द्यूत से वचित हुआ करते हैं तथा दुर्योधन स्वय ऊरुभंग में द्यूत के दोषों को स्वीकार करता है। मनु ने[5]

---

१. प्रतिमा, पञ्चम अक, सप्तम पद्य मे आगे का गद्य, पृ० १२४
२. मनु०, ७।४७, ७।५०
३. विष्णु धर्म, ५।१३४-१३५
४. पचरात्र, १।२५ का समीपवर्ती, गद्य
५. मनु०, ११।४०

उत्सवों के अनन्तर दक्षिणा पर बल दिया है कि कोई भी यज्ञ साधारण दक्षिणा अथवा दक्षिणारहित रहने से निष्फल रहता है। भास ने भी पंचरात्र[1] में दुर्योधन के द्वारा द्रोण को दक्षिणा देने का निर्देश किया है तथा भीष्म द्वारा दक्षिणा विना निष्फलता का निरूपण कराया है।

मनुस्मृति के अनुसार उपाध्याय से बढ़ कर आचार्य तथा आचार्य के समान पिता का स्थान है। माता को पिता से सहस्रगुणित गौरव प्रदान किया है। पर भास ने पिता के विरुद्ध जाने वाली माता को अमाता कहा है। मध्यम व्यायोग में घटोत्कच माता के आदेश को सर्वोपरि मानता है। कर्णभार में कर्ण ने स्वयं माता का विशेष महत्व स्वीकार किया है। इन कथनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि भास ने वर्तमान मनुस्मृति का पूर्णतया अनुसरण नहीं किया है। मनुस्मृति के पूर्व मानव धर्मशास्त्र विद्यमान था जिसके आधार पर भास ने अपने अभिमत को व्यक्त किया है। इस मानव धर्मशास्त्र में मनुस्मृति के तथ्य तो संकलित होंगे ही साथ ही कुछ ऐसी बातें भी निबद्ध रही होंगी, जो वर्तमान मनुस्मृति में नहीं पायी जातीं। अतः भास पर मानव धर्मशास्त्र क प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है, मनुस्मृति का नहीं। मनुस्मृति का संकलन मानव धर्मशास्त्र के आधार पर ई० सन् की द्वितीय या तृतीय शताब्दी में हुआ है। अतएव भास का समय मनु से पूर्व मानने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है।

'माहेश्वरम्-योगशास्त्रम'—अर्थात् शिव द्वारा प्रतिपादित योगविद्या। इस योगविद्या का अभ्यास स्वयं शंकर जी ने किया था। प्रो० भण्डारकर ने सिद्ध किया है लकुलिश सम्प्रदाय का अस्तित्व ई० सन् से सहस्रों वर्ष पूर्व विद्यमान था। महेश्वर लकुलिश के ही अवतार हैं, और इन्हीं ने योग का प्रवर्त्तन किया है। इस प्रकार माहेश्वर योगशास्त्र का समय ई० पू० छठी शती माना जा सकता है।

'बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्'—बृहस्पति द्वारा रचित अर्थशास्त्र। यह राजनीति का ग्रन्थ रहा होगा और इसकी प्रसिद्धि कौटिल्य अर्थशास्त्र के समान ही प्राचीन काल में रही होगी। डॉ० थामस ने 'पंजाब ऑरिएण्टल सीरीज' में इस

---

१. पंचरात्र, १।२८

ग्रन्थ का सम्पादन कर कुछ अंश प्रकाशित किया था। प्रकाशित इस अंश की कौटिल्य अर्थशास्त्र के साथ तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि यह 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' से भिन्न है। इसका विषय राजनीतिक होने पर भी कौटिल्य अर्थशास्त्र से हीन कोटि का है। राजा, राजसभा, राज्य-व्यवस्था, षड्ग राजनीति आदि का प्रतिपादन कौटिल्य की अपेक्षा कम विस्तृत है। जहाँ कौटिल्य ने प्रत्येक विषय को उदाहरण दे कर विस्तृत बनाया है वहाँ बृहस्पति ने सूत्र रूप में ही विषय का प्रतिपादन किया है। अतएव भास का समय कौटिल्य से पूर्ववर्ती होने के कारण ई० पू० चतुर्थ शताब्दी सिद्ध होता है।

प्राचेतसश्राद्धकल्पम्'—अभी तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसका निर्देश कलकत्ता संस्कृत कालेज के सूची पत्र में प्रजापति के नाम से मिलता है। प्रजापति ही प्राचेतस हैं और यह पर्याप्त प्राचीन है। प्राचेतस श्राद्धकल्प के वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है। पर इतना सत्य है कि यह ग्रन्थ सूत्र ग्रन्थों के समान ही प्राचीन है। अतः इस आधार पर भास का समय ई० पू० पाँचवीं शताब्दी होना चाहिये।

मेधातिथि के 'न्यायशास्त्र' के निर्देश से भी भास के समय पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रस्तुत मेधातिथि मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि से भिन्न हैं। यह टीका नवीं शताब्दी में लिखी गयी है और इसका दूसरा नाम मनु भाष्य भी है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में मेधातिथि को न्यायशास्त्र का रचयिता माना गया है। पर मनुभाष्य का लेखक मेधातिथि न्यायशास्त्र का रचयिता नहीं है। विद्वानों का अनुमान है कि मेधातिथि का ही अन्य नाम गौतम है। इस प्रकार मेधातिथि और गौतम दोनों अभिन्न सिद्ध होते हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि मेधातिथि और गौतम ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं। महामहोपाध्याय डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषण द्वारा प्रयुक्त इस व्याख्या को डॉ० कीथ, विंटरनित्ज, परांजपे आदि ने भी स्वीकार किया है।[1] गौतम ने न्यायशास्त्र लिखा है और उनका यह न्यायशास्त्र प्राचीन समय में ही अध्ययन-अध्यापन का विषय था। अतएव मनु भाष्य के रचयिता से न्यायशास्त्र के प्रणेता मेधातिथि

१. A. D. Pushalkar, Bhasa—A Study, p. 67.

भिन्न हैं। अतः भास द्वारा उल्लिखित मेधातिथि का समय ई० पू० ४-५ शती है।

डॉ० पुसालकर ने भास का समय महापद्मनन्द का राज्यकाल बतलाया है। यह पहला शासक है जिसने समस्त उत्तर भारत को अपने अधीन किया था। भास के भरतवाक्य में जिस राज्य-सीमा का निर्देश आया है वह राज्य-सीमा महापद्मनन्द की है।

ए० एस० पी० अय्यर, आई० सी० एस०, ने भास का समय ई० पू० चौथी शताब्दी निश्चित किया है। इन्होंने अपने नाटकों के कथा स्रोत रामायण, महाभारत एवं पैशाची भाषा में लिखी गयी गुणाढ्य की बृहत्कथा से ग्रहण किये हैं। अतः भास का समय गुणाढ्य के पश्चात् होना चाहिये। भास के रूपकों में जैन साधुओं का उल्लेख आया है जिससे इन्हें ई० पू० छठी शती के बाद का मानना युक्तियुक्त है। अय्यर का अनुमान है कि भास कौटिल्य के समकालीन हैं। कौटिल्य ने नन्दों के विनाश में योगदान दिया था और चन्द्रगुप्त मौर्य को भारत के चक्रवर्ती पद पर प्रतिष्ठित किया था। चाणक्य या कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में नन्दों की राजनीति की आलोचना की है। युद्ध क्षेत्र में शूरों के उत्साहवर्धन के हेतु चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में प्रतिज्ञा-योगन्धरायण का निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है—

नवं शरावं सलिलैः सपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।
प्रतिज्ञा०, ४।२

यही पद्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के अधिकरणदस, अध्याय तीन में उद्धृत मिलता है। इससे स्पष्ट है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समय तक भास की रचनाएँ ख्यात हो चुकी थीं। यही कारण है कि कौटिल्य ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के उक्त पद्य को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया।

अय्यर ने यह भी बताया है कि 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के तृतीय अंक में— 'ही ही चन्दं गिलदिलाहू। मुंच-मुंच चन्दं। यदिण मुचेशि, मुहं दे पाडिअ मुंचावइस्सं। एशे एशे दुट्ठअश्शे परिब्भट्टे आअच्छेदि'[1] गद्य आया है। इस गद्यांश में चन्द्र, चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रतीक है और राहु राक्षस का। राक्षस

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, तृतीय अंक का अन्तिम गद्यांश, पृ० १००

नन्द वंश के अन्तिम राजा घनानन्द का अन्तिम अमात्य है। राक्षस अपने बुद्धि बल से चन्द्रगुप्त को परास्त करना चाहता है और पाटलिपुत्र के साम्राज्य पर घनानन्द को ही आरूढ़ बनाये रखने का प्रयास करता है। चाणक्य अपने बुद्धि बल से राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने का अथक प्रयास करता है। अतएव यहाँ राहु द्वारा घनानन्द एवं चन्द्र द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य का संकेत प्राप्त होने के कारण भास का समय ई० पू० चतुर्थ शती होना चाहिये।

'स्वप्नवासवदत्तम्, 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'अविमारक, अभिषेक और पंचरात्र के भरत वाक्य में 'राजसिंह' पद आया है। मौर्य राजा स्वयं राजसिंह कहलाते थे। अशोक ने अपने सारनाथ के स्तम्भ में तीन सिंहों को प्रतीक रूप में अंकित किया है। यह तीन सिंहों वाला प्रतीक स्वतन्त्र गणराज्य भारत के प्रतीक रूप में भी अभिहित है। अशोक के तीन सिंहों का प्रतिनिधित्व चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक करते हैं। इन तीनों मौर्यवंशी राजाओं के प्रताप को सूचित करने के लिए तीन सिंह का प्रतीक प्रदर्शित किया है। अय्यर का अनुमान है कि चन्द्रगुप्त को ही राजसिंह कहा गया है। जिस प्रकार बुद्ध को शाक्य सिंह कहा जाता है उसी प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य को राजसिंह। यौगन्धरायण चाणक्य का समसामयिक है। उसकी प्रतिज्ञा भी चाणक्य की प्रतिज्ञा के समान है। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में आया हुआ श्रमणक जीवसिद्धि का समकालीन है। जिस प्रकार चाणक्य ने जीवसिद्धि की सहायता से पाटलिपुत्र को अधिकृत किया उसी प्रकार यौगन्धरायण ने श्रमणक के सहयोग से उज्जयिनी नरेश प्रद्योत को अधीन किया। चन्द्रगुप्त का विवाह नन्दवंश की राजकुमारी दुर्धरा के साथ हुआ था। यह विवाह सम्भवतः उदयन के साथ सम्पन्न हुए पद्मावती के विवाह की ओर संकेत करता है। नीलगिरि हाथी की प्रतीकात्मकता, पौरुष के प्रसिद्ध हाथी के साथ समकक्षता प्रस्तुत करती है। भरतवाक्य में शत्रु सेना के शान्त होने की चर्चा सेल्युकस की सेना के दमन करने की ओर संकेत करती है। अतएव भास की तुलना कौटिल्य के अर्थशास्त्र में निर्धारित सिद्धान्तों के साथ करने से उनका समय ई० पू० तृतीय चतुर्थ शती सिद्ध होता है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'बालचरित' के भरतवाक्य से यह ज्ञात होता है कि हिमालय से लेकर विन्ध्य पर्वत पर्यन्त समुद्र पृथ्वी का एकच्छत्र भोग करने वाला

चन्द्रगुप्त मौर्य ही था। इसी को राजसिंह कहा गया है।[1] अय्यर के इस कथन की समीक्षा भास और कौटिल्य के सामयिक चित्रण में महान अन्तर होने से की जा सकती है। भास की दृष्टि में ब्राह्मण अवध्य तथा अनेक दोषों के होने पर भी सर्व प्रकार से प्रतिष्ठित और आदरणीय माना गया है। परन्तु कौटिल्य ने ब्राह्मण का स्थान इतना उन्नत नहीं माना है। जाति प्रथा का प्रावल्य कौटिल्य में पाया जाता है, परन्तु भास ने चरित्र[2] पर विशेष वल दिया है, अतएव कौटिल्य द्वारा निरूपित सामाजिक और राजनीतिक मान्यताएँ भास में ज्यों के त्यों रूप में नहीं मिलती हैं। भास ने गौ और ब्राह्मण को विशेष महत्व दिया है। कौटिल्य ने गाय को वध्य भी वर्णित किया है। अतः भास कौटिल्य से पूर्ववर्ती हैं। यदि भास कौटिल्य के पश्चात्वर्ती या समकालीन होते तो वे बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र के स्थान पर कौटिल्य अर्थशास्त्र का निर्देश करते। अतएव भास का समय ई० पू० ४-५ शती होना सिद्ध है।

पुसालकर ने भास के रूपकों के भरत वाक्य की समीक्षा करते हुए लिखा है कि राजसिंह किसी राजा का नाम नहीं है और न यह शब्द व्यक्तिवाचक ही है। सम्भवतः यह नन्दवंश के लिए प्रयुक्त हुआ है। स्टेनकोनो ने राजसिंह को पहचान क्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम से की है। ध्रुव ने इसे शुंगवंशीय पुष्यमित्र माना है। जायसवाल इसे कण्वनारायण और भिडे उदायी मानते हैं।

भरत वाक्य की प्रथम पंक्ति से ध्वनित होता है कि समस्त उत्तरी भारत विन्ध्य और हिमालय से घिरे हुए किसी राजा के अधीन था। यह स्थिति ई० पू० चतुर्थ शताब्दी की है। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य प्रथम सम्राट है, जिसने प्रथम वार समस्त उत्तर भारत को संघटित कर अपने शासन के अधीन किया था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने राजसिंह की खोज नन्द वंश के किसी राजा के साथ की है। अतः यह स्पष्ट है कि भास कौटिल्य के पूर्ववर्ती अर्थात् ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के हैं।

समाज-व्यवस्था के आधार पर काल निर्णय

प्रतिमा नाटक में बताया गया है कि मन्दिर के भीतर विधिवत् पुष्प और लाजा के नैवेद्य समर्पित किये गये थे। दीवालों की पुताई के ऊपर चन्दन से

---

१. A. S. P. Ayyar, Bhasa, 1957 Edition, p. 7-8.

२. चारित्र्यदोषम् मयि पातयन्ति, अविमारक, ६।१५

पाँचो अँगुलियो की पाँच छापें लगायी गयी थी, द्वारों पर पुष्पमालाएँ लटक रही थी और मन्दिर के बहिर्मार्ग मे चारो ओर बालुका बिछी हुई थी।[१] महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने मन्दिर के उक्त वर्णन की समीक्षा करते हुए लिखा है कि 'आपस्तम्ब सूत्र' मे मन्दिर के चारो ओर बालुका स्तरण का उल्लेख आया है। आपस्तम्ब की तिथि[२] काणे महोदय ने ई० पू० ६००-३०० के मध्य मानी है। कुछ विद्वान आपस्तम्ब का समय ई० पू० ५००-४०० मानते हैं। अत स्पष्ट है कि भास ने अपने प्रतिमा नाटक मे उक्त प्रथा आपस्तम्ब के सिद्धान्तो के प्रचरित होने के पश्चात ही निबद्ध की होगी। इस कारण नाटककार भास का समय ई० पू० ५००-४०० होना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि इस नाटक मे शूद्र द्वारा देवता की वन्दना बिना मन्त्र पाठ के करायी गयी है। मन्त्र पाठ करना वैदिक युग मे शूद्रो के लिए वर्जित माना गया है।[३] धर्मसूत्रो में बताया है कि शूद्र देव-वन्दन कर सकता है, किन्तु मन्त्रोच्चारणपूर्वक देव दर्शन करना वर्जित है। यह प्रथा उस समय की है, जब वैदिक युग के अनन्तर बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव के कारण शूद्रों को धार्मिक अधिकार दिये जाने लगे थे, और शुद्ध आम्नायी वेदाध्ययन का अधिकार शूद्रो को नही देना चाहते थे। उस समय अर्थशास्त्रकारो ने समन्वय करने के लिए मन्त्ररहित देव वन्दन करने की प्रथा को मान्यता दी। अतएव उक्त सामाजिक मान्यता के आधार पर भास का समय ई० पू० ४०० होना सम्भव है।

भास द्वारा किया गया सामाजिक और राजनीतिक जीवन का चित्रण कौटिल्य अर्थशास्त्र की पृष्ठभूमि मे ही घटित होता है। अर्थशास्त्र मे मदिरा-गृहो का वर्णन आया है तथा इन मदिरागृहो का सरक्षण शासन द्वारा किया जाता था। नाटककार भास ने उक्त प्रथा का अनुसरण प्रतिज्ञायौगन्धरायण के निम्नलिखित सन्दर्भ मे किया है—

धण्णा मुराहि मत्ता धण्णा सुराहि अणुलित्ता।
धण्णा सुराहि ण्हादा धण्णा सुराहि सञ्ज्ञविदा ॥[४]

---

१. प्रतिमा, तृतीय अक, पृ० ६६-७५
२. Proceedings and transaction of the All India Oriental Conference V., p 97; मायावती, प्रबुद्धभारत, १६२६,—पृ० १३१
३. प्रतिमा, तृतीय अक, पृ० ७६
४. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ४।१

अर्थात् मदिरा से जो मस्त हो जाते हैं, वे धन्य हैं। सुरा से अनुलिप्त पुरुष भी धन्य हैं। सुरा से स्नान किये हुए भी धन्य हैं और जो मदिरा पीकर मर जाते हैं, वे भी धन्य हैं।

अर्थशास्त्र में बड़े-बड़े नगरों में किन्हीं विशेष अवसरों पर नागरिकों के रात्रि भ्रमण पर प्रतिबन्ध (कर्फ़्यू) लगाने का संकेत आता है और इस प्रतिबन्ध की सूचना तूर्यवादन के द्वारा सभी को दी जाती थी। भास ने अपने 'चारुदत्त' में अर्थशास्त्र की उक्त प्रथा का अनुसरण किया है—

भो वयस्स। को कालो किदपरिघोसणदाए णिस्सम्पादा राअमग्गा।[1]
कः कालः कृतपरिघोषणतया निस्सम्पाता राजमार्गः।

सखे। उपारूढोऽर्धरात्रः स्थिरतिमिरा राजमार्गाः। निस्सम्पातपुरुषत्वात्, प्रसुप्तेवोज्जयिनी प्रतिभाति।[2]

इस प्रकार कौटिल्य अर्थशास्त्र और भास के रूपकों में समसामयिक जीवन का समान रूप में चित्रण हुआ है। राजनीतिक जीवन में जो विषमताएँ दिखलायी पड़ती हैं, उनका कारण यह है कि नाटककार भास के समय में अर्थशास्त्र की एकाध अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध थीं, जिनका अध्ययन कर भास ने अपने रूपकों में कौटिल्य अर्थशास्त्र से भिन्न विपरीत तथ्यों का भी संयोजन किया है। अतएव नाटकों में चित्रित सामाजिक जीवन के आधार पर यह मानना असंगत नहीं कि भास कौटिल्य से पूर्ववर्त्ती हैं। अतः इनका समय ई० पू० ४-३ शती मानना उचित है।

भास के अविमारक नाटक में मामा की कन्या के साथ विवाह करने का कथन आया है। मनु ने इस प्रकार के विवाह को अवैध घोषित किया है, पर महाभारत में इस प्रकार के विवाह को वैध स्वीकार किया गया है। अर्जुन का विवाह मामा की कन्या के साथ सम्पादित किया गया है। महाभारत के इस सन्दर्भ के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि नाटककार भास ने महा-

---

१. चारुदत्त, तृतीय अंक, पृ० ७४
२. वही, ततीय अंक, पृ० ७६

भारत की प्राचीन परम्परा का अनुसरण कर ही उक्त कथानक निबद्ध किया है। अतएव वर्तमान मनुस्मृति से भास पूर्ववर्ती हैं।[1]

भास के रूपको मे जैन और बौद्ध धर्म के प्रति किसी भी प्रकार की सद्भावना नहीं दिखलायी पड़ती, अपितु जो भी धार्मिक आदर्श प्रस्तुत किये गये हैं, वे वैदिक धर्म के हैं। भास ने अपनी कृतियो मे सर्वत्र प्राचीन वैदिक आदर्शों का ही चित्रण किया है। यह यथार्थ है कि क्रान्तिकारी जैन और बौद्ध धर्म से वह परिचित थे तथा उन्होने जैन और बौद्ध श्रमणो का उपहास भी किया है। अतएव इनका समय ई० पू० ४थी शती होना चाहिये।[2]

द्वितीय मत (ई० सन् द्वितीय-तृतीय शताब्दी)

डॉ० विण्टरनित्ज ने भास की भाषा तथा शैली अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास के अधिक निकट बतलायी है। इन्होंने अश्वघोष का समय ई० सन् द्वितीय शती और भास का ई० सन् तृतीय शती माना है। डॉ० कीथ ने कालिदास के उल्लेख के आधार पर भास को अश्वघोष और कालिदास का मध्यवर्ती माना है। कीथ ने लिखा है—"यदि हम निरापद रूप से कालिदास का समय लगभग ४०० ई० मानें तो भास का समय ३५० ई० के पहले माना जा सकता है। मृच्छकटिक से उनके पूर्ववर्ती होने की बात हमे निश्चित परिणाम पर नही पहुँचाती, क्योकि यह मत बिल्कुल अग्राह्य है कि इस रूपक को कालिदास के पूर्व तीसरी शताब्दी ई० का मानना चाहिये। एक उपरि-सीमा इस तथ्य से निर्धारित होती है कि भास असंदिग्ध रूप से अश्वघोष के परवर्ती हैं, जिनका बुद्धचरित प्रतिज्ञायौगन्धरायण के एक पद्य का सम्भावित स्रोत है और जिनकी प्राकृत का स्वरूप सुनिश्चित एवं निस्संदिग्ध रूप से प्राचीनतर है। प्राकृत के साक्ष्य पर यह अनुमान लगाना व्यर्थ है कि काल की दृष्टि से भास अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास के अधिक समीप हैं। कारण यह है कि भाषागत रूप परिवर्तन और साहित्य मे उसका प्रतिफलन ऐसी बातें हैं जिनके आधार पर संवत्सरों का ठीक ठीक निर्णय न्यूनतम मात्रा मे भी नहीं किया जा सकता।"[3]

---

१ A. C. Pushalkar, Bhasa—A Study, p. 70-79

२. Ibid, p. 83

३. Sanskrit Drama, Lodon, 1954, p. 93.

स्टेनकोनो भास को ई० सन् की द्वितीय शताब्दी में रखते हैं। पर विंटर-नित्ज से इनका समर्थन नहीं होता।

एस० एन० दासगुप्ता ने भास की रचनाओं को कालिदास का पूर्ववर्ती माना है। इन्होंने भास के काल पर अपना कोई स्वतन्त्र मत नहीं दिया। पर महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानों के मत पर विचार किया है। ये भाषा और शैली के आधार पर भास को अश्वघोष तथा कालिदास के मध्य पाते हैं।[१] भास महाभारत या श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कथा-वस्तुओं के निर्वाह में अत्यधिक सफल हैं। सम्भवतः क्षत्रप राजाओं के आश्रित होने के कारण ही उन्होंने उक्त कथाओं को ग्रहण किया है। ये राजा कृष्ण-भक्त थे। क्षत्रपों का राज्यकाल स्टेनकोनो के मतानुसार ई० सन् दूसरी शताब्दी है। और इसी समय में नाटककार भास विद्यमान रहे होंगे। स्टेन-कोनो ने स्पष्ट लिखा है कि क्षत्रप राजा रुद्रसिंह प्रथम के राज्यकाल में इन नाटकों के रचयिता भास ने जन्म लिया है।[२]

भास के नाटकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भास का जन्म उस समय हुआ, जब ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हो चुका था। भास कालि-दास के समान ही पौराणिक ब्राह्मण धर्म के पोषक हैं। विष्णु के उपासक होने से भी इनका समय १५० ई०-२५० ई० सन् के मध्य सिद्ध होता है। अनेक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने भास का समय ई० सन् द्वितीय शती माना है। डॉ० ए० पी० बनर्जी शास्त्री ने भास का समय ई० सन् दूसरी शती के बाद और तीसरी सदी के पूर्व माना है।[३] इन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक प्रमाण उपस्थित किये हैं, पर वे सभी प्रमाण निर्बल प्रतीत होते हैं।

तृतीय मत (सातवीं शताब्दी)

डॉ० बार्नेट ने भास के नाटकों का समय सातवीं शताब्दी माना है।

---

१. S. N. Dasgupta, History of Sanskrit Literature, p. 712.

२. Sten Konow : Indian Drama, p. 51.

३. दि जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग १, मार्च १९२३, पृ० ४९-११३

उनका अभिमत है कि नाटकचक्र के कर्त्ता प्रसिद्ध कवि भास नहीं हैं, अपितु कोई केरल कवि हैं, जो ई०-सन् सातवीं शती में वर्तमान था। नाटकों के भरतवाक्यों में जिस राजसिंह का उल्लेख आया है, वह किसी केरलीय राजा का वाचक है। *नाटकचक्र की भाषा महेन्द्रवीर विक्रम रचित मत्तविलास* प्रहसन की भाषा से मिलती-जुलती है। पारिभाषिक शब्दों में भी पूर्ण साम्य है। अत: बार्नेट नाटकचक्र के कल्पित भास को सातवीं शती का सि[illegible] करते हैं।

बार्नेट के तर्कों का खण्डन[1] स्टेनकोनो, ध्रुव एवं पुसालकर ने किया है, जब कालिदास और बाण ने भास का सातवीं सदी के पूर्व उल्लेख कर दिया है, तो फिर सातवीं सदी में भास का समय निश्चित करना हास्यास्पद है। यह सत्य है कि इन नाटकों में यत्र-तत्र प्रक्षेप हैं, पर इन प्रक्षेपों से भास की प्राचीनता में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती।

भास द्वारा प्रयुक्त प्राकृत के आधार पर समय निर्णय

भास नाटकचक्र में प्रयुक्त प्राकृत भाषा के आधार पर भास के काल-निर्णय का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है। डॉ० हर्टेल ने मुण्डकोपनिषद की भूमिका में लिखा है कि भास की रचनाओं की प्राकृत भाषा कालिदास की रचनाओं की प्राकृत भाषा की अपेक्षा प्राचीन है। भास की प्राकृत भाषा का अध्ययन करने वालों में डॉ० ए० बैनर्जी शास्त्री, विलियम प्रिंट्ज, लेस्नी, वी० एस० सुखथनकर प्रमुख हैं। सुखथनकर ने विलियम प्रिंट्ज के अध्ययन की आलोचना सन् १९४५ में प्रकाशित की। प्रिंट्ज ने 'पंचरात्र' और 'बालचरित्र' में गोपालकों की भाषा को मागधी कहा है। यहाँ यह स्मरणीय है कि जिस मागधी में कर्त्ता कारक एक वचन का अन्त 'ए' से होता है, वह मागधी यहाँ प्रयुक्त है। अत: बालचरित और पंचरात्र के गोपालकों की भाषा को उत्तरी तथा पश्चिमी जनभाषाओं का ही रूप कहा जा सकता है। डॉ० बेलर ने इस प्राकृत को शौरसेनी कहा है। 'कर्णभार' में इन्द्र तथा 'बालचरित' में गोपालक की भाषा को प्रिंट्ज ने अर्धमागधी कहा है। भास की प्राकृत भाषा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस पर पालि स्वरावलि का पूरा प्रभाव है। इन्होंने कर्त्ता कारक एक वचन उत्तम पुरुष में 'अहम्' के स्थान पर 'अहम्' और 'अह्के'

---

१. पुसालकर, भास—ए स्टडी, पृ० १२९-१३२

का प्रयोग किया है। अश्वघोष ने 'अहम्' के लिए 'अहकम्' तथा वाद के रूपकों में 'हके', 'अहके' और 'हगे' का प्रयोग हुआ है।

प्रो० लेस्नी ने भास की प्राकृत भाषा की परिवर्तनशीलता तथा विभिन्न रूपों के साथ प्रयोगों की अधिकता के वल पर अश्वघोष और कालिदास से तुलना की है और यह सिद्ध किया है कि ये नाटक कालिदास से पूर्व तथा अश्वघोष के वाद के हैं। इनके इस मत में बनर्जी शास्त्री ने अश्वघोष के बाद के होने में पर्याप्त सामग्री न होने से अपने समर्थन का अभाव दर्शाया है।

भास के नाटकों में 'अम्हाअं' और 'अम्हाणं' दोनों प्रयोग 'अस्माकम्' के स्थान पर मिलते हैं। इन प्रयोगों के आधार पर 'भास' को अश्वघोष से पूर्ववर्ती नहीं माना जा सकता, क्योंकि ये दोनों प्रयोग मत्तविलास प्रहसन (पृ० ९ तथा पृ० १२) में प्राप्त हैं। सुभद्रा धनंजय में भी 'अम्हाअं' और 'अम्हाणं' समान रूप से प्राप्त हैं। इसी प्रकार 'अहके' का प्रयोग भी भास की मौलिकता नहीं है। डॉ० सुखथंकर ने शकुन्तला नाटक की देवनागरी प्रतियों में 'अहके' प्राप्त होने का निर्देश किया है। कुलशेखर वर्मन के सुभद्रा धनंजय तथा ताप्तीस्वयंवर में भी 'अहके' शब्द प्राप्त होता है।

'आम्' शब्द का प्रयोग भास के रूपकों में प्रचुर परिमाण में मिलता है। यह पालि तथा अन्य प्राकृतों में भी प्राप्त है। अश्वघोष के तुर्फान हस्तलिखित प्रतियों में इसके प्रयोग से कोई विशेष प्रकाश नहीं मिलता। वस्तुतः यह शब्द विक्रमोर्वशीय, ताप्तीस्वयंवर एवं सुभद्रा-धनंजय में भी प्रयुक्त है। अतः इसे लौकिक साहित्य में प्रयुक्त मानना अधिक समीचीन है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि 'आम्' ही एक ऐसा शब्द है जो कि भास के वाद के लौकिक संस्कृत साहित्य के कवियों ने प्रयुक्त नहीं किया। यह शब्द 'पालि' में प्रयुक्त मिलता है। अतः भास का समय पालि भाषा का प्रचारकाल माना जा सकता है। पर अन्य नाटकों की प्राकृत भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करने पर उक्त सिद्धान्त भ्रान्त प्रतीत होता है।

'करिअ' शब्द का प्रयोग पिशल के अनुसार शकुन्तला और मालविकाग्निमित्र की दक्षिण प्रतियों में ही केवल प्राप्त होता है। सुखथंकर इस प्रयोग को विशेष प्रयोग मानते हैं, क्योंकि यह अश्वघोष की तुर्फान हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त होता है। इसी प्रकार किस्स, किश्श, दिस्स, दिश्श आदि प्रयोग भी अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलते। इन प्रयोगों के आधार पर भी 'भास' की प्राचीनता मानी जा सकती है।

'वय' के स्थान पर 'वअ' का प्रयोग केवल तीन स्थलो पर आया है। भास ने 'वय' को प्रयोग किया है। इस प्रयोग से भी भास की प्राचीनता प्रकट है।

भास की प्राकृत मे 'न्न' और 'ण्ण' के स्थान पर 'ञ्ञ' और 'ण्ण' प्रयुक्त मिलते हैं, जिससे पालि के समान ही भास की प्राकृत प्राचीन सिद्ध होती है। अशोक के शिलालेखो मे भी ये रूपान्तर उपलब्ध हैं। 'य' के स्थान 'र्य' की अपेक्षा 'य्य' का ही रूप मिलता है। क्ष के स्थान पर 'च्छ' तथा 'क्ख' दोनो रूप मे मिलते हैं, जो बाद के नाटको मे भी प्राप्त हैं।

सुखथकर इन नाटको की प्राकृत को भास की मूल प्राकृत से भिन्न बतलाते हैं, पर ऐसा प्रतीत नही होता। प्रिंट्ज का मागधी तथा अर्धमागधी का भेद उचित नहीं है, अत॰ ये रूपान्तर शौरसेनी के ही हैं। भास के पचरात्र तथा बालचरित मे 'रा' का 'ल', 'स' को' 'श' 'ष' मे परिवर्तन प्राप्य है। इन परिवर्तनो के आधार पर भास की प्राकृत का गठन अश्वघोष के नाटको की प्राकृत के रूप गठन के समान ही सिद्ध होता है।

भास की प्राकृत भाषा का अध्ययन मध्य भारतीय आर्य भाषा के अन्तर्गत किया जा सकता है। इस भाषा के भी तीन स्तर हैं—(१) पूर्व स्तर, (२) मध्य-स्तर, और (३) उत्तरकालीन स्तर।

पूर्व स्तर की सीमा ई० पू० छठी शती से ले कर ई० सन् की दूसरी शती तक है। इसके अन्तर्गत पालि, अशोक प्रशस्तियाँ, खारवेल का अभिलेख, सातवाहन के अभिलेख एव अश्वघोष के नाटको की प्राकृत भाषा परिगणित है।

मध्यवर्ती स्तर की सीमा दूसरी सदी से प्रारम्भ हो कर छठी शती तक है। इसके अन्तर्गत शौरसेनी, मागधी, पैशाची, महाराष्ट्री आदि साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ आती हैं।

उत्तरकालीन स्तर मे छठी शती से एक हजार ई० तक का काल खण्ड आता है। इस काल खण्ड मे अपभ्र श भाषाओ का विकास समाविष्ट है।

मध्यकालीन तीनो स्तरो की भाषा मे ऋ, लृ, ऐ और औ का अभाव पाया जाता है। व्यजनो मे तीनो 'स श ष' के स्थान पर 'स' अथवा 'श' का प्रयोग उपलब्ध है। सयुक्त व्यजनो का सरलीकरण हुआ है और असवर्ण का सवर्ण के रूप मे परिवर्तन हो गया है। स्वरभक्ति के प्रयोग द्वारा स्वरागम होने से सयुक्त व्यजन स्वतन्त्र हो गये हैं।

संज्ञाएँ व्यंजनान्त न हो कर स्वरान्त बन गयी हैं। साधारणतया अन्तिम व्यंजन का लोप हो गया है। कारक रचना में द्विवचन का सर्वथा अभाव है और द्विवचन का बहुवचन में ही अन्तर्भाव हो गया है। कारकों की संख्या में भी संकोच हुआ है। प्रायः तीन या चार कारक रूपों के द्वारा सातो कारकों का काम निकाल लिया गया है। क्रियाओं में आत्मनेपद और परस्मैपद का भेद समाप्त हो कर सभी क्रियाओं को परस्मैपदी बना दिया गया है। लकारों में भूत, भविष्य, वर्तमान और आज्ञा में चार ही शेष रह गये हैं।

मध्यकालीन तीनों स्तरों में उक्त समानता के साथ कुछ भिन्नताएँ भी प्राप्त होती हैं। प्रथम स्तर में मध्यवर्ती प्रायः सभी ध्वनियों की रक्षा हुई है। द्वितीय स्तर में अघोष अल्पप्राण वर्णों का सघोष में परिवर्तन या लोप हो गया है। महाप्राण वर्णों के स्थान में 'ह' का आदेश हुआ है।

मध्यकालीन भाषाओं के तीनों स्तरों के विश्लेषण की कसौटी के आधार पर प्रथम स्तर में अश्वघोष आदि की प्राकृत भाषाएँ आती हैं। द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाएँ कालिदास के काव्यों की हैं। इन दोनों स्तरों के सन्धिकाल के संक्रान्तिकाल की जो प्राकृत है, वह भास के रूपकों में प्राप्त होती है। यही कारण है कि भास के अनेक शब्द और प्रयोग मौलिक होते हुए भी उत्तरवर्ती साहित्य में मिल जाते हैं। वस्तुतः प्रथम और द्वितीय स्तर के सन्धिकालीन नाटककार भास हैं और उनकी प्राकृत में दोनों ही स्तरों की प्राकृत सम्बन्धी विशेषताएँ पायी जाती हैं। अतएव प्राकृत भाषा के रूप विश्लेषण के आधार पर भास का समय अश्वघोष के पश्चात् और कालिदास से पूर्व अर्थात् ई० सन् द्वितीय शती मानना तर्कसंगत है।

बहिः साक्ष्य के आधार पर भास का समय निर्धारण

अन्तरंग परीक्षण के आधार पर पुसालकर ने भास का समय ई० पू० चौथी पाँचवीं सदी माना है तथा अय्यर ने चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन सिद्ध किया है। बहिस्साक्ष्य में सर्वप्रथम कालिदास के मालविकाग्निमित्र का उल्लेख मिलता है। सूत्रधार के मुख से कहलवाया है—प्रथितयशसां भास सौमिल्ल कविपुत्रदीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथंवर्तमानस्य कवेः कलिदासकृतो बहुमानः।[1]

---

१. मालविकाग्निमित्र, सूत्रधार का कथन, प्रथम अंक

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं। जो विद्वान् कालिदास का समय ई० पू० विक्रम की प्रथम सदी मानते हैं, उनके मत से भास का समय ई० पू० ४थी शती मानने में कोई विरोध नहीं है।

वाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव॥

—हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास

अर्थात् गद्यकार वाण ने साम्ब-शिव की स्तुति के अनन्तर महाभारत के प्रणेता वेदव्यास आदि महाकवियों को प्रणामाजलि अर्पित की। तत्पश्चात् भास विषयक प्रशस्ति का प्रसंग आया है। इन्होंने भास के नाटकों को सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ किये गये अनेक भूमिकाओं से युक्त पताकादि प्रासंगिक कथाओं से विभूषित बतला कर अन्य नाटककारों की अपेक्षा विशेषता प्रदर्शित की है। ध्वजाओं से मण्डित देव मन्दिरों के निर्माण से जैसे कोई व्यक्ति प्रसिद्धि प्राप्त करता है, उसी प्रकार भास ने अपने नाटकों से यश प्राप्त किया।

वाणभट्ट ने पद्य में 'नाटकै' शब्द का प्रयोग किया है, जिसमे यह स्पष्ट होता है कि भास के नाम से वाणभट्ट के पहले ही अनेक नाटक प्रचलित थे और ये नाटक लोकप्रियता प्राप्त कर चुके थे।

आठवीं शती में वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' में महान नाटककार भास को ज्वलनमित्र[1]—अग्निमित्र पद से सम्बोधित किया है। यह सर्वमान्य है कि वाक्पतिराज ने भास की अन्य रचनाओं तथा 'स्वप्नवासवदत्त' का सामान्यतया अध्ययन किया होगा क्योंकि 'स्वप्नवासदत्त' नाटक में वासवदत्ता के अग्नि में जलने का मिथ्या समाचार प्रसारित कर के ही नाटक के नायक की लक्ष्यपूर्ति सम्भव हो सकी है। और इसी आधार पर नाटकीय वस्तु के पूर्ण विराम का अवसर प्राप्त हुआ होगा।

वामन ने आठवीं शती में अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति'[2] में स्वप्न-

---

१ भासम्मि जलणमित्तेकन्तीदेवे अ जस्स रहु आरे।
सो बधवे अ बं धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो।

—गउडवहो ८००

२. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४।३।२५

वासवदत्तं नाटक का निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है। इससे स्पष्ट है कि वामन के बहुत पूर्व स्वप्नवासवदत्तं का यश व्याप्त था—

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम् ॥

—स्वप्नवासवदत्तं, ४।८

दण्डी ने सातवीं शती में अपनी अवन्तिसुन्दरी कथा की भूमिका[1] के ग्यारहवें पद्य में भास की प्रशस्ति लिखी है। भास के लिए नाटक रूपी शरीर के द्वारा अमर होने की यह उक्ति नाटक तथा शरीर दोनों के समुचित विशेषणों से युक्त है। जिस प्रकार मुख आदि इन्द्रियों तथा सुलक्षणों से शरीर का बोध स्पष्ट होता है उसी प्रकार मुख, प्रतिमुख सन्धियों, अंकों तथा वृत्तियों से सुगुम्फित नाटकों की रचना से भास अमर हैं।

अवन्तिसुन्दरी के उक्त पद्य में 'नाटकै' पद आया है। इससे भी भास के एकाधिक नाटकों की सिद्धि होती है। भास ने अनेक नाटकों की रचना की है और उनके वे सभी नाटक उत्तम कोटि के हैं। दण्डी के इस आधार से भास का समय ई० पू० या ई० की प्रथम-द्वितीय शती माना जा सकता है।

प्रसन्नराघवकार जयदेव ने नाटककार भास की रचनाओं में वाणी का हास प्राप्त कर भासोहासः कह कर प्रशंसा की है।[2] जयदेव को भास की रचनाओं में वसन्तक की हास्यास्पद उक्तियाँ विशेष रुचिकर प्रतीत हुईं। अतः उन्होंने भास की कविता कामिनी का हास बताया। हास्यरस वर्णन की विदग्धता में भास की रचना 'वासवदत्तम्' के विदूषक के औदरिक वर्णन में सुकुमार हास्य तथा 'प्रतिज्ञा' के विदूषक की श्लिष्ट भाषा में उद्भूत हास्य प्राप्त होता है। हास्य में प्रसाद युग की प्रधानता रही है। वस्तुतः भास की भाषा के सरलतम रूप को वाणी का हास कहना समीचीन है।

---

१. सुविभक्त मुखाद्यंगैः व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासऽशरीरैरिव नाटकैः ॥
—अवन्तिसुन्दरी कथा, ११वां श्लोक

२. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो।
भासो हासः कविकुलगुरुकालिदासो विलासः
—प्रसन्नराघव, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९५६, १।२२

बौद्धाचार्य दिङनाग अपनी 'कुन्दमाला' मे दशरथ को 'पणिमाआगदो महाराओ' कहते हैं। दशरथ की प्रतिमा का उल्लेख केवल प्रतिमा नाटक में ही प्राप्त है। वाल्मीकि रामायण मे यह तथ्य अंकित नहीं है। यह तो भास द्वारा कल्पित है। अतएव स्पष्ट है कि दिङनाग को भास का प्रतिमा नाटक ज्ञात था।

अश्वघोष के बुद्धचरित मे निम्नलिखित पद्य आया है—

काष्ठं हि मन्थन् लभते हुताश,
भूमि खनन विन्दति चापि तोयम्।
निर्बन्धिन· किंचन नाप्यसाध्य,
न्यायेनयुक्त च कृत च सर्वम्॥

—बुद्धचरित १३।६०

इस पद्य की तुलना भास के निम्नलिखित पद्य से की जा सकती है—

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्,
भूमिस्तोय खन्यमाना ददाति।
सोत्साहाना नास्त्यसाध्य नराणा,
मार्गारब्धा· सर्वयत्ना· फलन्ति॥

—प्रतिज्ञायौगन्धरायण १।१८

उक्त दोनो पद्यो की तुलना से यह ज्ञात होता है कि भास का प्रभाव अश्वघोष पर होना चाहिये अथवा अश्वघोष का प्रभाव भास पर। यदि अश्वघोष पर भास का प्रभाव मान लिया जाय तो भास का समय ई० पूर्व सिद्ध हो जायेगा। बाह्य साक्ष्यो से भी भास का समय पर्याप्त प्राचीन सिद्ध होता है।

निष्कर्ष एवं स्वाभिमत

भास के समयालोचको की सख्या पर्याप्त है। ए० डी० पुसालकर ने अपने ग्रन्थ 'भास—ए स्टडी' मे प्राय. समस्त मतों की आलोचना की है। पुसाल्कर का मत है कि भास ई० पू० ५-६ शती के हैं। उदयन, दर्शक और प्रद्योत का समय ऐतिहासिक व्यक्ति होने से ई० पू० ४-५ शती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उत्तर भारत के राजपरिवारो का जो वर्णन आया है, वह भी मौर्यकालीन है। पुसालकर ने अनेक प्रमाणो के आधार पर भास का समय महापद्मनन्द का समय माना है। अधिकांश विद्वान भास को मौर्यकालीन मानते हैं। कतिपय

आधुनिक आलोचक भास को ईस्वी सन् की द्वितीय या तृतीय शती का नाटककार सिद्ध करते हैं। भास सम्बन्धी वाह्य और अन्तरंग प्रमाणों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भास का समय चन्द्रगुप्त मौर्य का काल है। हमारे इस तथ्य की पुष्टि में सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि प्रतिमा नाटक में देवकुल की स्थापना का वर्णन आया है। इस देवकुल में मृत राजाओं की प्रस्तर मूर्तियाँ रखी जाती थीं। यह प्रथा शेशुनाग राजाओं के युग की है। मथुरा की खुदाई में शेशुनाग राजाओं की पुरुषाकार मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। अतः यह पुरातत्व सम्बन्धी प्रमाण भास को मौर्य काल का सिद्ध करता है।

भास ने अपने नाटकों के भरत वाक्य में राज्य की जिस सीमा का वर्णन किया है, वह भारत में सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व की राजनीतिक दशा को व्यक्त करती है। भास की रचनाओं में भारत के मानचित्र में उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में विन्ध्याचल का वर्णन है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में मगध, काशी, वंग, सौराष्ट्र, मिथिला, शूरसेन आदि देशों के नाम आये हैं।[1] इन देशों का अस्तित्व चन्द्रगुप्त के पूर्व ही रहा है। अंगुत्तर निकाय में सोलह जनपदों के नाम आते हैं जिनमें काशी, कौशल, अंग, मगध, वृजि, मल्ल, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, जस्मक, अवन्ति, गान्धार और कम्बोज हैं। बुद्ध के निर्वाण के समय (ई० पू० ४८३) में कौशल, अवन्ति, वत्स और मगध ये चार बड़े राज्य ही अवशिष्ट रह गये थे। शेष राज्य परस्पर विवाद के फलस्वरूप बड़े राज्यों में मिल गये थे। चन्द्रगुप्त ने बृहत्तर भारत की स्थापना की। फलस्वरूप छोटे-छोटे अन्य सभी राज्य इसी बृहत्तर भारत में समाविष्ट हो गये। अतः भास द्वारा चित्रित देश और राज्य चन्द्रगुप्त मौर्य से पूर्ववर्ती हैं।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में यौगन्धरायण का भरत रोहक के पूछने पर कि राजशास्त्र क्या है ?[2] उत्तर में यौगन्धरायण 'वधः' का प्रयोग करता है। इससे सिकन्दर तथा पुरु का युद्धोपरान्त वार्तालाप का स्पष्ट संकेत मिलता है।

भास ने राजसिंह का प्रयोग मौर्य राजाओं के लिए किया है तथा चन्द्रगुप्त, विन्दुसार तथा अशोक, इन तीनों को राजसिंह कहा गया है। भास ने

---

१. अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो वांगसौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः—प्रतिज्ञा०, प्र० सं० ७७

२. भरतरोहक, समरावजितेषु किमाह शास्त्रम्। यौगन्धरायण वधः।
—प्रतिज्ञा०, प्र० सं० १०५

अपनी रचनाओ मे नायक की उपमा चन्द्र से दी है।[1] यह चन्द्र विशेषण नन्दवश विनाशक चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भास की रचनाओ मे यत्र-तत्र गुप्त शब्द का भी प्रयोग मिलता है जिससे इन्हे गुप्तकालीन मानते हैं।[2] पर यह शब्द रक्षक अर्थ मे प्रयुक्त गोप्ता का विकृत रूप है। अतएव गुप्त शब्द के प्रयोग से भास को गुप्तकालीन नहीं माना जा सकता।

भास ने शत्रु को चन्द्रमा से ग्रसित होने की उपमा कई स्थलो पर दी है।[3] इससे यह अनुमान होता है कि सम्भवत राक्षस घनानन्द के मन्त्री द्वारा चन्द्रगुप्त का पराजित होना तथा उसे निगलना या विनष्ट करना आदि की कल्पना उचित ही है। कामन्दक ने चन्द्रगुप्त को मनुष्यो मे चन्द्र के समान बतलाया है। राहु को ज्योतिष शास्त्र मे क्रूर ग्रह और राक्षस के समान पीडाकारी कहा है। इस कथन मे भास का काल चन्द्रगुप्त मौर्य का काल है।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' मे प्रद्योत महासेन वत्सराज के गृहीत होने पर बडे गर्व से 'अद्यास्मि महासेन' कहा है। यह भी चन्द्रगुप्त का नन्दवश के राजाओ को परास्त करने के उपरान्त का कथन है। बालचरित नाटक मे कंस की मृत्यु के पश्चात वसुदेव की घोषणोपरान्त सभी वृष्णि राज्य[4] के प्रतिष्ठित होने के उच्चारण करते हैं। यह सन्दर्भ चन्द्रगुप्त की राज्योपलब्धि के अनन्तर की गयी घोषणा के तुल्य है।

---

१. नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः— प्रतिमानाटक ७।१२
अर्धेव पश्यन्तु च नागरास्त्वा चन्द्र सनक्षत्रमिवोद्यस्थम्।— प्रतिमा नाटक ७।१४
विभाति शुभ्रे नभसीव चन्द्र।—अभिषेक नाटक ६।१२
२. सम्प्राप्ता हरिवर बाहुसम्प्रगुप्ता। किष्किन्धातव नृप। बाहुसम्प्रगुप्ताः अभिषेक—१।७
मयि च नीति गुप्ते, अविमारक पृ० ११२, एक चर्म्माभिगुप्ताम्— अवि०, पृ० १
३. नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्ति।— प्रतिमा ७।१२
अर्धेव पश्यन्तु च नागरास्त्वा चन्द्र सनक्षत्रमिवोद्यस्थम्
—प्रतिमा ७।१४
४ सर्वप्रतिष्ठितमिदानीं वृष्णिराज्यम्—बालचरित ५।१६ के समीप का गद्य

भारत के आरकिओलॉजिकल विभाग के निदेशक डॉ० बी० सी० छावड़ा ने महाभारत अनुशासन पर्व में वर्णित विष्णु सहस्रनाम की मुद्रा को गुप्त-कालीन सिक्कों पर अंकित बतलाया है। भास के बालचरित नाटक में विष्णु के प्रभाव को व्यक्त किया गया है। विष्णु सहस्रनाम और बालचरित नाटक की पंक्तियों में पर्याप्त समानता है।[1] अतः भास का समय महाभारत के पश्चात् मौर्यकाल मानना तर्कसंगत है।

भास की प्राकृत भाषा के आधार पर इनका काल अश्वघोष के पश्चात् माना जा सकता है। पर हमारी दृष्टि में यह अनुचित है। अश्वघोष की प्राकृत में अघोष अल्प प्राण ध्वनियाँ, सघोष अल्प प्राण नहीं होती। जबकि भास की प्राकृत भाषा में 'ट' और 'त' क्रमशः 'ड' और द' हो जाते हैं।

अश्वघोष की प्राकृत भाषा में स्वरमध्यक व्यंजन लुप्त नहीं होते। जबकि भास में स्वरमध्यक क, ग, च, ज का लोप हो जाता है। भास की रचनाओं में 'वयम्' प्रायः अपरिवर्तित है। और पालि की ध्वनियों का प्रभाव भी अनेक स्थानों पर पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि भास की प्राकृत अश्वघोष की प्राकृत से कहीं प्राचीन और कहीं अर्वाचीन प्रतीत होती है। इसका कारण यह है कि लोकभाषा होने के कारण प्राकृत का रूप लिपिकर्त्ताओं की कृपा से परिवर्तित होता रहा है। अतः भास को अश्वघोष से अर्वाचीन नहीं माना जा सकता है।

शूद्रक ने भास के 'चारुदत्त' नाटक का विस्तार कर मृच्छकटिक की रचना की है और ऐतिहासिक विद्वानों के मतानुसार शूद्रक का समय ई० पू० २२० है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रतिज्ञायौगन्धरायण का पद्य उद्धृत रहने से भास का अस्तित्व कौटिल्य के पूर्व मानने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

नाटककार भास ने 'रणशिरसि', 'समरशिरसि' एवं 'रणातिथि' का इतने अधिक स्थलों पर प्रयोग किया है, जिससे किसी विदेशी आक्रमण से आक्रान्त रहने की सूचना प्राप्त होती है। इन पदों के प्रयोग से सिकन्दर का आक्रमण तथा पुरु के उत्तर से 'प्रतिज्ञा' में यौगन्धरायण का उत्तर 'वधः', ऐसे ऐतिहासिक तथ्य हैं, जिनसे भास का समय ई० पू० ३२७ के आस-पास सिद्ध होता है।

---

१. गच्छामि स्मृतिमात्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना—बालचरित १।२६
यस्य स्मरणमात्रेण........विष्णवे प्रभविष्णवे—विष्णु सहस्रनाम १.

कहा जाता है कि ऐतिहासिक सोलह जनपदो मे से सिकन्दर के आक्रमण के समय ३२६ ई० पू० मे कतिपय प्रमुख अवशिष्ट थे। सिन्धु और झेलम नदियो के बीच तक्षशिला मे आम्भी का राज्य, झेलम तथा चिनाव नदियो के मध्य पुरु राज्य, चिनाव और व्यास नदियो के बीच पाँच स्वतन्त्र गणतन्त्र राज्य चेदि, वत्स, वग, अवन्ति, काशी, कौशल और मगध का शक्तिशाली राज्य विद्यमान थे। ई० पू० ३२१ मे चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिंहासनारूढ हो कर उत्तर-पश्चिम के राज्यो को अपने अधीन कर लिया। अत. राज्य की सीमा उत्तर मे हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तथा नर्मदा तक थी। इनके नाटको मे ताप्ती, सिन्धु आदि नदियो के नाम का उल्लेख नही हुआ है। गगा, यमुना और उत्तर कुरु भूमि का ही निर्देश पाया जाता है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे जिन राज्यो का चित्रण आया है, उनकी सत्ता चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक काल मे मानी जा सकती है, यत मौर्य राज्य के पूर्ण विकास के समय मे इन जनपदो की सत्ता समाप्तप्राय थी। अत. इन्हे चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य के बाद का नही मान सकते हैं।

निष्कर्ष यह है कि 'हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्' की चरितार्थता सिकन्दर के आक्रमण के समय मे पूर्व ही घटित हो सकती है। अतएव भास का समय अश्वघोष और कालिदास के मध्य का न हो कर सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व ई० पू० ३२७ के लगभग होना चाहिये। इनके नाटको मे वर्णित समाज-व्यवस्था से ही उक्त तथ्य पुष्ट होता है। अत. पुसालकर द्वारा प्रतिपादित ई० पू० ५वी शती, महापद्मनन्द का स्थिति काल भी भास का नही है। अत भास का समय ई० पू० ४थी शती मानना अधिक उचित है।

भास की रचनाएँ

कुछ वर्ष पहले तक नाटककार भास की रचनाएँ अज्ञात थी। कालिदास, बाण, वाक्पतिराज, राजशेखर, जयदेव, दण्डी आदि सस्कृत कवियो द्वारा की गयी भास की प्रशसा ही उपलब्ध होती थी। सन् १९१२-१३ मे महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् मे भास के तेरह नाटको का एक सग्रह 'नाटकचक्र' के नाम से प्रकाशित किया। इसके पश्चात् सन १९४१ ई० मे राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने 'यज्ञफल' नाम का एक अन्य नाटक प्रकाशित किया। इस नाटक का सम्पादन देवनागरी लिपि मे लिखित दो हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर किया गया था। इसकी कथा-वस्तु रामायण के बाल-

काण्ड पर आधृत है तथा प्रतिमा एवं अभिषेक नाटकों से साम्य रखती है। 'यज्ञफल' के अतिरिक्त कथा के आधार पर अन्य रूपकों का विवरण निम्न प्रकार है।

(अ) रामकथा

(१) प्रतिमा नाटक की कथावस्तु का आधार वाल्मीकि रामायण के द्वितीय-तृतीय स्कन्ध हैं जिनसे कवि भास ने कथानक ग्रहण किया है। पर कथावस्तु के गठन एवं उसके अलंकरण में अपनी मौलिक प्रतिभा का विनियोग किया है। इसके चरित्र रामायण की अपेक्षा अधिक उदात्त एवं भावोद्बोधक हैं।

(२) अभिषेक नाटक के लिए किष्किन्धा, सुन्दर एवं युद्ध काण्डों से सामग्री का संकलन किया गया है। इसमें रामचन्द्रजी के किष्किन्धा पहुँचने से ले कर रावण-वध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक तक की कथा है। राज्याभिषेक की घटना की प्रमुखता के कारण इस नाटक का नाम अभिषेक रखा गया है।

(आ) महाभारत कथा

नाटककार भास ने महाभारत के कथानक सूत्रों को ले कर अपनी कल्पना के मिश्रण द्वारा सुन्दर नाटकों की रचना की है। कई नाटकीय परिस्थितियाँ कवि की मौलिक प्रतिभा की प्रतीक हैं। नाटकों के अनेक पात्रों के चरित्रों को रुचि और सुविधा के अनुसार परिवर्तित किया गया है। इस कथा पर पंचरात्र, मध्यम व्यायोग, कर्णभार, दूतवाक्य, दूत घटोत्कच और ऊरुभंग निबद्ध किये गये हैं।

(३) पंचरात्र महाभारत की एक घटना को ले कर लिखा गया है। दुर्योधन यज्ञ करता है। यज्ञ पूरा होने पर वह द्रोणाचार्य को मुँहमाँगी दक्षिणा देने के लिए तैयार होता है। द्रोणाचार्य पाण्डवों के लिए आधा राज्य माँगते हैं। दुर्योधन देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, पर वह यह शर्त रखता है कि पाँच रात्रि के अन्दर पाण्डवों का समाचार लाया जाय। द्रोणाचार्य दुर्योधन की शर्त स्वीकार कर लेते हैं। अनन्तर कौरव गायों के लिए विराट की राजधानी पर आक्रमण करते हैं। राजकुमार उत्तर कौरवों से युद्ध करने जाता है। अज्ञातवास में स्थित पाण्डव उसकी सहायता करते हैं। युद्ध में उत्तर की विजय होती है। पाण्डव प्रकट हो जाते हैं। द्रोणाचार्य दुर्योधन को उसकी प्रतिज्ञा

का स्मरण दिलाते हैं। वह पाण्डवो को आधा राज्य देना स्वीकार करता है।

(४) 'मध्यम व्यायोग' मे पाण्डवो के वनवास काल मे भीम द्वारा घटोत्कच के पजे से एक ब्राह्मण बालक की मुक्ति कथा है। मध्यम शब्द भीम और उस ब्राह्मण बालक का बोधक है, जिसे भीम घटोत्कच से मुक्ति दिलाता है। इसकी कथावस्तु महाभारत पर आधृत रहने पर भी कल्पित है। नाटककार ने कल्पना का उपयोग अधिक किया है।

(५) 'कर्णभार' मे द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवो की ओर से कर्ण सेनापति नियुक्त किया जाता है। युद्ध का सारा भार कर्ण पर पडता है। इसी कारण इस नाटक का नाम 'कर्णभार' रखा गया है। कर्ण रथ पर सवार हो रणागण की ओर प्रयाण करता है, शल्य उसके सारथी का कार्य करता है। मार्ग मे इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण कर सामने आता है और वह उससे अभेद्य कवच मांगता है। प्रथम कवच देने मे कर्ण आनाकानी करता है और उसके बदले मे अन्य कुछ मांगने का अनुरोध करता है। ब्राह्मण के हठ को देख कर वह कवच दे देता है और उसके बदले मे एक शक्ति प्राप्त करता है।

(६) 'दूतवाक्य' मे पाण्डवो के पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बन कर जाने की कथा है। दुर्योधन की राजसभा लगती है। वह अपने साथियो से परामर्श करके भीष्म को भावी युद्ध के लिए कौरवो की सेना का सेनापति नियुक्त करता है। इतने मे श्रीकृष्ण के आने का समाचार मिलता है। दुर्योधन दरबारियो को खडे हो कर कृष्ण का स्वागत करने मे मना करता है। वह स्वय कृष्ण का अपमान करने के लिए द्रौपदी के चीर हरण के चित्र की ओर देखता है। कृष्ण के प्रविष्ट होते ही दरबारी खडे हो जाते हैं। दुर्योधन भी घबरा कर गिर पडता है। कृष्ण राज्य मे पाण्डवो का हिस्सा मांगते हैं, दुर्योधन पाण्डवो की निन्दा करता है। दोनो ओर से कटु शब्दो का प्रयोग किया जाता है। दुर्योधन कृष्ण को पकडने की आज्ञा देता है, पर उन्हें पकडने को किसी का साहस नही होता। दुर्योधन स्वय उन्हे पकडने के लिए आगे बढता है। कृष्ण अपने विराट रूप का प्रदर्शन करते हैं। दुर्योधन किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है। कृष्ण नाराज हो कर वहाँ से चलते हैं। धृतराष्ट्र उनके पैरो पर गिर पडता है।

(७) 'दूतघटोत्कच' मे घटोत्कच दूत बन कर कृष्ण का सन्देश कौरवो के पास ले जाता है। वह सीधे धृतराष्ट्र के पास पहुँचता है और वह कृष्ण की ओर से युद्ध के भावी भयकर परिणाम की ओर धृतराष्ट्र का ध्यान आकृष्ट

करता है। इस पर दुर्योधन और घटोत्कच के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर होते हैं। दोनों में गरमा-गरमी हो जाती है। वह अकेला ही युद्ध के लिए ललकारता है। घटोत्कच अभिमन्यु की हत्या का वदला अर्जुन द्वारा लिए जाने की धमकी दे कर चला जाता है।

(८) 'ऊरुभंग' में भीम द्वारा दुर्योधन को ऊरुभंग की कथा है। भीम और दुर्योधन के वीच गदायुद्ध होता है। दुर्योधन भीम के सिर पर प्रहार करता है, भीम गिर पड़ता है। दुर्योधन ताना मारता है। कृष्ण उन्हें दुर्योधन की जाँघ पर मारने का संकेत करते हैं। भीम द्विगुणित जोश से युद्ध करता है। वह दुर्योधन की जाँघ पर प्रहार करता है, जाँघ टूट जाती है। वह घायल हो कर गिर पड़ता है। पाण्डव और कृष्ण भीम को वहाँ से हटा ले जाते हैं। दुर्योधन जीवन-लीला समाप्त कर देता है, सभी विलाप करते हैं। धृतराष्ट्र निर्वेद से वन चले जाते हैं और अश्वत्थामा क्रुद्ध हो कर पाण्डवों को मार डालने तथा दुर्योधन के पुत्र दुर्जय को राजा वनाने की प्रतिज्ञा करता है। वह शस्त्र सज्जित हो रात्रि में पाण्डवों के शिविर पर आक्रमण करता है।

(इ) कृष्ण-कथा

वालचरित नाटक कृष्ण-कथा पर आधृत है। इस नाटक का कथास्रोत हरिवंशपुराण नहीं है, किन्तु महाभारत में वर्णित कथा है। इसमें कृष्ण की वाल-लीला का चित्रण है। नारद जी मंच पर आते हैं। वे नवजात शिशु कृष्ण को ले कर वसुदेव के पास जाती हुई देवकी का परिचय दे कर चले जाते हैं। वसुदेव कृष्ण को ले कर गोकुल जाते हैं। वहाँ वे अपने मित्र नन्द गोप से मिलते हैं। वे उसे कृष्ण को दे कर उसकी लड़की को मथुरा ले जाते हैं। कंस उस लड़की को मार डालने के लिए पटकता है। वह देवी वन कर आकाश में उड़ जाती है। कृष्ण वाल्यकाल में गोकुल में रह कर पूतना, शकट, अर्जुन, धेनुक आदि राक्षसों का वध करते हैं। वे कालिया नाग का दमन कर उसे यमुना के जल से भगाते हैं। इसी कंस का दूत मथुरा में होने वाले धनुर्मह उत्सव का समाचार देता है। कृष्ण वलराम सहित मथुरा जाते हैं और वहाँ कंस का वध करते हैं। उग्रसेन को वन्दीगृह से छुड़ा कर पुनः राजा वनाया जाता है। नारद जी कृष्ण का दर्शन करने जाते हैं और कृष्ण उनका पूजन करते हैं। वे कृष्ण के प्रति आदर प्रकट कर चले जाते हैं।

(ई) उदयन कथा

भास ने उदयन कथा को अपने नाटकों के कथानक के लिए ग्रहण किया है। उदयन कथा से सम्बद्ध 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' नाटक हैं।

(१०) 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' म वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता का वृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के बन्दी बना लिये जाने पर उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण उदयन को छुडाने और वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसी कारण इस नाटक का नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण रखा गया है।

(११) 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे राजा उदयन का वासवदत्ता के साथ स्वप्न मे मिलन होता है। इसी कारण इस नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा गया है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के राजकार्यों की ओर ध्यान नही देता। इससे उसके शत्रु आरुणि को आक्रमण करने का अवसर मिल जाता है। पर उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण सचेत रहता है। वह आरुणि को परास्त करने के लिए मगध के राजा दर्शक की सहायता लेना चाहता है। वह वासवदत्ता को मिला कर लावाणक मे उसके अग्नि मे जल मरने का समाचार फैला देता है और वासवदत्ता को ले जा कर मगध के राजा दर्शक की बहन पद्मावती के पास धरोहर के रूप मे छोड आता है। पश्चात् उदयन का पद्मावती के साथ विवाह सम्पन्न होता है। एक दिन उदयन स्वप्न मे वासवदत्ता को देखता है, इससे उसके मन मे वासवदत्ता की स्मृति ताजी हो जाती है। अनन्तर वासवदत्ता प्रकट होती है और उदयन का उससे मिलन होता है। इधर उदयन का सेनापति रुमण्वान् आरुणि को युद्ध मे परास्त करता है।

(उ) लोककथा

नाटककार ने अपनी कल्पना के आधार पर 'चारुदत्त' और 'अविमारक' की रचना की है। इन दोनो नाटको की कथावस्तु के लिए कवि ने लोककथाओ से भी कथानको का चयन किया है।

(१२) 'चारुदत्त' मे ब्राह्मण चारुदत्त और गणिका वसन्तसेना की प्रेम लीला वर्णित है। नायक के नाम पर नाटक का नाम चारुदत्त पड़ा है। शकार और विट वसन्तसेना का पीछा करते हुए चारुदत्त के घर के पास पहुँचते हैं।

वसन्तसेना अन्धकार में निगाह बचा कर चली जाती है। वह चारुदत्त के द्वार के पास जा कर खड़ी हो जाती है। इतने में द्वार खुलता है और मैत्रेय तथा रदनिका दीपक लिये चाराहे पर देवबलि अर्पण करने के लिए निकलते हैं। वसन्तसेना दीपक बुझा कर घर में प्रविष्ट हो जाती है। चारुदत्त उसे रदनिका समझ कर दुपट्टा देता है। वसन्तसेना चुप खड़ी रहती है। बाहर शकार रदनिका को वसन्तसेना समझ कर पकड़ लेता है, मैत्रेय उसको रक्षा करता है। वसन्तसेना पहचान ली जाती है और वह चारुदत्त के पास अपने आभूषण रख कर मैत्रेय के साथ अपने घर चली जाती है। दूसरे दिन वह अपनी दासी के समक्ष चारुदत्त के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करती है। वसन्तसेना चारुदत्त का पुराना भृत्य जान कर एक जुआरी को धन देती है और उसे दासता से मुक्त करती है। इधर सज्जलक अपनी प्रेमिका मदनिका को वसन्तसेना की दासता से मुक्त करने के लिए चारुदत्त के घर चोरी करता है और चोरी में वसन्तसेना के ही आभूपणों को पाता है। मदनिका आभूपण पहचान कर उन्हें वसन्तसेना को लौटा देने के लिए कहती है। सज्जलक आभूषण लौटाता है, पर वसन्तसेना उन आभूपणों को मदनिका को ही पहना देती है और उसे स्वतन्त्र कर देती है। इसके पश्चात् वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाने को निकलती है। मेघ गरजते हैं, वर्षा होती है, पर वसन्तसेना पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

(१३) 'अविमारक' में राजा कुन्तिभोज की कन्या कुरंगी और सौवीराज के पुत्र विष्णुसेन के विवाह की कथा है। यह कथा परम्परागत किसी आख्यायिका से ली गयी है। अविमारक इस नाटक के नायक विष्णुसेन का दूसरा नाम है। विष्णुसेन ने किसी समय 'अवि' नाम के भेड़ रूपधारी राक्षस को मारा था। इसी घटना के आधार पर इस नाटक का नाम 'अविमारक' पड़ा है। एक दिन उद्यान में राजकुमारी पर एक मतवाला हाथी आक्रमण करता है। अविमारक उसे बचाता है। दोनों एक-दूसरे को प्रेम करने लगते हैं। राजकुमारी की दो परिचारिकाएँ अविमारक से मिलती हैं। वे उसे वेष बदल कर कन्यापुर में आने को कहती हैं। अविमारक चोर के वेश में नगर में प्रवेश करता है। वह दीवार लांघ कर कन्यापुर प्रसाद में घुसता है। कुरंगी अर्धसुप्तावस्था में पड़ी रहती है। कामावेश में वह अपनी परिचारिका मालिनिका को आलिंगन करने को कहती है। मालिनिका स्वयं वैसा न कर उसी समय वहाँ पहुँचे अविमारक को आलिंगन करने को कहती है। वह राजकुमारी का आलिंगन

करता है। राजकुमारी उसे देख घबडा जाती है। अविमारक उसे स्वस्थ करता है। दोनो शयनागार मे आते हैं। शीघ्र ही राजा कुन्तिभोज को किसी युवक के कन्यापुर प्रमाद मे होने का पता चलता है। अविमारक वहाँ से चला जाता है। विद्याधर युगल से वह मुद्रिका प्राप्त करता है और उस मुद्रिका के सहारे गुप्त रूप मे राजकुमारी से मिलता है। राजा कुन्तिभोज अपनी कन्या कुरगी का विवाह सौवीर के राजपुत्र विष्णुसेन (अविमारक) से करना चाहता था। परन्तु बहुत दिनो तक उसका पता न लगने के कारण उसने उसका विवाह काशिराज के पुत्र जयवर्मा से ठीक किया था। काशिराज ससैन्य वहाँ पहुँच भी जाता है। इसी बीच नारद जी आ कर अविमारक के साथ कुरंगी के साथ गान्धर्व विवाह का समाचार सुनाते हैं और राजभवन मे उसके रहने की सूचना भी देते हैं। कुन्तिभोज के समक्ष समस्या उपस्थित होती है, जिसका समाधान नारद जी कुरगी की बहन सुमित्रा का विवाह जयवर्मा के साथ कर देने को कहते हैं। यह बात सभी को पसन्द आती है और सर्वत्र आनन्द छा जाता है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कुछ विद्वान् भास का नाट्यशास्त्र भी मानते हैं, यत भास ने रूपक के अधिक भेदो की रचना की है। नाटकीय कला मे निष्णात होने से इनके नाटको की अभिनेयता ही प्रमाण है। नाट्यकला के साथ भास का भाषा पर भी असाधारण अधिकार है। सस्कृत में सर्वप्रथम एकाकी नाटको के प्रणयन का श्रेय भास को प्राप्त है। इनकी परिष्कृत बुद्धि और अभिरुचि ने नाटको को ऐसी कूटयुक्तियो के समावेश से बचा लिया है जिनके प्रयोग से नाटकीयता का अभाव होता है। भास ने जिस सीमित घटना को उठाया है, उसका निर्वाह बडी सफलता के साथ किया है। बहुत से विषयो की सूचना कथनोपकथनो के द्वारा दी गयी है।

सवाद-योजना मे भास ने विशेष दक्षता प्रदर्शित की है। कोई भी पात्र उतना ही बोलता है, जितना आवश्यक है। वार्तालाप का कोई भी अश व्यर्थ नही है। ये सवाद सर्वत्र विवक्षित भाव के द्योतक हैं। अभीष्ट अर्थ के द्योतन में अशक्ति कहीं भी लक्षित नही होती। वार्तालापो के आश्रय से ही समस्त दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। अतएव सक्षेप मे भास की नाट्यकला प्राचीन है।

भास की कृतियो की प्रामाणिकता

नाटकचक्र के तेरह नाटक भास द्वारा प्रणीत हैं अथवा अन्य किसी कवि

द्वारा डॉ० वार्नेट पिशरोती एवं महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा का अभिमत है कि इन रूपकों का रचयिता कालिदास का पूर्ववर्ती भास नहीं है, अपितु सातवीं सदी के अन्य किसी भास द्वारा इनका प्रणयन हुआ है। ये रचनाएँ भास की हैं अथवा अन्य किसी रूपककार की, इस शंका की उत्पत्ति का कारण इन तेरह रूपकों में रचनाकार के नाम का उल्लिखित न होना है। पर इन तेरह रूपकों में विचार, भाषा, आकृति, प्रतीक, शैली आदि की इतनी अधिक समता है, जिससे इन्हें एक ही कवि की रचना स्वीकार करने में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं आती है। हम यहाँ विचार के लिए समीक्षकों द्वारा प्रस्तुत की गयी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता सम्बन्धी मान्यताओं का निरूपण प्रस्तुत करेंगे। सुविधा की दृष्टि से समीक्षकों, विचारों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

83273

प्रथम वर्ग के विचारक

प्रथम वर्ग के विचारक इन तेरह रूपकों को भास कृत मानते हैं। इस मत के समर्थक ए० डी० पुसालकर और ए० बी० कीथ हैं। टी० गणपति शास्त्री ने उन्हें कालिदास का पूर्ववर्ती भास की रचना मान कर ही प्रकाशन किया है। अभयंकर, बेनर्जी शास्त्री, वेस्टन हिवार, गायकवाड़, वेल्वल्कर, भिडे, प्रो० ध्रुव, दीक्षितार, घटक, गुलेरी, शेष अय्यर, जोकोबी, जायसवाल, जोली, थामस, कृष्ण शास्त्री, लेस्नी, लिण्डन, एस० एस० परांजपे, पेवलोनी, लिट्ज, सरूप, हरप्रसाद शास्त्री और हरिहर शास्त्री भी इस मत के समर्थक हैं।

वस्तुतः इन तेरह रूपकों में 'आकृति' की समता पायी जाती है। अतः इनका रचयिता एक ही व्यक्ति है। प्राचीन उद्धरणों से 'स्वप्नवासवदत्तम्' भास की कृति सिद्ध है तथा ये सभी रूपक 'स्वप्नवासवदत्तम' के ही समान है। संस्कृत रूपकों की यह परम्परा है कि नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार रंगमंच पर प्रवेश करता है, परन्तु भास के इन तेरह रूपकों में नान्दी पाठ की योजना प्रस्तावना में सम्मिलित नहीं है। हाँ, नान्दी श्लोक के मंगल कार्य की पूर्ति भास ने सूत्रधार के द्वारा मंगल श्लोक का पाठ करवा कर की है। अतः एक दृष्टि से सूत्रधार ही नान्दी पाठ करता है। लगभग सभी रूपकों के अन्त में भरतवाक्य का अन्तिम चरण 'राजसिंह प्रशास्तुनः' लिखा है। इन सभी रूपकों में सूत्रधार द्वारा प्रस्तुत की गयी भूमिका अल्प है और प्रारम्भिक योजना एक-सी है। जैसे सूत्रधार मंगल श्लोक का पाठ कर कुछ कहने की

इच्छा व्यक्त करता है उसी समय कोलाहल सुनायी पड़ता है। इस प्रकार की योजना स्वप्नवासवदत्त, अभिषेक नाटक, पचरात्रम्, मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभारम्, उरुभग और बालचरित मे है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक, प्रतिमा और चारुदत्त, इन रूपको की प्रारम्भिक योजना एक-सी है।

इनमे प्ररोचना का अभाव है। पताका स्थान को एव गण्ड का प्रयोग भी अनेक रूपको में है। 'प्रतिमा' के प्रथम अक, 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के द्वितीय अंक, 'पचरात्रम्' के प्रथम अक, 'अभिषेक' के पचम अक और 'अविमारक' के द्वितीय अंक मे पताका स्थानक का प्रयोग हुआ है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के पंचम अक के बीसवें पद्य मे, 'अभिषेक' के द्वितीय अक के अठारहवें पद्य मे तथा 'बालचरित' के पृष्ठ इकसठ और पचरात्रम् के पृष्ठ सत्तासी पर गण्डका प्रयोग हुआ है। सभी नाटकों मे अपाणिनीय प्रयोग भी समान रूप से मिलते हैं।

भरत नाट्यशास्त्र के नियमों का उल्लघन समान रूप से ही इन नाटकों मे पाया जाता है। शास्त्रीय नियमानुसार रग-मच पर मृत्यु का प्रदर्शन निषिद्ध है, परन्तु भास ने प्रतिमा मे दशरथ की, अभिषेक मे वालि की और ऊरुभग में दुर्योधन की मृत्यु को रग-मच पर प्रस्तुत किया है। रग-मच पर युद्ध भी निषिद्ध माना गया है, पर भास ने 'मध्यमव्यायोग', ऊरुभग और बालचरित मे युद्ध को भी अवतरित किया है। मध्यमव्यायोग मे भीम और घटोत्कच का, ऊरुभग में भीम और दुर्योधन का, और बालचरित मे कृष्ण और अरिष्ट के युद्ध का दृश्य है। क्रीडा और शयन को रगमंच पर दृश्य रूप मे प्रस्तुत करना भी भास की अपनी परम्परा है। प्राय सभी रूपको में आकाशभाषित का प्रयोग हुआ है। युद्ध की सूचना, एव युद्ध का वर्णन भटो द्वारा किया गया है। 'दूतघटोत्कच, 'ऊरुभग' और 'पचरात्रम्' में युद्ध की सूचना और उसका वर्णन भट ही करता है। उच्चपदाधिकारी जैसे—राजा, राजकुमार या मन्त्री के आगमन की सूचना 'उस्सरह उस्सरह अय्या उस्सरह' के द्वारा दी गयी है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'प्रतिमा' मे इसके पर्याप्त उदाहरण हैं। विशिष्ट घटना की सूचना देने के लिए प्राय सभी रूपकों में 'निवेद्यता निवेद्यता' वाक्य का प्रयोग किया है। एक पात्र की मुखमुद्रा के द्वारा दूसरा पात्र उसके आन्तरिक भावो को जान लेता है। इस कल्पना को प्रतिमा, अविमारक और अभिषेक में प्रसारित किया है। 'एव मार्यमिश्रान विज्ञापयामि किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग पश्यामि' यह पंक्ति प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक, चारुदत्त एव प्रतिमा को छोड़ शेष सभी नाटकों में उपलब्ध है।

मुद्रालंकार का प्रयोग चारुदत्त और अविमारक को छोड़ शेष सभी नाटकों में पाया जाता है। इस अलंकार के प्रयोग द्वारा नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम तथा अभीष्ट देवता की स्तुति की गयी है। कंचुकी और प्रतिहारी के नामों की कई नाटकों में पुनरावृत्ति हुई है। 'दूतवाक्य' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में कंचुकी का नाम बादरायण है। इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्,' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'अभिषेक' और 'प्रतिमा' में प्रतिहारी का नाम 'विजया' आया है।

प्रायः सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' का प्रयोग हुआ है। नाट्यनिर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में समानभावेन प्राप्य है। जो नाट्य-निर्देश हैं भी उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, 'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य' में निष्क्रमण और प्रवेश साथ-साथ निर्दिष्ट हैं।

सभी नाटकों में नाटक के नामों का उल्लेख नाटकान्त में प्राप्त होता है। इन रूपकों में अन्य किसी भी ग्रन्थकार का नाम नहीं मिलता। छन्दों के प्रयोग भी प्रायः समान हैं।

कई नाटकों में ऐसी प्रभावशाली पद्धति का प्रयोग हुआ है कि किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। यथा--जब महासेन और अंगारवती विचार-विमर्श कर रहे हैं कि कौन राजा वासवदत्ता के लिए उपयुक्त है, उसी समय कंचुकी सहसा आ कर कहता है—'वत्सराज' अभिप्राय यह है कि उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर मिल जाता है। यद्यपि कंचुकी यह कहने आया था कि 'वत्सराज बन्दी बना लिया गया है।' इसी प्रकार 'अभिषेक' नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि 'इन्द्रजित ने राम और लक्ष्मण को मार डाला। अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा ?' इसी समय एक राक्षस कहता है 'राम', यद्यपि वह कहना यह चाहता है कि 'राम ने इन्द्रजित को मार दिया।'

समान नाटकीय परिस्थितियों की अवतारणा इन नाटकों की रूप साम्यता है। अभिषेक तथा प्रतिमा नाटकों में सीता रावण की प्रार्थना को अस्वीकार कर देती हैं तथा उसे शाप देती हैं। बालचरित और पंचरात्र में जब सैनिकों से उनके राजा को नमस्कार करने के लिए कहा जाता है, तो वे अपेक्षापूर्वक पूछते हैं कि 'यह किसका राजा है' ? 'प्रतिज्ञा' नाटक में महासेन तब तक वत्सराज के बन्दी होने को नहीं मानता, जब तक बादरायण यह नही कहता कि 'क्या उसने कभी पहले महासेन से झूठ कहा है' ? इसी प्रकार चारुदत्त में कंस तब तक यह नहीं मानता कि देवकी को पुत्री हुई है, जब यह कंचुकी

इसी प्रकार का प्रश्न नही करता। 'अविमारक' तथा 'प्रतिज्ञा' मे राजा और रानी के बीच उपयुक्त वर के लिए समान विमर्श किया गया है।

रूपाकृति की दृष्टि से अन्य समानताएँ भी प्राप्य हैं। दूत घटोत्कच मे मध्यम ब्राह्मण पुत्र को बुलाया जाता है, पर वहाँ मध्यम पाण्डव भीम उपस्थित होता है। वह घटोत्कच को पुत्र कहता है, 'घटोत्कच भीम को पिता के रूप मे नहीं पहचानता। यहाँ पिता और पुत्र का गोपनीय आलाप आह्लादकारी है। इसी प्रकार पचरात्र मे अभिमन्यु अपने पिता तथा अन्य को न पहचान कर उनके द्वारा अपना नाम ले कर बोलने वाले को नीच तथा अपनी माता विषयक वार्ता पर रोष प्रकट करता है।

दूत घटोत्कच मे अभिमन्यु के वध के उपरान्त जब यह समाचार धृतराष्ट्र को सुनाया गया तो वह शीघ्र ही—इसके लिए कौन-कौन दोषी है, पूछते हैं और जयद्रथ का नाम सुनकर उसकी मृत्यु की घोषणा करते हैं, क्योकि यही उत्तरा के रुदन का कारण है। प्रतिज्ञा मे उदयन के अपने मन्त्री द्वारा गृहीत होने पर महासेन, क्या यौगन्धरायण मर गया, कहते हैं, जो कि पश्चात् यौगन्धरायण के द्वारा उदयन के मोक्ष की प्रतिज्ञा के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। अविमारक के योगी नारद अविमारक के कुन्तिभोज द्वारा जान लेने से महान् सकट की स्थिति का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार भास के सभी नाटको मे रूप-स्थापत्य की दृष्टि मे समानता पायी जाती है।

विचारसाम्य

भास के उक्त तेरह नाटको मे विचार साम्य भी उपलब्ध है। इन्होंने बलशाली की उपमा सिंह से तथा दुर्बल की उपमा मृग से दी है। भास की रचनाओ मे यह साम्य बालचरित, मध्यम व्यायोग, अभिषेक, दूतवाक्य, प्रतिमा आदि रूपकों मे समान रूप से प्राप्त है।[१]

---

१. नाग मृगेन्द्र इव पूर्व कृतावलेपम्—बाल० ४।१३
रुष्टोऽपि कुजरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने—मध्यम १।४४
गजपतिमिव मत्त तीक्ष्णदंष्ट्रो मृगेन्द्र —अभिषेक ६।११
हरिमिव मृगपोतो तेजसाभिप्रयातो—दूतवाक्य १।१०
न व्याघ्रं मृगशिशव प्रधर्षयन्ति—प्रतिमा ५।१८
कपलम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते—अभिषेक ३।२०
व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव—चारुदत्त १।६

इन रूपकों में बताया है कि वीर व्यक्ति का सबसे अच्छा अस्त्र उसका हाथ है। यह विचार 'मध्यमव्यायोग' के बयालीसवें पद्य में, 'पंचरात्रम्' के द्वितीय अंक के पचपनवें पद्य में, 'बालचरितम्' के पंचम अंक के बारहवें पद्य में और अविमारक में भी इसी विचार को अभिव्यक्त किया गया है। अर्जुन की वीरता का वर्णन 'दूतवाक्यम्' में कृष्ण द्वारा बत्तीसवें एवं तैंतीसवें पद्य में आया है। दूतघटोत्कच में धृतराष्ट्र अर्जुन की शक्ति का परिचय--बाईसवें, अट्ठाइसवें और सैंतीसवें पद्य में देते हैं। 'ऊरुभंगम्' के चौदहवें पद्य में अर्जुन के पराक्रम का वर्णन' आया है। 'पंचरात्रम्' में उत्तर द्वारा अर्जन के पराक्रम का वैसा हो चित्रण है, जैसा उपर्युक्त रूपकों में है। एक ही विचार भिन्न-भिन्न रूपकों में अभिव्यक्त हुआ है। पंचरात्रम् का पद्य निम्न प्रकार है—

अध्वानमल्पमतिमुक्त जवैस्तुरङ्गै
राग‍च्छता पथिरथेन विलम्बितं मे ।
कौन्तेयबाणनिहतैर्द्विरदैः समन्ताद्
दुःखने यान्ति तुरगा विषमा हि भूमिः ॥

—पंचरात्रम् ३।२२

अर्थात्—मार्ग बहुत लम्बा नहीं था, घोड़ों को भी वेग से चलाया गया, फिर भी आने में हमारे रथ को विलम्ब हो गया, क्योंकि अर्जुन द्वारा मारे गये हाथियों के शवों से रास्ते की भूमि विषम हो गयी है।

'अविमारक' के चतुर्थ अंक के द्वितीय पद्य में नारद को कलह प्रिय कहा है। इसी विचार की पुनरावृत्ति 'बालचरित' के प्रथम अंक के चतुर्थ पद्य में प्राप्त होती है। 'चारुदत्त', 'पंचरात्रम्', 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'दूतवाक्य' में लक्ष्मी के विषय में समान विचार उपलब्ध होते हैं। कहा गया है कि लक्ष्मी का स्वामी साहसी व्यक्ति ही हो सकता है तथा लक्ष्मी सन्तोष धारण नहीं करती। पार्थिव शरीर की अपेक्षा 'यशः शरीर' अधिक स्थायी होता है। राजा अपने यशः शरीर से चिरकाल तक जीवित रहता है। इस विचार को 'पंचरात्र' के प्रथम अंक के पच्चीसवें पद्य में 'नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते' द्वारा और 'कर्णभार' के प्रथम अंक के सत्रहवें पद्य में "हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते' द्वारा अभिव्यक्त किया है।

भास ने राहु से ग्रसित चन्द्र की उपमा अनेक स्थलों पर समान रूप से दी है। नायक, राजा आदि प्रधान पात्र की उपमा चन्द्र से उसे पीड़ित करने

वाले की उपमा राहु से दी गयी है।[1] इन्होने कठिन कार्य को मन्दर पर्वत के उठाने के सदृश वर्णित किया है।[2] बालकृष्ण को ले जाते समय वसुदेव को मन्दर सदृश पराक्रमशाली घोषित किया है। महासेन स्वयं उदयन के गृहीत होने पर मन्दर के उठाने के सदृश विचार रखता है। 'अभिषेक' मे रावण के मरण को सुन कर सीता उसे मन्दर पर्वत हाथो द्वारा तोलने की इच्छा करना कहती है।

पुत्र के विषय मे भास ने 'दूतघटोत्कच' और 'अभिषेक' मे प्रथम प्रवाल की घोषणा की है। दूतघटोत्कच मे धृतराष्ट्र ने अभिमन्यु को अर्जुन का प्रथम प्रवाल कहा है तथा यही पर उसे यदुकुल प्रवाल भी कहा गया है। अभिषेक मे बालि-सुग्रीव के लिए अगद को सौंपते हुए उसे कुलप्रवाल कहता है। कर्णभार मे युद्ध की शखध्वनि को प्रलय सागर घोष तुल्य ध्वनित किया है। दूतवाक्य मे पाचजन्य घोष को भी प्रलय सागर घोष तुल्य बताया है। चारुदत्त और अविमारक मे अन्धकारयुक्त रात्रि का वर्णन समान रूप से आया है। 'द्विघाहत' की उपमा का वर्णन कई स्थलो पर समान रूप से प्राप्त होता है। 'बालचरित' मे वसुदेव यमुना के जल को, अभिषेक मे समुद्र को, अविमारक मे अपने शरीर के विषय मे अविमारक की उक्ति मे विचार साम्य है।

शाप एव शपथ का वर्णन इन सभी नाटको मे समान रूप से पाया जाता है। ब्राह्मण और ऋषि शाप के साथ पारस्परिक वार्तालाप मे शाप का महत्व प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार शपथ का प्रसग भी कई नाटको मे आया है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के चतुर्थ अक मे विदूषक और राजा उदयन परस्पर चर्चा करते हैं। विदूषक पूछता है—'रानी वासवदत्ता और पद्मावती मे से कौन विशेष स्नेहास्पद है'? इस विषय पर राजा को शान्त तथा तटस्थ पा कर अपने व्यथत्व की शपथ दे कर पूछता है तथा किसी से भी न कहने की शपथ

---

१ राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेवशोभते—दूतवाक्यम् १।७
वृद्धस्य विप्रचन्द्रस्य भवान् राहुरिवोत्थित — मध्यम० १।२३
किं द्रष्टव्यः शशाकोऽय राहोर्वदनमण्डले—बालचरित १।११
यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव—प्रतिज्ञा० १।१६

२ बाहुभ्या गिरिमिव मन्दर वहन्ती—बालचरित १।६
व्यावर्त्तना करतलेष्विमन्दरस्य, प्रतिज्ञा० २।६
किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्त्तयामि—दूतवाक्य १।४४

के साथ अपनी जिह्वा को काटता है। प्रतिज्ञा में यौगन्धरायण तथा हंसक के वार्तालाप में हंसक राजा उदयन द्वारा अपने जीवन की शपथ का स्पष्टीकरण करता है। अविमारक में विदूषक ने शाप के भय से अपने को प्रकट न करने का संकेत किया है। सौवीर राज शाप सुनकर क्षुब्ध हो जाता है। अनुनय विनय करने पर ब्रह्मर्षि प्रसन्न हो कर कहता है—

तावत् प्रच्छन्नरूपेण यावत् संवत्सर व्रजैः ।
ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि ॥

—अविमारक ६।८

इसी प्रकार 'चारुदत्त'[१] में विदूषक सज्जलक से कहता है कि मेरे ब्राह्मणत्व से तुम शापित हो। विदूषक ब्राह्मणी के झूठ बोलने में शाप का भय दिखलाता है। 'प्रतिज्ञा'[२] में राम सीता से राजा के प्राणों की शपथ का स्मरण दिलाते हैं। रावण सीता के अक्षरमात्र से शप्त हो कर जल-सा रहा है। भरत राम के पास आने पर भी शपथ के कारण लौट जाते हैं तथा सुमन्त्र से सत्य बोलने में राजा की शपथ लेते हैं। 'अभिषेक' में हनुमान् राम से सुग्रीव तथा वालि के युद्ध के समय शपथ का स्मरण दिलाते हैं। रावण विभीषण से गुप्त बातों को जानने के लिए प्राणों की शपथ देता है। 'दूत-वाक्य'[३] में वासुदेव का दुर्योधन पाण्डवों की उत्पत्ति के विषय में मुनि शाप की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। 'मध्यम'[४] में भीम सत्य की शपथ से भय न जानने को कहता है। 'ऊरुभंग'[५] में अश्वत्थामा राजा दुर्योधन से पाण्डवों को युद्ध में जलाने की शपथ लेता है। 'बालचरित'[६] में शाप को पात्र के रूप प्रवेश कराया है।

---

१. सज्जलकः किमत्र शपथ परिग्रहेण ?—चारुदत्त, अंक ३।१३ पद्य के आगे का गद्य—मम बह्मत्तणेण साविदोसिः वही
२. मे शापितो न........,प्रतिमा ४।२४, लब्ध प्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते, प्रतिमा, ६।७
३. मुनिशापमाप्तवान्ः दूतवाक्य १।२१
४. शपामि सत्येन भयं न जानेः मध्यम० १।४१
५. भवता चात्मनश्चैव तीरलोकेः शपाम्यहम्—ऊरुभंग
६. ततः प्रविशति शापः—बालचरित, द्वितीय अंक, तृतीय पद्य से आगे का गद्यांश

कथा-वस्तु के विकास मे भास ने हाथी का प्रयोग कई नाटको मे किया है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' मे राजा उदयन का वीणा विशेषज्ञ होने के साथ हस्ति ग्रहण मे निपुण चित्रित किया है। वह नील कुवलयतनु नामक चक्रवर्ती हाथी को पकडने जाता है। हसक ने उस हाथी को साल वृक्षो की छाया मे नीलिमा मे विलीन रग के कारण अशरीरी केवल दन्त युगल से सूचित दिव्य वारण बतलाया है। बाह्याकृति हाथी के अन्तर्गत धनु शत सैनिको ने छद्म से उदयन को पकडा था। इस प्रकार हस्ति शिक्षा बल पर ही 'प्रतिज्ञा' मे यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा पूर्ति की अभिव्यक्ति स्पष्टतया प्राप्त होती है। इस नाटक मे अन्य कई स्थलो पर भी 'नीलगिरि' हाथी का नाम आया है। अत इस नाटक को कथावस्तु का केन्द्र हाथी है।

'अविमारक'[१] नाटक मे नायक अविमारक प्रच्छन्न रूप से नगर मे निवास करता है। राज मार्ग पर आते हुए एक विशाल हाथी के रोषाक्रान्त होने पर राज दारिका कुरगी के मान की रक्षा करता है। इससे राजा कुन्तिभोज उसकी ओर आकृष्ट होता है। अविमारक राजप्रासाद मे कुरगी से मिलने के लिए हस्तिशाला मे रज्जु को रख कर उसका उपयोग करता है।

'चारुदत्त'[२] नाटक मे भी नायक चारुदत्त द्वारा किसी परिव्राजक को हस्ति सम्मर्दन के समय त्राण प्रदान करने वाले चेट को अपने प्रावारक को देते हुए देख कर गुणानुरागिणी वसन्तसेना चारुदत्त पर मुग्ध हो जाती है। यहाँ हाथी का नाम मगल हस्ति बताया है।

इस प्रकार भास के तेरह नाटको मे से कथा-विकास के लिए हाथी का प्रयोग उक्त चार नाटको मे आया है। इस हस्ति वर्णन मे भास की एकरूपता है।

भास ने अपने रूपको मे जीवन की विविधता और वैषम्य का चित्रण किया है, जिससे अश्रुसिक्त अवस्था का वर्णन भी अनेक स्थलो पर आया है। 'स्वप्न-

१. सहमेव स्वामिदारिका यानमेव प्राप्त. सहस्ती, अवि० : सा गज-सम्भ्रमे, वही, ६।४

२. जनवादे मवृत्ते ततो दत्तकरप्रहारेण परिवर्तित्त हस्तिन कृत्वा मोचितः स परिव्राट्चारुदत्त, द्वितीय अक, पृ० ६६ (चौखम्बा सस्करण)
एपा खलु मधुकरा ......काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः, —स्वप्नवासवदत्तम्, पृ० २८।

वासवदत्तम्' के प्रथमांक में ब्रह्मचारी राजा को प्रतत रुदित कहता है। गुप्त-रूप में निवास करती हुई वासवदत्ता राजा उदयन की वेदना को अवगत कर 'साश्रुपाता खल्वार्या दृष्टिः ग्वाली' हो जाती है। नाटककार ने अश्रुओं के निर्वहण का कार्य भ्रमरों[१] के द्वारा गिराये गये पराग के कारण नेत्रों का आर्द्र होना वर्णित किया है। इसी अंक में विदूषक[२] और राजा के वार्त्तालाप में राजा को अश्रुयुक्त बतलाया है। षष्ठ अंक में भी वीणा को सम्बोधित करते हुए राजा की दृष्टि अश्रुसिक्त हो जाती है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' की यह अश्रु-सिक्त वाली प्रक्रिया 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में प्राप्त है। इस नाटक मे उदयन के पकड़े जाने का समाचार ले कर जब हंसक यौगन्धरायण के समीप पहुँचता है, तो वह राजा को सन्देश भेजते समय अश्रुसिक्त बतलाता है। इसी नाटक में वासवदत्ता के विवाह को ले कर राजा और देवी के वार्त्तालाप क्रम में राजा उसकी दृष्टि को अश्रुपूर्ण कहता है।[३]

अविमारक, तृतीयांक में सलज्जा कुरंगी को अधिक रुदन से क्या ? मैं शरणागत हूँ ऐसा अविमारक के कहने पर कुरंगी के नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं। नलिनिका भी अश्रुओं से युक्त हो कर प्रवेश करती है। इस नाटक के चतुर्थ अंक में भी कुरंगी को अश्रुओं से युक्त कहा गया है। यह शिलातल पर बाएँ हाथ पर मुँह को रखे हुए बैठी है। उसकी इस अवस्था के चित्रण में भी नाटककार ने अश्रुओं का पतन बतलाया है। अविमारक विदूषक से वार्त्तालाप करते-करते कुरंगी की अवस्था के चित्रण में उसके अश्रुपूरित मुख का वर्णन करता है। इसी प्रकार कुन्तिभोज और सौवीर राज के नेत्र वार्त्तालाप प्रसंग में अश्रुसिक्त हो जाते हैं।

'चारुदत्त' में चेटी शकार को पैर से ताड़ित करती है और रोती है। विदूषक ब्राह्मणी से अलीक कहने पर शाप का भय देता है, वह अश्रुसिक्त नेत्रों से कहती है।

'प्रतिमा' में सीता ने अभिषेक जल को मुखोदक कहा है। राम अपने राज्याभिषेक का वर्णन करते समय अपने पिता की अश्रुधारा का वर्णन करते हैं।

---

१. ततो..........बाष्पपर्याकुलेन मुखे.......घोषवती, स्वप्नवासवदत्तम् वही, पृ० ४५

२. अश्रुपातक्लिन्नं भवतो मुखम् यावन्मुखोदकमानयामि, वही, पृ० ३२.

३. प्रतिज्ञा०, पृ० ६६

वनगमन के समय सीता का मुख अश्रुसिक्त हो जाता है। और सभी पुरवासी इसी रूप मे सीता का दर्शन करते हैं। सुमन्त्र राम के वन चले जाने पर भृत्यगण की दशा का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि राम के वियोग मे सभी भृत्यो के नेत्र आँसुओ से आर्द्र हो गये हैं। इसी प्रकार सीता सुमन्त्र को अपनी दीर्घायु का दोष देते हुए अश्रुओ से युक्त पाती है। आर्य राम भी रुदन करते हैं।

अभिषेक मे हनुमान ने लका सहित सीता को 'वाष्पससिक्तवक्त्रा' कहा है। पचरात्र मे दुर्योधन से वार्त्तालाप मे द्रोण कहते हैं कि अश्रुवेग मुझे बाधित कर रहा है और दुर्योधन अश्रुवेग से अशौच की स्वच्छता के लिए जल मँगाता है तथा द्रोण अपनी कार्य सिद्धि को ही मुखोदक कहते हैं। बलदेव गान्धारी को अश्रुयुक्त देख कर विगलित हो जाते हैं।

अश्रु प्रयोग द्वारा भास ने आन्तरिक पीडा को कम करने का प्रयास किया है। उनके सभी पात्र अश्रु पतन से हल्के हो जाते हैं और मनोव्यथा को भूल कर कार्य करने मे प्रवृत्त होते हैं। 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे उदयन वासवदत्ता के वियोग मे अश्रुधारा प्रवाहित कर अपने ऋण से उऋण होना व्यक्त करते हैं। अविमारक मे नाटककार ने वाष्प द्वारा सौवीरराज का हृदय शोक दूर करने का प्रसग वर्णित किया है। वह अपने पुत्र के वियोग से व्यथित है। इन्होने प्रेमीजनो के वियोग मे उनकी स्मृति मे कष्ट का अनुभव किया है तथा अश्रुधारा प्रवाहित करके उस कष्ट की व्यथा को दूर करने का प्रयास किया है।

नाटककार भास ने अपने रूपको मे 'अश्रुसिक्त' नेत्रो को प्रतीक रूप मे प्रयुक्त किया है। यह उनकी एक शैली विशेष है, जिसका व्यवहार प्राय: सभी रूपको मे मिलता है। यह समता ही नाटको को एक कर्त्ता की रचना सिद्ध करती है। वस्तुत: भास ने 'स्वप्न और शयन' के प्रसंग भी समान रूप से अपनी कृतियो मे नियोजित किये हैं, जिसमे इन रूपको का एक वक्तव्य प्रकट होता है। 'शाप और शपथ', 'कथा के परिवृहण' मे हाथी का केन्द्रभूत रूप मे अकन' एव 'हस्तिशिक्षा और वीणा विशारदता' का प्रणयसूत्र मे साधकत्व, ऐसे वैशिष्ट्य हैं, जिनसे भास के उपलब्ध सभी रूपक एक ही कर्त्ता के प्रतीत होते हैं। इनकी कृतियो की प्रामाणिकता इनकी मौलिकता और विशेष उद्भावना के आधार पर स्पष्ट है।

समान भावों का प्रयोग

भास के नाटकों में विचारों के समान भावों की समानता भी दृष्टिगोचर होती है। एक ही भाव कई नाटकों में समान रूप से व्यवहृत हैं। नगर की समीपता का वर्णन प्रतिमा और अभिषेक नाटक में समान रूप से वर्णित है। प्रतिमा में वृक्षों की समीपता से अयोध्या की निकटता दिखलायी गयी है। अभिषेक में भी वृक्षों की प्रचुरता में किष्किन्धा की निकटता बतलायी है। चारुदत्त में भी इसी प्रकार का भाव आया है।

प्रायः सभी नाटकों में दयनीय दृश्यों का वर्णन समान रूप में उपलब्ध है। मृत्यु का दृश्य ऊरुभंग और प्रतिमा में प्रायः तुल्य है। ऊरुभंग में आया है कि दुर्योधन शान्तनु आदि अपने पितामहों को अपने चारो ओर देखता है, इसी प्रकार प्रतिमा में दशरथ अपने पूर्वज दिलीप, रघु आदि को देखता है। अभिषेक में वालि अपनी मृत्यु के पूर्व गंगा आदि नदियों की उपस्थिति का अनुभव करता है।

ब्रह्मचारी पात्र के प्रवेश से नाटकीय कौतूहल को सजग बनाने का प्रयास प्रायः कई नाटकों में पाया जाता है। वासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अवि-मारक एवं बालचरित नाटकों में ब्रह्मचारी पात्र का प्रवेश अद्‌भुत नाटकीयता का परिचायक है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वासवदत्ता को पद्मावती के समीप न्यास रूप में छोड़ने से पूर्व ही यौगन्धरायण और वासवदत्ता को राजा उदयन के समाचार और रुमण्वान् द्वारा किये गये सत्प्रयत्नों का परिज्ञान भी हो जाता है। ब्रह्मचारी के मुख से वासवदत्ता अपनी प्रशंसा सुन कर मार्गजनित खेद को भूल जाती है और पद्मावती के मन में उदयन के प्रति प्रेम प्रादुर्भूत हो जाता है। कथा में सूत्र रूप से भावी घटना को ग्रथित किया है।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में उदयन का मित्र वसन्तक विदूषक के रूप में दर्शकों के समक्ष अपने प्रच्छन्न रूप को अप्रकट करने के हेतु ब्रह्मचारी (गणेश) की ओर मोदक के बहाने शिवालय के चबूतरे पर वार्त्तालाप करने में संलग्न है। अतः वस्तुस्थित का रहस्य अप्रकट ही रहता है। अविमारक नाटक में आया है कि जब अविमारक कुरंगी से मिलने के लिए रात्रि में राजप्रासाद की ओर बढ़ता है, तो नगर के चौराहे पर कुछ व्यक्तियों को वार्त्तालाप करते हुए देख कर संशकित हो जाता है। पर यहाँ परिचित ब्रह्मचारी तपस्वी को पा कर वह निःशंकित हो गमन करता है। अभिषेक नाटक में ब्रह्मचारी की उप-

स्थिति के समान ही विद्याधर त्रय की उपस्थिति दिखलायी गयी है। पच-रात्र' में ब्रह्मचारी का कार्य गोपालक की उपस्थिति से और 'चारुदत्त' में परिव्राजक की उपस्थिति से सम्पन्न किया गया है। प्रतिमा' में रावण स्वयं परिव्राजक वेष में उपस्थित होता है। अन्य पात्र तापस भी नन्दिलक से वार्तालाप करता हुआ विभीषण सम्बन्धी राक्षसों को अनुमति देने से पूर्व ही सावधान कर देता है। इस प्रकार ब्रह्मचारी का परिवर्तित रूप परिव्राजक या तापस के रूप में भास के रूपकों में आया है। भाव की दृष्टि से ये सभी स्थल प्राय समान हैं। पिता को कन्या के विवाह की चिन्ता, अमात्य का दायित्व, अपराध निरीक्षण एवं कला सम्बन्धी प्रेम ऐसे भाव हैं, जिनकी आवृत्ति विभिन्न प्रसगों में प्राय सभी नाटकों में पायी जाती है। अमात्य अपने दायित्व के निर्वाह हेतु सभी रूपकों में चिन्तित दिखलायी पड़ता है, वह अपनी सुख-सुविधा की अवहेलना कर स्वामी के कार्य को सम्पन्न करने के निमित्त अपना सर्वस्व त्याग करने के हेतु प्रस्तुत रहता है। इस प्रकार भास के रूपकों में समान भावों का अंकन पाया जाता है।

सम्पूर्ण पद्य, पद्यांश एवं शब्दों की समता

भास के तरह रूपकों में से कई रूपकों में समान पद्य प्रयुक्त मिलते हैं। 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'बालचरित', 'दूतवाक्य', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'अवि-मारक', 'अभिषेक' और 'पचरात्रम्' के पद्यों में कई ऐसे पद्य हैं, जो समान रूप में इनमें प्राप्त हैं। भरतवाक्य वाला निम्नांकित पद्य 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'बालचरित' और 'दूतवाक्यम्' में प्राप्त है—

इमाम् सागरपर्यन्ता हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राकाम् राजसिंह, प्रशास्तुनः ॥

यह पद्य स्वप्नवासवदत्तम् ६।१६, बालचरितम् ५।२० एवं 'दूतवाक्यम' १।५६ में निबद्ध है।

इसी प्रकार—

भवन्त्वरजसो गाव परचक्र प्रशाम्यतु
इमामपि मही कृत्स्ना राजसिंह- प्रशास्तुन ॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४।२५, अविमारक ६।२२ एवं अभिषेक ६।३५ में प्रयुक्त है।

इस पद्य के तृतीय और चतुर्थ चरण कई नाटकों के भरतवाक्य में प्राप्य हैं।

इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

यह पद्यांश 'स्वप्नवासवदत्तम्' ६।१९, 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' ४।२५, 'पंचरात्रम्' ३।२६, 'अविमारक' ६।२२, 'बालचरित' ५।२०, दूतवाक्यम् १।५६ एवं अभिषेक ६।३५ में प्राप्त है।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥

यह पद्य 'बालचरित' १।१५ और 'चारुदत्त' १।१९ में अंकित है।

यदि तेऽस्ति धनुः श्लाघा—'अभिषेक' ३।२२, 'प्रतिमा' १।२०

किंवक्ष्यतीति हृदयं परिशंकितं मे—'स्वप्नवासवदत्तम्' ६।४, ६।१५, 'अभिषेक' ४।७

चन्द्रलेखेव शोभते—'दूतवाक्यम्' १।७, 'चारुदत्त' १।२७

तत्तुल्य—विद्युल्लेखेव शोभते—'अभिषेक' २।७

धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता—'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' २।७, अभिषेक' ६।२३

भारतानां कुले जातः—'स्वप्नवासवदत्तम' ६।१६, 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' ४।१७

सम्भ्रोत्फुल्ललोचना—'दूतवाक्यम्' १।१७, 'चारुदत्त' ४।३

प्रसादंकर्तुमर्हसि—'पंचरात्रम्' २।६८, मध्यम० १।५०

गद्य खण्डों की समता

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्दश्च श्रूयते। अंग। पश्यामि। नेपथ्ये।

'स्वप्नवासवदत्तम्', 'पंचरात्रम्', 'दूतवाक्यम्', 'मध्यम व्यायोग', 'दूतघटोत्कच', 'ऊरुभंग', 'अभिषेक', 'बालचरित', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', एवं 'अविमारक'।

किं ते भूयः प्रियमुपहरामि। यदि मे भगवान् प्रसन्नः। किमतः परहमिच्छामि। 'अविमारक', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'दूतवाक्यम्', 'अभिषेक' एवं 'बालचरित'।

अहो अकरुणाः खलु ईश्वराः—'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'पंचरात्रम्', 'दूतवाक्यम्'।

एष समासः—'पंचरात्रम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'अविमारक'।

अहो हास्यापिधानम्—प्रतिज्ञा०, 'पंचरात्रम्', 'दूतवाक्यम्'।

अतिस्निग्धमनुरूप चाभिहितम्—पचरात्रम्, स्वप्नवासवदत्तम् ।
अलमिदानी भवानतिमात्र सतप्य—'स्वप्नवासवदत्तम्', पचरात्रम् ।
अभिजनस्य सदृश मन्त्रितम्—'स्वप्नवासवदत्तम्', 'अविमारक' ।
परित्यजन्तीव मे प्राणा —'अभिषेक' अक २ ।
परित्यजन्तीव मे प्राणा —'ऊरुभग' ।
अहो बलवाश्चायमन्धकार. सम्प्रति हि—'बालचरित', 'चारुदत्त' ।
अहो परिजनस्य प्रमाद —'स्वप्नवासवदत्तम्, 'अविमारक' ।
अतिपादि कार्यमिदम् । शीघ्र निवेद्यताम् । पचरात्रम, २।३ श्लोक से पूर्व और 'अभिषेक' ३।२ से पूर्व ।
अयमक्रम, अथ क' क्रम —'पचरात्रम्' १।२४ से पूर्व, 'प्रतिमा' २।१५ से पूर्व ।
शकु०—विजये निवेद्यता निवेद्यता महाराजाय लकेश्वराय—'अभिषेक—अक ३
काचु०—भवति—निवेद्यता निवेद्यता वत्सराजलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय—स्वप्नवासवदत्तम् ।
भट: —निवेद्यता निवेद्यता महाराजाय विराटेश्वराय—पचरात्रम २।२३
भट. —भो भो. निवेद्यता सर्वक्षत्रियाचार्यपुरोगणाय—वही ।
भट. —भो भो निवेद्यता महाराजायागेश्वराय—'कर्णभार' ।
निवेद्यता निवेद्यता पुत्रस्यशतश्लाघ्यबान्धवाय धृतराष्ट्राय—'दूतवाक्यम्'
एषा गच्छामि मन्दभागा—स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'बालचरित', अभिषेक और ऊरुभग ।
जीवामि मन्दभागा—स्वप्न० ।
क: काल —'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'चारुदत्त' ।
गच्छतु पुनर्दर्शनाय—'स्वप्नवासवदत्तम', 'अविमारक', 'बालचरित', 'मध्यम व्यायोग', 'दूतवाक्यम्' और 'चारुदत्त' ।
यदाज्ञापयति भगवान् नारायण —'बालचरित', 'दूतवाक्यम्' ।
न शक्नोमि रोष धारयितुम्—'दूतघटोत्कच', अभिषेक' एव 'प्रतिमा' ।
बाढ प्रथम कल्प —'स्वप्नवासवदत्तम्', 'पचरात्रम्', 'अविमारक', 'बालचरित', 'मध्यमव्यायोग', 'अभिषेक' एव 'ऊरुभग' ।

इस प्रकार पद्य, पद्यांश, गद्यांश एव शब्दो की अत्यधिक समता होने से तेरह नाटक भास-कृत मानने मे किसी प्रकार का विरोध नही है । अब तक के किये गये शोध कार्यों के प्रकाश मे इतना ही कहा जा सकता है कि 'नाटक

चक्र' के सभी नाटक एक ही व्यक्ति द्वारा निबद्ध किये गये हैं। अतः यदि 'स्वप्नवासवदत्तम्' का रचयिता भास है, तो नाटक चक्र के सभी रूपकों का रचयिता भास कवि ही है, अन्य कोई नहीं।

द्वितीय वर्ग अथवा विरोधी विद्वान्

विरोधी विद्वानों में डॉ० वार्नेट, भट्टनाथ स्वामी, कारपेन्टर, देवधर, काले, सी० के० काणे, रामकृष्ण, ए० के० पिसरोत, के० आर० पिसरोती, सी० के० राजा, के० जी० शंकर, रामावतार शर्मा, हीराचन्द शास्त्री, कुप्पुस्वामी, रंगाचार्य, रेडी शास्त्री, सिल्वन-लेवी और वुलनर आदि प्रमुख हैं।

कतिपय आलोचकों ने नाटक चक्र के रूपकों को केरलीय रंगमंच के अभिनेता चाक्यारों की रचना माना है। उनका अभिमत है कि यदि यह नाटक चक्र भास द्वारा प्रणीत होता तो प्रस्तावना या स्थापना में भास का नाम अवश्य आता। दूसरी वात यह है कि यदि ये नाटक भास-कृत होते तो इनकी पाण्डुलिपियाँ केरल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी अवश्य प्राप्त होतीं। रीति ग्रन्थो में जो 'स्वप्नवासवदत्तम् के उदाहरण आये हैं, उनका भी वर्तमान नाटकों में अभाव है। महामहोपाध्याय कुप्पु स्वामी ने वताया है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में विवाह के लिए 'सम्वन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह शब्द आज भी चाक्यारों में इसी अर्थ में प्रयुक्त है।

इस सम्वन्ध में यह ध्यान देने की वात है कि केवल 'सम्वन्ध' शब्द के आधार पर 'नाटकचक्र' की उत्पत्ति केरल में नहीं मानी जा सकती, अतः यह शब्द आज भी मिताक्षरानुयायी कट्टर सनातनी ब्राह्मण विवाह के लिए प्रयुक्त है। ब्रज प्रदेश में सम्वन्ध का प्रयोग विवाह के अर्थ में आज भी प्रचलित है। इस शब्द का अपभ्रंश 'सम्वन्ध' भी उक्त अर्थ में पाया जाता है। प्रो० अय्यर ने कुप्पु स्वामी के मत की समीक्षा करते हुए लिखा है—"इन तेरह नाटकों में किसी केरलीय वस्तु की झलक नही मिलती।"[१] अतः इन्हें चाक्यारों की उपज नहीं माना जा सकता।

'भास' के नामांकन का अभाव होने से भी इन्हें चाक्यारों द्वारा लिखा

---

१. I need hardly add that nothing characteristic of Ker--ala is ever mentioned in all the 13 plays.—A. S. P Ayyar, Bhasa, Madras, 1, 1957, page 30-31.

हुआ स्वीकृत नही किया जा सकता है। भास कालिदास से प्राचीन हैं और उनके समय मे नाटककार का नाम न देने की प्रथा रही हो। इसके विपरीत यदि ये अर्वाचीन चाक्यारो की सृष्टि होती, तो वे इनकी प्रामाणिकता बताने के लिए सचेष्ट हो कर अपना नाम देते। अत नामाकन अभाव ही इस बात का सूचक है कि 'नाटक चक्र' के नाटक चाक्यारो द्वारा लिखित नहीं। ये अन्य किसी प्राचीन कवि की रचना है। केरल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो मे इन नाटको की अनुपलब्धि भी इन्हे भास-कृत होने मे विरोध उत्पन्न नही करती है। अत हर्ष के पश्चात् उत्तरी भारत मे राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई और यह भूखण्ड पुन छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गया। जन जीवन के अस्त-व्यस्त होने से ये नाटक केरल प्रदेश मे पहुँच गये। एक अन्य अनुमान यह भी है कि भास किसी राजा के अमात्य थे और किसी कारणवश इनका निर्वासन हो गया था। फलत. इनके साथ ही इनकी कृतियाँ दक्षिण मे पहुँच गयी।

प्राचीन ग्रन्थो मे प्राप्त उद्धरणो के अभाव का जहाँ तक प्रश्न है, वे अश लिपिकर्त्ताओ के प्रमाद से छूट गये हैं। 'नाटकदर्पण' मे प्राप्त पद्य की सगति 'स्वप्नवासवदत्तम्' के सन्दर्भ मे सहज रूप से हो जाती है।

यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिका शिलातलमवलोक्य वत्सराज —

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्मचेद शिलातलम्।
नून काचिदिहासीना मा दृष्ट्वा सहसा गता॥

इस पद्य का समावेश चतुर्थ अक मे हो जाता है। इसी प्रकार अभिनवगुप्त 'ध्वन्यालोक' की टीका मे उद्धृत पद्य भी मुद्रित 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे प्राप्त नहीं है।

सञ्चितपक्ष्मकपाटं नयनद्वार स्वरूपतऽनेन।
उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृह मे नृपतनुजा॥

इस पद्य की सगति भी 'स्वप्नवासवदत्तम्' के पचम अक मे घटित हो जाती है। सर्वानन्द ने 'अमरकोश टीका सर्वस्व' मे पद्मावती और उदयन के विवाह को अर्थ शृगार का उदाहरण माना है। इस तथ्य की पुष्टि 'स्वप्नवासवदत्तम्' की कथा-वस्तु मे हो जाती है।

सागरनन्दिन् ने अपने 'नाटकलक्षण राजकोश' मे 'स्वप्नवासवदत्तम्' की स्थापना मे एक उद्धरण दिया है, यह उद्धरण मुद्रित नाटक मे ज्यो का त्यो

तो नहीं मिलता पर उद्धरण के अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि सागर नन्दिन् ने मूल ग्रन्थ का सारांश अपने शब्दों में लिखा है। दोनों में विचार एक हैं, केवल भाषा में अन्तर है। इसी प्रकार भोजदेव ने अपने 'शृंगार प्रकाश' में और शारदा तनय ने 'भावप्रकाश' में जो कुछ लिखा है, वह भी केवल भाषा का परिवर्तन है। भाव और विचार मुद्रित 'स्वप्नवासवदत्तम्' से मिल जाते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि मुद्रित प्रति के उद्धरणो का रीति ग्रन्थों में न मिलना या भाषा परिवर्तन के साथ मिलना इन नाटकों की अप्रामाणिकता के हेतु नही है। पाण्डुलिपियों के अनेक पाठान्तर मिलते हैं तथा किसी पाण्डुलिपि में एकाध पद्य छूट भी जाता है। अतः उद्धरणकर्त्ताओं ने जिन प्रतियों से इन पद्यों को उद्धृत किया है, वे प्रतियाँ वर्तमान में उपलब्ध नहीं अथवा मुद्रण जिस प्रति के आधार पर हुआ है, उनसे भिन्न पाठवाली प्रति उद्धरणकर्त्ताओं को प्राप्त हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह मानना सर्वथा उपयुक्त है कि 'नाटकचक्र' के रचयिता चाक्यार नहीं हैं। चाक्यारों में इतनी उच्चकोटि की काव्य प्रतिभा, नाट्य-कौशल और समृद्ध भाषा सम्भव नहीं, जिससे वे 'नाटकचक्र' जैसी रचनाओं का प्रणयन कर सकें। दूसरी बात यह है यदि चाक्यारों में कर्त्तृत्व शक्ति होती तो वे 'नाटकचक्र' के अतिरिक्त अन्य नाटकों का भी सृजन करते। 'नाटकचक्र' के अतिरिक्त अन्य एक भी रचना उपलब्ध नहीं है, जिससे इनकी प्रतिभा स्वीकार की जाय। वास्तविक तथ्य है कि 'नाटकचक्र' के रचयिता 'चाक्यार' नहीं हैं। यह सम्भव हो सकता है कि इन्होंने रंगमच के लिए उपयुक्तता प्रदान करने के हेतु इन नाटकों में कुछ काट-छाँट की हो।

डॉ० वार्नेट ने इन नाटकों की रचना पाण्ड्य अथवा पल्लव राजाओं के राजकवियों द्वारा स्वीकृत की है। इनका समय सन् ६७५ ई० है। पल्लव द्वितीय नरसिंह वर्मन् या तेनमारन पाण्ड्य राजाओं ने राजसिंह की उपाधि से अपने को विभूषित किया और इन्हीं के राजकवियों ने 'नाटकचक्र' के तेरह नाटक लिखे। पर समालोचनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि इन राजाओं की राजसभा में ऐसे किसी प्रतिभाशाली कवि का उल्लेख नहीं मिलता, जो इस प्रकार के नाटकों की रचना कर सके। यदि इन राजाओं के सभा पण्डितों की रचना इन नाटकों को माना जाय तो प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन्होने अपने नाम को क्यों गुप्त रखा? जबकि कालिदास,

अश्वघोष, भवभूति आदि औदीच्य तथा शक्तिभद्र, महेन्द्रवर्मन आदि दाक्षिणात्य नाटककारो ने अपने नामो का उल्लेख किया है। अत नामोल्लेख के अभाव मे इन नाटको को पल्लव या पाण्ड्य दरबार के कवियो की रचना माना जा सकता है।

एक अन्य हेतु यह भी है कि यदि पल्लव या पाण्ड्य राजकवियो ने इन नाटको की रचना की है, तो उन्होंने अपनी राजधानी कांची या मदुरा का वर्णन क्यो नही किया। यत उन दिनो दक्षिण भारत मे 'नगरेषु कांची' अर्थात कांची आदर्श नगर माना जाता था। इसी प्रकार दक्षिण भारत की नदियां, पर्वत एव मन्दिर आदि का भी चित्रण नही आया है। गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों एव पाण्ड्य, चोल राजाओ मे महेन्द्र वर्मन, नरसिंह वर्मन आदि दक्षिण के अन्य राज्यो तथा उनके शासको का चित्रण न कर अग, अवन्ति, उत्तर कुरु, कम्बोज, काशी, कुरु जगल, कोशल, गान्धार, वंग, विदेह शूरसेन, सौराष्ट्र सौवर, अयोध्या, उज्जैन, काम्पिल्य, कौशाम्बी, पाटलिपुत्र, मथुरा, राजगृह, वैरान्त्य, विराटनगर, हस्तिनापुर, तथा वत्सराज उदयन, दर्शक, प्रद्योत कुन्तिभोज प्रभृति राजाओ और गगा, यमुना आदि नदियो का चित्रण क्यों किया? कवि को अपने स्थान के प्रति विशेष आकर्षण होता है, अतः वह अपनी कृति मे अपने समीपवर्ती प्रदेशो एव अन्य भौगोलिक उपकरणों का निर्देश करता है। दाक्षिणात्य स्थानो का वर्णन न आने से 'नाटकचक्र' के रचयिता को पल्लव या पाण्ड्य राज का राज कवि नही माना जा सकता है।[१]

---

१. It is also absurd to say that some court poet in the court of Narasimha Varman Pallava II or Tenmaran *Pandya* wrote these plays, simply basing it on the fact that two kings are known to have called them *Rajasimhas* and that the plays contain some Sanskrit words of southern origin, or Sanskrit words with southern meanings History does not know the name of any great Sanskrit poet in the courts of these two kings who could have written such exquisite plays like Svapnavasvadattam, Pratijna, Charudatta or Avimark.

—A. S. P. Ayyar · Bhasa, 1957, page 31.

डॉ० सुखयंकर[1] ने अपने लेख में डॉ० वार्नेट के विचारों की समीक्षा करते हुए लिखा है कि भास के नाटकों में प्रयुक्त भरत वाक्य में राजसिंह के पल्लव राजा का अनुमान लगाना युक्तिसंगत नहीं है। पण्डित रामावतार शर्मा ने प्रयाग से प्रकाशित होने वाली शारदा पत्रिका में वार्नेट का निराकरण कर उक्त मत का निरसन किया है। वेनर्जी शास्त्री, कोनो, एफ० डब्ल्यू० थामस और विण्टरनित्ज ने भी उक्त मत का खण्डन किया है। अतएव 'भास नाटकचक्र' के तेरह नाटकों के रचयिता न तो चाक्यार हैं और न पल्लव या पाण्ड्य राजकवियों ने ही इनका प्रणयन किया है।

तृतीय वर्ग या समन्वयकर्त्ता विद्वानों का मत

डॉ० सुखयंकर और प्रो० विण्टरनित्ज ने कतिपय रुचिओं के साथ इन रचनाओं को भास-कृत माना है। डॉ० सूर्यकान्त, आचार्य वलदेव उपाध्याय, प्रो० म० म० गणपति शास्त्री, डॉ० पुसालकर, प्रो० अय्यर आदि भी 'नाटक-चक्र' को भास की रचना मानते हैं। डॉ० थामस, डॉ० सहृद, डॉ० लिण्डन, वेनर्जी शास्त्री, प्रो० एस० एन० परांजपे, प्रो० देवधर और प्रो० जागीरदार केवल 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'पंचरात्रम्' को भास की रचना स्वीकार करते हैं। शेप नाटकों को नहीं। इन्होंने नाटकों को दो भागों में विभक्त किया है और विभिन्न काल की रचनाएँ स्वीकार किया है। डॉ० सुखयंकर के मतानुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रयिज्ञायौगन्धरायण' तो भास की रचनाएँ हैं, शेप रूपक अन्य किसी कवि के हैं। स्टेन्कोनो सभी नाटकों को भास-कृत मानते हैं। डॉ० वेलर ने 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'चारुदत्त', 'वालचरित' और 'अविमारक' को भास की रचनाएँ माना है। प्रो० ध्रुव 'अभिपेक', 'कर्णभार', 'ऊरुभंग', 'दूतवाक्य', 'दूतघटोत्कच' को छोड़ शेप सभी नाटकों को भास-कृत मानते हैं। डॉ० जोन्स्टन 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' को एक कवि की रचना निर्धारित करते हैं। प्रो० के० आर० पिसरोती केरलीय रचना के पोपण में इन नाटकों को 'कुटीअट्टम' भेद पर रचित स्वीकार करते हैं तथा स्थापना का प्रारम्भ ये केरल प्रभाव से मानते हैं। पर पिसरोती का यह प्रमाण मान्य नहीं है, यतः केरल रंगमंच का परिष्कार आठवीं शती के पश्चात् हुआ है। यह सत्य है कि 'स्वप्न' और

---

१. डॉ० सुखयंकर, स्टडीज इन भास, पूना १६४५, पृ० १४२

'प्रतिज्ञा' का प्रचार दक्षिण भारत मे प्राचीन काल से ही था। प्रो० पराजपे ने दक्षिणात्यो की प्रतिभा को भी इस योग्य नही घोषित किया है कि वे इस प्रकार का कोई नाटक लिख सकते हैं? यथार्थत. इन नाटको के रचयिता नाटककार भास ही हैं।[1]

अधिकाश विद्वानो का मत है कि भास के नाटको मे परिवर्द्धन-सशोधन कर किसी केरल कवि ने इन्हें रगमच के योग्य बनाया है। 'नाटकचक्र' पर हुए समीक्षण और परीक्षणो से यह स्पष्ट है कि इन नाटको का समस्त अश भास की रचना नही है। भास के उपलब्ध नाटकों को अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार किसी केरलीय कवि ने इन्हे पूर्ण किया है।[2]

स्वाभिमत

परस्पर विसवादी सिद्धान्तो और मान्यताओ के बीच यह माना जा सकता है कि इन नाटको के रचयिता न तो प्रामत्तविलास प्रहसन का रचयिता युवराज महेन्द्र विक्रम (सन् ७२० ई०) ही है और न आश्चर्यचूडामणि नाटक का रचयिता शीलभद्र ही। निश्चयत. ये नाटक अंशत. भास रचित हैं। इस विचार मे उन विद्वानो के मतों का भी समावेश हो जाता है, जो इन नाटको को भास के नाटकों का सक्षिप्त रूप मानते हैं।

भास की रचनाओ मे उनकी मौलिकता, संवैधानिकता, नाटकीय स्थलो, दृश्यो, शब्द प्रयोगो, नाटकीय अवस्थाओ, प्रयुक्त पद्यो, कल्पनाओं, छन्द प्रयोगो एव घटनाओ की समता के आधार पर यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि जिस कवि की रचना 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' हैं उसकी रचना 'नाटकचक्रम्' के अन्य नाटक भी हैं। अतः इन नाटको को प्रामाणिक मानकर इनका अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

---

१. Thomas : Plays of Bhasa, J. R A..5. 19-2, p. 79.
२. Bulletin of School of Oriental Studies—J R. A. S, 1919, page 233 and 1921. p. 587.

द्वितीय अध्याय

भास के रूपकों का विवेचन एवं अन्य रूपककारों पर उनका प्रभाव

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के वस्तु, नेता और रस तीन तत्व हैं। पाश्चात्य विचारकों ने कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, शैली और उद्देश्य तत्व माने हैं। रंगमंच भी अभिनेयता की दृष्टि से सातवें तत्व के रूप में स्वीकृत किया गया है। पर भारतीय इन तीनों तत्वों में ही पाश्चात्य सात तत्व अन्तर्भूत हो जाते हैं। नेता में चरित्र-चित्रण या शील वैचित्र्य का, कथोपकथन का वस्तु में, देशकाल, शैली और उद्देश्य का रस में समावेश हो जाता है।

इतिवृत्त नाट्य का शरीर है। जिस प्रकार किसी भी प्राणी को हम शरीर के विना जीवित नहीं देख सकते, उसी प्रकार इतिवृत्त के विना नाट्य रूप सम्मुख नहीं आ सकता। इतिवृत्त के आधिकारिक तथा प्रासंगिक, ये दो भेद बतलाये हैं। फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है, और उस फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है तथा उससे सम्बद्ध कथा आधिकारिक वस्तु कही जाती है। प्रासंगिक कथा 'आधिकारिक' के प्रयोजन के लिए होती है। प्रासंगिक कथा का उद्देश्य आधिकारिक वस्तु की फल निर्वहणता प्रतिपादित करना है। प्रासंगिक कथा के पताका और प्रकरी ये दो भेद हैं। जो प्रासंगिक कथा अनुवन्ध सहित होती है तथा रूपक में दूर तक चलता है, वह पताका है। संक्षिप्त कथाएँ प्रकरी कही जाती हैं। इन दोनों के नायक कार्य-सिद्धि में प्रधान नायक के सहायक होते हैं। इन दोनों के नायकों में अन्तर यह है कि 'पताका-नायक' का अपना भी कुछ स्वार्थ होता है तथा 'प्रकरी-नायक' का अपना कोई स्वार्थ नहीं होता।[१] 'पताका-नायक' अपने स्वार्थ की सिद्धि के साथ-साथ प्रधान-नायक के कार्य की सिद्धि में सहायक होता है। किन्तु 'प्रकरी-नायक' अपने किसी स्वार्थ की अपेक्षा न कर निरपेक्ष भाव से प्रधान नायक का सहायक होता है। पताका

---

१. स्वार्थ सिद्धियुक्तः परार्थसिद्धिपरः, परार्थसिद्धिपरश्च। पूर्वः पताका, अन्यः प्रकरीति। नाट्यदर्पण १।२८ की वृत्ति।

और प्रकरी नायक में दूसरा अन्तर चरित्र की व्यापकता की दृष्टि से है। 'प्रकरी नायक' का चरित्र बिल्कुल एक देशी और सीमित होता है। 'पताका-नायक' का चरित्र उसकी अपेक्षा पर्याप्त विशाल और अधिक देशव्यापी होता है। आशय यह है कि 'पताका-नायक' के साथ[1] स्वार्थ का सम्बन्ध रहता है, पर 'प्रकरी नायक' के साथ स्वार्थसिद्धि का प्रश्न नहीं रहता।

यहाँ यह स्मरणीय है कि नाटक की रचना पताका और प्रकरी के बिना भी हो सकती है। इनकी आवश्यकता उसी स्थिति में है, जब मुख्य नायक को सहायक की आवश्यकता होती है।

नाटक की समस्त अर्थ राशि को अङ्गाङ्गिभाव से परस्पर सम्बद्ध बनाना सन्धि पचक योजना है। नाटक के कथा भाग को पांच भागों में विभक्त कर सन्धि पचक के प्रयोग करने का नियमन किया गया है। श्री डॉ० सत्यव्रत सिंह ने लिखा है[2], "न सम्भवत नैयायिकों के प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय और निगमन रूप पचावयव परार्थानुमान वाक्य के आधार पर नाट्याचार्यों की पच-सन्धि कल्पना निकली है। समस्त नाटक एक प्रकार का परार्थानुमान वाक्य है। कला अनुकृति है और कला की अनुभूति एक अलौकिक अनुभूति है।"

नैयायिकों की दृष्टि में जो स्थान और महत्व प्रतिज्ञा का है, वहीं नाट्य-शास्त्रकारों की दृष्टि में मुख सन्धि का। साध्यनिर्देश को प्रतिज्ञा कहा जाता है और मुख सन्धि में भी नाटक का साध्य निर्दिष्ट होता है। मुख सन्धि का अभिप्राय उस रस भाव सुन्दर अर्थ राशि से है, जिससे किसी रूपक का उपक्रम किया जाता है।[3] प्रतिमुख सन्धि नाटक की वह अर्थ राशि है, जो मुखसन्धि में उपन्यस्त अर्थ राशि को युक्तियुक्त रूप से परिपुष्ट करती है। मुखसन्धि और प्रतिमुख सन्धि में वही सम्बन्ध है जो प्रतिज्ञा और हेतु में है। गर्भ सन्धि में नाटक की वह अर्थ राशि निहित रहती है, जिसकी योजना नाटककार के नाट्य-कला कौशल की सूचक है। नाटककार को 'गर्भ सन्धि' की रचना में नायक और प्रतिनायक के परस्पर द्वन्द्व और इस द्वन्द्व में आशा-निराशा के

---

१. सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, नाट्य सिद्धान्त, पृ० ४६
२ वही, पृ० ४५, ४६, ४७
३ प्रारम्भोपयोगी यावानर्थराशि: प्रसक्तानुप्रसक्तया विचित्रास्वादः आपतितः तावान् मुखसन्धिः तदभिधायी च रूपकैकदेश:। —अभिनव भारती, तृतीय भाग, पृ० २३

अन्तर्द्वन्द्व के प्रकाशन करने तथा नाटक के लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में पर्याप्त सतर्क होना पड़ता है। गर्भ सन्धि को उदाहरण अथवा दृष्टान्त का प्रतिरूप मान सकते हैं। विमर्श सन्धि में वह अर्थ राशि उपन्यस्त होती है, जिसमें नायक नियत फल प्राप्ति की अवस्था में चित्रित रहता है। इस सन्धि में आशा की प्रवलता में भी नैराश्य के आघात की सम्भावना दिखलायी जाती है। इसे उपनय वाक्य कहा जा सकता है। निर्वहण सन्धि में चारो सन्धियों की अर्थ-राशि समन्वित की जाती है। यह निगमन वाक्य के तुल्य है। सन्धि पंचक में अवस्था पंचक और अर्थ प्रकृति पंचक का समन्वय किया जाता है। आरम्भ और वीच का समन्वय मुखसन्धि, यत्न और विन्दु का सन्धान प्रतिमुख सन्धि, प्रप्त्याशा और पताका का सामंजस्य गर्भसन्धि, नियताप्ति और प्रकरी का सम्बन्ध विमर्श सन्धि एवं फलागम और कार्य का संयोजन निर्वहण सन्धि है।

अवस्थाओं में नायक के व्यक्तित्व का विकास दिखलाया जाता है। नायक का व्यक्तित्व ही उसके सहायकों अथवा विरोधियों के व्यक्तित्व का आधार होता है। नायक के व्यक्तित्व का विश्लेपण प्रारम्भ, प्रयत्न, प्रप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम की कल्पना द्वारा होता है।

प्रयोजन सिद्धि के हेतु रूप अर्थ प्रकृतियाँ पाँच मानी गयी हैं[१]—वीज, विंदु, पताका, प्रकरी और कार्य। इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से कथा-वस्तु में अवस्था, अर्थ प्रकृतियाँ, सन्धियाँ, सन्ध्यङ्ग, और वृत्तियों का विचार करना आवश्यक है भास के रूपकों की कथा-वस्तु का शास्त्रीय विचार इन सिद्धान्तों के प्रकाश में किया जायगा।

भास के नाटकों का क्रम

डॉ० पुसालकर ने शैली, संविधान, संवाद, पठ्यक्रम आदि के आधार पर इनकी रचनाओं को कालक्रमानुसार निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया है—

(१) दूतवाक्य (२) कर्णभार (३) दूतघटोत्कच (४) ऊरुभंग (५) मध्यम-व्यायोग (६) पंचरात्र (७) अभिषेक (८) वालचरित (९) अविमारक (१०) प्रतिमा (११) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (१२) स्वप्नवासवदत्तम और (१३) चारुदत्त।

१. दशरूपक, १।२२ तथा भरतनाट्यशास्त्र १९।२०-२१

इन तेरह नाटको के अतिरिक्त सन् १९४१ मे राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने 'यज्ञफल' नामक एक अन्य नाटक प्रकाशित किया और इसे भास-कृत बतलाया। इस नाटक का सम्पादन देवनागरी की दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर किया गया है। इस नाटक मे तप एव वैदिक यज्ञ की प्रशस्ति है। डॉ० पुसालकर ने इसे भी भास प्रणीत माना है, तथा इसकी प्रामाणिकता भी अन्य नाटको के समान स्वीकार की है।

सन् १९४२ मे जयपुर के प० गोपालदत्त शास्त्री भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना मे पधारे और उन्होंने डॉ० सुखथकर एव डॉ० पी० के० गोड से कहा कि यज्ञफल की रचना उन्होने स्वय की है। उन्होने यह भी कहा कि यज्ञफल पर उन्होने तीन टीकाएँ लिखी हैं, जिनमे उनके वास्तविक प्रणेता होने का पता लग जाता है। निर्णय के लिए यह विषय राजवैद्य कालिदास शास्त्री को सौंपा गया और उन्होंने इसे भास-कृत बताया।

डॉ० आर० एन० दाण्डेकर ने समस्त तथ्यो की छान-बीन कर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकाशन का भार गोपालदत्त शास्त्री को सौंपा गया और उन्होंने कपटाचार का प्रयोग कर भास की इस रचना को अपना बनाने का प्रयास किया है। हस्तलिखित प्रतियो के विशेषज्ञ डॉ० पी० के० गोड ने यह घोषित किया कि सन् १९७० ई० वाली प्रति वास्तविक है।

दाण्डेकर ने इस सम्बन्ध में दो अनुमान प्रस्तुत किये। प्रथम अनुमान यह है कि यह रचना अन्य रूपको के समान भास की है, अन्य लेखक की नही। उनका दूसरा अनुमान यह है कि सन् १९७० ई० के पहले के किसी कवि ने भास की शैली पर 'यज्ञफल' की रचना की है। गोपालदत्त शास्त्री इसके रचयिता किसी भी प्रकार नही हैं।

प्रो० माला ने 'यज्ञफल' का पुन विवेचन आरम्भ किया और उन्होने बतलाया कि इस नाटक में भास की नाटक शैली का अनुकरण किया गया है, पर इसमें अनेक नयी बातें भी हैं, जो भास के समय में प्रचलित नहीं थी। राम धनुष भग से पूर्व उद्यान मे सीता से मिलते हैं, राम को दुष्यन्त के समान हो शका है कि सीता कहीं किसी ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं। विश्वामित्र नगर तथा ग्राम्य जीवन की तुलना करते हैं तथा ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बतलाते हैं। अत. अधिक सम्भावना यही है कि यज्ञफल भासीय नाटको के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार ने रचा है।

इस नाटक के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'यज्ञफल' भास प्रणीत नहीं, किसी परवर्ती कवि ने भास के अनुकरण पर इस नाटक की रचना की

है और इस तथ्य की सूचना उसने 'भासानुकारी' कह कर दी है। निस्सन्देह इस नाटक की शैली वही है, जो भास के अन्य नाटकों की है। भाषा में भी पर्याप्त साम्य है। विषयों की एकता तथा नाट्य पद्धति में भी पर्याप्त समानता है। इतना होने पर भी इसे भास प्रणीत स्वीकार नहीं किया जा सकता। अन्ध श्रद्धालु बन कर जिस किसी रचना को भास-कृत मानना बुद्धिमानी नहीं है। अतएव हम कथा-वस्तु और शास्त्रीय विवेचन में 'नाटक चक्र' के नाटकों को ही ग्रहण करेंगे। डॉ० पुसालकर के अनन्तर विषय शैली, निरूपण-पद्धति एवं मौलिकता आदि के आधार पर भास की रचनाओं का क्रम निर्धारण श्री ए० एस० पी० अय्यर ने किया है। इनके मतानुसार निम्नांकित क्रम है :

(१) दूतघटोत्कच (२) कर्णभार (३) मध्यमव्यायोग (४) ऊरुभंग (५) दूतवाक्य (६) पंचरात्र (७) बालचरित (८) अभिषेक (९) प्रतिज्ञा (१०) अविमारक (११) प्रतिमा (१२) स्वप्नवासवदत्तम् एवं (१३) चारुदत्त।

दूतवाक्यम् : कथा-वस्तु, कथास्रोत, कल्पनायोग एवं शास्त्रीय विश्लेषण

कथा-वस्तु : सूत्रधार के मङ्गल श्लोक के पश्चात् ही दुर्योधन की आज्ञा सुनायी पड़ती है कि सभा-भवन का निर्माण हो रहा है। इसी समय कंचुकी आ कर कहता है कि सभी सभासदों के साथ महाराज दुर्योधन मंत्रणा करना चाहते हैं। दुर्योधन कंचुकी के साथ सभा-भवन में प्रवेश करता है। वह सभी आमन्त्रित राजाओं एवं सभासदों को सम्मानपूर्वक सभा-भवन में प्रवेश करता है और वह उन्हें सम्मानपूर्वक सभा-भवन में स्थान देता है। वह भीष्म-पितामह को सेनापति पद पर अभिषिक्त करने का निश्चय करता है। इसी समय कंचुकी दुर्योधन को पाण्डवों के शिविर से आने वाले भगवान् नारायण के आने की सूचना देता है। उसके द्वारा केशव को नारायण कहे जाने पर वह रुष्ट हो कर कहता है कि जिसे तुम नारायण कहते हो वह पाण्डवों का दूत केशव है। क्या कंस का सेवक दामोदर तुम्हारा नारायण हो सकता है? जरासंध के द्वारा जिसकी कीर्ति नष्ट कर दी गयी, वही तुम्हारा पुरुषोत्तम नारायण है। महाराजाओं की राजसभा में रहने वाले से सेवक का क्या ऐसा ही आचरण होता है? दुर्योधन की फटकार सुनकर कंचुकी घबड़ा कर उसके पैरों पर गिर पड़ता है। इस प्रकार वह अहंकारपूर्वक कंचुकी से श्रीकृष्ण को केशव कहलाता है। पश्चात् वह उपस्थित राजाओं से पूछता है कि कृष्ण के साथ हमारा कैसा व्यवहार होना चाहिये? इस पर उन लोगों के आदर-सूचक उत्तर को सुन कर दुर्योधन क्रुद्ध हो जाता है। वह आज्ञा देता है कि

केशव के आने पर यदि कोई भी अपने आसन से उठा तो उसे राज्य की ओर से कठोर दण्ड दिया जायगा। उसे स्वयं भी न उठना पड़े, इसलिए वह वादिरायण से द्रौपदी के चीर हरण का चित्र मँगाता है और उसी को देखने के बहाने से उठने से मुक्ति का उपाय निर्धारित करता है।

वह चित्रपट को ले कर उसमें चित्रित एक-एक पाण्डव की भाव-भंगिमा का वर्णन करता है। दुर्योधन की आज्ञा से कंचुकी श्रीकृष्ण को प्रवेश कराता है। श्रीकृष्ण को देखते ही सभी सामन्त घबड़ा जाते हैं, और कृष्ण की आज्ञा पाकर पुनः सभी यथास्थान बैठ जाते हैं। इस लीला को देख दुर्योधन स्वयं आश्चर्यचकित होता है और श्रीकृष्ण के प्रति आदर प्रदर्शित करने वालों को दण्डित करने की बात कहते ही अपने सिंहासन से गिर पड़ता है।

श्रीकृष्ण द्रौपदी के चित्र को देख कर व्यथित होते हैं और कहते हैं कि अपने ही कुल की वधुओं के अपमान से प्रसन्न होना दुर्योधन की मूर्खता है। औपचारिक कुशल समाचार के अनन्तर श्रीकृष्ण दुर्योधन से पाण्डवों का दाय-भाग देने की चर्चा करता है। इस पर दुर्योधन कहता है कि वन में पाण्डु को अभिशाप मिला था, जिसके कारण वे अपनी पत्नी से प्रसंग नहीं कर सकते थे। पाण्डवों का जन्म तो देवताओं की प्रेरणा से हुआ है। फिर इनको पिता के धन में भाग लेने का क्या अधिकार है? दुर्योधन के इस प्रश्न पर कृष्ण ने उत्तर दिया कि तुम्हारे भी पूर्व पुरुष विचित्रवीर्य अनेक विपत्तियों से क्षीण हो चुके थे और व्यास से अम्बिका का जब प्रसंग हुआ तो धृतराष्ट्र का जन्म हुआ। इस प्रकार धृतराष्ट्र भी अपने पिता के धन के अधिकारी कैसे हुए? कृष्ण की इस स्पष्टवादिता ने दुर्योधन को और अधिक बौखला दिया। और वह कहने लगा—"तुम एक दूत के रूप में आ कर दूत की मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हो। राज्य भिक्षा में प्राप्त करने की वस्तु नहीं है और न वह भिक्षुक को दिया ही जा सकता है। अतः यदि पाण्डवों में शक्ति है तो वे युद्ध-क्षेत्र में आ कर राज्यश्री का वरण करें।"

दुर्योधन के इस उत्तर से कृष्ण बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि "तुम्हारे इस प्रकार के व्यवहार के कारण तुम्हारा यह कुरुवंश शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।" दुर्योधन कृष्ण के इस स्पष्ट उत्तर को सुन कर अत्यधिक उत्तेजित हो उठा और इन्हें बन्दी बनाने के लिए दुःशासन आदि को आज्ञा दी। कृष्ण उसकी इस धृष्टता का उत्तर अपने माया रूप से देते हैं और वे क्रुद्ध हो कर सुदर्शनादि शस्त्रास्त्रों को बुलाते हैं। सुदर्शन के समझाने पर पुनः प्रकृतिस्थ हो जाते हैं और अन्य शस्त्रों को एक-एक कर वापस भेज देते हैं। बाद में

श्रीकृष्ण भी पाण्डवों के शिविर में लौट जाने की इच्छा करते हैं और पीछे से वृद्ध धृतराष्ट्र उन्हें रोक कर उनके पैरों पर गिर कर अपने पुत्रों की त्रुटियों के लिए क्षमायाचना करते हैं। तदनन्तर भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

कथास्रोत एवं उसमें कल्पना का मिश्रण

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का मूलस्रोत महाभारतीय आख्यान है। इस आख्यान के अनुसार उत्तरा-अभिमन्यु के परिणय के पश्चात् कौरव-पाण्डवों में समझौते का पूरा प्रयास किया गया तथा पाण्डवों का प्राप्य दिलाने की पूरी चेष्टा की गयी, पर यह प्रयत्न सफल न हो सका। अन्ततः धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने यह भार भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर छोड़ा और उन्हीं से सन्धि सम्पन्न करा देने की प्रार्थना की। युधिष्ठिर की प्रार्थना स्वीकार कर जनार्दन हस्तिनापुर में दौत्य कर्म के लिए उपस्थित हुए।

जब धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण का दूत के रूप में आने का समाचार मिला तो उन्होंने राजसी स्वागत का पूरा प्रबन्ध किया। प्रथम श्रीकृष्ण कुन्ती के पास गये, पश्चात् दुर्योधन के यहाँ। अनेक राजाओं ने कृष्ण का स्वागत किया और उन्होंने दुर्योधन के द्वारा दिये गये प्रीतिभोज में भाग लेने से इन्कार कर दिया। वहाँ से वे विदुर के घर गये और यहीं पर उन्होंने रात्रि व्यतीत की। विदुर के यहाँ श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ कि कौरव युद्ध की पूर्ण तैयारी कर चुके हैं, अतः वे लोग श्रीकृष्ण की बात स्वीकार नहीं करेंगे। दूसरे दिन विदुर को साथ लेकर वे राज-सभा में उपस्थित हुए। जब सभी सभासद यथास्थान स्थित हो गये तब उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि वे पाण्डवों की ओर से कौरवों से शान्तिवार्ता करने आये हैं। धृतराष्ट्र की सलाह पर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से पाण्डवों का दाय भाग देने के लिए जोर दिया, किन्तु दुर्योधन अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ और वह जौ भर भूमि देने को भी तैयार नहीं हुआ। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन द्वारा पाण्डवों पर लगाये गये आक्षेपों का खण्डन किया। इस पर दुर्योधन क्रुद्ध हो कर अपने भाइयों और राजकुमारों के साथ राज-सभा छोड़ कर चलने लगा। किसी प्रकार विदुर की प्रार्थना पर वह पुनः सभा भवन में आया। माता गान्धारी ने भी कृष्ण की बात स्वीकार कर लेने को कहा, पर उसने किसी की भी बात नहीं मानी। उसने शकुनि, कर्ण, दुश्शासन आदि को श्रीकृष्ण को बन्दी बना लेने का आदेश दिया। पिता धृतराष्ट्र ने बड़े प्रयत्न से इस निन्द्य कर्म को रोका। श्रीकृष्ण ने यहाँ विराट

रूप दिखलाया, जिससे द्रोण, भीष्म, विदुर, संजय आदि आश्चर्यचकित हो गये हैं। धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के चरणों पर मस्तक रख कर क्षमायाचना की। वे पुनः कुन्ती के पास गये और उन्होंने पाण्डवों को सन्धि वार्ता की विफलता बतलायी।[1]

महाभारत के उक्त कथानक में नाटककार भास ने अपनी कल्पना का पर्याप्त मिश्रण किया है। महाभारत के धृतराष्ट्र के स्थान पर दुर्योधन को राजा के रूप में अवतरित किया है। महाभारत में श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का कोई क्रियात्मक प्रयत्न दिखलायी नहीं पड़ता है। दुर्योधन अपनी माता गान्धारी की बात अनसुनी कर के सभा-भवन का त्याग कर देता है। रंगमंच पर शरीरधारी शस्त्रों की अवतारणा कवि की मौलिक उद्भावना है। महाभारत में दुर्योधन और श्रीकृष्ण का लम्बा कथोपकथन पाया जाता है, जो एक प्रकार से नीरस है। इस नाटक का कथोपकथन सरस और ग्राह्य है।

महाभारत में दुर्योधन और शकुनि श्रीकृष्ण को सभा में बुलाने के लिए जाते हैं। श्रीकृष्ण रथ पर सवार हो कर आते हैं। कौरव सभा के सभी सदस्य उनका स्वागत-सत्कार करते हैं, उन्हें उच्चासन दिया जाता है और उनके बैठने पर ही सभी लोग बैठते हैं। पर नाटककार को महाभारत की यह स्थिति रुचिकर नहीं है। जब कृष्ण सभा में प्रवेश करते हैं, तो राजागण घबड़ा जाते हैं। सभासदों की इस अवस्था को देख कर दुर्योधन उन्हें दण्ड स्मरण रखने की बात कहता है, पर भीष्मादि सभी सामन्त खड़े हो जाते हैं। सभासदों की यह स्थिति दुर्योधन को कष्टप्रद होती है, अतः वह बार-बार दण्ड स्मरण को दुहराता है तथा आवेश में आ कर डाँटता है, पर वह स्वयं ही सिंहासन से गिर पड़ता है। वह श्रीकृष्ण की अवहेलना करता हुआ कहता है—'दूत यह आसन है, बैठ जाओ'। कवि का यह चित्रण कृष्ण की दैवी शक्ति को अभिव्यक्त करता है।

महाभारत में धृतराष्ट्र की आज्ञा से श्रीकृष्ण के आदर-सत्कार के लिए मार्ग में विश्राम स्थान आदि की व्यवस्था की जाती है, पर इस रूपक में दुर्योधन इतना भी सहनशील नहीं कि वह उनके प्रति शिष्ट शब्दों का भी प्रयोग कर सके।

दुर्योधन और कंचुकी का वार्तालाप भी नाटककार द्वारा की गयी, मौलिक उद्भावना है, इसमें दुर्योधन के चरित्र की दृढ़ता और वीरता प्रकट

---

१. महाभारत, वैवाहिक पर्व, पंचम अध्याय, चतुर्थ स्कन्ध।
महाभारत, उद्योग पर्व, ८६वाँ अध्याय, १-१५ पद्य।

होती हैं। इस प्रकार द्रौपदी के केश और वस्त्रापकर्षण वाले चित्र का उल्लेख भी महाभारत में नहीं है। यह भी कवि द्वारा कल्पित है।

महाभारत में दुर्योधन को भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्र आदि सभी समझाते हैं और पाण्डवों से साथ सन्धि कर लेने के लिए अनुराध करते हैं, किन्तु प्रस्तुत नाटक में भास ने इस कथांश को परिवर्तित रूप में ग्रहण किया है। इसमें युधिष्ठिर का सन्देश दुर्योधन के नाम है। युधिष्ठिर के दाय भाग की प्रतिक्रिया इस रूपक में महाभारत से भिन्न रूप में प्रस्तुत की गयी है। दुर्योधन कहता है कि पाण्डव लोग वस्तुतः पाण्डु के पुत्र नहीं हैं, अतः उन्हें पिता के राज्य का भागीदार कैसे माना जा सकता है? श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाने का प्रयास करते हैं, पर वह कहता है—"राज्य माँगा नहीं जाता, वह शक्ति से अर्जित किया जाता है और न यह किसी दीन-हीन को ही दिया जाता है। अतः यदि पाण्डव राज्य चाहते हैं, तो युद्ध करके उसे प्राप्त करें, अन्यथा चुप-चाप शान्ति से किसी आश्रम में निवास करें।"[१] दुर्योधन श्रीकृष्ण को भी भला-बुरा कहने लगता है। वह कहता है—"जब तुम्हें अपने पिता के साले कंस पर जरा भी दया नहीं आयी, तब नित प्रति अपकार करने वाले इन पाण्डवों पर मुझे कैसे दया आ सकती है।"[२] कृष्ण द्वारा उत्तर प्राप्त होने पर वह पुनः अशिष्ट वचनों का प्रयोग करता है। इस प्रकार वार्त्तालाप को नाटककार ने सजीव बनाया है।

महाभारत मे गान्धारी दुर्योधन को समझाती है पर दुर्योधन उनकी बात नहीं मानता है। वह श्रीकृष्ण को कैद करना चाहता है। षड्यन्त्र रचा जाता है, पर उसका सत्यकी के द्वारा भण्डाफोड़ होता है। श्रीकृष्ण अपने बन्दी बनाने की बात ज्ञात कर दुर्योधन से कहते हैं—"रे निर्बुद्धि तू मोहवश मुझे अकेला मान रहा है और इसीलिए मेरा तिरस्कार कर मुझे बन्दी बनाना चाह रहा है। यह तेरा अज्ञान है।" श्रीकृष्ण इस प्रकार कह कर अपना विश्वरूप प्रकट करते हैं, जिससे भयभीत हो दुर्योधन बेहोश हो जाता है। नाटककार भास ने इस स्थल को परिवर्तित कर नाटकीयता प्रदान की है। यह परिवर्तन नाटकीय वातावरण की योजना और उसे गति प्रदान करते हुए चरम बिन्दु की ओर अग्रसर करता है। नाटक में श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का कोई षड्-यन्त्र नहीं किया गया है। किन्तु दुर्योधन दुःशासन और शकुनि को असमर्थ

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा, वाराणसी संस्करण, पद्य २४।
२. वही, पद्य २६।

समझ कर स्वय ही श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न करता है। इसके पश्चात् नाटककार ने सुदर्शन की अवतरणा की है। यह कवि कल्पित है। इस कल्पना ने नाटक को कोई विशेष गति प्रदान नही की है।

भास के अपने इस रूपक का अन्त भी नाटकीयता से परिपूर्ण है। जब कृष्ण जाने लगते है तब उन्हें धृतराष्ट्र की आवाज सुनायी पडती है, जो उनसे रुकने की प्रार्थना करता है। जब धृतराष्ट्र आ कर अपने पुत्रो के अपराध के कारण श्रीकृष्ण के चरणो पर गिर पडते हैं तो कृष्ण उन्हे आदर-पूर्वक उठाते हैं। धृतराष्ट्र द्वारा प्रदत्त अर्घ्य पात्र ग्रहण कर श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं "तुम्हारा क्या कल्याण करूँ ?" धृतराष्ट्र द्वारा यह कहने पर कि आप मुझ पर प्रसन्न है, इससे अधिक और मुझ क्या कल्याण चाहिये, नारायण उन्हे आज्ञा दे कर विदा करते हैं। इस प्रकार नाटककार ने महाभारत के आख्यान मे अपनी कल्पना का पर्याप्त मिश्रण किया है।

शास्त्रीय विश्लेषण

इस नाटक की पृष्ठभूमि सभा-भवन का निर्माण, दुर्योधन की युद्ध के विषय मे अपने सभासदों को सलाह एव सेनापति का चुनाव है। अतः सक्षेप मे यह माना जा सकता है कि सूत्रधार रूपक के बीज की स्थापना करता है।

इस रूपक मे पाँचो अवस्थाओ का योग है। सूत्रधार के चले जाने के पश्चात् कचुकी आता है और वह दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर के सन्धि-प्रस्ताव का निषेध किये जाने का सकेत करता है। मन्त्रणा शब्द द्वारा दुर्योधन की उत्सुकता स्पष्ट हो जाती है। अतः यहाँ प्रारम्भ नामक अवस्था है।

इसके पश्चात् सभी सभासदो के यथास्थान बैठ जाने पर दुर्योधन का सेना-पति के लिए प्रश्न करना—"उच्यताम्-अस्ति ममैकादशाक्षौहिणी बलसमुदायः। अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हति।"[१] तदनन्तर शकुनि द्वारा भीष्म पितामह को सेनापति पद पर अभिषिक्त करने की बात सुन कर उसका अनुमोदन करना और भीष्म पितामह को सेनापति पद पर प्रतिष्ठित करना आदि दुर्योधन के कार्य प्रयत्न नामक अवस्था के अन्तर्गत हैं।

भगवान् कृष्ण दूत रूप मे दुर्योधन की सभा मे प्रविष्ट होते हैं। उनके प्रवेश करते ही सभी सभासद राजागण दुर्योधन की आज्ञा के विरुद्ध घबडा कर अपने-अपने आसनो से खडे हो जाते हैं। कृष्ण उन्हें आश्वासन दे कर बैठा

---

१. दूतवाक्य, चौखम्बा, सस्करण १९५८ ई०, पृ० ५।

देते हैं। राजाओं की घबराहट देख कर दुर्योधन चेतावनी देता है और स्वयं बैठा रहता है। कृष्ण उससे पूछते हैं—"भोः सुयोधन ! किमास्से !"[१] कृष्ण के पूछते ही दुर्योधन आसन से गिर पड़ता है और मन-ही-मन कहता है—"अहो बहुमायोऽयं दूतः।"[२] इस स्थल पर 'प्राप्त्याशा' नामक अवस्था है।

भगवान् कृष्ण दुर्योधन को 'साम' से अपने वश में करने की चेष्टा करते हैं। पर जब वह यह नहीं मानता तब कटु शब्दों का प्रयोग करते हैं। बात बढ़ जाती है। कृष्ण को दुर्योधन की इच्छा का निश्चय हो जाता है और वे जाने लगते हैं। जाते हुए भगवान् कृष्ण को दुर्योधन बाँधने की चेष्टा करते हुए कहता है—"भवतु अहमेव पाशैर्बध्नामि"[३]। दुर्योधन की इस बात से सन्धि-वार्ता के भंग होने की निश्चित सूचना मिल जाती है। अतः यहाँ पर नियताप्ति अवस्था है।

कृष्ण के विश्वरूप दिखा कर जाते समय धृतराष्ट्र का वे आर्त स्वर सुनते हैं और वे रुक जाते हैं। धृतराष्ट्र कृष्ण के चरणों पर गिर कर दुर्योधन के कार्यों के प्रति क्षमा माँगता है। सन्धि-वार्ता पूर्णरूप से भंग हो जाती है। वासुदेव, धृतराष्ट्र को "गच्छतुभवान्पुनर्दर्शनाय"[४] कह कर भग्नमनोरथ वापस लौट आते हैं। यही फलागम की स्थिति है।

एकांकी होने के कारण रूपक की कथा भी अल्प है। अतः इसमें पाँचों अर्थ प्रकृतियों का प्रयोग नहीं हो पाया है। इसमें बीज, बिन्दु और कार्य इन तीन अर्थ प्रकृतियों का ही समावेश हुआ है। सूत्रधार के रंगमंच पर से चले जाने के पश्चात् कंचुकी का पदार्पण होता है और वह कहता है—"भो भोः प्रतिहाराधिकृताः। महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति—अद्यसर्वपार्थिवैः सह मन्त्रयितुमिच्छामि। तदाहूयन्तां सर्वे राजान इति।"[५] इस स्थल पर बीज नामक अर्थ प्रकृति है।

दुर्योधन कृष्ण की बात को नहीं मानता और उनका अपमान करते हुए सभा से उठ कर ही चला जाता है। कृष्ण भी दुर्योधन की इस चेष्टा से अत्यन्त कुपित हो जाते हैं और दुर्योधन को मारने की इच्छा से सुदर्शन का स्मरण करते

१. दूतवाक्य, चौखम्बा, संस्करण १९५८ ई०, पृ० १९
२. वही, पृ० १९
३. वही, पृ० ३३
४. वही, पृ० ४७
५. वही, पृ० ३

है। इसके बाद सुदर्शन का आना और श्रीकृष्ण को स्मरण दिला कर पुनः उसका वापस लौट जाना, अन्य अस्त्रो का आना और सुदर्शन का उन्हें समझा-कर वापस कर देना, इत्यादि सम्पूर्ण कथाश का प्रस्तुत रूपक में कोई महत्वपूर्ण स्थान नही है। इस कथाश के निकाल देने पर भी रूपक मे किसी प्रकार की कमी नही आती, क्योंकि उक्त कथानक कथावस्तु मे अवरोध ही उत्पन्न करते हैं गत्यात्मकता नही। इन कथानको से कथावस्तु मे विच्छिन्नता आ गयी है। कृष्ण सोचते हैं—"यावदहमपि पाण्डवशिबिरमेव यास्यामि"।[1] और इसके साथ ही नेपथ्य से धृतराष्ट्र की आवाज—"न खलु न खलु गन्तव्यम"[2], से पुन. अवि-च्छिन्न होती है और कथावस्तु की एक धारा निर्मित हो जाती है। अत. यहाँ पर विन्दु नामक अर्थ प्रकृति है। श्रीकृष्ण पाण्डवो की जिस सन्धि-वार्ता को लेकर दुर्योधन की राजसभा मे उपस्थित हुए हैं, उस सन्धि-वार्ता का भग होना ही इस रूपक की 'कार्य' नामक, अर्थ प्रकृति है जिसकी सूचना धृतराष्ट्र के निम्नलिखित कथन मे मिलती है—

मम पुत्रापराधात्, तु शार्ङ्ग पाणे ! तवाधुना।
एतन्मे त्रिदशाध्यक्ष ! पादयो. पतित शिर.॥[3]

इस प्रकार इस रूपक मे अवस्था और अर्थ प्रकृतियों का नियोजन विद्य-मान है।

सन्धियो की योजना

यह एक अक का रूपक है। दुर्योधन अपने सहायक वीरो को एकत्र कर अक्षोहिणी सेना के सेनापति का निर्वाचन करने का अभिलाषी है। भृत्यवर्ग को मन्त्रशाला की सुसज्जा के हेतु आदेश देता है। यही से रूपक का आरम्भ होता है और इसी स्थल पर मुख-सन्धि का प्रारम्भ रूप बीज-वपन होता है।

मुख सन्धि के उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, समाधान, उद्भेद, करण और उद्भेद नामक सन्ध्यग भी प्राप्य है। कचुकी दुर्योधन की आज्ञा का सदेश इस प्रकार देता है कि आज राजा अपने सभी साथी वीर सामन्तो से मन्त्रणा करना चाहता है। अतः मन्त्रणा-गृह मे गमन करने का कथन बीज का उपक्षेप अग

---

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा सस्करण, १९५८ ई०, पृ० ४५।
२. वही, पृ० ४६
३. वही, १।२५ पृ० ४६

है। दुर्योधन का वीर सामन्तों को बैठने का आदेश देना परिकर अंग है। कंचुकी के द्वारा कृष्ण का दूत रूप में आगमन सम्बन्धी वृत्तान्त का कथन बीजन्यास के बाहुल्य रूप 'परिकर' की सिद्धि का विधायक होने से 'परिन्यास' है। दुर्योधन ने कृष्ण को कृष्णमति तथा युधिष्ठिर के वचनों को स्त्रियों के समान कोमल कहा है। यहाँ कृष्ण के दूत रूप में आगमन रूपी बीज का व्यवस्थापन होने से 'समाधान' नामक सन्ध्यंग है। वासुदेव का अहंकारी दुर्योधन के समीप दूत रूप में आने के विचार से बीज का उद्‌भेद होता है अतः इस सन्दर्भ में मुख-सन्धि का उद्‌भेद नामक सन्ध्यंग है। वासुदेव पाण्डवों के दाय भाग को दिलाने के लिए युक्तियों का प्रयोग करते हैं। वे अपने वचनों के अनुरूप ही कार्य के आरम्भ को प्रकट करते हैं। अतः यहाँ करण नामक सन्ध्यंग है। दुर्योधन का कृष्ण के प्रति यह वचन—"हे दूत तुम राज्य व्यवहार नहीं जानते।" कार्य में प्रोत्साहन प्रदान करने के कारण 'भेद' नामक सन्ध्यंग है।

कृष्ण तथा दुर्योधन का वार्तालाप जिसमें दुर्योधन की उक्ति—कि तुमने कंस के प्रति क्या नहीं किया तथा वासुदेव का अपनी माता के कष्ट का वर्णन करने से वास्तविक लक्ष्य अलक्षित हो जाता है। अतः यहाँ प्रतिमुख सन्धि है। इस सन्धि के परिसर्प, नर्म, प्रगमन, पुष्प और वज्र ये पाँच सन्ध्यंग उपलब्ध होते हैं। वासुदेव का कथन 'अपने बन्धुओं के साथ सम्बन्ध ही श्रेयस्कर होता है' से पुनः दूत-कार्य आरम्भ हो जाने के कारण यहाँ 'परिसर्प' सन्ध्यंग है। वासुदेव तथा दुर्योधन के वार्तालाप में देशकाल के स्थिति विषयक वार्तालाप का, परिहास होने से 'नर्म' सन्ध्यंग घटित होता है। वासुदेव का दुर्योधन से पाण्डवों के उपकार एवं शौर्य का वर्णन 'प्रगमन' नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत है। वासुदेव का दुर्योधन को पाण्डवों के लिए आधा राज्य देने का कथन विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीज का उद्‌घाटन होने से 'पुष्प' नामक सन्ध्यंग है। वासुदेव का दुर्योधन के लिए कुरु-कुल कलंक, निर्लज्ज आदि का कथन, वज्र नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत है।

नाटककार वासुदेव तथा दुर्योधन के वार्तालाप में श्लेषयुक्त वचनों का प्रयोग करते हुए दुर्योधन के "आः अभाष्यस्त्वम्"[१] कथन द्वारा कथा का उपसंहार होने से 'निर्वहण' सन्धि है। इस सन्धि के 'सन्धि-निषेध', 'ग्रथन', 'भाषण', 'निर्णय', 'प्रसाद', 'वराप्ति' और 'प्रशस्ति' नामक सन्ध्यंग भी प्राप्य

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा, वाराणसी, सन् १९५८ ई०, पृ० ३१

है। वासुदेव के दुर्योधन से तेरे कारण वंश का नाश होगा, इस कथन में पुनः दूत कार्य रूपी बीज की उद्भावना होने से सन्धि नामक सन्ध्यंग है। वासुदेव दुर्योधन के 'अहमेव पाशैर्बध्नामि' के अनन्तर दूत-कार्य की पुन खोज करने लगते हैं। अतएव यहाँ 'विबोध' नामक सन्ध्यंग है। वासुदेव पाण्डवों के कार्य को स्वय ही सिद्ध करने की इच्छा करते हैं। इस सन्दर्भ में नाटककार ने अपने समस्त कार्य को एक स्थान पर समाहृत कर दिया है। अतः यहाँ 'ग्रथन' नामक निर्वहण अंग है। वासुदेव का सुदर्शन से समय पर आने का वार्तालाप 'भाषण' नामक सन्ध्यंग है। वासुदेव का पृथ्वी के भार को दूर करने हेतु 'आगमन' आदि पर विचार करने के कारण यहाँ 'निर्णय' नामक सन्ध्यंग है। वासुदेव का सुदर्शन से 'सुयोधन हतक' तथा सुदर्शन का वासुदेव से 'प्रसीदतु भगवान् नारायण.' कहने में 'प्रसाद' नामक सन्ध्यंग है। धृतराष्ट्र द्वारा अर्घ्य से प्रसन्न हो कर वासुदेव का 'सर्वं गृहणाम' 'किन्ते भूय प्रियमुपकरोमि' कथन में वराप्ति नामक सन्ध्यंग है। भास राजसिंह के एकच्छत्र राज्य की कामना भरतवाक्य में करते हैं, जिसे 'प्रशस्ति' नामक सन्ध्यंग कहा जायगा।

इस प्रकार इस व्यायोग में एक अंक और मुख, प्रतिमुख एवं निर्वहण ये तीन सन्धियाँ प्राप्त हैं। इस नाटक में 'सात्वति' नामक वृत्ति है।

प्रस्तुत रूपक में प्रसिद्ध पौराणिक कथावस्तु है और गर्भ एवं विमर्श सन्धियों का अभाव है। पुरुष पात्रों का बाहुल्य है तथा स्त्री पात्रों का भी अभाव है।

इस शास्त्रीय विश्लेषण के प्रकाश में इस रूपक को व्यायोग माना जायगा। इसके नायक के सम्बन्ध में भी मतभेद है। टी० गणपति शास्त्री ने इस रूपक का प्रधान रस धर्मवीर माना है और नायक श्रीकृष्ण को। वीरों के धर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर, आदि भेद बताये हैं और इसका स्थायी भाव उत्साह को माना है। सम्भवत. धर्मवीर को आश्रय न मान कर रस मानने सम्बन्धी भ्रम साहित्य दर्पणकार के कारण हुआ होगा, जिसमें उन्होंने चार प्रकार के वीरों के आधार पर वीर रस के चार भेद माने हैं।

प्रस्तुत रचना में भी श्रीकृष्ण को धर्मवीर मान लेने पर भी नायक नहीं माना जा सकता। अतः रूपक के सभी भेदों में नायक को ही फल प्राप्ति होती है। यहाँ फल प्राप्ति 'दुर्योधन' को हुई है न कि श्रीकृष्ण को। अतएव हमारी दृष्टि में इस रूपक का नायक दुर्योधन है।

व्यायोग के लक्षण घटित होने से 'दूतवाक्यम' को व्यायोग मानना समीचीन है।

कर्णभार : विवेचन

कथावस्तु

नान्दी के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता है। वह कुछ कहना चाहता है कि नेपथ्य से आवाज सुनायी पड़ती है—'भो-भो निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाङ्गेश्वराय' कर्ण से निवेदन कीजिये। इसके अनन्तर भट आता है, जो कर्ण से यह निवेदन करना चाहता है कि अपराजेय पाण्डवों की सेना अर्जुन को आगे कर बढ़ रही है और उनके सैनिकों का सिंहनाद सुनायी पड़ रहा है। पाण्डवों के युद्ध-आह्वान को सुन कर दुर्योधन भी युद्ध के हेतु प्रस्थान करता है। दुर्योधन को उद्दीप्त, तेजयुक्त, पराक्रमशाली और बली कर्ण दिखलायी पड़ता है। कर्ण अपने सारथी शल्य से अर्जुन के समक्ष रथ ले कर चलने को कहता है। पर न जाने क्यों उसके मन में उद्विग्नता है। वह सोचता है कि युद्ध के समय में यह क्लीवता का भाव मेरे मन में कहाँ से आ गया। मेरा पराक्रम तो यमराज तुल्य है। समराङ्गण में दोनों ओर अस्त्र-शस्त्र का प्रहार कर सैनिकों का ध्वंस करता था। कष्ट की बात है कि कुन्ती से उत्पन्न होने पर भी मेरी 'राधेय' संज्ञा हो गयी। युधिष्ठिर तो मेरे 'कनीयस्' बन्धु हैं। चिर-प्रतीक्षित युद्ध का दिन आ गया। पर मेरा मन घबड़ा रहा है और मेरे अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं।

इस प्रकार चिन्तन करता हुआ कर्ण भद्र राज शल्य से अपनी अस्त्र प्राप्ति का वृत्तान्त निवेदित करता है। वह कहता है—

"मैं अस्त्र प्राप्ति की अभिलाषा से दिव्य तेजस्वी, पिंगल जटाधारी, क्षत्रियान्तक भगवान् परशुराम के पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम कर चुपचाप खड़ा हो गया। मुझे योग्य शिष्य के रूप में खड़ा देख कर परशुराम ने कहा—'तुम कौन हो और किस उद्देश्य से यहाँ आये हो?' मैंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'मैं सम्पूर्ण अस्त्रों का शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से आप के समक्ष आया हूँ।' इस पर परशुराम ने उत्तर दिया—'वत्स, मैं केवल ब्राह्मणों को ही अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देता हूँ। क्षत्रियों को नहीं।' इस पर मैंने उत्तर दिया—'मैं क्षत्रिय नहीं हूँ, ब्राह्मण हूँ।' मेरे इस निवेदन पर उन्होंने मुझे अपना शिष्य बना लिया और 'अस्त्र-शस्त्र' की शिक्षा आरम्भ की। कुछ समय बीतने पर गुरुजी के साथ समित्कुशाहरण के लिए मैं गया। गुरुदेव परिभ्रमण से श्रान्त हो जाने के कारण मेरी गोद में सिर रख कर सो गये। इसी समय देव दुर्विपाक से वज्रमुख नामक कीड़ा ने मेरी दोनों जाँघों को काट लिया, जिससे

रुधिर धारा प्लावित हो गयी। मुझे अपार वेदना हुई कि गुरुदेव जाग न जायें, इस भय से मैं उस पीडा को सहन करता रहा। रुधिर से आर्द्र होते ही वे जाग गये और इस दृश्य को देख कर आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने तत्काल कहा कि तुम ब्राह्मण नही हो, क्षत्रिय हो। मेरे साथ तुमने धोखा किया है। फलत क्रोधाविष्ट हो उन्होने अभिशाप दिया—'समय पडने पर तुम्हारी यह अस्त्र-शिक्षा व्यर्थ हो जायगी और तुम्हारा ज्ञान काम नहीं आयेगा।''

शल्य से इस प्रकार अस्त्र प्राप्ति की कथा कह कर अस्त्रो का परीक्षण करता है, पर अस्त्र कुंठित हो जाते हैं और वे अपना प्रभाव नही दिखलाते। अस्त्रो के अतिरिक्त अश्व भी पुन-पुन. स्खलित होने लगे एव हाथी दैन्य सूचित करने लगे। शल्य इस विपन्नावस्था को देख कर पश्चाताप करता है। कर्ण उसे समझाता हुआ कहता है—विजय प्राप्त करने पर यश मिलेगा और मरने पर स्वर्ग। ये दोनो ही ससार में प्रशसित हैं। युद्ध मे विजय और वीर-गति की प्राप्ति सदैव श्लाघनीय होती है। मैं कठिन युद्ध स्थल मे प्रविष्ट हो कर यशस्वी युधिष्ठर को बाँध लूँगा और अर्जुन को आज अपने बाणो का चमत्कार दिखला दूँगा। इस प्रकार कर्ण शल्य को धैर्य दे कर रथारूढ होता है और शल्य रथ को युद्ध भूमि मे ले जाता है।

इसी समय नेपथ्य मे भिक्षा याचना की आवाज आती है—'कर्ण मैं तुमसे बहुत बडी भिक्षा माँगता हूँ।' इस आवाज को सुन कर कर्ण आकर्षित होता है और कहता है—'इस विप्र को बुलाओ।' वह स्वय उस विप्र को बुलाता है। ब्राह्मणरूपधारी इन्द्र उपस्थित होता है। इन्द्र मेघो से कहता है कि सूर्य को ढँक दो। वह कर्ण के समीप आ कर कहता है कि मैं बडी भिक्षा माँगता हूँ। कर्ण प्रसन्न हो कर विप्र को प्रणाम करता है। तब इन्द्र मन मे सोचता है कि प्रत्याभिवादन मे क्या कहूँ ? यदि आयुष्मान् कहता हूँ तो यह दीर्घायु हो जायगा और इसे कोई मार नहीं सकेगा और यदि कुछ नही कहता हूँ तो यह मुझे मूर्ख समझेगा। अतएव वह कहता है—'कर्ण तुम्हारा यश सूर्य, चन्द्र, हिमालय और सागर के समान अटल रहे।' कर्ण कहता है—'आपने मुझे दीर्घायु होने का आशीर्वाद क्यो नहीं दिया। अथवा यही शोभन है, भगवन् मैं आपको अधिक क्या कहूँ।' इन्द्र अपने उसी वाक्य को—'महत्तरा भिक्षा याचे' को दुहराते हैं। कर्ण उन्हें गाय, अश्व, गज, स्वर्ण आदि दिये जाने का अनुरोध करता है, पर विप्र उसके इस दान को स्वीकार नही करता तथा उक्त वस्तुओ की अनित्यता का प्रतिपादन कर निषेध करता है। कर्ण स्वर्ग देने की बात कहता है, किन्तु स्वर्ग प्राप्त करना भी अस्वीकार कर देता है। वह समस्त

भूमण्डल को जीत कर देने की वात कहता है, वस्तु विप्रवेशधारी इन्द्र उसे भी निष्प्रयोजन बतलाता है। इसके पश्चात् वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल देने को कहता है, पर विप्र उसे भी अस्वीकार कर देता है, अन्ततोगत्वा वह अपना सिर देने को कहता है, पर इन्द्र उसका भी निषेध कर देता है। उन सभी वस्तुओं को अस्वीकार करते देख कर्ण कहता है—'ब्राह्मण देव ! यह कवच मेरे जन्म के साथ ही रक्षा के लिए उत्पन्न हुआ है यह सहस्रों देव-दानवों से भी अभेद्य है यदि आप इसे पसन्द करें तो कुण्डलों के साथ इसे आपको दे दूं।'

कर्ण की वात सुन कर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपनी स्वीकृति प्रदान की। जब कर्ण उनको देने लगा तो शल्य ने उसको रोका। इस पर कर्ण ने कहा--'शल्य समय के साथ सीखी हुई विद्याएँ विस्मृत हो जाती हैं, गहरी जड़वाले वृक्ष भी गिर पड़ते हैं, समयानुसार जलाशय भी सूख जाते हैं, किन्तु दान की हुई वस्तु और आहुति दिया हुआ द्रव्य कभी नष्ट नहीं होता। अतएव हे ब्राह्मण उन्हें ग्रहण करो।' इस प्रकार कह कर वह शरीर से काट कर कवच-कुण्डल ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को दे देता है। इन्द्र उन्हें लेकर चला जाता है।

इन्द्र के चले जाने पर शल्य कर्ण से कहता है कि 'हे कर्ण इन्द्र ने तुम्हें ठग लिया।' इस पर कर्ण उत्तर देता है कि वस्तुतः वह नहीं, इन्द्र ही ठगे गये हैं। अतः अनेक यज्ञों से तृप्त इन्द्र आज मेरे द्वारा उपकृत हुए। इसके पश्चात् ब्राह्मण वेशधारी एक देवदूत आता है। वह कहता है कि कवच-कुण्डल लेने पर इन्द्र को पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने यह विमला नामक अमोघ शक्ति दी है। इसके द्वारा आप पाण्डवों में से किसी एक का वध कर सकते हैं। इस पर कर्ण उत्तर देता है कि वह दिये हुए दान का प्रतिग्रहण नहीं करता। देवदूत कहता है कि इसे आप ब्राह्मण का वचन समझ कर ग्रहण कर लीजिये।

ब्राह्मणाज्ञा समझ कर कर्ण उसे ले लेता है और देवदूत कहता है कि जब इसे आप स्मरण कीजियेगा, आप के पास चली आयेगी। तदनन्तर देवदूत चला जाता है।

कर्ण और शल्य रथारूढ़ होते हैं। उन्हें प्रलयकालीन ध्वनि के समान गम्भीर घोषकारी कृष्ण की शंख ध्वनि सुनायी पड़ती है और दोनों अर्जुन के रथ की ओर प्रस्थान करते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना का समन्वय

इस नाटक की कथावस्तु 'महाभारत' से ग्रहण की गयी है। 'महाभारत'

आदि पर्व के ६७वें अध्याय में इन्द्र को कवच कुण्डल काट कर देने का वृत्तान्त आया है, जिससे इसकी सज्ञा वेकीर्त्तन रखी गयी है। इसका परिवर्धित रूप वन पर्व अध्याय ३००, ३०१ और ३०२ मे मिलता है। शान्तिपर्व के तृतीय अध्याय मे कर्ण को परशुराम द्वारा शाप प्राप्ति का वृत्तान्त अंकित है। नाटककार भास ने 'कर्णभार' की कथावस्तु का स्रोत महाभारत के उक्त पर्व और अध्याय से ग्रहण किया है। विभिन्न स्थलो पर बिखरी हुई कथा को संकलित कर नाटकोपयोगी बनाया है।

महाभारत मे कुण्डलाहरण के प्रसग के अनुसार कर्ण क यह नियम था कि वह मध्याह्न मे जल के मध्य खडा हो कर अशुमाली भगवान् सूर्य को अर्घ्य दे कर ब्राह्मणो को दान करता था। इस अवसर पर उसके पास कोई वस्तु नहीं थी जो ब्राह्मणो के लिए आदेय हो। इन्द्र उसी समय ब्राह्मण बन कर उपस्थित हुआ और कहने लगा 'भिक्षा दो'। राधानन्दन कर्ण ने उसका स्वागत किया।[1]

कविवर भास ने उपर्युक्त कथाश को अपनी श्लिष्ट कल्पना द्वारा रूपक के अनुकूल बनाया है। रूपक मे कर्ण जल मे स्थित नही, अपितु वह रथ मे आरूढ हो युद्ध क्षेत्र मे अर्जुन को ढूंढ रहा है। वह अपने सारथी शल्य से कहता है—जहाँ पर अर्जुन है वहाँ पर रथ को ले चलो। शल्य और कर्ण आपस में वार्तालाप करते हैं। कर्ण शल्य को अपने शाप के विषय मे बतलाता है।[2] शल्य को दु खी देखकर कर्ण उसे युद्ध के गुणो को बतलाता है। वह कहता है—दुख करना व्यर्थ है, युद्ध मे तो व्यक्ति लाभ मे ही रहता है। मरने पर स्वर्ग प्राप्त करता है और जीत होने पर यश एव राज्य लाभ होता है।[3]

शल्य को समझाने के बाद कर्ण पुन उनसे रथ को अर्जुन के समीप ले जाने को कहते हैं। इतने मे ही नेपथ्य से आवाज आती है 'महत्तर भिक्षा दीजिये।' इस आवाज से कर्ण प्रभावित होता है और विप्र को बुलवाने की आज्ञा देता है। वह विप्र वेशधारी इन्द्र का स्वागत करता है। इन्द्र अपने आपके पहचाने जाने के भय से मेघो को सूर्य को आच्छादित कर देने की आज्ञा देता है।

महाभारत मे इस तरह का कथाश नही है। इन्द्र का मेघो को आज्ञा देना और भिक्षा के साथ 'महत्तर' विशेषण का प्रयोग करना—ये दोनो बातें ही

१. महाभारत, वन पर्व, अध्याय १०९, पद्य २३, २४, एव २५
२. कर्णभारम्, दशम् पद्य
३. वही, बारहवाँ पद्य

कवि कल्पित हैं। कवि का महत्तर पद का प्रयोग सार्थक है। इसके द्वारा कवि ने कवच और कुण्डलों को ही इन्द्र दान में माँगना चाहता है, तथ्य का स्पष्ट संकेत किया है। यतः कवच और कुण्डलों से युक्त कर्ण को देवता भी नहीं मार सकते थे। कवच और कुण्डलों के विषय में विस्तार से न कह कर 'महत्तर' विशेषण के द्वारा ही भास ने रूपक में बहुत बड़े अर्थ को गर्भित कर दिया है।

महाभारत की मूल कथा में इन्द्र का ब्राह्मण भिक्षुक के रूप में आना और कर्ण से कवच-कुण्डल का दान माँगना बहुत पहले ही वर्णित है जबकि पाण्डव वनवास कर रहे हैं, किन्तु कवि ने इस घटना का संयोजन युद्ध को जाते हुए सैनिक वातावरण में उपस्थित कर्ण के साथ किया है, जिससे प्रभावात्मकता उत्पन्न होती है और एकाएक इस घटना के घटित होने पर कुछ आश्चर्य और कुतूहल भी होता है। कर्ण के प्रति समाज के हृदय में सहानुभूति व्यक्त हुए विना नहीं रह सकती। करुणा की इतनी गम्भीर अनुभूति शायद ही अन्यत्र मिलेगी।

'महाभारत' में सूर्य पहले ही कर्ण को स्वप्न में आ कर चेतावनी दे देता है कि इन्द्र के कपट जाल में मत पड़ना। पर कवि ने इस कथांश को निकाल दिया है, अतः इससे उस घटना का प्रभाव और कौतूहल को जागृत करने की क्षमता नष्ट हो गयी है। वहुत सम्भव है कि उक्त कथानक के रहने से समय, घटना और क्रिया की अन्विति में वाधा पड़ती। अतः कवि का यह परिवर्तन नाटकीय दृष्टि से वहुत ही उपयुक्त है।

महाभारत की कथा में कर्ण का इन्द्र से शक्ति की स्वयं याचना करना वर्णित है। पर भास ने अपने चरित नायक को जिस उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है उसके लिए सम्भवतः यह प्रतिदान की इच्छा शोभन नहीं प्रतीत होती। अतः वह अपने कवच-कुंण्डल निस्पृह ले कर दान करता है। और, देवदूत के कहने पर भी उसके वदले में इन्द्र प्रदत्त शक्ति को नहीं ग्रहण करना चाहता। अन्त में स्वयं देवदूत ब्राह्मण वचन के पालनार्थ शक्ति को स्वीकार करने के लिए कहता है। कर्ण इस अनुरोध को ठुकरा नहीं पाता और ब्राह्मण की आज्ञा स्वीकार कर लेता है।

नाटक के शल्य में महाभारत के शल्य की अपेक्षा पर्याप्त अन्तर है। नाटक का शल्य एक मृदुभाषी, शुभचिन्तक और कर्ण का सहायक-सा प्रतीत होता है। उसका रूप उचित परामर्शदाता सारथी की भूमिका में निखर आता है। महाभारत का शल्य क्रूर, निर्दय, कर्ण का विरोधी और वात-वात में कर्ण को कटु वचन से आघात पहुँचाने वाला है।

प्रस्तुत रूपक मे यह बडी कौतूहल और आश्चर्य की बात है कि विप्र वेशधारी इन्द्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार यह केवल भृत्य या अशिक्षित वर्ग या स्त्रियो की व्यवहार की भाषा है। एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण द्वारा प्राकृत-भाषा का प्रयोग अस्वाभाविक एव शकास्पद है।

डॉ० जे० के० भट्ट ने लिखा है "कविवर भास ने कर्ण की कथा मे कुछ नवीन बातें जोड कर उसे पूर्ण बनाया है। ये बातें कवि कल्पना-प्रसूत हैं।" इसी क्रम मे वे कर्ण के उस रूप का वर्णन करते हैं जिसे कवि ने अपने नाटक के लिए चुना है। कर्ण सर्वप्रथम जब रगमच पर आता है तो उसका अन्तस् अनेक बाधाओं एव तज्जन्य चिन्ताओ से ग्रस्त हो जाता है। यह स्थिति अन्तम् तक बनी रह जाती है और इसी मानसिक अवस्था मे वह अपने अस्त्र शिक्षण एव परशुराम के अभिशाप की बात भी शल्य से कह डालता है।[1]

महाभारत और कर्णभार की कथा-वस्तु के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि नाटककार भास ने अपनी कल्पना द्वारा इस कथानक को पूर्णतया परिमार्जित, सशोधित एव परिवर्द्धित कर रोचकता प्रदान की है। कवि की मौलिक कल्पना शक्ति सर्वत्र प्राप्त होती है। रूपक मे आद्यन्त कर्ण की उदात्त भावना और दानशूरता व्याप्त है।

शास्त्रीय विश्लेषण

भास के अन्य रूपकों के समान इस रूपक मे भी प्रस्तावना मे ही नाटकीय तत्व की योजना की है। यहाँ स्थापना शब्द का प्रयोग न कर 'प्रस्तावना' शब्द का प्रयोग किया गया है। सूत्रधार जैसे ही मगल-श्लोक का पाठ करने के पश्चात् कुछ कहने के लिए तत्पर होता है कि उसका ध्यान कोलाहल की ओर आकृष्ट हो जाता है। इस कोलाहल का कारण ज्ञात कर वह सामाजिको को बतलाता है कि घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया है, जिसकी सूचना दुर्योधन के भृत्य कर्ण को दे रहे हैं। इस प्रकार रूपक के आगे आनेवाली घटना की सूचना दे कर सूत्रधार चला जाता है। यहीं पर प्रस्तावना समाप्त हो जाती

---

१. The Problem of Karnabhar, The Journal of the University of Bombay, Nov. 1947, Vol. XVI, New Series part III.

है। सामाजिकों को संकेत मिल जाता है कि रंगमंच पर कर्ण का पदार्पण हो रहा है।

'कर्णभार' में चार अवस्थाएँ प्राप्त हैं—

(१) प्रारम्भ, (२) प्रयत्न, (३) नियताप्ति और (४) फलागम।

कर्ण के मुख से परशुराम के दिये गये अभिशाप को सुन कर शल्य अत्यन्त दुखी हो जाता है तब कर्ण उसे समझाता हुआ कहता है—

'शल्यराज ! अलमलं विषादेन।
हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे।'[1]

कर्ण वैभव की अपेक्षा यश को श्रेष्ठ मानता है और वह रूपक के कार्य-यश की प्राप्ति उत्सुकता व्यक्त करता है। अतः यहाँ पर 'प्रारम्भ' नामक अवस्था है।

जब इन्द्र कर्ण से भिक्षा याचना करता है तब कर्ण भिक्षा में देने योग्य अनेक वस्तुओं का उल्लेख करता है, पर इन्द्र को कवच-कुण्डल ही अभीष्ट है। जब इन्द्र सभी वस्तुओं के लेने से अस्वीकार कर देता है तब कर्ण उन्हें कवच और कुण्डल देने की इच्छा प्रकट करते हुए कहता है—

'अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा
देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्त्रैः।
देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात्॥'[2]

उपर्युक्त सन्दर्भ में कर्ण यश प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील दृष्टिगोचर हो रहा है, अतः 'प्रयत्न' नामक दूसरी अवस्था है।

कर्ण के कवच-कुण्डलों के दान की बात को इन्द्र स्वयं स्वीकार कर लेता है। कर्ण उन वस्तुओं को इन्द्र को देता है। शल्य उसे ऐसा करने से रोकता है। तब कर्ण इस कार्य से मिलने वाले यश के प्रति निश्चित हो कर कहता है—

---

१. कर्णभारम्, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६०, पद्य १२
२. वही, पद्य २१

'शिक्षा क्षय गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपा ।
जल जलस्थानगत च शुष्यति
हुत च दत्त च तथैव तिष्ठति ॥'[१]

यहाँ नियताप्ति अवस्था है । इस रूपक मे फलागम नामक अवस्था शब्दतः उपात न हो कर अर्थतः आक्षिप्त है । यह फलागम है दान से प्राप्त यश ।

इस रूपक मे दो ही अर्थ प्रकृतियाँ हैं—(१) बीज (२) कार्य ।

ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र कर्ण से भिक्षा याचना करने आता है । कर्ण के अभिवादन के प्रत्यभिवादन मे इन्द्र कहता है—

'भो कण्ण ! सुय्ये विअ, चन्दे विअ, हिमवन्ते विअ, सागले विअ, चिट्ठदु दे जसो ।'[२]

इस स्थल पर बीज नामक अर्थ प्रकृति है । इस रूपक का कार्य कवच-कुण्डलों के दान से प्राप्त यश है ।

प्रस्तुत रूपक मे दो ही सन्धियाँ हैं—(१) मुख और (२) निर्वहण । मुख सन्धि मे उपन्यास, परिकर, परिन्यास, विलोभन, विधान परिभावना, उद्भेद, करण, भे और समाधान ये सन्ध्यंग भी प्राप्त हैं ।

सूत्रधार के चले जाने के पश्चात् एक भट्ट रंगमच पर आता है और वह सूत्रधार की बात को दुहराता है । यह भट्ट कर्ण को शल्य के रथ में बैठा हुआ और युद्ध-क्षेत्र की ओर उदास मुख जाता हुआ बताता है । भट्ट के चले जाने के पश्चात् कर्ण आता है । कर्ण शल्य से रथ को युद्ध भूमि के उस भाग मे ले चलने के लिए कहता है जहाँ पर अर्जुन है । कर्ण अर्जुन को ढूंढते हुए अपने शस्त्रो की निष्फलता का कारण शल्य को बतलाता है । इसी समय इन्द्र ब्राह्मण का छद्म वेष धारण कर भिक्षा माँगने आता है । कर्ण उसका अभिवादन करता है । इन्द्र दीर्घायुष्य का आशीर्वाद न दे कर अमर यश प्राप्ति का आशीर्वाद देता है । नाटककार ने इस कथन के द्वारा रूपक के बीज की सूचना दी है । इस रूपक का कार्य कवच-कुण्डलो के दान से प्राप्त यश है । इसी यश रूपी कार्य का बीज इन्द्र का यह आशीर्वाद है । इस स्थल से ही मुख सन्धि प्रारम्भ

१. कर्णभारम्, चौखम्भा संस्करण, सन् १९६०, पद्य २२
२. वही, सोलहवें पद्य के पश्चात् का गद्यांश, पृ० १७

हो जाती है, जो कवच-कुण्डलों के दान के पश्चात् इन्द्र के चले जाने के बाद बनी रहती है।

इन्द्र के चले जाने पर शल्य कर्ण से कहता है—

'भो अंगराज ! वञ्चितः खलु भवान् ।'[1]

इस स्थल से निर्वहण सन्धि का प्रारम्भ होता है, जो रूपक के अन्त तक चलती है। यद्यपि प्रस्तुत रूपक में इन्द्र कर्ण को देवदूत द्वारा विमला नाम की शक्ति प्रदान करते हैं, परन्तु उसे मुख्य कार्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि नायक का अभीष्ट तत्व यश प्राप्ति है। वह इसी यश-प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयास करता है। उसकी दृष्टि में संसार की अन्य वस्तुएँ विनश्वर हैं केवल यश ही एक नित्य है। नाटककार ने निर्वहण सन्धि में विबोध, ग्रन्थन, परि-भाषा, निर्णय, प्रसाद और प्रशस्ति नामक सन्ध्यंग का भी समावेश किया है।

रूपक में एक अंक है, दो सन्धियाँ हैं, दो अर्थ प्रकृतियाँ हैं और चार कार्य अवस्थाएँ है। रूपक भारती वृत्ति में लिखा गया है। इसे कीथ ने व्यायोग माना है।[2] पर उन्होंने व्यायोग की सिद्धि में प्रमाण उपस्थित नहीं किये हैं। हमारी दृष्टि में शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर इसे उत्सृष्टिकांक माना जा सकता है। व्यायोग की कथावस्तु प्रसिद्ध होती है, नायक प्रसिद्ध एवं उद्धत्त होता है, तीन सन्धियाँ होती हैं, गर्भ और विमर्श को छोड़ कर युद्ध का वर्णन रहता है, जो स्त्री निमित्तक नहीं होता। इसमें एक अंक होता है, एक दिन की कथावस्तु वर्णित रहती है और पुरुष पात्रों की संख्या अधिक होती हैं। इसका प्रधान रस रौद्र या वीर होता है। व्यायोग के इन लक्षणों में से कति-पय लक्षण जैसे इतिवृत्त की प्रसिद्धता एक और युद्ध का वर्णन उत्सृष्टिकांक में भी निहित रहते हैं। अतएव कर्णभारम् में करुण रस का प्राधान्य होने से इसे व्यायोग नहीं माना जा सकता। इसमें दो सन्धियाँ तो हैं ही, पर मुख्य रस करुण है और नायक सामान्य व्यक्ति है। अतएव कर्णभारम् को 'उत्सृष्टिकांक' मानना अधिक तर्कसंगत है।

दूतघटोत्कच : विवेचन

इस नाटक का नामकरण हिडम्बापुत्र घटोत्कच के दौत्य कर्म से सम्बद्ध है। घटोत्कच श्रीकृष्ण का दूत बन कर जाता है और कौरव सभा में सन्देश

१. कर्णभारम्, चौखम्बा संस्करण, १९६०, पृ० २४

२. Sanskrit Drama : Its Origin & Development, p. 89.

देता है। इस रूपक मे घटोत्कच का दौत्य ही सबसे प्रधान वस्तु है और उसी को प्रदर्शित करना नाटककार को अभीष्ट है।

कथावस्तु

नान्दीपाठ के अनन्तर सूत्रधार आता है और रूपक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए विष्णु से प्रार्थना करता है, तदनन्तर वह नाटक की सूचना देने को तत्पर होता है। इसी बीच उसे कुछ शब्द सुनायी पडते हैं, जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि संशप्तक सेना के द्वारा अर्जुन के रोक लिए जाने पर भीष्म के वध से क्षुब्ध कौरवो ने अवसर प्राप्त कर अभिमन्यु का वध कर दिया है। अर्जुन की प्रतिहिंसा की भावना से भयभीत हो राजागण अपने-अपने शिविर मे प्रविष्ट हो जाते हैं। अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार सुनाने के लिए भट धृतराष्ट्र के समीप जाता है और कहता है कि पिता अर्जुन के समान पराक्रम प्रदर्शित करने वाले बालक अभिमन्यु को कौरव वीरो ने मार डाला। इस समाचार को सुन कर धृतराष्ट्र स्तब्ध हो जाते हैं। पास मे बैठी हुई गान्धारी कहती है—'महाराज! कुल नाश का समय उपस्थित हो गया।'

धृतराष्ट्र स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं कि जब पुत्र शोक से सन्तप्त अर्जुन क्रुद्ध हो कर धनुष ग्रहण करेगा और युद्ध के लिए सन्नद्ध होगा तो समस्त विश्व का विनाश कर देगा। जब धृतराष्ट्र को 'जयव्रात' से यह मालूम होता है कि अभिमन्यु वध का एकमात्र कारण जयद्रथ है, तो उसे और भी क्षोभ होता है। अभिमन्यु की नृशंस हत्या का विवरण सुन कर धृतराष्ट्र करुणा विभोर हो जाते हैं।

इसी समय दु:शासन और शकुनि के साथ वहाँ दुर्योधन प्रवेश करता है। दुर्योधन दु:शासन से कहता है कि अभिमन्यु के वध से शत्रुओ का गर्व ध्वस्त हो गया। दुर्योधन धृतराष्ट्र को प्रणाम करता है। पर धृतराष्ट्र प्रणाम का उत्तर नहीं देते, जिससे कौरवो को ग्लानि होती है। वे शंकाकुल हो कर धृतराष्ट्र के मौन का कारण पूछते हैं और वे उन सबकी नि:शेष आयु की ओर संकेत करते हैं। दुर्योधन अभिमन्यु के वध को उचित समझता है, पर धृतराष्ट्र इसे बहुत बडी भूल मानते हैं। दुर्योधन कहता है कि जिन पाण्डवो ने वृद्ध भीष्म पितामह को छल से मार डाला, उन्हें ऐसी ही यातना देनी चाहिये। धृतराष्ट्र ने चेतावनी देते हुए कहा—'पुत्र वध से दु:खित अर्जुन तुम लोगो का विनाश कर डालेगा।' दुर्योधन पूछता है कि अर्जुन कौन है? धृतराष्ट्र उसके अतुलनीय पराक्रम की ओर संकेत करते हुए इन्द्र, अग्नि और गन्धर्व से इस प्रश्न को पूछने के लिए कहते हैं।

दुर्योधन अपने पक्ष में अर्जुन के समान पराक्रमशाली कर्ण का उल्लेख करता है, जो कि उसकी सेना के सचालक हैं। धृतराष्ट्र जिस समय अर्जुन के अमोघ अस्त्रों का वर्णन करते हैं, उसी समय एकाएक भूकम्प होता है और अवगत होता है कि अर्जुन की प्रतिज्ञा के कारण ही यह भूकम्प और उल्कापात हुआ है। दुर्योधन पूछता है कि यदि यह प्रतिज्ञा पूर्ण न हुई तो क्या होगा ? और उत्तर में अर्जुन का दिवसावसान के साथ-ही-साथ अग्नि में प्रवेश सुन कर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न होता है तथा अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ति मे व्याघात उपस्थित करने का पूरा प्रयत्न करता है।

इसी समय श्रीकृष्ण का सन्देश ले कर दूत रूप में घटोत्कच उपस्थित होता है और अपना परिचय स्वयं ही धृतराष्ट्र को दे कर अभिवादन करता है तथा अभिमन्यु के निधन से सन्तप्त कृष्ण का सन्देश कहता है।

दुर्योधन कहता है—कृष्ण कोई राजा नहीं है, राजा से भिन्न सामान्य व्यक्ति का सन्देश राजसभा में नहीं सुना जा सकता। जब घटोत्कच कृष्ण को राजराजेश्वरत्व प्रतिपादित करता है तो कौरव उसे निशाचर मान कर उसकी अवहेलना करते हैं। वह अपने को क्रूर कौरवों की अपेक्षा अधिक दयावान और सहृदय सिद्ध करता है।

'धर्म का आचरण करो, स्वजनों की उपेक्षा न करो, जो कुछ तुम्हारे मन में अभीप्ट हो सभी इस पृथ्वी पर कर डालो, अतः अर्जुन रूपी यमराज तुम्हारे पास सूर्य की किरणों के साथ अनुकूल उपदेश के समान आयेंगे।'

कथावस्तु का स्रोत और कल्पना-मिश्रण

महाभारत के विप्लवकारी संग्राम में कौरवों ने एक शाखा और निकाली, जिसके परिणामस्वरूप अर्जुन को कुरुक्षेत्र छोड़ कर दक्षिण प्रदेश में संशप्तक राजाओं से युद्ध करने के लिए जाना पड़ा। अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण भी चले गये, अतः पाण्डव निःसहाय से हो गये। कौरवों ने सुअवसर प्राप्त कर व्यूह की रचना की। द्रोणाचार्य ने बड़े कौशल से पद्म व्यूह बनाया। पाण्डवों को व्यूह भेदन में असमर्थ जान कर उन्हें ललकारा। धर्मराज युधिष्ठिर ने इस विकट व्यूह को भेदने के हेतु अभिमन्यु को भेजा और स्वयं चारों पाण्डव उसके पीछे जाने को तैयार हुए। इस व्यूह में दुर्योधन, दुःशासन, द्रोणाचार्य और कर्ण आदि भी सम्मिलित थे, पर अभिमन्यु की निपुणता ने सब को आश्चर्यचकित कर दिया।

कौरव सोचने लगे कि यदि इस समय किसी प्रकार पाण्डव भी आ जायें

तो हमारी पराजय सुनिश्चित है। अत. वर प्राप्त जयद्रथ को उन लोगो ने पाण्डवो को रोकने के लिए भेजा। उसने वरदान के प्रभाव से वैसा ही किया। अभिमन्यु के पराक्रम और रण कौशल ने सभी महारथियो को आतंकित कर दिया। इसी बीच किसी प्रकार छल-बल से अभिमन्यु को धनुष और रथ से हीन करके अनेक योद्धाओ ने उसे घेर लिया। इस स्थिति मे भी उसने कई योद्धाओं का वध किया। सभी कौरवों ने एक साथ उस पर अस्त्र प्रहार किया और अन्त मे जयद्रथ ने उसे मार डाला।

यह एक अत्यन्त हृदयद्रावक दृश्य था। युधिष्ठिर और उनके पक्ष के लोग इस समाचार को सुन कर बड़े दु खित हुए। सन्ध्या काल जब श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन सशप्तक योद्धाओ को जीत कर लौटे तो किसी भी पाण्डव का उनसे इस दु खद समाचार को कहने का साहस नही हुआ। अन्त मे युधिष्ठिर ने ही पाण्डवो को रोका जाना और अभिमन्यु का वध किया जाना, आदि बतलाया। अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार सुन कर अर्जुन अधिक क्रोधित हो उठे और उन्होने उसी समय प्रतिज्ञा की कि जिसने अभिमन्यु का वध किया है, उसे वे सूर्यास्त के पूर्व ही अवश्य मार डालेंगे।

महाभारत के 'अभिमन्यु वध पर्व' में अभिमन्यु की यह कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है। अर्जुन की प्रतिज्ञा का भी उल्लेख महाभारत के द्रोणपर्व में वर्णित है। 'घटोत्कच' का दौत्यकर्म कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा का फल है। नाटक का अधिकांश भाग कवि-कल्पित है। यदि यह कहा जाय कि भास ने महाभारत से भावना मात्र ली है, तो किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं है। अभिमन्यु वध के बाद रूपक में धृतराष्ट्र, गान्धारी एव दुश्शला के विलाप और शोक का वर्णन महाभारत मे नहीं आया है। इसी प्रकार दुर्योधन, शकुनि आदि का धृतराष्ट्र के पास जाना और धृतराष्ट्र का उन्हे धिक्कारना एव सम्भावित कुल विनाश का सकेत करना आदि भी नाटककार की कल्पना है।

महाभारत मे जब जयद्रथ को अर्जुन की प्रतिज्ञा का पता चलता है, तो वह बहुत भयभीत होता है। दुर्योधन और द्रोणाचार्य उसे आश्वस्त करते हैं, पर प्रस्तुत रूपक में जयद्रथ को पात्र रूप में रगमच पर प्रस्तुत नही किया है। जब भट कहता है कि प्रतिज्ञा पूरी न होने पर अर्जुन गाण्डीव के साथ चितारोहण करेंगे, तो दुर्योधन प्रसन्न हो जाता है, धृतराष्ट्र दुर्योधन से जयद्रथ के बचाव के विषय मे पूछते हैं, तो वह कहता है कि अक्षौहिणी सेना से उसे छिपा दूंगा। इस पर धृतराष्ट्र कहते हैं कि कृष्ण जिनके साथी हैं,

ऐसे अर्जुन के वाण जयद्रथ को ढूंढ़ ही लेंगे, चाहे वह आकाश में रहे अथवा पाताल में।

उपर्युक्त कथानक भी कवि कल्पना प्रसूत है; घटोत्कच का कृष्ण दूत के रूप में आना और दुर्योधन, दुःशासन एवं शकुनि को समुचित उत्तर देना और धृतराष्ट्र को प्रभावित करना आदि तथ्य महाभारत में उपलब्ध नहीं हैं। अतएव इस रूपक की प्रमुख घटना कवि द्वारा कल्पित है। महाभारत में 'अभिमन्यु वध' वृत्तान्त उपलब्ध होता है, पर नाटक में घटोत्कच के दौत्यकर्म की प्रधानता होने से उक्त वृत्तान्त गौण हो जाता है और मुख्य या आधिकारिक कथा दूतकर्म सम्बन्धी है। अतः इस नाटक के अधिकांश कथानक कल्पना प्रसूत हैं।

शास्त्रीय विश्लेषण

अन्य रूपकों के समान इस रूपक के प्रारम्भ में नाटककार भास ने 'स्थापना' नाटकीय तत्व की योजना की है। सूत्रधार मंगल श्लोक का पाठ करने के पश्चात् जैसे ही कुछ कहने के लिए तत्पर होता है कि उसे कोलाहल सुनायी पड़ता है। इस कोलाहल का कारण ज्ञात कर के सूत्रधार सामाजिकों को वतलाता है—"धनञ्जय अर्थात् अर्जुन संशप्त सेना से युद्ध करने के लिए गये हुए हैं, अतः उनके अभाव का अनुचित लाभ उठा कर भीष्म पितामह के वध के कारण क्षुब्ध धृतराष्ट्र के पुत्रों के द्वारा अभिमन्यु का वध किया गया है' और इस प्रकार सुभद्रा के पुत्र के तीक्ष्ण वाणों से क्षत-विक्षत हो कर सामन्तगण अर्जुन के पुनः आक्रमण के भय से जिस दिशा में अर्जुन गये हुए हैं, उसी दिशा की ओर देखते हुए अपने शिविरों की ओर लौट रहे हैं। इस प्रकार नाटक की कथा-वस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत कर सूत्रधार चला जाता है और उसके जाने के साथ ही स्थापना समाप्त हो जाती है।

इस रूपक का कार्य है अर्जुन की प्रतिज्ञा जिसे घटोत्कच कृष्ण के सन्देश के रूप में दुर्योधन की सभा में सुनाता है। इस कार्य का वीज है अभिमन्यु की मृत्यु। इस वीज का क्रमशः अंकुरण, सम्वर्द्धन एवं विस्तार धृतराष्ट्र और गान्धारी के शोकयुक्त वचनों से हुआ है। भट द्वारा दी गयी सूचना को सुनकर गान्धारी विलाप करती हुई कहती है—"महाराज! अत्थि उण जाणीआदि केवलं पुत्तसंखअकारओ कुलविग्गहो भविस्सिदि त्ति।"[१] गान्धारी की

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६० ई०, पृ० ५, चतुर्थ पद्य का पंचाद्वर्त्ती गद्य।

इस उक्ति के द्वारा बीज का उपक्षेप किया गया है, जिसके फलस्वरूप अर्जुन प्रतिज्ञा करता है। जब अभिमन्यु के वध मे जयद्रथ का निमित्त होना ज्ञात होता है तब दुश्शला दु खी हो कर कहती है—'अम्ब ! कुदो मे एत्तिआणि भाअधेआणि। जो जणद्दणसहाअस्स धणंजअस्स विप्पिअं करिअ कोहि णाम जीविस्सिदि।'[1] इस स्थल मे अनुमान सन्ध्यग है। अभिमन्यु वध की घटना अर्जुन की अनुपस्थिति मे घटित हुई थी, अत पाण्डव अर्जुन की प्रतीक्षा करते हुए अभिमन्यु के शव का अग्नि सस्कार नही करते हैं। इसकी सूचना भट निम्न-प्रकार देता है—

चिता न तावत्स्वयमस्य देहमारोपयन्त्यर्जुनदर्शनार्थम्।
तेषां च नामान्युपधारयन्ति यैस्तस्य गात्रे प्रहृत नरेन्द्रैः॥[2]

इस पद्य मे 'परिन्यास' मुखाग है। भट द्वारा अभिमन्यु का पितामह इन्द्र की गोद मे पहुँचने का वर्णन बीजन्यास के बाहुल्य को प्रकट करने से 'परिकर' नामक मुखाग है।

दुर्योधन, शकुनि और दुश्शासन जब धृतराष्ट्र को अभिवादन करते हैं और प्रत्याभिवादन मे धृतराष्ट्र जब आशीर्वाद नहीं देते, तब वे तीनो कहते हैं—क्या बात है कि ये आशीर्वाद नही दे रहे हैं ? उस समय धृतराष्ट कहते हैं—"पुत्र ! कथमाशीर्वचनमिति।"

सौभद्रे निहते बाले हृदये कृष्णपार्थयोः।
जीविते निरपेक्षणा कथमाशीः प्रयुज्यते॥[3]

इस सन्दर्भ मे छिपा हुआ बीज अच्छी तरह प्रकट हो गया है, अतः उद्-भेद नामक सन्ध्यंग है। धृतराष्ट्र दुर्योधनादि की निन्दा अत्यन्त कठोर शब्दों में करते हैं—

बहूना समवेतानामेकस्मिन्निर्घृणात्मनाम्।
बाले पुत्रे प्रहरता कथं न पतिता भुजाः॥[4]

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा सस्करण, सन् १९६० ई०, पृ० ६, सप्तम पद्य का पश्चाद्वर्ती गद्य
२. वही, पद्य ६
३. वही, पद्य १५
४. वही, पद्य १७

इस स्थल पर वज्र नामक सन्ध्यंग की योजना हुई है। इसके पश्चात् धृतराष्ट्र और दुर्योधन के बीच अर्जुन के विषय में जो रोषपूर्ण वार्तालाप हुआ है, उसमें संफेट सन्ध्यंग है।

उदभेद अंग का उपयोग इसी सन्धि में एक बार और आया है। जब भट अर्जुन की प्रतिज्ञा का वर्णन करता है, तब बीज भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है—

येन मे निहतः पुत्रस्तुष्टि ये चाहते गताः।
श्वः सूर्येऽस्तमसम्प्राप्ते निहनिष्यामि तानहम् ॥[1]

प्रतिज्ञा के पूर्ण न होने पर अर्जुन चितारोहण कर लेंगे। भट के मुख से इस बात को सुन कर दुर्योधन आश्चर्य मिश्रित हर्ष से कहता है—"मातुल ! चितारोहणम् चितारोहणम्। वत्स ! दुश्शासन ! चितारोहणम् चितारोहणम्। वय-मपि तावत्प्रतिज्ञाव्याघाते प्रयत्नमनुतिष्ठामः।"[2]

इस स्थल से निर्वहण सन्धि आरम्भ हो जाती है और यह रूपक के अन्त तक चलती है। धृतराष्ट्र के पूछने पर कि "पुत्र ! किं करिष्यामि ?"[3] दुर्योधन अपने सामर्थ्य के विषय में बतलाता है—"ननु सर्वाक्षौहिणीसन्दोहेच्छादयिष्ये जयद्रथम्"।[4]

अपि च—

द्रोणोपदेशेन यथा तथाहं संयोजये व्यूहमभेद्यरूपम्।
खिन्नाशयास्ते सगजाः सयोद्धा अप्राप्तकामा ज्वलनविशेयुः ॥[5]

उपर्युक्त स्थल में व्यवसाय सन्ध्यंग है।

जब घटोत्कच कृष्ण का सन्देश सुनाता है तो दुर्योधन, शकुनि और दुश्शासनादि सभी उसकी हँसी उड़ाते हैं। घटोत्कच पूछता है कि इसमें हँसने की क्या आवश्यकता है ? इस समय दुर्योधन कृष्ण का अपमान करता हुआ कहता है—

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा संस्करण, सन् १६६० ई०, पद्य २६
२. वही, पृ० २६
३. वही, पृ० २६
४. वही, पृ० २७
५. वही, पद्य ३०

देवैर्मन्त्रयते सार्द्धं स कृष्णो जातमत्सर.।
पार्थेनैकेन यो वेत्ति निहत राजमण्डलम् ॥[१]

उपर्युक्त सन्दर्भ मे गुरुजन श्रीकृष्ण का तिरस्कार किये जाने के कारण 'द्रव' नामक सन्ध्यग है।

इसी बात पर घटोत्कच और दुश्शासन आदि के बीच रोषपूर्ण वार्त्तालाप होने लगता है। और दोनो पक्ष के व्यक्ति अपनी-अपनी शक्ति को प्रदर्शित करने वाली बातो का प्रयोग करते हैं।

दुश्शासन कहता है—'मा तावत् भो क्षत्रियावमानिन्'।[२]

पृथिव्या शासन यस्य धार्यते सर्वपार्थिवै.।
सन्देश श्रोष्यतेऽप्यन्यो न राज्ञस्तस्य सन्निधौ ॥[३]

इस प्रकार प्रस्तुत वाद-विवाद मे सफेटयुक्त विरोधन नामक सन्ध्यग है:

अन्त मे धृतराष्ट्र की आज्ञा मान घटोत्कच शान्त हो जाता है और दुर्योधन द्वारा कहे गये सन्देश को ले कर श्रीकृष्ण के अन्तिम सन्देश को दे कर चला जाता है।

धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षा, यत्काक्षित मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ।
जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी, सूर्यांशुभि सममुपैष्यति व. कृतान्त ॥[४]

उपर्युक्त सन्देश ही प्रस्तुत रूपक के लिए भरत वाक्य का कार्य करता है। इस प्रकार इस रूपक की निर्वहण सन्धि में ग्रथन, परिभाषण, सन्धि और प्रशस्ति नामक सन्ध्यग का समावेश हुआ है।

इस नाटक मे 'भारती' वृत्ति प्रयुक्त है। एक अक और दो सन्धियां हैं। डॉ० कीथ के मतानुसार यह व्यायोग है,[५] क्योंकि कथानक का अधिकाश भाग युद्ध की तैयारी और तद्विषयक वार्त्ता से सम्बद्ध है।

यद्यपि इस रूपक मे व्यायोग के कुछ लक्षण प्राप्त होते हैं पर यह उत्सृष्टिकाक के अधिक निकट प्रतीत होता है। यत' इसका प्रमुख रस वीर न हो कर करुण

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा सस्करण, सन् १९६० ई०, पद्य ३८
२. वही, पृ० ३४
३. वही, पद्य ४०
४ वही, पद्य ५२
५. सस्कृत ड्रामा, पृ० ९६

है। इसमें स्त्री रुदन और वैधव्य की भी चर्चा है। अतएव 'उत्सृष्टिकांक' के अधिक लक्षण उपलब्ध होने के कारण इसे व्यायोग न स्वीकार उत्सृष्टिकांक ही मानना अधिक तर्कसंगत है।[१]

मध्यम व्यायोग : विवेचन

प्रस्तुत रूपक दो शब्दों के योग से बना है—मध्यम और व्यायोग। पाण्डवों में 'मध्यम' भीम पर आधारित होने से यह एकांकी रूपक मध्यम व्यायोग कहलाता है। पाण्डु पुत्रों में 'मध्यम' किसे माना जाय, इस सम्बन्ध में मतभेद है। 'वेणीसंहार' में अर्जुन ने स्वयं अपना परिचय 'मध्यम' कह कर दिया है।[२] भास ने भीम को कुन्ती पुत्रों में मध्यम मान कर अपने 'पंचरात्र' में अभिमन्यु से 'मध्यमस्तातः' तथा 'मध्यमव्यायोग' में स्वयं उन्हीं के मुख से 'भ्रातृणामपि मध्यमः' कहलवाया है। अतः कुन्ती के पुत्र पाण्डवों में मध्यम भीम को लक्ष्य कर लिखा गया यह रूपक मध्यम व्यायोग है।[३]

कथावस्तु

स्थापना के वाद रंगमंच पर एक वृद्ध अपनी वृद्धा पत्नी और तीन युवा पुत्रों के साथ उपस्थित होता है। कुरु जांगल प्रदेश के यूप ग्राम का निवासी माठर गोत्रीय अध्वर्यु केशवदास उद्यामक ग्राम निवासी कौशिक गोत्री मातुल यज्ञवन्धु के पुत्र के उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने के लिए जा रहा है। उसके साथ उसकी वृद्धा पत्नी और तीन पुत्र हैं। मार्ग में उसे वही जंगल पार करना पड़ता है, जिसमें दुर्योधन से द्यूत में पराजित पाण्डवगण निवास करते हैं। इस जंगल में एक भयंकर राक्षस उनको पकड़ने के लिए आता है। इस

---

१. As obesrved by Dr. G. Shastri the pay is neither a comedy nor a tragedy and ends abruptly, the absence of the Bharata vakya suggests that perhaps the poet might have added some thing more towards the end which is now lost......But we think the Dgh answers more closely the characteristics of an Utsrtikanka.—Bhasa—A Study, Delhi, 1968, p. 197.

२. प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम्—वेणीसंहार, ५।२७

३. मध्यमः भीमः कुन्तीतनयत्वावच्छिन्नपाण्डवेषु तस्यैव मध्यमत्वात्। मध्यममुद्दिश्य कृतो व्यायोगः इति मध्यमव्यायोगः।

विकराल राक्षस को देख कर ब्राह्मण का कनिष्ठ पुत्र कहता है कि यह तो साक्षात यमराज के समान हमारा पीछा कर रहा है। इसी समय घटोत्कच उन्हें डाँटते हुए कहता है—अरे ! भीरु ब्राह्मण मुझ से भाग कर तुम कहाँ जा सकते हो ? तुम अपने पुत्र और स्त्री की रक्षा नहीं कर सकते हो। तुम मेरे समक्ष वैसे ही हो जैसे वृद्ध गरुड के सामने सर्पिणी सहित भयभीत सर्प हो। घटोत्कच की उक्त वार्त्ता को सुन कर वृद्ध ब्राह्मण अपने परिवार से कहने लगा कि तुम भयभीत मत हो। इसकी वाणी विवेकशील प्रतीत होती है। घटोत्कच विचारने लगा कि ब्राह्मण इस पृथ्वी पर अवध्य है। पर माता की आज्ञा मेरे लिए अनुलंघनीय है।

वृद्ध ब्राह्मण अपने परिवार सहित वन में जाने लगा। उसे अकस्मात् स्मरण हो आया कि इसी वन मे पाण्डवों का भी आश्रम है। ये पाण्डव युद्ध प्रिय शरणागत वत्सल, साहसी, दीनों पर दया करने वाले तथा भयानक प्राणियों को दण्ड देने वाले हैं। ब्राह्मण परिवार को यह पता चला कि इस समय पाण्डव कहीं बाहर गये हुए हैं। अतएव वे किसी आसन्न सहायक को न देख कर घटोत्कच से ही पूछते हैं कि इस सकट से मुक्ति का कोई उपाय है या नहीं ? इस पर घटोत्कच कहता है कि उपाय तो है पर उसके साथ शर्त है। मेरी माता की आज्ञा है कि इस अरण्य में यदि कोई मानव मिले तो उसे पकड़ कर मेरी पारणा के लिए लाओ। मैं आपकी पत्नी और दो बच्चों को छोड़ सकता हूँ। आप स्वेच्छा या अपने एक पुत्र को मेरे साथ कर दीजिये।

घटोत्कच के उक्त वार्त्तालाप को सुन कर ब्राह्मण क्रोधाभिभूत हो जाता है और कहता है कि इन नीचतापूर्ण बातों को तुम छोड़ दो। मेरा शरीर वार्धक्य-जर्जर है और अब मैं समस्त कार्यों से कृतकृत्य भी हो चुका हूँ। अतः पुत्रों की रक्षा के निमित्त मैं अपने आपको अर्पण कर सकता हूँ।

ब्राह्मण के उक्त वार्त्तालाप से प्रभावित हो कर ब्राह्मणी कहती है कि यह त्याग का अवसर तो मेरा है इसी मे मेरे पातिव्रत धर्म की रक्षा है। घटोत्कच उसे यह कह कर निवारण कर देता है कि मेरी माता को स्त्री अभीष्ट नहीं। जब घटोत्कच वृद्ध ब्राह्मण को ले कर चलने को प्रस्तुत होता है तो ज्येष्ठ पुत्र अनु-रोध करता है कि वह अपने प्राणों को दे कर पिता के प्राणो की रक्षा करना चाहता है। मध्यम पुत्र भी उसकी बात सुन कर उसको रोकता है और कहता है कि आप कुटुम्ब में ज्येष्ठ हैं अतः पितरों के तर्पण आदि का कार्य आप ही सम्पन्न कर सकते हैं। आप के अभाव मे पितरों का उद्धार नहीं हो पायेगा।

अतः मैं ही अपने शरीर का वलिदान करूँगा। इस प्रकार कनिष्ठ पुत्र भी अपने वलिदान की वात कहता है।

ब्राह्मण अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हुए आदेश देता है कि ज्येष्ठ पुत्र उसे सर्वाधिक प्रिय है। अतः उसे वह काल के गाल में नहीं जाने देगा। वृद्ध की वात सुन कर वृद्धा ब्राह्मणी कहती है कि कनिष्ठ पुत्र मुझे प्राणों से वढ़ कर प्रिय है अतः उसे मैं नहीं दूंगी। इस पर मध्यम पुत्र माता-पिता से निवेदन करता है कि आप मुझे प्रसन्नतापूर्वक इनके साथ जाने की अनुमति दीजिये। घटोत्कच मध्यम पुत्र को प्राप्त कर वहुत प्रसन्न होता है। और, वह माता-पिता तथा ज्येष्ठ भ्राता को प्रणाम कर घटोत्कच के साथ जाने लगता है। कुछ दूर चलने के पश्चात् मध्यम पुत्र घटोत्कच से निवेदन करता है कि तुम थोड़े समय के लिये यहाँ रुक जाओ जिससे मैं समीपवर्ती जलाशय में जलपान कर लूं। घटोत्कच उसे शीघ्र आने को कह जाने की अनुमति दे देता है। मध्यम पुत्र चला जाता है।

मध्यम पुत्र के लौटने में कुछ विलम्ब होता है। घटोत्कच उसे मध्यम कह कर जोर से पुकारता है। समीपवर्ती भीमसेन उसे अपना सम्बोधन समझ घटोत्कच के समीप उपस्थित होते हैं। घटोत्कच भीम के महनीय व्यक्ति को देख कर स्तब्ध हो जाता है। वह कहता है—'क्या आप भी मध्यम हैं ?' भीम उत्तर देता है कि 'मैं ही मध्यम हूँ।'

भीम की वात सुनकर वृद्ध ब्राह्मण विचार करने लगता है कि यह अवश्य ही मध्यम पाण्डव भीम हैं जो हम लोगों को मुक्त कराने के लिए ही यहाँ आया है। इसी समय ब्राह्मण का मध्यम पुत्र भी आ जाता है और घटोत्कच उसे ले कर चल देता है। वृद्ध कातर दृष्टि से भीम की शरण में जाता है और कहता है—'यह राक्षस हम लोगों को खाना चाहता है इससे आप हमारी रक्षा कीजिये।' इस प्रसंग में वह वृद्ध ब्राह्मण अपना परिचय भी देता है। भीम उसे आश्वासन देता है और घटोत्कच को पुकार कर कहता है कि इस ब्राह्मण परिवार को तुम क्यों कष्ट दे रहे हो ? ब्राह्मण अवध्य है, अतः इसे तुम छोड़ दो।

भीम की वात सुन कर घटोत्कच उसे छोड़ने से इन्कार करता है, और कहता है कि आप क्या मेरे साक्षात् पिता भी आ कर कहें तो मैं इसे नहीं छोड़ सकता। मैं अपनी माता की आज्ञा की पूर्ति के हेतु इसे ले जा रहा हूँ। भीम उसकी माता का नाम पूछता है—हिडिम्बा नाम सुन कर मन-ही-मन प्रसन्न होता है। पुत्र की मातृभक्ति से भीम को महा प्रसन्नता होती है। भीम मध्यम

पुत्र को रोक देता है और कहता है कि तुम मत जाओ। तुम्हारे स्थान पर मैं जाऊँगा। इस पर जब घटोत्कच उससे चलने के लिए कहता है तब वह उत्तर देता है—'यदि तुम मे शक्ति हो तो मुझे ले चलो।'

इसके पश्चात् घटोत्कच वृक्ष शैलादि से भीम पर प्रहार करता है पर भीम निगृहीत नही होता। बाहु युद्ध और माया युद्ध मे भी घटोत्कच भीम को परास्त नही कर सका। अन्त मे प्रतिज्ञा को याद दिला कर भीम को अपने साथ ले जाने लगा। घटोत्कच भीम को खडा कर अपनी माता हिडिम्बा को सूचित करता है। हिडिम्बा उसके साथ अपने कल्पित आहार को देखने के लिए आती है, और भीम को देख कर वह आश्चर्यचकित हो जाती है। वह आर्य पुत्र कह कर भीमसेन का अभिवादन करती है। घटोत्कच भी अपने कृत्य पर लज्जित होता है और भीम के चरणो मे गिर कर क्षमा-याचना करता है। भीम उसे गले लगा लेता है। वृद्ध ब्राह्मणो के चरणो मे भी घटोत्कच नतमस्तक हो कर प्रणाम करता है। अन्त मे मगल वाक्य के साथ रूपक समाप्त हो जाता है।

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना-समन्वय

उपर्युक्त कथावस्तु का मूल रूप महाभारत के हिडिम्बा वध पर्व मे मिलता है जिसमे भीम के द्वारा राक्षसी हिडिम्बा का वध वर्णित है। भीम का हिडिम्बा से मिलन, प्रेम तथा विवाह के पश्चात् घटोत्कच की उत्पत्ति भी महाभारत मे निबद्ध है।[१] जिसकी मृत्यु रणक्षेत्र मे कर्ण के द्वारा होती है। महाभारत के द्रोण पर्व मे भी घटोत्कच और हिडिम्बा के आख्यान का सकेत मिलता है। अतः नाटककार भास ने इस नाटक का कथानक महाभारत से ग्रहण कर विशेष साज-सज्जा से युक्त प्रभावोत्पादक शैली मे इसे निबद्ध किया है। अस्थि-पंजर तो प्राचीन है पर उसमें मास-मज्जा एव रक्त का सचार नये रूप मे प्रस्तुत किया है।

घटोत्कच का अपने अज्ञात पिता भीम से युद्ध और हिडिम्बा सम्मेलन सर्वथा कवि का कल्पना का परिणाम है। इस घटना नियोजन से रूपक की नाटकीयता का विकास तो हुआ ही है साथ ही रस का भी सम्यक् परिपाक हुआ है। भीम और घटोत्कच के चरित्र को स्पष्ट करने एवं भावों मे तनाव

---

१. महाभारत, हिडिम्बा वध पर्व, प्रथम स्कन्ध, अध्याय १५१-१५५
—गीताप्रेस, गोरखपुर सस्करण

लाने के हेतु कवि ने ब्राह्मण परिवार को अच्छा माध्यम चुना है। हिडिम्बा और भीम मिलन की पूर्व-पीठिका के रूप में ब्राह्मण परिवार के प्रयोग की प्रेरणा बहुत कुछ सम्भव है कि कवि को 'ऐतरेय ब्राह्मण' के अन्तर्गत शुन:शेप[१] की कथा से मिली है। डॉ० कीथ[२] ने इस कथानक का मूलाधार महाभारत के वकवध[३] को माना है।

नाटक की कथावस्तु के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भास में घटना-संघटन की अद्भुत क्षमता है। महाभारत के मूल स्रोतों में कवि ने आमूल परिवर्तन कर के ऐसी स्थिति उत्पन्न की है कि भाव एकोन्मुख हो कर रस की अनुभूति सहज ही करा देते हैं। शुन:शेपोपाख्यान के अजीगर्त और मध्यम व्यायोग के केशवदास में बड़ा अन्तर है। एक में पाशविक वृत्ति की प्रधानता है वह अपनी बुभुक्षा की शान्ति के हेतु अपने पुत्र को वेचने और मार डालने में भी नहीं हिचकता। पर दूसरे में पिता की संवेदना और अपार वात्सल्य युक्त हृदय विद्यमान है। उसमें मानवोचित कमजोरियाँ एवं दृढ़ताएँ भी हैं। वह अपने पुत्र की रक्षा के लिए आत्मसमर्पण करता है तथा अपने समस्त परिवार की रक्षा के हेतु भीम से प्रार्थना करता है।

महाभारत में प्रतिपादित घटोत्कच और भास द्वारा निरूपित घटोत्कच में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक का शिर लोम हीन है तो दूसरे का पिंगल केशादि से विभूषित। भास ने घटोत्कच और हिडिम्बा में मानवीय गुणों का पर्याप्त समावेश किया है। घटोत्कच की दया, संकटापन्न के प्रति सहानुभूति और पूज्यों के प्रति आदर आदि भावों की स्वयं भीम ने प्रशंसा की है। महाभारत की हिडिम्बा एक कर्कशा राक्षसी है पर भास ने उसे बड़ा कोमल और मानव सुलभ प्रेमयुक्त हृदय दिया है। स्पष्ट है कि वह किसी मनुष्य की हत्या नहीं करना चाहती। उसने भीम के दर्शन की इच्छा से ही षड्यन्त्र की रचना की है।

इस प्रकार नाटककार भास ने महाभारत में इधर-उधर बिखरे कथा-सूत्रों को एकत्र कर एक नया ही रूप प्रदान किया है। महाभारत में जो अस्वाभाविकताएँ विद्यमान थीं, उनका परिष्कार कर भास ने स्वाभाविकता का संयोजन

१. ऐतरेय ब्राह्मण, सप्तम अध्याय, श्लोक १४-१८
२. Sanskrit Drama, p. 95.
३. महाभारत 'वकवध पर्व', अध्याय १६०-१६१

किया है। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप की मुक्ति वरुणदेव की कृपा और दैवी चमत्कार से होती है, पर ब्राह्मण कुमार की मुक्ति का विधान महापराक्रमी भीम की उदारता एवं आत्म समर्पण की भावना से सम्पन्न हुआ है। नाटककार भास ने प्रारम्भ से अन्त तक समस्त कथानकों में एक कुशल शिल्पी के समान काट-छांट कर परिवर्तन किया है।

शास्त्रीय विश्लेषण

रूपक के शास्त्रीय तत्वों में सर्वप्रथम स्थान प्रस्तावना का है। यही तत्व रूपक के लिए पृष्ठभूमि का काम करता है। इसके द्वारा रूपक की कथावस्तु बीज, पात्रादि को प्रस्तुत किया जाता है। पुन. यही तत्व रूपक के पात्रों के व्यापारात्मक कथोपकथन आदि से विस्तार को प्राप्त हो कर फल निर्वहण की अवस्था को प्राप्त होता है। इसमें सूत्रधार नाटककार के रूपक को सामाजिकों के समक्ष मंच पर प्रस्तुत करता है। किसी भी रूपक में इस तत्व का प्रमुख स्थान होता है। प्रस्तुत रूपक में भी इस तत्व की योजना की गयी है।

सूत्रधार मंगल श्लोक का पाठ करने के पश्चात् जैसे ही कुछ कहने को उद्यत होता है कि कोलाहल उसे आकृष्ट करता है। वह इस कोलाहल के हेतु को अवगत कर सामाजिकों को बतलाता है —'हन्त दृष्टं विज्ञातम्। एष खलु पाण्डवमध्यमस्यात्मजो हिडिम्बारणिसंभूतो राक्षसाग्निः कृतवैरं ब्राह्मण जनं त्रासयति। भोः कष्टम्'।[1] सूत्रधार का यह कथन रूपक के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है। सामाजिक को अपने समक्ष प्रस्तुत होने वाले दृश्य का ज्ञान हो जाता है कि अब ब्राह्मण परिवार और घटोत्कच उसके समक्ष आने वाले हैं। इस प्रकार रूपक की स्थापना कर सामाजिकों के सम्मुख रूपक को उपस्थित करता है। प्रस्तावना के समाप्त होते ही रूपक के पात्र रंगमंच पर पदार्पण करते हैं।

मध्यम व्यायोग का मुख्य कार्य अथवा फल भीम-हिडिम्बा मिलन है। इसे सम्पन्न करने के लिए हिडिम्बासुत घटोत्कच अत्यधिक सहायक हुआ है। जब ब्राह्मण और उसके परिवार के व्यक्ति घटोत्कच को देख कर भयभीत हो किंकर्तव्यविमूढ से हो रहे हैं, उस समय घटोत्कच का यह कथन—"भोः! कष्टम्।"[2]

---

१. मध्यमव्यायोग, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६० ई०, पृ० २
२. वही, पृ० ६

जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् ।
आकार्यमेतच्च मयाऽद्य कार्यं मातुर्नियोगादपनीय शङ्काम् ॥[१]

यह भीम हिडिम्बा मिलन के प्रति अनजाने में प्रकट की गयी उत्सुकता से भिन्न और कुछ नहीं है। इसे हम इस रूपक में 'प्रारम्भ' नाम की अवस्था मान सकते हैं।

जब घटोत्कच वृद्ध ब्राह्मण से एक पुत्र की माँग करता है, तब वह भीम हिडिम्बा मिलन के लिए, प्रयत्न कर रहा है। वह कहता है—"अस्ति मे तत्र भवती जननी। तयाऽहमाज्ञप्तः। पुत्र ! ममोपवासनिसर्गार्थमस्मिन्वनप्रदेशे कश्चितन्मानुषः प्रतिगृह्यानेतव्य इति। ततो मयाऽऽसादितोभवान्।"[२]

पत्न्या चारित्रशालिन्या द्विपुत्रो मोक्षमिच्छसि।
बलाबलं परिज्ञाय पुत्रमेकं विसर्जय ॥[३]

परन्तु घटोत्कच की इस माँग से वृद्ध ब्राह्मण अत्यधिक क्रुद्ध हो उठता है। इस पर घटोत्कच इन्हें धमकाता हुआ कहता है कि वह यदि एक पुत्र को नहीं देगा, तो सपरिवार नाश को प्राप्त होगा। इस पर वृद्ध स्वयं मृत्यु का वरण करने के लिए इच्छा व्यक्त करता है। वृद्ध की बात सुन कर ब्राह्मणी मरने को उद्धत होती है, पर घटोत्कच अस्वीकार कर देता है। वृद्ध को भी लेने से इन्कार कर देता है। अब तीनों भाइयों में स्पर्धा होने लगती है। अन्त में मध्यम भाई जाने को तैयार होता है और इससे घटोत्कच प्रसन्न होता है कि माता जी के लिए उसे एक मनुष्य मिल गया। इस स्थल को नियताप्ति अवस्था कहा जा सकता है।

इसके पश्चात् जब घटोत्कच पानी पीने के लिए गये मध्यम ब्राह्मण कुमार को पुकारता है। इस आवाज को सुन कर मध्यम पाण्डव भीम उपस्थित होता है और ब्राह्मण के बदले स्वयं हिडिम्बा के पास जाता है और हिडिम्बा एवं भीम का मिलन होता है। यह मिलन 'फलागम' की स्थिति है।

इस प्रकार प्रस्तुत रूपक में पाँच अवस्थाओं के स्थान पर चार अवस्थाएँ ही प्राप्त हैं। प्रत्याशा नामक अवस्था नहीं है जिससे फल प्राप्ति के प्रति

---

१. मध्यमव्यायोग, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६० ई०, पद्य ९
२. वही, पृ० १२
३. वही, पद्य १२

एकान्तिक निश्चय नही हो पाता है। इसमे फल प्राप्ति के प्रति निराशा और आशा की स्थिति नही आने पायी है। अत. प्रत्याशा का अभाव स्पष्टत है।

बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पांच अर्थ प्रकृतियों मे से चार अर्थ प्रकृतियाँ ही इस रूपक मे समाविष्ट हैं। एकाकी होने से कथावस्तु संक्षिप्त है, अत पताका और प्रकरी इन दोनो का समावेश सम्भव नही। प्रस्तुत रूपक मे पताका का ही प्रयोग हुआ है। इस प्रकार इससे बीज, बिन्दु, पताका और कार्य ये चार अर्थ प्रकृतियाँ निहित हैं।

घटोत्कच को देख कर ब्राह्मण परिवार अत्यधिक भयभीत हो जाता है और भागने का प्रयत्न करता है। घटोत्कच उन्हें रुकने के लिए आदेश देता है। घटोत्कच की बातो से वृद्ध आश्वस्त होता है और अपने परिवार के सदस्यों को धैर्य बँधाता है। घटोत्कच अपना मन्तव्य प्रकट करता है। यहाँ बीज नामक अर्थ प्रकृति है।

मध्यम ब्राह्मण कुमार घटोत्कच के साथ जाने को तैयार हो जाता है परन्तु मरने के पहले वह जल पीने के लिए जाता है। उसके लौटने मे विलम्ब होते देख घटोत्कच उसे मध्यम नाम से पुकारता है। ब्राह्मण कुमार के स्थान पर मध्यम पाण्डव भीम उपस्थित होता है। भीम के आने के बाद ब्राह्मण कुमार भी आता है। भीम उसके बदले मे स्वय जाने को तैयार हो जाता है। यहाँ तक तो कथावस्तु फल निर्वहणता की ओर अविरुद्ध गति से बढ़ती जाती है किन्तु उसके बाद भीम और घटोत्कच मे परस्पर शक्ति का प्रदर्शन प्रारम्भ हो जाता है और कथावस्तु अपने मार्ग से हट जाती है, उसमे विच्छिन्नता आ जाती है, जिसे पुन. मार्ग पर लाने का कार्य घटोत्कच का निम्नांकित कथन करता है—

"अये पतित पाश: । किमिदानी करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। भोः पुरुष! पूर्व-समयस्मर।"[१]

घटोत्कच की इस उक्ति से कथावस्तु का सूत्र पुन जुड़ जाता है। अत: इस स्थल मे 'बिन्दु' नामक अर्थ प्रकृति है।

ब्राह्मण परिवार की कथावस्तु को हम 'पताका' रूप मे ग्रहण कर सकते हैं। रूपक मे पताका का बहुत दूर तक और कभी-कभी रूपक के अन्त तक चलती है।

---

१. मध्यमव्यायोग, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६० ई०, पृ० ४१, ४७वें पद्य से आगे का गद्यांश।

पताका का कार्य फल सिद्धि में सहायता पहुँचाना है। इस कार्य में ब्राह्मण परिवार का मध्यम सदस्य अत्यधिक सहायक हुआ है। क्योंकि उसे ही पुकारने के लिए किया गया घटोत्कच का, 'मध्यम आओ' यह शब्द पाण्डवों में मध्यम भीम को वहाँ उपस्थित कर देता है। इसके बाद ब्राह्मण कुमार के स्थान पर स्वयं भीम जाते हैं। पताका के पात्र का स्वयं का कोई फल नहीं होता, पर प्रकारान्तर में उसे भी फल की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ पर ब्राह्मण परिवार की प्राणरक्षा ही उसको प्राप्त होने वाला फल है।

हिडिम्बा और भीम का मिलन 'कार्य' नामक अर्थ प्रकृति है।

इस एकांकी में मुख और निर्वहण दो सन्धियाँ हैं। इन दोनों में से भी एकांकी की अधिकांश कथावस्तु 'मुख-सन्धि' के अन्तर्गत है और उसका अल्प भाग निर्वहण सन्धि है।

भयभीत ब्राह्मण परिवार को रोक कर दुःखी घटोत्कच के इस कथन की कि ब्राह्मण हमेशा पृथ्वी पर पूज्य है और हमारा यह कार्य अत्यन्त दुष्ट है किन्तु माता की आज्ञा से यह मुझे करना ही पड़ेगा। यहाँ से मुख-सन्धि प्रारम्भ होती है, जो हिडिम्बा द्वारा भीम के पहचाने जाने के पहले तक है। इस सन्धि में अंगों का समावेश भी उचित रूप में हुआ है।

सन्ध्यंग कथावस्तु को गति प्रदान करते हैं। प्रथम मुखांग उपेक्षा है। घटोत्कच के इस कथन में 'जानामि सर्वत्र'—॥६॥[1] में कवि ने वीज को प्रस्तुत किया है। अतः यह उपक्षेप मुखांग है। इसके वाद जव घटोत्कच से वृद्ध ब्राह्मण मुक्ति की इच्छा करता है, तव घटोत्कच से कहता है, हाँ, मुक्ति हो सकती है किन्तु एक शर्त पर। ब्राह्मण के शर्त पूछने पर घटोत्कच कहता है—'अस्ति मे तत्रभवती जननी। तयाऽहमाज्ञप्तः। पुत्र ! ममोपवास निसर्गार्थमस्मिन्वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः प्रतिगृह्यानेतव्य इति। ततो मयाऽऽसादितो भवान्॥'[2] घटोत्कच के इस कथन में परिकर मुखांग की योजना है और इसके तुरन्त वाद में कहा गया घटोत्कच का कथन वीज को अत्यन्त पुष्ट कर देता है—

'पत्न्या चारित्रशालिन्या द्विपुत्रो मोक्षमिच्छसि।
वलावलं परिज्ञाय पुत्रमेकं विसर्जय ॥'[3]

---

१. मध्यमव्यायोग, पद्य २

२. वही, पद्य १२

३. वही, पद्य १२

उपक्षेप में जिस बीज को क्षेत्र मे डाला गया था, वही बीज परिकर-मुखाग मे पुष्ट हुआ और उसी बीज को फल निर्वहण के योग्य बनाने का कार्य परिन्यास मुखाग ने किया।

घटोत्कच की इस मांग की वृद्ध ब्राह्मण पर बडी स्वाभाविक और मार्मिक प्रतिक्रिया होती है। वह कहता है—

'ह भो राक्षसापसद ! किमहमब्राह्मण.
ब्राह्मणः श्रुतवान्वृद्ध. पुत्र शीलगुणान्वितम् ।
पुरुषादस्य दत्त्वाह कथं निर्वृतिमापनुयाम् ॥'[1]

ब्राह्मण के इस प्रकार के उत्तर को सुन कर घटोत्कच का अह का जागृत होना स्वाभाविक ही है, और वह अपनी शक्ति का उद्‌घाटन करते हुए कहता है—

'यद्यर्थिनो द्विज श्रेष्ठ ! पुत्रमेक न मुञ्चसि ।
सकुटुम्ब. क्षणेनैव विनाशमुपयास्यसि ॥'[2]

इस स्थल मे व्यवसाय की योजना की गयी है। घटोत्कच की इस धमकी की वृद्ध ब्राह्मण पर कोई प्रतिक्रिया नही होती, प्रत्युत वह स्वय मृत्यु मुख मे जाने को तैयार हो जाता है। पर उसकी पत्नी कहती है कि पत्नी के जीवित रहते पति कैसे यह कार्य कर सकता है, पहले पत्नी को ही जाना चाहिये। पर घटोत्कच यह कह कर कि उसकी माता को स्त्री की आवश्यकता नही उस विवाद को उसकी प्रारम्भिक अवस्था मे ही समाप्त कर देता है। घटोत्कच की इस बात से उत्साहित हो कर वृद्ध पुन. कहता है, मैं ही आपके साथ चलूंगा। वृद्ध की बात सुन कर घटोत्कच तिरस्कार करते हुए कहता है—

'आ. वृद्धस्त्वमपसर।'[3]

इस अंश मे द्रव विमर्शांग की योजना हुई है।

घटोत्कच द्वारा वृद्ध ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनो के अयुक्त सिद्ध कर दिये जाने पर तीनो भाइयो और माता-पिता में वार्तालाप होता है, अन्त मे बेचारा मध्यम ही तैयार होता है। माता-पिता भी इस बात पर दु खी मन से

---

१. मध्यमव्यायोग, पद्य १२
२. वही, पद्य १४
३ वही, पृ० १४

सहमत हो जाते हैं। इस घटना से घटोत्कच अत्यन्त प्रसन्न होता है और कहता है—"अहं प्रीतोऽस्मि। शीघ्रमागच्छ"। घटोत्कच के इस कथन में मुखांग की योजना है।

मध्यम ब्राह्मण कुमार घटोत्कच से पानी पीने की इच्छा व्यक्त करता है तब घटोत्कच ब्राह्मण कुमार की प्रशंसा करते हुए कहता है—

'दृढव्यवसायिन्! गम्यताम्। अतिक्रामति मातुराहार कालः। शीघ्रमागच्छ।'[1] इस पंक्ति में घटोत्कच ब्राह्मण कुमार को विलोमित करने का प्रयत्न कर रहा है, उसे दृढ़ निश्चयी कह रहा है जिससे कि उसका वलि वनने का निश्चय न वदले, वह अपने वचन का पालन करे। इस प्रकार यहाँ विलोमन मुखांग की योजना हुई है।

पानी पीने गये ब्राह्मण कुमार को देर करते देख घटोत्कच व्याकुल हो उठता है। घटोत्कच पहले वृद्ध ब्राह्मण से उस ब्राह्मण कुमार को पुकारने के लिए कहता है, पर वृद्ध क्रुद्ध हो कर उसे फटकार देता है। तव घटोत्कच सवसे वड़े भाई से उसका नाम पूछता है। वड़ा भाई नाम लेने के स्थान पर वड़े दुःख से कहता है वेचारा मध्यम। घटोत्कच मध्यम नाम से ही ब्राह्मण कुमार को पुकारता है, परन्तु ब्राह्मण कुमार नहीं आता। इधर घटोत्कच के माता के भोजन का समय वीतता जा रहा है। घटोत्कच के समझ में नहीं आता कि क्या करें, पर फिर एकाएक विचार आता है और वह कहता है— 'भवतु दृष्टम्। उच्चैः शब्दापयामि भो मध्यम शीघ्रमागच्छ" ? यहाँ पर समाधान नामक मुखांग है।

'मध्यम' की पुकार से आकर्षित हो कर पाण्डवों में मध्यम भीम घटनास्थल पर आ जाते हैं और वस्तु स्थिति को जान लेने पर घटोत्कच से रुकने को कहते हैं। घटोत्कच भी अपने वलाभिमान से युक्त हो उठता है। इसके वाद भीम और घटोत्कच में जो वार्तालाप होता है वह सर्वथा रोप से पूर्ण है, अतः निम्न उद्धरण में संफेट विमर्शांग है—

भीम—एवम् अनेन ब्राह्मणजनस्य मार्गविघ्नः कृतः। भवतु निग्रहिष्यामि तावदेनम्। भोः पुरुषः! तिष्ठ, तिष्ठ।

घटोत्कच—एषं स्थितोऽस्मि।

भीम—किमर्थं ब्राह्मणजनमपराध्यसि।

---

1. मध्यमव्यायोग, पृ० २२

'पुत्रनक्षत्र कौर्णस्य, पत्नी कान्तप्रभस्य च ।
वृद्धस्य विप्र चन्द्रस्य भवान् राहुरिवोत्थितः' ॥[1]

घटोत्कच—अथ किम् । राहुरेव
आदि आदि ।

इसके बाद जब घटोत्कच से भीम उस ब्राह्मण कुमार को छोड देने के लिए कहता है, तब वह कहता है कि नहीं छोडूँगा, भीम उस ब्राह्मण कुमार के बदले स्वयं जाने को तैयार होते हैं। भीम घटोत्कच से कहता है कि यदि उसमे शक्ति हो तो उसे बलपूर्वक ले जाय। तब घटोत्कच कहता है कि आप जानते नहीं कि मैं कौन हूँ । इस पर भीम उसे 'पुत्र' रूप मे सम्बोधित करते हैं, इससे वह क्रुद्ध हो जाता है। तब भीम सत्य बात को हास्य का रूप दे कर कहते हैं कि 'अरे क्रुद्ध क्यो होते हो । क्षमा करो । सारी प्रजा क्षत्रियो के द्वारा पुत्र शब्द से ही पुकारी जाती है।' भीम की इस बात को सुन कर घटोत्कच भीम की निन्दा करता हुआ कहता है—

'भीतानामायुद्ध गृहीतम्' । इस स्थान पर द्रव विमर्शांक है ।

जब घटोत्कच भीम से शस्त्र उठाने के लिए कहता है, तब भीम कहते है, कि स्वर्ण के स्तम्भ के सदृश शत्रु विनाश मे सलग्न उनका दाहिना बाहु ही उनका अनुरूप शस्त्र है । भीम की इस बात को सुन कर घटोत्कच कहता है कि इस प्रकार का वचन उसके पिता के ही योग्य है तब भीम अनेक देवताओ को ले कर उससे पूछने हैं कि उसका पिता भीम इनमे किसके सदृश है । घटोत्कच कहता है 'सर्वदा' । तब भीम उसको उकसाने के लिए युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए कहते हैं कि यह झूठ है । भीम की बात के अनुकूल प्रतिक्रिया होती है । घटोत्कच उत्तेजित हो कर झाड उखाड कर भीम को मारने की बात कहता है । भीम उसका पुन उद्वेजन करते हुए कहते हैं—

'स्पृष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने' ॥[2]

इस प्रकार मल्लयुद्ध मे घटोत्कच के बाहुपाश से स्वय को मुक्त करते हुए भीम जो कुछ कहते हैं वह भी घटोत्कच को उत्तेजित करने वाला है ।

---

१ मध्यमव्यायोग, पद्य ३३
२ वही, पद्य ४४

भीम कहते हैं—(नियुद्धवन्धभवधूय)

'व्यपनय वलदर्पं दृष्टसारोऽसि वीर !
नहि मम परिखेदो विघते वाहुयुद्धे ॥'[1]

ये दोनों स्थल द्युति नामक मुखांग के उदाहरण हैं।

घटोत्कच जव कहता है कि उसके पिता भीम सभी देवताओं के समान हैं तव भीम धिक्कारते हैं और उसकी वात को असत्य वताते हैं। फलतः क्रुद्ध घटोत्कच अपनी शक्ति को प्रकाशित करते हुए कहता है कि मेरे गुरु का अपमान करते हो, मैं अभी इस विशाल वृक्ष को उखाड़ कर तुम्हें मारता हूँ। इसी सन्दर्भ में आगे वह कहता है—

'शैल कूटं मयाक्षिप्तं प्राणानादाय यास्यति।'[2]

इस प्रकार जव घटोत्कच इस कार्य में असफल रहता है, तो वह अपनी मल्लयुद्ध की शक्ति का स्मरण करता है—

'नन्वहं भीमसेनस्य पुत्रः पौत्रो नभस्वतः।
तिष्ठेदानीं सुसन्नद्धो नियुद्धे नास्ति मत्समः॥'[3]

मल्लयुद्ध में भीम को अपने वाहुपाश में वाँध लेने पर घटोत्कच के इस कथन में विलोभन नामक मुखांग है।

इस व्यायोग में प्रतिमुख सन्धि की स्थिति व्राह्मण पुत्र के जलाशय चले जाने पर वीज के अलक्षित होने के पश्चात् पुनः अन्वेषणार्थ आह्वान के कारण घटित होती है। इसमें 'परिसर्प', 'पुष्प', 'प्रगमन', और उपन्यास अंग भी समाविष्ट हैं।

निर्वहण सन्धि में 'विवोध', 'ग्रन्थन', परिभाषण, प्रसाद, वणही और 'प्रशस्ति' अंग पाये जाते हैं। इस प्रकार इसमें तीन सन्धियाँ, एक अंक वीर रस एवं सात्वतीवृत्ति पायी जाती है।

प्रस्तुत रूपक में एक ही दिन की घटनाएं वर्णित हैं। इसके नायक भीम हैं। उनमें धीरोद्धत के सभी गुण पाये जाते हैं। हिडिम्वा और व्राह्मणी दो ही स्त्री पात्र हैं और पुरुष पात्रों में भीम, घटोत्कच, वृद्ध व्राह्मण और उसके तीन

---

१. मध्यमव्यायोग, पद्य ४६
२. वही, पद्य ४४
३. वही, पद्य ४५

पूर्ण है। हास्य या शृंगार का अभाव है। नाटक का प्रारम्भ भयानक वातावरण मे होता है। घटोत्कच के रौद्र रूप को देख कर ब्राह्मण परिवार मे भय का संचार होता है और वे भय के मारे भागते हुए दिखलायी पड़ते हैं। घटोत्कच द्वारा रखे गये प्रस्ताव के लिए ब्राह्मण कुमारो का आत्म-समर्पण करुण रस का अंकुरण करता है तथा बाद मे भीम का आगमन अद्भुत रस उत्पन्न कर वीर रस की भूमिका प्रस्तुत करता है। अन्तिम दृश्य मे भी हम हिडिम्बादि के व्यवहार देख कर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। यह व्यायोग सभी दृष्टियो से सफल है। समस्त घटनाएँ रसानुभूति और कौतूहल की वृद्धि मे सहायक हैं। सूत्रधार के साथ ही सामाजिको के मन में उस वृद्ध ब्राह्मण तथा उग्र प्रकृति वाले घटोत्कच के विषय मे जिज्ञासा उत्पन्न होती है। सबकी दृष्टि रंगमंच की ओर टँग जाती है।

इस व्यायोग मे कार्य, देश और काल की एकता भी पायी जाती है। एक दृश्य रहने के कारण सभी घटनाएँ एक के बाद बड़ी सरलता से घटित होती चली जाती हैं। रंगमंच एक वनस्थली के रूप मे सामने आता है और अन्त तक बना रहता है। थोड़ा-सा परिवर्तन हिडिम्बा की कुटी आदि के दृश्य मे है, पर वह बिना दृश्य बदले ही किसी संकेत द्वारा अवगत कराया जा सकता है। अतः इस रूपक मे देश-स्थान की एकता है।

समस्त घटनाएँ एक ही दिन की होने से न तो इसमे अतीत की ओर विशेष आकर्षण है और न भविष्य की चिन्ता। समस्त कथावस्तु एक ही दिन के पूर्वार्द्ध तक सीमित है। प्रातःकाल से प्रारम्भ हो कर मध्याह्न तक सभी घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं। अतः समय की एकता है।

कार्य की एकता भी विद्यमान है। ब्राह्मण परिवार की कथा मध्यम के आगमन की सुदृढ भूमिका है और उसी के माध्यम मे भीम दर्शकों के सम्मुख सहसा पर स्वाभाविक रूप मे उपस्थित होता है। मध्य मे घटोत्कच और भीम के घटना चक्र मे गतिशीलता और उत्सुकता के साथ प्राप्त्याशा की ओर संकेत करता है। इन सबकी परिणति हिडिम्बा-भीम मिलन मे बिना किसी अस्वाभाविकता के होती है। इस प्रकार प्रस्तुत रूपक मे कार्य की एकता है।

संक्षेप मे यह व्यायोग अत्यन्त सफल है। प्रारम्भ से अन्त तक आशा और निराशा का धूप छाहीं ताना-बाना बुना गया है। अन्त में हिडिम्बा का मानस परिवर्तन दर्शक को आश्चर्यचकित कर देता है। सम्भावित परिणाम एकाएक बहुत दूर चला जाता है और रौद्र रस के स्थान पर प्रेम की ही पीयूष धारा

प्रवाहित होने लगती है जिससे प्रत्येक व्यक्ति का हृदय भर जाता है और दर्शक भाव विभोर हो उठते हैं।

पञ्चरात्र : विवेचन

'पञ्चानां रात्रीणां समाहारः पञ्चरात्रम्, पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेनास्येति' 'पञ्चरात्रम्' पञ्चरात्रि विषयक कथावस्तु का वर्णन होने से प्रस्तुत नाटक का नाम 'पञ्चरात्र' है। द्रोण दुर्योधन से पाण्डवों को राज्य देने का अनुरोध करते हैं और दुर्योधन पांच दिनों के भीतर पाण्डवों को मिल जाने पर राज्य देने की प्रतिज्ञा करता है। समस्त कथानक इसी पर केन्द्रित है। द्रोण, भीष्म के साथ कौरवों का विराट के यहाँ गोधन-हरण, उत्तर के साथ अर्जुन का कौरवों को परास्त करना तथा पता लग जाने पर दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को राज्यांश देना, इसी पञ्चरात्र की धुरी पर प्रतिष्ठित है। अतः इस नाटक का नामकरण पञ्चरात्र सार्थक है। इसमें तीन अंक हैं।

कथावस्तु

द्यूत में पराजित हो कर पाण्डव तेरह वर्षों के लिए वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास करने के लिए राज्य से बाहर चले जाते हैं और वे विराट के यहाँ छद्म वेष में निवास करते हैं। इसी समय कुरुराज दुर्योधन एक वृहत् यज्ञ का आरम्भ करता है। यज्ञ धूम की सुगन्धि से सभी दिशाएँ व्याप्त हैं। इसी बीच कुछ उत्पाती बालकों के कारण यज्ञ मण्डप में आग लग जाती है, पर ऋत्विज उसे किसी प्रकार शान्त करते हैं। यज्ञ समाप्त होने पर आचार्य द्रोण से यज्ञ दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की जाती है। प्रथम द्रोणाचार्य उस दक्षिणा को स्वीकार करने में आनाकानी करते हैं। पर जब अत्यधिक आग्रह किया जाता है, तो वे दुर्योधन से कहते हैं कि पाण्डवों को आधा राज्य दे देना ही मेरी दक्षिणा है। शकुनि ने आचार्य की इस वाणी को धर्मवञ्चना कहा और उसने स्पष्ट शब्दों में निवेदन कर दिया कि पाण्डवों को राज्यार्द्ध नहीं दिया जा सकता है। द्रोणाचार्य ने किञ्चित् रोष प्रकट करते हुए कहा कि यदि यज्ञ की दक्षिणा चुकाना चाहते हैं, तो मेरी दक्षिणा यही है। आप स्वेच्छया पाण्डवों को राज्यार्द्ध न देंगे तो वे बलपूर्वक युद्ध कर अपना हिस्सा प्राप्त कर लेंगे। भीष्म पितामह और कर्ण ने आचार्य के क्रोध को शान्त करने का प्रयास किया।

दुर्योधन ने शकुनि के साथ परामर्श किया और यह निश्चय किया कि यदि

पञ्चरात्रि के भीतर पाण्डवो का पता लगा दिया जाये तो उन्हें राज्यार्द्ध दिया जा सकता है। आरम्भ मे तो द्रोणाचार्य ने कौरवो की इस शर्त को स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता दिखलायी, पर जब भीष्म पितामह ने अनुरोध किया तो द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की उक्त शर्त को स्वीकार कर लिया।

दुर्योधन ने यज्ञ मे सम्मिलित होने के हेतु विभिन्न राजाओं को आमन्त्रित किया। सभी राजा यथायोग्य कर ले कर दुर्योधन के यज्ञ मे सम्मिलित हुए। विराट ने दूत द्वारा सूचना भिजवायी कि सौ कीचक बन्धुओं का बिना अस्तित्व-योग के बध हो जाने के कारण वे शोक मग्न हैं। अत वे इस यज्ञ मे सम्मिलित नहीं हो सकेंगे। विराट के इस समाचार को सुन कर भीष्म पितामह ने द्रोणाचार्य से निवेदन किया कि पाण्डव नगर मे विद्यमान हैं। भीष्म मे ही इतनी शक्ति है कि वह अस्त्र प्रयोग के बिना बाहुबल से ही कीचक का बध कर सकता है। अतः विराट नगर में पाण्डवो की तलाश करनी चाहिये।

भीष्म और द्रोण ने मन्त्रणा करने के पश्चात् निश्चय किया कि विराट नगर पर आक्रमण कर वहाँ के गोधन का हरण करा लिया जाये, पाण्डवो का पता लगाने के लिए इस आक्रमण से बढ कर अन्य कोई युक्ति नही। यदि पाण्डव यहाँ वर्तमान हैं तो अवश्य ही इस युद्ध मे सम्मिलित होंगे।

—प्रथम अङ्क

द्वितीय अङ्क की कथावस्तु का प्रारम्भ विराट नगर मे महाराज विराट के जन्म दिन के उत्सव से होता है। गोधन की सजावट की जा रही है। सभी गोपाल उत्सव मग्न हैं। इसी समय दुर्योधन आदि राजागण बडी भारी सेना ले कर गोधन पर आक्रमण कर देते हैं। गायो का हरण होने लगता है। जब गोधन के हरण का समाचार विराट के समीप पहुँचता है और उन्हें यह ज्ञात होता है कि भीष्म आदि महारथियो के साथ कौरवो ने आक्रमण कर दिया है तो वे स्वयं कौरव सेना का सामना करने के लिए तैयार होने लगते हैं। कुमार उत्तर बृहन्नला को सारथी बना कर कौरव सेना का सामना करने के लिए चल पडता है। युद्ध में बृहन्नला की कुशलता के कारण उत्तर को विजय प्राप्त होती है। महाराज विराट को यह जान कर बडी प्रसन्नता होती है कि उत्तर ने अभिमन्यु को छोड शेष समस्त महारथियों को समाप्त कर दिया है। वे युद्ध के विषय मे जानकारी प्राप्त करते हैं। इसी समय एक दूत आकर प्रसन्नता-पूर्वक समाचार देता है कि युद्ध में अभिमन्यु पकड़ लिया गया है। अभिमन्यु को बन्दी बनाने वाला वही व्यक्ति है जिसे आपने पाकशाला मे अधिकृत्य कर रखा है।

राजा प्रसन्नता से आप्लावित हो उठता है और वृहन्नला को आदेश देता है कि वह आदर के साथ अभिमन्यु को बुला लाये। वृहन्नला का अभिमन्यु और भीम से साक्षात्कार होता है। भीम वृहन्नला के साथ अभिमन्यु का विराट के पास ले जाता है। वहाँ जाने पर अभिमन्यु से कुछ अपमानजनक प्रश्न किये जाते हैं जिनका उत्तर वह उत्तेजित स्वर में देता है।

इसी समय कुमार उत्तर उपस्थित होता है और घोषित करता है—'आज के युद्ध में अर्जुन की विजय हुई है मेरी नही।' ये हैं अर्जुन जो श्मशान स्थित शमी वृक्ष से अपने गाण्डीव धनुष तथा तूणीर ला कर कौरवों को परास्त करने में समर्थ हुए हैं। युधिष्ठिर ने घोषित किया कि अज्ञातवास का समय समाप्त हो चुका है। जब अभिमन्यु ने अपने पितृ वर्ग के दर्शन किये और उसे यथार्थ स्थिति का परिज्ञान हुआ तो वह आनन्द के साथ आश्चर्य विभोर हो गया। विराट ने युद्ध में प्राप्त विजय के उपलक्ष्य में अर्जुन को अपनी कन्या उत्तरा को देने की घोषणा की। पर अर्जुन ने निवेदन किया—"मैंने समस्त अन्तःपुर की नारियों को मगता के समान समझा है। अतएव उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ किया जा सकता है।" अर्जुन के इस कथन से विराट बहुत प्रसन्न हुआ और उन्होंने कन्या उत्तरा को अभिमन्यु के लिए देना स्वीकार किया।

—द्वितीय अङ्क

तृतीय अङ्क की कथावस्तु का प्रारम्भ कौरवों के सैन्य शिविर से होता है। यह समाचार व्याप्त होता है कि अभिमन्यु का एक पदाती ने रथ से उतार कर हरण कर लिया। इस समाचार को प्राप्त करते ही भीष्म ने निश्चय कर लिया कि अभिमन्यु का हरण करने वाला भीमसेन ही हो सकता है। पर शकुनि को भीष्म का यह कथन अच्छा नहीं लगा और उसने उपहास करते हुए कहा तब तो आप उत्तर को भी अर्जुन ही कहेंगे, जिसने हम लोगो को पराजित किया है।

द्रोण और भीष्म ने स्पष्ट कर दिया कि इस प्रकार की वाण वृष्टि अर्जुन द्वारा ही सम्भव है। सूर्य को अस्त करने की क्षमता अर्जुन में ही है। इतना रण कोशल अन्य महारथो नहीं दिखला सकता है।

परीक्षा के हेतु भीष्म के ध्वज में लगा हुआ एक वाण लाया गया और शकुनि ने उसमें अर्जुन का नाम पढ़ा, पढ़ते ही उसने उस वाण को फेंक दिया। द्रोणाचार्य का यह कथन शकुनि को रुचिकर नहीं हुआ कि वह अर्जुन था जिसने हमें परास्त किया। असन्तुष्ट हो कर शकुनि ने कहा—'आप लोगों को सारे

संसार में पाण्डव ही वीर दिखालायी पड़ते हैं, क्या यह सम्भव नहीं है कि बाण चलाने वाला दूसरा कोई अर्जुन नामधारी व्यक्ति हो ?' दुर्योधन ने भी उसका समर्थन किया।

कौरव सैन्य शिविर में कुमार उत्तर आया और उसने प्रार्थना की कि अभिमन्यु का विवाह उसकी बहन उत्तरा के साथ होने जा रहा है। अतः युधिष्ठिर ने भीष्मादि गुरुजनों की अनुमति माँगी है। इस समाचार से भीष्म और द्रोण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और घोषणा करते हैं कि पाण्डवों का अज्ञात-वास समाप्त हो चुका है और वे यहीं वर्तमान हैं। इस पर भीष्म की प्रेरणा से द्रोण ने कहा कि अभी पञ्चरात्रि की अवधि समाप्त नहीं हुई है, अतः दुर्योधन को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये। हार कर दुर्योधन पाण्डवों को राज्यार्ध देने की घोषणा करता है और द्रोण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं

—तृतीय अङ्क

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना का संयोजन

प्रस्तुत रूपक की कथावस्तु का मूल स्रोत महाभारत का विराट पर्व है। इस पर्व में बताया गया है कि युधिष्ठिर आदि पाण्डव वेष परिवर्तित कर विराट के यहाँ रहने लगे। यहाँ कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान होने पर भीम ने कीचक का वध किया। कौरवों ने रुष्ट हो कर विराट पर आक्रमण किया और उसके गोधन का हरण कर लिया। इस प्रकार महाभारतीय आख्यान में मूल कथावस्तु आकर्षणहीन है। नाटककार ने कथानक का ताना-बाना अपनी कल्पना के द्वारा निर्मित किया है।[1]

नाटककार ने अपने नाटकीय संविधान के अनुसार कथावस्तु में कल्पना द्वारा नया मोड़ उत्पन्न किया है। महाभारत का दुर्योधन अपने क्रिया-कलापों से नाटककार के दुर्योधन से सर्वथा भिन्न है। जहाँ वह 'सूच्यग्रमनैवदाप्यामिति-

---

१. अत पर निबोधेद वैराट पर्वविस्तरम्
विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुलां शमीम् ॥
दृष्ट्वा सन्निदधुस्तत्र पाण्डवा ह्यायुधान्युत ।
यत्र प्रविश्य नगरं छद्मनान्यवसंस्तु ते ॥

—महाभारत । विराट पर्व, अध्याय ७१, पद्य २०६-२०७

न्यायुद्धेन केशवः' कहता है वहाँ नाटककार दुर्योधन केवल गुरु की आज्ञा से आधा राज्य दे देता है। अतः पञ्चरात्रम् में कवि ने महाभारत के विषय के विपरीत कथावस्तु प्रस्तुत की है। यहाँ निम्नलिखित कल्पना के चमत्कार प्राप्त होते हैं—

(१) महाभारत में दुर्योधन के यज्ञ की चर्चा नहीं है। पर नाटककार ने यज्ञ की कल्पना कर एक नया चमत्कार उत्पन्न किया है।

(२) यज्ञ के प्रधान आचार्य द्रोण हैं। यज्ञ की समाप्ति होने पर दुर्योधन द्रोणाचार्य से दक्षिणा प्राप्ति के लिए अनुरोध करता है और अत्यधिक आग्रहपूर्वक उन्हें दक्षिणा स्वीकार करने के लिए वाध्य करता है।

(३) दक्षिणा में द्रोणाचार्य पाण्डवों के लिए राज्यार्ध की याचना करते हैं। वे पाण्डवों का दाय भाग दिलाने के लिए अपने आचार्यत्व का प्रयोग करते हैं। इस प्रयोग ने ही नाटक में एक नया मोड़ उत्पन्न किया है।

(४) शकुनि द्रोणाचार्य की दक्षिणा को वञ्चना कहता है और उसका विरोध करता है। भीष्म के द्वारा समझाये जाने पर वह शर्त रखने के लिए दुर्योधन को वाध्य करता है। दुर्योधन पाँच दिनों के भीतर पाण्डवों के प्राप्त होने पर राज्यार्द्ध देने की शर्त रखता है।

(५) अभिमन्यु विराट नगर में होने वाले युद्ध में अत्यधिक पराक्रम दिखलाता है। भीम उसका हरण करता है।

महाभारत में दुर्योधन के समृद्ध यज्ञ का उल्लेख नहीं आया है। और न यह चर्चा ही मिलती है कि अभिमन्यु कृष्ण का प्रतिनिधि हो कर दुर्योधन के यज्ञ में सम्मिलित हुआ हो। महाभारत में यह तथ्य भी उपलब्ध नहीं है कि गो ग्रहण युद्ध में सम्मिलित हो कर अभिमन्यु ने पराक्रम दिखलाया हो तथा उसके पराक्रम से विराट पुत्र उत्तर आतंकित हुआ हो। भीम द्वारा वन्दी वनाये जाने का कथन भी महाभारत में नहीं है।

महाभारत के अनुसार विराट गो ग्रहण के समय राजधानी में नहीं थे। वे उस समय दक्षिण गो ग्रहण में प्रवृत्त त्रिगर्त नामक राजा से युद्ध करने के लिए गये हुए थे। अतः जव गो ग्रहण उपस्थित हुआ तव उत्तर पिता को अनुपस्थित देख कर युद्ध करने गया था।

महाभारत में यह भी वताया गया है कि उत्तर द्वारा गो ग्रहण के समय युद्ध किये जाने के दो-तीन दिन के पश्चात् ही पाण्डवों ने अपने को प्रकट किया था, पर इस रूपक में धर्मराज ने स्वयं अपनी प्रतिज्ञा को समाप्त वताया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण रूपक मे पर्याप्त परिवर्तन दिखलायी पड़ता है। निश्चयतः नाटककार ने मूल कथा को एक नया रूप दिया है।

शास्त्रीय विश्लेषण

नाटककार भास ने प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना शब्द का प्रयोग किया है। नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है। वह श्रीकृष्ण की स्तुति करता हुआ अपनी और सामाजिको की रक्षा की प्रार्थना करता है। श्लिष्ट पद्य के द्वारा भास ने रूपक के मुख्य पात्रो का परिचय दिया है। इसके पश्चात् सूत्रधार कुछ और निवेदन करना चाहता है, पर उसका ध्यान नेपथ्य मे होने वाले कोलाहल से आकृष्ट हो जाता है। वह उसका कारण जानने का प्रयास करता है। उसे ज्ञात होता है कि महाराज दुर्योधन का यज्ञ हो रहा है जिसमें देश के समस्त राजागण प्रेमवश अपने सभी परिजनो के साथ आये हुए हैं। सूत्रधार कहता है—"भवतु, विज्ञातम।"[1]

'सर्वैरन्त पुरै. सार्धं प्रीत्या प्राप्तेषु राजसु।
यज्ञो दुर्योधनस्यैप कुरुराजस्य वर्तते॥'[2]

इस प्रस्तुत रूपक मे प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम ये पांचो अवस्थाएँ प्राप्त हैं—"धर्ममालम्बमानेन दुर्योधनेन अहमेवानुगृहीतो नाम।"[3] से फल के प्रति उत्सुकता प्रकट होती है जिससे यहाँ प्रारम्भ नामक अवस्था है। इसके पश्चात् सभी लोगो द्वारा आशीर्वाद लेने पर दुर्योधन द्रोणाचार्य से गुरु दक्षिणा ग्रहण करने का आग्रह करता है पर द्रोणाचार्य कहते हैं—'फिर कभी माँग लूंगा।' इस पर दुर्योधन कहता है—'आचार्य हो कर आप भिक्षा माँगें यह उचित नही।' द्रोणाचार्य को यह विश्वास नहीं था कि जो वह दक्षिणा में माँगना चाहते हैं उसे दुर्योधन दे देगा। अत. वे दु खी हो जाते हैं और उनकी आँखें आँसुओ से गीली हो जाती हैं। इस पर दुर्योधन उन्हें विश्वास दिलाने के लिए अपने हाथ मे जल लेकर प्रतिज्ञा करता है—'वे जो चाहेंगे वही वह देगा।' दुर्योधन के इस कथन को सुन कर द्रोणाचार्य फल प्राप्ति की इच्छा से दक्षिणा की याचना करने का प्रयत्न करते हैं। यहीं से प्रयत्न नामक अवस्था प्रारम्भ होती है।

---

१. पञ्चरात्रम्, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सन् १९५८, पृ० ३
२. वही, पद्य १।२
३. वही, पृष्ठ १६

द्रोणः—"हन्त !लब्धो मे हृदय विश्वासः। पुत्र ! श्रूयतां।"[1]

येषां गतिः क्वपि निराश्रयाणां संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा।
त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागमेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च ॥[2]

इस स्थल में द्रोणाचार्य की उत्सुकता दुर्योधन के बार-बार कहने पर और प्रतिज्ञा करने पर फल प्राप्ति रूप कार्य की ओर अग्रसर होती है, अतः यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

जब द्रोणाचार्य यह अनुभव करते हैं कि उनका प्रयत्न विफल होने जा रहा है तो वे कर्ण की सलाह स्वीकार कर दुर्योधन से मीठी-मीठी बातें करते हैं। वे कहते हैं—"पुत्र ! दुर्योधन !! अहं तव प्रभावी ननु।"[3]

दुर्योधन—"न ममैव, कुलस्यापि मे भवान् प्रभुः।"[4]

द्रोणः—"एतत् तवैव युक्तम्। तत् पुत्र !

त्वं वञ्च्यसे यदि मया न तवात्र दोष-
स्त्वां पीडयामि यदि वास्तु तवैप लाभः।
भेदाः परस्परगता हि महाकुलानां
धर्माधिकार वचनेपु शमीभवन्ति ॥[5]

इस वार्तालाप से द्रोणाचार्य आशान्वित दिखलायी पड़ते हैं। दुर्योधन आचार्य से कहता है कि वह सम्मति लेना चाहता है। आचार्य पूछते हैं कि वह किसकी अनुमति लेना चाहता है ? भीष्म की, कृपाचार्य की, सिन्धुराज जयद्रथ, अश्वत्थामा की, विदुर की या अपने माता-पिता की ? द्रोण अपने इस प्रश्न का उत्तर फल प्राप्ति के प्रति नैराश्य रूप में अनुभव करते हैं। जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि शकुनि से दुर्योधन परामर्श लेना चाहता है तो फल प्राप्ति में बाधा के आ जाने से निराशा उत्पन्न होती है। पर अगले क्षण ही शकुनि द्वारा पाण्डवों के पाँच दिनों के भीतर प्राप्त किये जाने वाली शर्त की बात को सुन कर द्रोण के मन में आशा उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार इस स्थल पर प्राप्त्याशा नामक अवस्था है।

---

१. पञ्चरात्रम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९५८, पृ० २८
२. वही, पद्य १।३३
३. वही, पृ० ३४
४. वही, पृ० ३५
५. वही, पद्य १।४१

तृतीय अङ्क मे दुर्योधन की सेना अपने समस्त वीरो का प्रयोग करके भी विराट की गायो के अपहरण मे असफल रहती है और साथ ही भीम अभिमन्यु का हरण कर लेते हैं। सूत इस घटना की सूचना दुर्योधन को सभा मे देता है। द्रोण उससे पूछते हैं—'अभिमन्यु को किसने पकडा ?' सूत के यह कहने पर कि एक पदाती ने, सभी को आश्चर्य होता है। सूत द्वारा पदाती की वीरता का वर्णन सुन कर भीष्म क निश्चय हो जाता है कि अभिमन्यु को वश में करने वाला भीम ही हो सकता है। अत. वे सबसे अस्त्र रख देने को कहते हैं। भीष्म की इस बात को सुन कर सभी प्रश्न करते हैं और भीष्म उत्तर देते हैं—

हृतप्रवेगो यदि बाहुना रथो वृकोदराद्धगत स चिन्त्यताम् ।
पुराहि तेन द्रुपदात्मजा हरन् पदातिनैवविजितो जयद्रथ. ॥[१]

उपर्युक्त स्थल मे नियताप्ति अवस्था है। यहाँ पर फल प्राप्ति अर्थात् पाण्डवो को राज्यार्द्ध की प्राप्ति होगी, इस बात का निश्चय हो जाता है।

कुछ विद्वान् नियताप्ति की स्थिति प्रस्तुत रूपक मे नहीं मानते। टी० गणपति शास्त्री का अभिमत है कि धनञ्जय का अनुसरण करते हुए 'पञ्चरात्रम्' मे नियताप्ति की सिद्धि नही हो सकती। विमर्श नामक सन्धि प्रकरी (अर्थ प्रकृति) एव नियताप्ति (अवस्था) के मिलन से होती है। समवकार मे विमर्श सन्धि का अभाव है। अतएव नियताप्ति नामक अवस्था प्रस्तुत रचना मे सम्भव नहीं है।[२]

समीक्षा करने पर उक्त मत तर्क यथार्थ प्रतीत नहीं होता। धनञ्जय ने प्रकरी और नियताप्ति के सयोग को विमर्श सन्धि कहा है। पर वेणीसहार मे नियताप्ति तो है, किन्तु प्रकरी नहीं है। अतएव यह आवश्यक नही कि प्रकरी और नियताप्ति का सयोग हो ही। अत. प्रकरी के अभाव मात्र से पञ्चरात्रम मे नियताप्ति का अभाव नहीं माना जा सकता है।

तृतीय अङ्क मे ही विराट का पुत्र उत्तर धर्मराज युधिष्ठिर के सदेश को ले कर उस स्थल पर पहुँचता है जहाँ पर दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, शकुनि आदि अर्जुन के बाण के विषय मे वार्तालाप कर रहे हैं। वह सभी लोगों को प्रणाम करता है। द्रोण पूछते हैं—'विराट ने क्या सन्देश भेजा है ?' उत्तर कहता है—'पूजनीय युधिष्ठिर ने सन्देश दिया है।' सन्देश सुन लेने के बाद द्रोणाचार्य कहते हैं—

---

१. पञ्चरात्रम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९५८, ३।११

२ पञ्चरात्रम, सम्पादक : टी० गणपति शास्त्री पृ० ११८

इत्ययं वयमानीतः पञ्चरात्रोऽपि वर्तते ।
धर्मेणावर्जिता भिक्षा धर्मेणैव प्रदीयताम् ॥[1]

इसके उत्तर में कहा गया दुर्योधन का वाक्य फलागम अवस्था का आधार है ।

बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम्
मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ।[2]

इस प्रकार इस रूपक में पाँचो अवस्थाएँ प्राप्त हैं ।

अर्थ प्रकृतियों में से बीज, विन्दु और कार्य ये तीन अर्थ प्रकृतियाँ ही प्राप्त हैं । प्रथम अङ्क में द्रोण के इस कथन द्वारा कि धार्मिक कृत्य द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान कर दुर्योधन ने वस्तुतः मेरा ही सम्मान बढ़ाया है, मे बीज की स्थिति है । आगे चल कर यह बीज ही पल्लवित और पुष्पित होता है ।

'विन्दु' इस अर्थ प्रकृति का प्रयोग अन्य अर्थ प्रकृतियों के समान एक ही बार किया जाय यह आवश्यक नहीं । यह तत्व तो विच्छिन्न कथावस्तु को अविच्छिन्न कर फलनिर्वहणता की ओर अग्रसर करता है । अतः इसका प्रयोग एक से अधिक बार हो सकता है । प्रथम अङ्क में दुर्योधन का सभी लोग अभिनन्दन करते हैं । दुर्योधन अपने गुरु द्रोण को प्रणाम करता है और प्रत्यभिवादन में विभिन्न प्रकार के आशीर्वादों और शुभ कामनाओं को प्राप्त करता है । अन्य स्थानों से आये हुए लोग बधाई देते हैं । दुर्योधन को विराट का स्मरण आता है । वह कहता है कि क्या कारण है कि विराट नही आया । शकुनि उत्तर देता है 'मैंने उसके पास दूत भेजा है, सम्भवतः वह आता होगा ।' इस प्रकार यह बधाई और आशीर्वादों का क्रम इस प्रकार चलता है कि मुख्य कथा अपने प्रथम चरण में ही अवरुद्ध हो जाती है, जिसे गतिशील बनाने का कार्य दुर्योधन का निम्नलिखित वाक्य करता है—"भो आचार्य ! धर्मे धनुषि चाचार्य ! प्रतिगृह्यतां दक्षिणा ।"[3] इस स्थल पर विन्दु नामक अर्थ प्रकृति है ।

रूपक का आरम्भ 'विष्कम्भक' से होता है । कवि ने इसमें भी अर्थ प्रकृति का प्रयोग किया है । सूत्रधार के चले जाने के पश्चात् तीन ब्राह्मण मंच पर आते हैं । ये तीनों ही सुयोधन के यज्ञ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—"अहो

---

१. पञ्चरात्रम्, सम्पादक : टी० गणपति शास्त्री, पद्य सं० ३।२४

२. वही, ३-२५

३. पञ्चरात्रम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० २४

कुरुराजस्य यज्ञ समृद्धिः ।"[1] इसके बाद तीनो दुर्योधन के यज्ञ का अत्यधिक विस्तृत वर्णन करते हैं। पश्चात् प्रथम ब्राह्मण दुर्योधन को भीष्म, द्रोणादि के साथ आते देख कर कहता है—"अये ! अयमत्रभवता कुरुराजो दुर्योधनो भीष्म-द्रोणपुर स्सरसर्वराजमण्डलेनाऽनुगम्यमान इत एवाभिवर्तते ।"[2] उसका यह कथन कथा को अविच्छिन्न कर आगे की ओर गतिशील करता है। अतः बिन्दु अर्थ प्रकृति है।

पाण्डवो को अर्द्ध राज्य की प्राप्ति अथवा आचार्य द्रोण की दक्षिणा इस रूपक का कार्य है। अत. इसे कार्य अर्थ-प्रकृति के अन्तर्गत माना जायगा। इस रूपक मे पाँचो सन्धियाँ प्राप्त हैं। मुख-सन्धि प्रथम सन्धि है और यह द्रोण के कथन—"धर्ममालम्बानेन दुर्योधनेनाऽहमेवानुगृहीतो नाम"[3] से आरम्भ हो कर "वत्स गान्धारराज ! अभिधीयताम्"[4] तक चलती है। इस सन्धि का प्रथम अग उपक्षेप है जो, द्रोण के धर्ममालम्बमानेन वाक्य मे समाहित है। कुरुराज के यज्ञ की समृद्धि से उसकी प्रसन्नता तथा ऐश्वर्य वृद्धि के वातावरण के कारण उपक्षेप के अन्तर्गत है। दूसरा अग युक्ति मुखाग है जो दुर्योधन के निम्नलिखित कथन मे समाहित है—

कृतश्रद्धो ह्यात्मा वहति परितोप गुरुजनो,
जगद् विश्वस्त मे निवसति गुणो नष्टमयश ।
मृतैः प्राप्यः स्वर्गो यदिह कथयत्येतदनृत,
परोक्षो न स्वर्गो बहुगुणमिहैवैप फलति ॥[5]

दुर्योधन अपने द्वारा सम्पन्न यज्ञ का स्वय ही समर्थन कर रहा है।

उपक्षिप्त बीज को जब पुष्ट किया जाता है तब उस स्थिति को परिकर मुखाग कहते हैं। दुर्योधन का यह कथन—"धर्मे धनुपि चाचार्य ! प्रतिगृह्यतां दक्षिणा" बीज को पुष्ट करने वाला है, अत. इसे परिकर मुखाग कहा जायेगा। इसके पश्चात् जब दुर्योधन आचार्य द्रोण को अपने प्रति आश्वस्त नहीं कर पाता तब उन्हें विश्वास दिलाने के लिए हाथ में जल ले कर प्रतिज्ञा करता

---

१. पञ्चरात्रम्, चौखम्बा सस्करण, पृ० ४
२ वही, पृ० १४
३. वही, पृ० १६
४. वही, पृ० ४१
५. वही, पृ० १७, श्लोक १।२३

है। दुर्योधन की इस प्रक्रिया को परिन्यास मुखांग माना जायेगा। द्रोणाचार्य के द्वारा कहा गया निम्नांकित पद्य करण मुखांग का उदाहरण है। इसी प्रकार मुख सन्धि में विलोभन और उद्भेद मुखांग भी प्राप्त होते हैं।

येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां संवत्सरैर्द्वादशभिर्नदृष्टा ।
त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागमेषा च भिक्षा ममदक्षिणा च ॥[1]

दूसरी प्रतिमुख सन्धि है जो शकुनि के—"मा तावद् भोः"[2] से आरम्भ हो कर द्रोण के "वत्स ! गान्धारराज !! अभिधीयताम् ।"[3] तक चलती है। द्रोणाचार्य को विश्वास हो जाता है किन्तु दुर्योधन उन्हें मनचाही दक्षिणा अवश्य देगा। पर शकुनि का कथन उनकी आशा को छिन्न-भिन्न कर देता है। द्रोण की दक्षिणा को सुन शकुनि अधीरता से कह उठता है—

उपन्यस्तस्य शिष्यस्य विश्वस्तस्य च गौरवे ।
यज्ञप्रस्तुतमुत्पाद्य युक्तेयं धर्मवञ्चना ? ॥[4]

शकुनि को उत्तर देते हुए द्रोणाचार्य कहते हैं—

कथं धर्मवञ्चनेति ! तावद् भो गान्धारविषयविस्मित ! शकुने !!

त्वदनार्यभावात् सर्वलोकमनार्यमिति मन्यसे ! हन्त भोः ।[5]
भ्रातृणां पैतृकं राज्यं दीयतामिति वञ्चना ।
किं परं याचितैर्दत्तं बलात्कारेण तैर्हृतम् ॥[6]

उपर्युक्त स्थल में अवमर्ष संध्यन्ग है।

गर्भ सन्धि की योजना भी प्रथम अंक में हुई है। भीष्म के इस कथन से—"कथमशस्त्रेणेति। भो आचार्य ! अभ्युपगम्यतां पञ्चरात्रम्।"[7] प्रारम्भ हो कर सम्पूर्ण द्वितीय अङ्क में और तृतीय अङ्क में सूत के निम्नलिखित कथन तक गर्भ सन्धि चलती है।

१. पञ्चरात्रम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० २८, श्लोक १।३३
२. वही, पृ० २९
३. वही, पृ० ४१
४. वही, पृ० २९, श्लोक १।३४
५. वही, पृ० २९
६. वही, पृ० ३०, श्लोक १।३५
७. वही, पृ० ४४

श्रोतुमर्हति महाराज । तेन खलु,
लङ्घयित्वा जवेनाश्वान्न्यस्तश्चास्कर कर. ।
प्रसारितहयग्रीवो निष्कम्पश्चय रथ. स्थित. ॥[1]

इस सन्धि मे हम देखते हैं कि शकुनि द्वारा प्रस्तावित पाँच रात्रियो वाली शर्त से नष्ट हुए बीज का अन्वेषण बार-बार किया गया है।

विराट के दूत से विराट के यज्ञ मे न जाने के कारण को जान कर भीष्म द्रोण से शकुनि द्वारा प्रस्तावित शर्त को मान लेने का कहते हैं तो द्रोणाचार्य उनसे पूछते हैं—क्यो ? द्रोणाचार्य को दिया गया भीष्म का उत्तर अनुमान पर आधारित है। अत इसमे अनुमान नामक गर्भांग है—

भीमसेनस्य ला लैषा सुव्यक्त बाहुशालिनः ।
योऽस्मिन् भ्रातृशते रोप स तस्मिन् फलित शते ॥[2]

इस प्रकार गर्भ सन्धि मे अभूताहरण तोटक, क्रम, रूप, मार्ग और उद्वेग नामक सध्यन्ग विद्यमान हैं। उद्वेग की योजना द्वितीय अङ्क मे प्रवेशक के बाद भट शत्रुओ के द्वारा किये गये कार्य और उससे उत्पन्न भय का वर्णन करता है। भट कहता है—"भो भो निवेद्यता निवेद्यता महाराजाय—एता हि दस्युकर्म-प्रच्छन्न विक्रमैर्धार्तराष्ट्रैर्ह्रियन्ते गाव इति।" तत्र हि,

द्रुतैश्च वत्सैर्व्यथितैश्च गोगणैर्निरीक्षणत्रस्तमुखैश्च गोवृषैः ।
कृतार्तनादाकुलित समन्ततो गवा कुल शोच्यमिहाकुलाकुलम् ॥[3]

चतुर्थ सन्धि विमर्श अथवा अवमर्ष कहलाती है। प्रस्तुत नाटक मे यह सन्धि तृतीय अक में भीष्म के 'अस्त्रो को छोड़ दो' कथन से ले कर तृतीय अङ्क मे उत्तर के आगमन तक चलती है। भीष्म कहते हैं कि यदि हाथ से रथ के वेग को समाप्त कर दिया तो समझिये कि अभिमन्यु भीम के अङ्क मे पड़ गया है क्योकि पहले द्रौपदी हरण करते समय जयद्रथ को भीम ने पैदल ही जीता था। भीष्म की बात का समर्थन द्रोणाचार्य भीम की शिष्यावस्था की एक घटना के वर्णन से करते हैं। शकुनि को यह सब अत्यन्त अरुचिकर लगता है। अतः वह द्रोण और भीष्म दोनों का तिरस्कार करता है।

---

१. पञ्चरात्रम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० ११६, श्लोक ३।१०
२. वही, पृ० ४५, श्लोक १।५२
३ वही, पृ० ५६-५७, श्लोक २।१

तृतीय अङ्क में ही युधिष्ठिर का सन्देश ले कर आये उत्तर के इस कथन—'तत्र भवता युधिष्ठिरे' से प्रारम्भ हो कर अन्त तक निर्वहण को एकत्र करता है। उत्तर के द्वारा युधिष्ठिर के सन्देश को सुन लेने के पश्चात् द्रोणाचार्य दुर्योधन से कहते हैं—

इत्यर्थं वयमानीताः पञ्चरात्रोऽपि वर्तते ।
धर्मेणावर्जिता भिक्षा धर्मेणैव प्रदीयताम् ॥[१]

द्रोण के इस कथन में नाटक के समस्त कार्यों को एक स्थान पर समाहित कर दिया है। अत ग्रथन नामक निर्वहण अंग है। नाटक के अन्त में द्रोण दोनों ही वंशों के कल्याण की आशंका करते हुए कहते हैं—

हन्त सर्वे प्रसन्नाः स्मः प्रवृद्धकुलसंग्रहाः ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥[२]

पाँच अर्थोपक्षेपकों में से विष्कम्भक और प्रवेशक इन दो का समावेश पाया जाता है। नाटक के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना की गयी है। इसमें मध्यम श्रेणी के पात्र हैं। अतीत और भावी घटनाओं की सूचना इसके द्वारा दी गयी है। तीनों ब्राह्मण विष्कम्भक के रूप में ही प्रवेश करते हैं। इनके द्वारा दुर्योधन के यज्ञ की सूचना दी जाती है। साथ-ही-साथ दुर्योधन पाण्डवों को राज्य प्रदान की भी सूचना देता है।

रूपक के प्रथम और द्वितीय अङ्कों के मध्य में प्रवेशक की योजना पायी जाती है। इसके समस्त पात्र अधम श्रेणी के हैं। वृद्ध गोपालक, गोमित्रक तथा ग्वाल बालक एवं बालिकाएँ सभी निम्न श्रेणी के हैं। इनकी भाषा प्राकृत है। इसके द्वारा विराट के जन्म दिन के उत्सव की और दुर्योधन के द्वारा किये गये आक्रमण की सूचना दी गयी है।

नाट्य-विधा

अधिकांश विद्वानों ने इसे समवकार माना है। कीथ ने लिखा है—"इसे कदाचिद् समवकार की श्रेणी में रखा जा सकता है। कम-से-कम इस आधार पर कि यह ऐसा रूपक है जिसमें एक से अधिक नायक पात्र हैं। और न्यूनाधिक पुरुषार्थ लाभ करते हैं।"[३]

---

१. पञ्चरात्रम् : चौखम्बा संस्करण, पृ० १२५, श्लोक ३।२४
२. वही, पृ० १२६
३. Sanskrit Drama : Its Origin and Development', p. 97

नाट्यशास्त्र के अनुसार समवकार मे देव-दानवो की कथा रहती है, बारह नेता पात्र होते हैं जिनमे से प्रत्येक को पृथक पृथक् फल प्राप्त होता है। प्रत्येक अक मे एक कपट, एक विद्रव और एक शृ गार होना चाहिये। प्रथम अंक में कथावस्तु का आधा भाग, द्वितीय अङ्क मे शेष आधे का दो तिहाई भाग और तृतीय अङ्क में एक तिहाई भाग निबद्ध रहता है। इसी के अनुमार प्रथम अङ्क में मुख एव प्रति मुख सन्धियाँ तथा दूसरे और तीसरे मे गर्भ एव निर्वहण सन्धियाँ होती है। प्रधान रस वीर होता है। विन्दु नामक अर्थ प्रकृति और प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक नही रहता। इस प्रकार समवकार के कतिपय लक्षण प्रस्तुत रूपक मे घटित होने के कारण कीथ ने इसे समवकार कहा है। विचार करने से इस रूपक मे नाट्य-शास्त्र मे वर्णित, समवकार के लक्षण पूर्णतया घटित नहीं होते। पाँचो सन्धियाँ, प्रवेशक और विन्दु अर्थ-प्रकृति का सद्भाव इसमे पाया जाता है। अत इसे हम विशुद्ध समवकार नहीं मान सकते।

एक समालोचक ने इसे व्यायोग माना है। उनका अभिमत है कि दश रूपक और भाव प्रकाश में प्रतिपादित व्यायोग के लक्षण इसमे अधिक प्राप्य हैं।[1] विचार करने पर इसे व्यायोग नहीं माना जा सकता है। यतः व्यायोग मे एक ही अक रहता है और तीन सन्धियाँ होती हैं। पर प्रस्तुत रूपक मे तीन अंक और पांच सन्धियाँ हैं। इसमे एक दिन की कथावस्तु भी नहीं है जो कि व्यायोग के लिए आवश्यक है।

प्रश्न यह है कि 'पञ्चरात्रम्' को किस प्रकार का रूपक माना जाय? भरत मुनि और दश रूपककार के लक्षणानुसार यह नाटक भी नहीं है, क्योंकि नाटक मे कम-से-कम पाँच और अधिक-से-अधिक दस अङ्क होने चाहिये। पञ्चरात्रम में केवल तीन अक हैं। यह सत्य है कि नाटक के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता है वे सभी तत्व जैसे पाँच सन्धियाँ, प्रसिद्ध कथानक, प्रसिद्ध राजवश के राजा का नायक होना, वीर रस, अर्थोपक्षेपको का प्रयोग, इस नाटक में प्राप्त है। अत पञ्चरात्रम् मे सबसे अधिक तत्व नाटक के पाये जाते हैं। अतएव तीन अङ्क होने पर भी इसे नाटक मानना अधिक न्यायसंगत है।

ऊरुभंग - विवेचन

ऊरुभग एक अङ्क का प्रशस्त रूपक है। इसकी वस्तु योजना अत्यन्त

१. D R. Mankad, Types of Drama, p 58.

कौशलपूर्ण ढंग से निवद्ध की गयी है। संस्कृत में यही एकमात्र दुखान्त रूपक है। इसका समस्त कथा सूत्र एक ही वात पर केन्द्रित है और वह बात है भीम द्वारा गदा-युद्ध में दुर्योधन का ऊरुभंग। ऊरुभंग से पूर्व के समस्त कथानक और कथोपकथन उक्त दृश्य की ओर ही आकर्षित होते हैं। रूपक का चरम परि-पाक भी इसी घटना से सम्बद्ध है। श्रीकृष्ण के संकेत से भीम छलपूर्वक दुर्योधन की जाँघ पर प्रहार करता है और उसे तोड़ डालता है। वलदेव का अमर्ष, धृतराष्ट्र का शोक संवाद, अश्वत्थामा का आगमन, अमर्षपूर्ण उद्‌गार, दुर्योधन द्वारा शान्ति का उपदेश इत्यादि कथानक ऊरुभंग से ही सम्बद्ध हैं। अतः नाटक का नामकरण सार्थक और यथार्थ है।

कथावस्तु

महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डवों की समस्त सेना नष्ट हो चुकी है। कौरव पक्ष में केवल दुर्योधन अवशिष्ट है, जिसके साथ भीम का गदा-युद्ध होता है। सूत्रधार युद्धभूमि का वर्णन करता है और दुर्योधन भीम के गदा-युद्ध का संकेत देता है। भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध आरम्भ हो जाता है। दोनों परस्पर गदाओं का प्रहार करते हैं। पाण्डवों और कृष्ण के अतिरिक्त वलराम भी दर्शकों में सम्मिलित हैं। दोनों के गदाओं से वज्रपात जैसी कठोर ध्वनि होती है। गदाओं के आघात से दोनों के शरीर क्षत-विक्षत हैं। सहसा दुर्योधन के गदाघात से भीम मूच्छित हो कर भूमि पर गिर जाता है और भीम के गिरते ही विदुरादि उदास हो जाते हैं।

दुर्योधन के दान पुण्य को देख कर बलराम प्रसन्न होते हैं। भीम कुछ समय तक विश्राम के पश्चात् प्रकृतिस्थ होता है और श्रीकृष्ण के साथ मन्त्रणा करता है। श्रीकृष्ण उसे कुछ गुप्त संकेत वताते हैं। भीम पुनः द्विगुणित उत्साह के साथ युद्ध में प्रवृत्त हो जाता है। इस वार अवसर प्राप्त कर वह दुर्योधन की जंघा पर गदा प्रहार करता है जिससे उसकी जाँघ टूट जाती है और वह जमीन पर गिर जाता है।

दुर्योधन को इस प्रकार गिरते हुए देख कर बलराम कुपित हो उठते हैं और छलपूर्वक किये गये इस आघात की निन्दा करते हैं।

श्रीकृष्ण और पाण्डव भीम को वलराम के क्रोध से वचाने के लिए एक घेरे में आविष्ट कर लेते हैं। वलदेव क्रोधाभिभूत हो कहते हैं—"मेरे रहते हुए मेरी अवहेलना कर भीम ने मर्यादा के विपरीत दुर्योधन की जाँघ पर गदा प्रहार कर उसे गिरा दिया है। मैं इस अनीति का फल भीम का वक्षस्थल चीर कर

प्रस्तुत करूंगा।" बलदेव की उत्तेजनापूर्ण इन बातो को सुन दुर्योधन कहता है—"भगवन् ! भीम ने युद्ध मर्यादा का ध्यान न कर गदा से मार कर मुझे गिरा दिया है। मेरा शरीर जर्जरित हो चुका है। अब आप प्रसन्न हो जाइये और भूमि पर गिरे हुए मेरे इस मस्तक का प्रणाम स्वीकार कीजिये। आप क्रोध का त्याग कीजिये जिससे कुरुकुल को जलाञ्जलि देने के लिए पाण्डव जीवित रहे। वैर की अब क्या आवश्यकता ? हम लोग तो अब नष्ट हो गये हैं।" बलराम ने पुन दुर्योधन से कहा—"तुम क्षणमात्र जीवन धारण करो, जिससे मैं पाण्डवो का सहार कर तुम्हारी स्वर्ग यात्रा मे सहायक बन सकूं।"

दुर्योधन—"गुरुदेव ! भीम की प्रतिज्ञा अब पूर्ण हो चुकी है। मेरे सौ भाई मारे गये हैं अब मैं भी अन्तिम सांस तोड रहा हूं। अत युद्ध से क्या लाभ !"

बलराम—"दुर्योधन, मुझे इस बात का दु.ख है कि मेरे समक्ष तुम्हें छल से भीम ने मारा।" इस पर दुर्योधन ने कहा कि यदि आपको यह विश्वास है कि मैं छल से मारा गया हू तो मुझे पूर्ण सन्तोष है। पर आपने यह कहा कि भीम ने छल, से मुझे जीता वैसी कोई बात नही है। मुझे तो क्षीरसागरशायी, परिजात वृक्ष के हरणकर्त्ता जगत प्रिय भगवान श्रीकृष्ण ने भीम की गदा मे प्रविष्ट हो काल का ग्रास बनाया है।

इसी समय वहाँ परिचरो और सम्बन्धियों के सहित धृतराष्ट्र गान्धारी सहित उपस्थित होते हैं। वे दुर्योधन को ढूंढते हैं और क्रूर काल को कोसते हुए कहते हैं कि गदा युद्ध मे दुर्योधन के साथ छल किया गया है। हमारे कुल का सर्वनाश हो गया, अब कोई तिलाञ्जलि देने वाला भी नही रहा। इस प्रकार प्रलाप करते हुए वे दुर्योधन के पास पहुँचते हैं। दुर्योधन सभी को वीरोचित साम्त्वना देता है और अपनी पत्नियों को अपने अभ्युदय और महत्व का वर्णन करता हुआ साहस प्रदान करता है। उसने अपने पुत्र दुर्जय को उपदेश देते हुए कहा—"तुम यह सोच कर दु ख का त्याग करो कि प्रशसित श्रीवाला तथा अभिमानी दुर्योधन तुम्हारा पिता था। जलाञ्जलि दान के अवसर पर रेशमी वस्त्रो से आच्छादित युधिष्ठिर की बाईं भुजा का स्पर्श कर मेरे नाम के अन्त मे जल देना।" गुरुपुत्र अश्वत्थामा का आगमन होता है। वह दुर्योधन की तलाश करता हुआ वहाँ आता है और उत्तेजित हो कर कहता है—"राजन् ! गरुडवाहन और सारगपाणि के साथ मैं पाण्डु पुत्रो का वध कर डालूंगा। गदा युद्ध मे की गयी अनीति को मैं सहन नहीं कर सकता हूं। इस अन्याय का फल तो पाण्डवो को भोगना ही पडेगा।" अश्वत्थामा की उत्तेजनापूर्ण बातों को सुन कर दुर्योधन उसे

पृथ्वी की गोद में सो गया, कर्ण दिवंगत हो चुका, गांगेय भीष्म का शरीरपात हो चुका, मेरे सौ भाई मारे जा चुके तथा अब मेरी वही दशा होने वाली है। अतः आप अब धनुष का त्याग कर दीजिये।" अश्वत्थामा व्यंग्य करते हुए कहने लगा—"राजन् ! प्रतीत होता है कि भीम ने गदा का प्रहार कर आपकी जाँघों के साथ आपके दर्प को भी चूर कर दिया है।" अश्वत्थामा के उन व्यंग्य बाणों को सुन कर दुर्योधन उत्तेजित हो जाता है और कहता है—"गुरु पुत्र, बलपूर्वक मैंने भरी सभा में द्रौपदी के केश खींचे, अभिमन्यु को युद्ध में मरवाया तथा द्यूत में हरा कर उन्हें वन्य पशुओं का सहचरी बनाया। इन अपमानों के समक्ष भीम का यह छल कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।" दुर्योधन के उक्त कथन को सुन कर अश्वत्थामा ने कहा—"राजन् ! मैं आपकी, अपनी तथा वीरलोक की शपथ खा कर कहता हूँ कि आज रात्रि में रण रचना कर मैं युद्ध में पाण्डवों को मार डालूंगा।" अश्वत्थामा के इन वचनों का बलदेव और धृतराष्ट्र अनुमोदन करते हैं। अश्वत्थामा पितृराज्य पर दुर्योधन पुत्र दुर्जय का अभिषेक करता है। इसी समय दुर्योधन की महाप्रयाण यात्रा आरम्भ होती है। धृतराष्ट्र, दुर्योधन की इस मृत्यु से विचलित हो जाते हैं और वे मुनिजनों से सेव्य तपोवन की ओर प्रस्थान करते हैं। अश्वत्थामा धनुष बाण ले कर सौप्तिकगणों के वध के लिए चला जाता है।

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना का संयोजन

नाटक की कथावस्तु का मूलाधार महाभारत है। शल्यपर्व से भास ने तथ्यों को ग्रहण कर एक नये रूप में ही प्रस्तुत किया है। महाभारत में भीम और दुर्योधन के गदा युद्ध का वर्णन आता है। बताया है कि भीम पर दुर्योधन गदा प्रहार करता है, जिससे भीम एक क्षण के लिए मूर्च्छित-सा हो जाता है। परन्तु उसकी शिथिलता का पता दुर्योधन को नहीं चलता और वह यह सोचकर कि भीम उस पर आक्रमण करने वाला है वह बचने के लिए उछलता है, पर भीम अवसर पा कर उसकी जाँघों पर प्रहार करता है और उसे तोड़ डालता है। दुर्योधन के भूमि पर गिरते ही पाण्डव भयभीत न हो कर हर्षित हो उसके पास जाते हैं और भीम गिरे हुए दुर्योधन के मस्तक पर लात मार कर तथा अपशब्द कह कर उसे अपमानित करता है।[1]

महाभारत के इस कथांश को नाटककार ने परिवर्तित कर दिया है। संक्षेप

---

१. महाभारत, शल्यपर्व, अध्याय ५९, श्लोक १-१२

मे महाकवि भास ने महाभारत की अपेक्षा इस रूपक मे निम्नलिखित परिवर्तन किये हैं—

(१) श्रीकृष्ण स्वय उपस्थित होते हैं और दुर्योधन की जांघ तोडने के लिए सकेत करते हैं। पर महाभारतीय कथा मे यह बात नही है क्योकि वहाँ अर्जुन इस कार्य मे प्रमुख है।

(२) व्यास और विदुर के साथ बलराम भी दर्शको की श्रेणी मे सम्मिलित हैं। यह कथानक महाभारत मे नहीं आया है।

(३) दुर्जय के द्वारा धृतराष्ट्र एव गान्धारी सहित युद्ध-भूमि की ओर ले जाये जाते हैं। इस अवसर पर दुर्योधन की पत्नियाँ भी उपस्थित रहती हैं। पर महाभारत मे ये समस्त घटनाएँ हस्तिनापुर मे घटित होती हैं युद्धभूमि मे नहीं।

(४) नाटककार भास ने दुर्योधन के चरित्र को महाभारत की अपेक्षा बिलकुल परिवर्तित कर दिया है। नाटक मे दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रति दुर्भाव नही रखता, अपितु वह अपने कुकृत्य के प्रति पश्चाताप करता है और बलदेव जी से प्रार्थना करता है कि वे पाण्डवों को जीवित रहने दें। उसे इस बात पर सन्तोष होता है कि उसे धोखे से मारा गया है, वीरता से नही। अन्तत. वह अपने को विजयी समझता है। अश्वत्थामा की इस बात पर भी वह सहमत नहीं होता कि वह राक्षसीय और अन्यायपूर्ण नीति से पाण्डवो के ऊपर आक्रमण करे। उसे अपने किये हुए कर्मों पर पूरा पश्चाताप होता है। और वह अपना अपराध भी स्वीकार कर लेता है।

(५) बलराम का चरित्र प्रशस्तरूप मे प्रदर्शित किया गया है। यद्यपि वे अमर्षशील और क्रोधी दिखायी पडते हैं। पर उनका क्रोध अधर्म युद्ध देख कर उभरता है अत वे न्यायकोटि मे सम्मिलित हैं। उन्हे शिष्य के विद्याकौशल पर अभिमान है। नाटककार भास ने अश्वत्थामा का क्रूर चरित्र भी महाभारत की अपेक्षा भिन्न रूप मे चित्रित किया है। अतः यह स्पष्ट है कि नाटककार भास ने महाभारत के आख्यान में पर्याप्त परिवर्तन किया है और नयी-नयी कल्पनाओ द्वारा रूपक को सफल बनाया है।

शास्त्रीय विश्लेषण

प्रस्तुत रूपक में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना का प्रयोग किया गया है। सूत्रधार रूपक की कथावस्तु की पृष्ठभूमि तैयार करते हुए बताता है—"कौरवो के पक्ष में सौ भाइयो मे से केवल दुर्योधन ही शेष रह गया है और पाण्डवो के

पक्ष में युद्धिष्ठिर सहित पाण्डव और श्रीकृष्ण शेष हैं। समस्त कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में राजाओं के निर्जीव शरीर पड़े हुए हैं।" इसके पश्चात् सूत्रधार रूपक के बीज की सूचना देता हुआ कहता है—"दुर्योधन और भीम के बीच गदा-युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर योद्धा लोग इस युद्धभूमि में प्रवेश कर रहे हैं।" इस प्रकार सूत्रधार बीज की सूचना दे कर चला जाता है और प्रस्तावना पूर्ण हो जाती है।

प्रस्तुत रूपक में एक अंक है और कथा-वस्तु के विस्तार के अनुसार मुख और निर्वहण दो सन्धियाँ है। मुखसन्धि में रूपक के फल के लिए बीज का उपक्षेप कर उसका परिन्यास किया गया है। इससे कथा-वस्तु फल निर्वहण के लिए समर्थ होती है। निर्वहण सन्धि में सभी घटनाओं का एकीकरण कर रूपक के फल को साकार कर दिया गया है। इस रूपक की परिणति दुर्योधन की मृत्यु में होती है। इस फल को प्राप्त करने के लिए कवि ने बड़े धैर्य से कथा-वस्तु को व्यापार के द्वारा अग्रसर कर चरम बिन्दु पर पहुँचाया है।

ऊरुभंग में पाँच अर्थ प्रकृतियों में से बीज, बिन्दु और कार्य इन तीन अर्थ प्रकृतियों का प्रयोग पाया जाता है। पताका और प्रकरी का प्रयोग कथावस्तु की संक्षिप्तता के कारण सम्भव नहीं है। बीज की सूचना सूत्रधार द्वारा निम्न-लिखित पद्य में प्राप्त होती है।

एतद्रणं हतगजाश्वनरेन्द्रयोधं
संकीर्णलेख्यमिव चित्रपटं प्रविद्धम्।
युद्धे वृकोदरसुयोधनयोः प्रवृत्ते
योधानरेन्द्रनिधनैकगृहं प्रविष्टाः ॥[१]

इतनी सूचनी दे कर सूत्रधार चला जाता है और तीन सैनिक प्रवेश करते हैं। ये तीनों रणाङ्गण का विस्तृत वर्णन करते हैं जिससे कथा-वस्तु विच्छिन्न हो जाती है। यह मुख्य प्रवाह से तब मिलती है जब भयंकर आवाज को सुन कर तीनों भट उसकी ओर आकर्षित हो कर उस आवाज के कारण को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं और आवाज के कारण का वर्णन करते हैं। इस स्थल को बिन्दु कहा जायगा। क्योंकि विच्छिन्न कथा-वस्तु को अवि-च्छिन्न करने वाला तत्व बिन्दु कहलाता है। अतः प्रथम भट द्वारा कहा गया निम्नलिखित गद्यांश बिन्दु नामक प्रकृति है—

१. ऊरुभंग, प्रथम अंक, श्लोक ३, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६२

अये एतत्खलु द्रौपदी केशधर्षणावमर्पितस्य पाण्डवमध्यमस्य भीमसेनस्य भ्रातृशतवधक्रुद्धस्य महाराज दुर्योधनस्य च द्वैपायनहलायुधकृष्णविदुरप्रमुखाना कुरुयदुकुलदैवताना प्रत्यक्ष प्रवृत्त गदायुद्धम् ।'[1]

कथावस्तु कार्य की ओर भी गतिशील होती है। और—

हृत मे भीमसेनेन गदापातकचग्रहे
सममूरुद्वयेनाद्य गुरो पादाभिवन्दनम् ॥[2]

इस स्थल पर कार्य का स्पष्टीकरण होता है।

इसी प्रकार अवस्थाओ का प्रयोग भी प्रस्तुत रूपक मे स्वयमेव हो गया है। प्रारम्भ, प्रयत्न, नियताप्ति और फलागम की स्थिति पायी जाती है। जब भीम दुर्योधन के साथ गदायुद्ध प्रारम्भ करता है तब वह अपने ईप्सित पदार्थ को प्राप्त करने की चेष्टा करता है यह चेष्टा यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है। गदायुद्ध में दुर्योधन के तुल्य न होने के कारण भीम आघात पर आघात खा गिर पडता है और इस प्रकार उसके विजयी होने मे सन्देह होने पर भगवान कृष्ण अपनी जांघ को थपथपा कर उसे सकेत देते हैं जिससे वह आशान्वित हो कर अपनी विजय के प्रति आश्वस्त होता है। अत' इस स्थल मे नियताप्ति है। भीम अत्यन्त उत्साह से सकेत के अनुसार दुर्योधन की जांघ पर प्रहार कर के उसे तोड डालता है और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेता है। इस फल की सूचना सभी लोगो के—'हा, धिक्-पतितो महाराज' चिल्लाहट द्वारा दी जाती है।

इस रूपक मे मुख और निर्वहण ये दो ही सन्धियां हैं। मुखसन्धि का प्रारम्भ 'अयेएतत्खलुद्रौपदी केशधर्षणावमर्पितस्य पाण्डवमध्यमस्य.............. .. प्रत्यक्षं प्रवृत्त गदा युद्धम्' से आरम्भ होती है और दुर्योधन के ऊरुभग हो जाने के पश्चात् युद्ध क्षेत्र मे आये धृतराष्ट्र, गान्धारी एव दुर्योधन की पत्नियां तथा पुत्र के द्वारा दुर्योधन के पहचानने के पहले तक रहती है। भास ने इस सन्धि के प्रमुख अंगों का उपयोग तो किया ही है, पर अन्य सन्धियों के अगो का भी व्यवहार किया है।

बीज का उपक्षेप द्रौपदी के केशाधर्षण से उत्पन्न क्रोध के कारण भीमसेन दुर्योधन के साथ गदा-युद्ध में प्रवृत्त होने से होता है। इस युद्ध रूप बीज को कृष्ण के सकेत से और पुष्ट किया गया है। अत —

---

१. ऊरुभग, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६२, पृ० १९
२ वही, पद्य ४१

एष इदानीमपहास्यमानं भीमसेनं दृष्ट्वा स्वमूरुमभिहत्य कामपि संज्ञां प्रयच्छति जनार्दनः ।[1]

अतः यह गद्यांश परिकर मुखांग का अच्छा उदाहरण है। इस संकेत से भीम को फल प्राप्ति के प्रति दृढ़ विश्वास हो जाता है और वह पुनः उठ खड़ा होता है और दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करता है। यह स्थल वीज की परिपक्वावस्था को सूचित करता है।

अतएव—

हन्तः पुनः प्रवृत्तं गदायुद्धम् । अनेनाहि
भूमौ पाणितले निघृण्य तरसा वाहू प्रमृत्याधिकं
सन्दष्टोष्ठपुटेन विक्रमवलात् क्रोधाधिकं गर्जता
त्यक्त्वा धर्मघृणां विहाय समयं कृष्णस्य मंज्ञासमं
गान्धारीतनयस्य पाण्डुतनयेनोर्वोर्विमुक्ता गदा ।[2]

द्वितीय भट द्वारा अर्जुन के शस्त्रवल की प्रशंसा में विलोभन सन्ध्यंग का समावेश हुआ है। भीम और दुर्योधन के युद्ध प्रारम्भ में वीज का उद्भेद होने से उद्भेद नामक सन्ध्यंग समाविष्ट हुआ है। प्रथम और द्वितीय व्यक्ति भीमसेन और दुर्योधन के कष्ट का अनुभव करते हैं और धर्मराज की दुखित अवस्था का चित्र प्रस्तुत कर विधान नामक सन्ध्यंग का समावेश करते हैं। अतः—

दैन्यं याति युधिष्ठिरोऽत्र विदुरो वाष्पाकुलाक्षः स्थितः ।[3]

स्थल में विधान का समावेश है। दुर्योधन की जंघाओं को टूट जाने पर भी उसे इस वात का संतोष रहता है कि उसे छल से कृष्ण की सहायता द्वारा मारा गया है। अतः वलराम के वदला लेने की वात करने पर भी वह उन्हें ऐसा करने से रोकता है, परन्तु जव वही दुर्योधन अपने माता-पिता की करुण पुकार एवं केश खोले हुए रानियों के रुदन को सुनता है तो उसका मन अत्यन्त दुःखी हो जाता है। इस प्रसंग में विधान नामक सन्ध्यंग का सफल नियोजन हुआ है।

---

१. ऊरुभंग, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६२, पृ० २२
२. वही, पद्य २४
३. वही, पद्य २१

इस सन्ध्यंग का प्रयोग और भी कई बार आया है। जब धृतराष्ट्र दुर्योधन को आवाज देते हुए कहते हैं—'मेरे पुत्र आओ, मेरा अभिवादन करो।' इस आह्वान को सुन कर दुर्योधन अभिवादन करने के लिए उठता है पर टूटी जांघ के कारण पुन गिर पडता है। इस दुरवस्था से उसे मर्मान्तक पीडा होती है। इस प्रकार यहाँ विधान नामक अग का समावेश हुआ है।

दुर्जय दुर्योधन से उस स्थान पर चलने का आग्रह करता है जहाँ पर धृतराष्ट्र, गान्धारी और अन्त पुर का स्त्री समाज उसे खोज रहा है। पर, दुर्योधन कहता है कि वह वहाँ तक पहुँचने मे असमर्थ है। इस पर उसका पुत्र उत्तर देता है कि वह उसे ले जायेगा। पर दुर्योधन के यह कहने पर कि तुम अभी निरे बालक हो, दुर्जय घूम कर अपने माताओ और पितामह को पुकार कर बताता है कि महाराज दुर्योधन यहाँ पर हैं। दुर्योधन का परिवार चिल्ला उठता है—कहाँ है, कहाँ है। दुर्जय पृथ्वी पर पडे दुर्योधन की ओर सकेत करता है। धृतराष्ट्र आश्चर्य मे कह उठते हैं—

> हन्त: भो ! किमय महाराज ।
> कृत स मे भूमिगतस्तपस्वी द्वारेन्द्र कीलार्धसमप्रमाण ।[१]

यहां से निर्वहण सन्धि प्रारम्भ होती है और यह रूपक के अन्त तक चलती है। इस सन्धि मे भास ने विबोध, ग्रथन, परिभाषण, और निर्णय अंगो का समावेश किया है।

नाटक की वृत्ति भारतीय है और इसका प्रमुख रस करुण है। करुण रस को पुष्ट करने के लिए ही नाट्यकार ने गान्धारी और दुर्योधन की रानियो के रुदन की योजना की है। स्त्रियो के रुदन के साथ पिता धृतराष्ट्र और पुत्र दुर्जय का विलाप भी करुण रस को मूर्तिमान बनाता है। प्रस्तुत रूपक मे जयपराजय की भी योजना है। दुर्योधन की पराजय ही इसका फल है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ऊरुभग को उत्सृष्टिकाक माना जा सकता है। चौखम्बा सस्करण के सम्पादक कपिलदेव गिरि ने लिखा है—'ऊरु-भग दुर्योधन की पराजय और मृत्यु का दु खान्त रूपक है, और यह बात रूढि-वादि सस्कृत नाट्य कला से विरोध खाती है।'[२] गिरि का यह कथन अधिक समीचीन नही है। यत: उत्सृष्टिकाक मे करुण रस का रहना आवश्यक है

---

१. ऊरुभग, चौखम्बा सस्करण, सन् १९६२, पद्य ४५
२. ऊरुभंग, भूमिका भाग, पृ० १४

जिससे रुदन, पराजय, आदि स्वाभाविक रूप में निवद्ध रहते हैं। जिसे दुःखान्त नाट्य कला कहा जाता है वह संस्कृत नाट्य कला का एक भेद है। रूपक के भेदों में सृष्टिकांक की यह विशेपता मानी जाती है कि उसमें रुदन तथा दुःख आदि रहते हैं। अतएव गिरि की समीक्षा उचित प्रतीत नहीं होती। वस्तुतः यह एक प्रशस्त रूपक है। समय और पात्र के अनुकूल वार्तालापों की योजना विशेप महत्वपूर्ण है। करुण और वीर रस का मिश्रण बड़े ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

अभिषेक : विवेचन और विश्लेपण

प्रस्तुत रूपक में सुग्रीव और राम इन दोनों का अभिषेक होने से इस नाटक का नामकरण सटीक हुआ है। इस नाटक की अन्तिम परिणति राम के राज्याभिपेक में होती है, जो कि इस नाटक का फल है। नाटककार भास ने रामायण की कथा को इसमें उपस्थित कर राम के उदात्त चरित्र के प्रति जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट किया है।

कथावस्तु

प्रस्तुत नाटक में छः अंक हैं। सीता हरण के पश्चात् की समस्त रामकथा इसमें निवद्ध है। वालि अपने अनुज सुग्रीव को राज्य से निष्कासित कर उसकी पत्नी तथा धन का हरण करता है। राम और सुग्रीव दोनों में कार्य-सिद्धि के हेतु मित्रता हो जाती है। सुग्रीव, राम, लक्ष्मण और हनुमान सहित किष्किन्धा में जाकर वालि को युद्ध के लिए ललकारता है। परोत्कर्पासहिष्णु वानर राज वालि उसकी ललकार को सुन कर युद्ध-भूमि में उपस्थित होता है। तारा उसे रोकना चाहती है। पर वह रुकता नहीं है। सुग्रीव और वालि परस्पर युद्ध करने लगते हैं। युद्ध में वालि को सवल पड़ता देख हनुमान श्रीराम को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हैं। वालि राम के वाण से धराशायी हो जाता है। जब वालि की मूर्च्छा दूर होती है, तो वह वाण पर राम के अंकित नाम को देख कर कह उठता है—'राम आप राजधर्म पर आरूढ़ हैं तथा आपका अवतार धर्म रक्षा के लिए हुआ है। आप वीर हैं और छल-प्रपच से दूर रहने वाले है। आपने क्यों मुझे अन्याय से इस प्रकार मारा ? छिपकर धोखे से किसी की हत्या करना वीरता नहीं।'

राम उत्तर देते हैं—'तुम अगम्यागम्य के कारण दोपी हो। धर्माधर्म

का विवेक त्याग कर तुमने भ्रातृ-नारी का अभिमर्षण किया है। अतः तुम बध्य हो।'

बालि उत्तर देता है— तब तो सुग्रीव ने भी भ्रातृ दाराभिमर्षण किया है अतः वह भी बध्य है।' राम यह कह कर उसे निरुत्तर कर देते हैं कि ज्येष्ठ भाई की स्त्री का अभिमर्षण विधेय है।

इसी समय कुमार अंगद और बालि की पत्नियाँ भी वहाँ पहुँचती हैं। बालि राम और सुग्रीव के हाथों में अंगद का हाथ सौंपता है। इसके पश्चात् बालि का प्राणान्त हो जाता है। राम सुग्रीव का अभिषेक करने के लिए लक्ष्मण को आदेश देते हैं।

—प्रथमाङ्क

सीतान्वेषण के लिए सभी दिशाओं में वानर प्रेषित किये गये हैं। दक्षिण को छोड़ शेष सभी दिशाओं से वानर लौट आये हैं। यह भी समाचार मिलता है कि जटायु से सीता का समाचार सुन कर हनुमान ने समुद्र को पार कर लिया है।

सीता अशोक वाटिका में राक्षसियों से घिरी हुई है और वह विलाप कर रही है। हनुमान सीता का अन्वेषण करता हुआ वहाँ पहुँचता है और राक्षसियों से घिरी हुई सीता को देख कर अशोक-वृक्ष के कोटर में छिप कर बैठ जाता है। रावण नाना प्रकार से सीता को डराता है, धमकाता है, पर वह उसे स्वीकार नहीं करती। इसी समय स्नान वेला होने से रावण चला जाता है। हनुमान सुअवसर जान कर सीता के समीप पहुँचते हैं और उन्हें राम का समाचार सुनाते हैं। पहले तो सीता को विश्वास नहीं होता, पर राम का सुग्रीव के साथ सख्य वृत्तान्त सुन कर वह विश्वस्त हो जाती हैं। हनुमान राम को लाने का वचन दे कर और सीता से अनुमति ले कर चल देते हैं। उनके मन में यह विचार आता है कि रावण को अपने आगमन की सूचना दिए बिना यों ही चले जाना उचित नहीं। अतः वह त्रिकूट उपवन को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए चल देता है।

—द्वितीयाङ्क

हनुमान द्वारा उपवन के विध्वंस करने का वृत्तान्त शंकुकर्ण नामक परिचर रावण को सुनाता है। रावण तुरन्त उस वानर को बन्दी बना लेने का आदेश देता है। शङ्कुकर्ण लौट कर सूचित करता है कि ज्यों ही पाँच सेनापति उस वानर को बन्दी बना लेने के लिए पहुँचे उसने उन पाँचों को मार डाला और आगे बढ़ कर उसने कुमार अक्षय को भी मुट्ठी से मसल दिया। इसके पश्चात्

रावण का बड़ा पुत्र मेघनाद, हनुमान को पकड़ने के लिए प्रस्थित हुआ। उसने छल-बल से हनुमान को पकड़ लिया और रावण के पास ला कर उपस्थित किया।

हनुमान ने अपने को राघवेन्द्र रामचन्द्र का दूत बतलाते हुए कहा—'मैं राम का सन्देश सुनाने के लिए आया हूँ। राम से विरोध करने पर शंकर या अन्य देवता रक्षा नहीं कर सकते हैं। तुम गिरि-कन्दराओं में छिप कर भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते हो, क्योंकि राम के बाण तुम्हें वहाँ भी वेध डालेंगे।' विभीषण ने भी हनुमान का समर्थन किया और राम-पत्नी सीता को लौटा देने के लिए प्रार्थना की। इस पर रावण बहुत रुष्ट हुआ तथा विभीषण और श्रीराम दोनों को बुरा-भला कहने लगा। रावण विभीषण से इतना नाराज हुआ कि उसे अपनी राज-सभा से निकल जाने का आदेश दिया। विभीषण राम की शरण में जाने के लिए चल पड़ा।

—तृतीयाङ्क

हनुमान के आने पर सुग्रीव ने राम की ओर से सेना सज्जित की। सेना समुद्र के तट पर पहुँची। आगे जाने का मार्ग न होने के कारण सेना वहीं अवरुद्ध हो गयी। इसी समय आकाश से विभीषण उतरता हुआ दिखलायी पड़ा। उसे देख कर सभी वानर आश्चर्यचकित हो गये और सावधानीपूर्वक प्रतीक्षा करने लगे। नीचे आते ही विभीषण को हनुमान ने पहचान लिया और रामचन्द्र से जा कर उसके आने का समाचार कहा। विभीषण को सत्कार के साथ राम ने आश्रय दिया। समुद्र पार करने के लिए मन्त्रणा होने लगी। विभीषण ने कहा—'यदि समुद्र मार्ग नहीं देता है तो इस पर दिव्यास्त्रों का प्रयोग कीजिये। राम ज्यों ही शर-सन्धान के लिए उद्यत होते हैं त्यों ही भीत वरुण वहाँ प्रकट होता है और समुद्र के बीच में मार्ग देता है। समुद्र का जल बीच में सूख जाता है और समस्त सेना बीच से पार हो जाती है। सेना का शिविर सुवेल पर्वत पर बनता है। सेना की गणना करने पर दो वन्दर अधिक हो जाते हैं। उन्हें राम के सामने लाया जाता है वे अपने को कुमुद का सेवक बतलाते हैं। विभीषण उन्हें पहचान लेता है और बतलाता है कि ये शक और शरण राक्षस हैं। राम उनके द्वारा रावण को अपना सन्देश भेजते हैं।

—चतुर्थाङ्क

युद्ध का प्रारम्भ होता है और कुम्भकरण आदि प्रमुख वीर मारे जाते हैं इन्द्रजित निकल पड़ता है और घमासान युद्ध होने लगता है। रावण के आदेश से विद्युज्जिह्वा नामक राक्षस राम और लक्ष्मण के सिर की प्रतिकृति लाता है।

रावण उन्हें ले कर सीता के समक्ष पहुँचता है और कहता है—'राम, लक्ष्मण मेरे द्वारा आज मारे गये हैं। तुम मेरा वरण करो।' सीता उन प्रतिकृतियों को देख कर विलाप करने लगती है। इसी अवसर पर एक राक्षस आ कर निवेदन करता है कि उन तापसों ने इन्द्रजित को मार डाला। इस अप्रिय समाचार को सुन कर रावण मूर्छित हो जाता है और सचेत होने पर विलाप करने लगता है। वह क्रुद्ध हो कर सीता को मारने के लिए उद्यत होता है। पर उपस्थित राक्षस उसे स्त्री-वध से रोकते हैं। रावण युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान करता है।

—पञ्चमाङ्क

राम-रावण का घोर युद्ध आरम्भ होता है। राम के लिए इन्द्र सारथि मातलि दिव्य-रथ लाता है जिस पर सवार हो कर वे रावण को मारते हैं। विभीषण राज्य का अधिकारी बनता है। सीता राम के समीप लायी जाती है। पर राम उसे राक्षसों के स्पर्श से कलङ्कित समझ स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। अपने पातिव्रत के परीक्षण के हेतु सीता अग्नि में प्रवेश करती हैं। अग्निदेव ने साक्षात् आ कर राम की सेवा में निवेदन किया कि सीता लक्ष्मी हैं, विशुद्ध चरित्रा हैं आप इसे स्वीकार करें। आपके पिता ने आपके अभिषेक की इच्छा व्यक्त की है। राम ने सीता को स्वीकार किया और उनका राज्याभिषेक हुआ।

—षष्ठाङ्क

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना का समन्वय

अभिषेक नाटक की कथावस्तु का आधार वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धा काण्ड से प्रारम्भ कर लंका काण्ड के उत्तरार्द्ध तक की कथा है। कथा बहुचर्चित तथा सुपरिचित है। नाटककार ने इसे सजाने और सँवारने में पर्याप्त श्रम किया है। रामायण की मूल कथा में परिवर्तन करने पर भी विशेष नाटकीयता नहीं आ पायी है। नाटक में सुग्रीव तथा बालि के द्वन्द्व को दो बार हुआ न दिखला कर एक बार ही हुआ बताया गया है। रामायण के समान यहाँ भी बालि का वध भी राम ने छिप कर किया है जो उनके चरित्र के लिए दोष है।

प्रचलित कथाओं के अनुसार श्रीराम ने नल-नील की सहायता से समुद्र पर सेतु बाँधा जिससे वानर सेना पार हुई। पर इस नाटक में भयभीत हो कर वरुणदेव ने स्वयं ही समुद्र के जल को सुखा कर बीच से मार्ग दे दिया है।

जटायु और राम का मिलन भी प्रचलित कथा के अनुसार सुग्रीव के साथ सख्य से पूर्व ही हो चुका था। पर इस नाटक में संकेत किया जाता है कि जटायु से समाचार जान कर हनुमान ने समुद्र पार किया।

रामायण में वर्णित तारा विलाप प्रस्तुत नाटक में नहीं आ पाया है। नेपथ्य से तारा के रोने की ध्वनि आती है। पर वालि उसे मंच पर आने से मना कर देता है। वह यह नहीं चाहता कि तारा उसे मरते हुए देखे। इस प्रकार इस नाटक में कतिपय मौलिक उद्भावनाएँ अवश्य हैं, पर नाट्य-कला की दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है।

शास्त्रीय विश्लेषण

नाट्य-कला की दृष्टि में मध्यम श्रेणी का नाटक होने पर भी इसमें शास्त्रीय नाटक के सभी लक्षण समाविष्ट हैं। नायक प्रख्यात्वंशीय रामचन्द्र धीरोदात्त हैं। छः अंक हैं। वीर रस का प्रधान्य है और सात्वती वृत्ति है। नाटक की समाप्ति में दशरथ की अनुमति से यम, वरुण, कुवेर आदि से अभिसमृद्ध हो कर इन्द्र के समान राम का राज्याभिपेक किया गया है। वताया है—

यमवरुणकुवेरवासवाद्यैस्त्रिदशगणैरभिसंवृतो विभाति ।
दशरथवचनात् कृताभिषेकस्त्रिदशपतित्वमवाप्य वृत्रहेव ॥[१]

इस पद्य से स्पष्ट है कि नाटक का फलागम राम का राज्याभिपेक है। इस फल की प्राप्ति का वीजन्यास सूत्रधार के कथन से होता है—

'भास। किं नावगच्छसि। एपखलु सीतापहरण जनित सन्तापस्य रघुकुल-प्रदीपस्य सर्वलोक नयनाभिरामस्य रामस्य च, दाराभिमर्शननिर्विषयीकृतस्य सर्वहर्यृक्षराजस्य सुविपुलमहाग्रीवस्य सुग्रीवस्य च परस्परोपकार कृत प्रतिज्ञयोः सर्व वानराधिपति हेममालिनं वालि नं हन्तु समुद्योगः प्रवर्त्तते। तत एतो हि।''[२]

सूत्रधार के इस कथन में राम और सुग्रीव के वीच की गयी प्रतिज्ञा वतलायी गयी है। यह प्रतिज्ञा ही राम और सुग्रीव के अभिषेक का हेतु है। अतएव सूत्रधार के इस कथन से कार्य नामक अवस्था का आरम्भ होता है, जो प्रथम अङ्क के अन्त तक चलती है।

---

१. अभिषेकनाटकम्, पृ० १२३, श्लोक सं० ६।३३

२. अभिपेक, चौखम्वा संस्करण, सन् १९६२, पृ० ३

कार्य के प्रारम्भ होने के पश्चात् प्रयत्न की स्थिति आती है। इस स्थिति की सूचना ककुभ और बिलमुख के वार्तालाप से प्राप्त होती है। वानरगण सीता के अन्वेषण हेतु भेजे गये हैं। वे समस्त दिशाओं मे सीता की खोज कर वापस लौट आये हैं परन्तु दक्षिण दिशा की ओर गये हुए अगद नहीं लौट सके। उन्हीं का पता लगाने के लिए सुग्रीव ने हम लोगों को भेजा है। इस प्रकार प्रयत्न की स्थिति में ककुभ और बिलमुख अपनी-अपनी ओर से सुभाव और तर्क प्रस्तुत करते हैं। ककुभ कहता है—श्रूयता।

लब्ध्वा वृत्तान्त रामपत्न्या खगेन्द्राद्
आरुह्यागेन्द्र सद्विपेन्द्र महेन्द्रम्
लङ्कामभ्येत् वायुपुत्रेण शीघ्र
वीर्यं प्राबल्याल्लङ्घित सागरोऽद्य।[1]

इस प्रकार प्रयत्न नामक अवस्था समस्त द्वितीय अङ्क मे प्राप्त है।

प्राप्त्याशा नामक अवस्था का आरम्भ लका से हनुमान के लौट आने पर ससैन्य समुद्र तट पर पहुँचने से होता है। राम समुद्र के तट पर स्थित हो कर आगे मार्ग न मिलने से चिन्तित हैं। इसी समय आकाश से विभीषण अवतरित होता है। हनुमान विभीषण का परिचय राम को देते हैं और उन्हें अपनी शरण मे रख लेने के लिए अनुरोध करते हैं। इस कथानक को प्राप्त्याशा अवस्था के अन्तर्गत रखा जा सकता है। राम विभीषण से मन्त्रणा करते हैं और दिव्य अस्त्रो से समुद्र को सुखा देने का अनुरोध करते हैं, इसी समय वरुण देव उपस्थित होता है और राम से पूछते हैं कि उसे क्या करना है? राम वरुणदेव से मार्ग प्राप्ति के लिए संकेत करते हैं। वरुण राम को मार्ग देता है।[1] बीच से समुद्र सूख जाता है और समस्त सेना लका मे पहुँच कर सुवेल पर्वत पर अपना शिविर बनाती है। अत समुद्र पार की स्थिति से ले कर सुवेल पर्वत पर शिविर बनाने तक कथानक नियताप्ति माना जायेगा। पचम अङ्क के आरम्भ मे कचुकी का कथन नियताप्ति की स्थिति है। राक्षस कुल का जीवन संदेहास्पद हो जाता है और रावण की सेना के बड़े-बड़े योद्धा समाप्त होने लगते हैं। इन्द्रजित युद्ध भूमि में पहुँचता है और वीरता का प्रदर्शन कर सदा के लिए शान्त हो जाता है। रावण सीता को अनुकूल करने के लिए राम और लक्ष्मण के शिरो की प्रतिकृति उपस्थित करता है और सीता से कहता है कि

अब तुम्हारी रक्षा कौन कर सकेगा ? राम, लक्ष्मण मारे गये हैं, अतः तुम अब मेरे प्रणय को स्वीकार कर लो। इसी समय इन्द्रजित के वध की सूचना रावण को प्राप्त होती है और रावण युद्धभूमि में उपस्थित हो जाता है। राम को देवों द्वारा दिव्य रथ प्राप्त होता है और वे उस रथ पर सवार हो रावण का सामना करते हैं। रावण के मरने पर स्वर्ग से देव दशरथ की सूचना ले कर आते हैं कि राम का राज्याभिषेक किया जाय। अग्नि-परीक्षा में सीता को उत्तीर्ण समझ राम अयोध्या के लिए लौट आते हैं और यहाँ उनका राज्याभिषेक हो जाता है। यह राज्याभिषेक ही इस नाटक का फल है। अतः फलागम की स्थिति नाटक के अन्त में घटित होती है।

कार्य अवस्थाओं के अनन्तर अर्थ प्रकृतियों का स्थान आता है। बीज नामक अर्थ प्रकृति सूत्रधार के राम और सुग्रीव के बीच सम्पन्न हुई प्रतिज्ञा के रूप में उपस्थित होती है। राम राज्यच्युत सुग्रीव को पुनः राज्य दिलाने का प्रयास करते हैं। अतः यहाँ से बीज का विकास होता है। बीज विकास निम्नलिखित पद्य से आरम्भ होता है—

मत्सायकान्निहतभिन्नविकीर्ण देहं
शत्रुं तवाद्य सहसा भुवि पातयामि
राजन् ! भयं त्यज ममापि समीपवर्त्ती
दृष्टस्त्वया च समरे निहतः स वाली ।[1]

बीज विकसित होता हुआ बिन्दु को प्राप्त करता है और बिन्दु की स्थिति इस नाटक में वालि वध की है। वालि के मरणोपरान्त सुग्रीव का राज्याभिषेक किया जाता है और सुग्रीव अपनी सेना भेज कर सीता का अन्वेषण कराते हैं। अतः समस्त द्वितीय अंक की समाप्ति बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति में हो जाती है।

हनुमान जटायु से सीता का समाचार प्राप्त कर लंका पहुँचते हैं। और वहाँ रावण को अपने आने का समाचार निवेदित करते हैं। इस नाटक में सुग्रीव का कथानक पताका है तथा विभीषण का प्रकरी है। ये दोनों ही अर्थ प्रकृतियाँ स्वतन्त्र रूप से राम कथा के साथ चलती हैं। सुग्रीव और विभीषण दोनों ही अपनी कार्य सिद्धि में राम को सहायक समझ उनसे मित्रता करते है। सुग्रीव का कथानक पताका है, क्योंकि वालि से वह अपना राज्य और

---

१. अभिषेक नाटक, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६२, पद्य १-४

अपनी पत्नी को वापस प्राप्त करने के लिए राम का सहायक बना है। कुछ विद्वान जटायु को निरपेक्ष भाव से राम का सहायक होने के कारण उसे प्रकरी के अर्थ में रखते हैं। अन्तिम अर्थ प्रकृति कार्य है और इसकी सिद्धि पताका नायक सुग्रीव के साथ कथानायक राम को भी होती है। यम, कुबेर, वरुण तथा इन्द्रादि देवों से युक्त महाराज दशरथ के आदेश से राम का राज्याभिषेक सम्पन्न होता है, यह कार्य की स्थिति है। बताया है—

यमवरुणकुबेरवासवाद्यैस्त्रिदशगणैरभिमवृतो विभाति
दशरथवचनात् कृताभिषेकस्त्रिदशपतित्वमवाप्य वृत्रहेव ।[१]

प्रस्तुत रूपक में पाँचों सन्धियाँ हैं। सुग्रीव और राम का परस्पर कृत-प्रतिज्ञ होना बीजन्यास का विधायक होने से मुख सन्धि है। यह मुख सन्धि समस्त प्रथम अङ्क में चलती है। पर, बिलमुख के द्वारा परस्पर की गयी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाने में प्रतिमुखसन्धि की स्थिति आती है। मुखसन्धि के परिकरण, विलोभन, विधान, युक्ति, समाधान, भेद, करण और उद्भेद अंग भी प्राप्त हैं। कृतप्रतिज्ञ हो कर राम बालि का हनन करते हैं और सुग्रीव को निर्दोष बतलाते हुए उसे राज्य देने की घोषणा करते हैं। इस स्थल पर परिकर नामक सन्ध्यंग है। बालि अपनी पत्नी तारा से अपनी वीरता का वर्णन करता है और बतलाता है कि उसको मारने वाला कोई भी इस भूतल पर नहीं है। इस कथन में विलोभन नामक सन्ध्यंग है। बालि-सुग्रीव युद्ध में हनुमान द्वारा प्रतिज्ञा का स्मरण कराये जाने पर बालि का वध सुग्रीव करते हैं। राम को वचना द्वारा बालि का वध करने में कुछ कष्ट होता है। इस स्थल पर विधान नामक सन्ध्यंग है। हनुमान राम के समीप जा कर बालि के लिए बलवान शब्द का प्रयोग करते हैं और सुग्रीव के लिए दुर्बल शब्द का। अतएव वे बालि वध का संकेत कर बालि का वध कराना युक्ति नामक सन्ध्यंग है। हनुमान ने युक्तियों द्वारा तथ्यों की सिद्धि की है। समाधान में नाटककार ने बालि के मुख में लोक धर्म की स्थापना करायी है। यहाँ बीज युक्ति द्वारा व्यवस्थित होता है। अतः समाधान नामक सन्ध्यंग है।

बिलमुख के द्वारा द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में सुग्रीव को प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया गया है। सुग्रीव अपनी सेना को सीतान्वेषण के लिए सभी दिशाओं में भेजता है। अतः समस्त द्वितीय अंक प्रतिमुख सन्धि में सम्मिलित है। गर्भ

---

१. अभिषेक नाटक, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६२, पद्य ६-३३

सन्धि में विच्छिन्न हुई तथा पुनः अविच्छिन्नता को प्राप्त करती है। हनुमान लंका में जा कर सीता के समक्ष राम का सन्देश प्रस्तुत करते हैं। वे वालि के मारे जाने तथा सुग्रीव के साथ मित्रता होने की चर्चा करते हैं। हनुमान का लंका में जाना और सीता का अन्वेषण करना कथा को विच्छिन्न कर देता है। पर जब वे लौट कर आ जाते हैं और सीता का सन्देश दे कर राम को रावण पर आक्रमण करने के लिए परामर्श देते हैं, तो विच्छिन्न होती हुई कथा का सूत्र पुनः जुड़ जाता है और कथावस्तु कार्य की ओर अनुग्रावित होने लगती है। अवमष सन्धि का आरम्भ विभीषण तथा रावण के वार्तालाप में विभीषण महाराज के बुद्धि वैपरीत्य तथा सीता प्रदान का परामर्श देता है। अतः इस स्थल से विमर्श सन्धि का प्रारम्भ होता है। रावण तथा हनुमान के वार्तालाप में रावण के द्वारा यह कहे जाने पर कि उस मनुष्य ने क्या किया है? हनुमान इन शब्दों को सुन कर क्रोधाभिभूत हो जाते हैं। अतः इस अवस्था पर सम्फेट नामक अवमर्श सन्ध्यंग है। व्यवसाय, अपवाद, छलन, द्रव और प्ररोचना नामक सन्ध्यंग भी इस सन्धि में समाविष्ट है।

चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में कंचुकी का कथन निर्वहण सन्धि का स्थल है। कंचुकी कहता है—

"भो भो बलाध्यक्ष! सन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम्।"[1]

स्थल से अन्त तक निर्वहण सन्धि चलती है। यहाँ से रूपक की समस्त कथावस्तु युद्ध की ओर उन्मुख हो जाती है और युद्ध समाप्ति के पश्चात् राम के राज्याभिषेक रूप फलागम की प्राप्ति कराती है। निर्वहण सन्धि के विरोध, ग्रथन, प्रसाद, वराप्ति, नामक अंग भी पाये जाते हैं। इस प्रकार इस नाटक में सभी सन्धियाँ, अर्थ प्रकृतियाँ और कार्य अवस्थाएँ विद्यमान हैं।

बालचरित : अनुचिन्तन

बालक रूप धारी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का अंकन होने के कारण इस नाटक का नाम बालचरित है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता शृंगार रस के अभाव की है। मध्य काल में कृष्ण के चरित की कल्पना शृंगार के बिना सम्भव नहीं थी। पर कवि ने इसमें विशुद्ध रूप से कृष्ण की बाल लीलाओं

---

१. अभिषेक नाटक, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६२, पृ० ६७

था ही संयोजन किया है। राधा का प्रवेश भी इस नाटक में नहीं पाया गया है। अतः कृष्ण चरित को अवगत करने के लिए यह उपादेय है।

कथावस्तु

नान्दीपाठ के पश्चात सूत्रधार मंगल गान करता है। भगवान् विष्णु के वामनावतार, रामावतार एवं कृष्णावतार की प्रशंसा करने के पश्चात् वह श्रोताओं को कुछ सूचित करना चाहता है कि इसी समय आकाश में संचरण करने वाले महर्षि नारद का रंगमंच पर प्रवेश होता है। उन्हें अन्तरिक्ष के शान्त वातावरण में कलह प्रिय होने के कारण शान्ति नहीं मिलती है। वे लोक हित के लिए देवकी के घर में उत्पन्न हुए विष्णु के दर्शन करने आये हैं। नारद दुखित देवकी को हाथ में नवजात शिशु को ले कर शनैः-शनैः वसुदेव की ओर जाती हुई दिखायी पड़ती है। नारायण कृष्ण के रूप में नारायण का दर्शन कर ब्रह्म लोक चले जाते हैं।

देवकी हाथ में शिशु को लेकर प्रवेश करती है। उसका मुख मलिन और शरीर चिन्ता से बोझिल है। कंस ने उसके छः बच्चों की हत्या कर डाली है। अतः इस बालक को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए अपने पति से अनुरोध करती है। अर्द्ध रात्रि, निस्तब्धता एवं गहन अन्धकार में स्वयं वसुदेव भी नहीं जानते कि वे बालक को कहाँ ले जायें? वे मथुरा नगरी से बाहर जाना चाहते हैं। नगर के बहिर्द्वार पर पहुँच कर उन्हें कुछ प्रकाश दिखलायी पड़ता है। वर्षा काल की भरी हुई यमुना लहलहाती दिखायी पड़ती है। नारायण की कृपा से उसका जल दो भागों में विभक्त हो जाता है। उस पार पहुँच कर कृष्ण को समीपस्थ आभीर ग्राम के नन्द गोप के यहाँ ले जाने को जब तक सोचते हैं तब तक मृतपुत्री को ले कर स्वयं नन्द गोप वहाँ उपस्थित होता है। शोकपूर्ण नन्द गोप को देख कर वसुदेव उसे समझाते हैं कि वह मृतपुत्री का त्याग कर बालक कृष्ण को ग्रहण करे। मृतबालिका को वहीं छोड़ कर वह अपनी शुद्धि के लिए जब भूमि खोदता है तब जल की चार धाराएँ उसे प्राप्त होती हैं। वह शुद्ध हो कर बालक कृष्ण को ग्रहण करता है और उसकी गुरुता से आश्चर्यचकित हो जाता है। वसुदेव के निर्देशानुसार वह बालक से प्रार्थना करता है जिससे बालक हल्का हो जाता है। नन्द गोप बालक को ले कर और पालन-पोषण का वचन ले कर प्रस्थान करता है। वसुदेव मथुरा लौटने का विचार करते हैं, इसी समय मृत् बालिका के रोने की आवाज आती

है। वे उस बच्ची को ले कर कारागार में देवकी के पास आते हैं और सारा वृत्तान्त सुना कर उसे धैर्य देते हैं।

—प्रथम अङ्क

राज भवन में चाण्डालयुवतियाँ प्रवेश करती हैं, जिन्हें देख कंस को विस्मय होता है। कंस उन्हें खदेड़ता है। उसी समय मधूक ऋषि का शाप आता है जिसका वारण स्वयं राजा करता है उनके पूछने पर साफ बतलाता है कि मेरा नाम वज्रबाहु है और मैं मधूक ऋषि का शाप हूँ। चाण्डाल रूप धारण कर भयंकर वेष बना राजा कंस के हृदय में प्रवेश करूँगा। राजा के शयन करने पर वह अपने साथियों के साथ आता है। राज्यश्री उसे रोकती है। वह कहता है कि विष्णु की आज्ञा से कंस का त्याग कर तुम चली जाओ। लक्ष्मी के चले जाने पर शाप की दूतियाँ निद्रित राजा के अन्दर प्रवेश कर उसे धर्माचार से विमुख कर देती हैं। प्रतिहारी के आने पर वह चाण्डालिनियों की बात उससे कहता है और इन समस्त घटनाओं को दुःस्वप्न मात्र समझता है। वह राज पुरोहित से दुःस्वप्न का फल पूछता है। वे सब इसे प्रकृति का विकार कहते हैं।

कंचुकी के द्वारा कंस को देवकी के सन्तान होने की सूचना मिलती है। राजा को लड़की की उत्पत्ति में इतने बड़े परिवर्तन पर विश्वास नहीं होता। अतः वह स्वयं वसुदेव को बुलाता है। वे भी देवकी को पुत्री हुई है, ऐसा बतलाते हैं। अपनी मृत्यु से आशङ्कित हो कंस उस कन्या को भी मार डालता है। देवी के पार्षद, कुण्डोदर, शूल, नील, मनोजव आदि उनकी आज्ञा से ग्वालों के घर जन्म लेते हैं। इतने में रात्रि समाप्त हो जाती है और राजा कंस जग कर दुःस्वप्न के शान्त्यर्थ पूजा-गृह में जा कर पूजा पाठ करता है।

—द्वितीय अङ्क

प्रवेशक द्वारा यह सूचना मिलती है कि जिस दिन से भगवान् कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ है उसी दिन से व्रज में सुख और समृद्धि की वर्षा होने लगती है। गोधन निरोग, वृक्ष फलयुक्त और लताएँ पुष्पाच्छादित हो गयी हैं। वृद्ध गोपालक कृष्ण की अद्भुत बाल लीलाओं का वर्णन करते हैं जिससे पूतनादि राक्षसों के वध की सूचना मिलती है। दामोदर और संकर्षण भी गोप कन्याओं और गोप कुमारों के आमोद-प्रमोद का वर्णन करते हुए स्वयं भी सबके साथ हल्लीसक नृत्य करते हैं। इसी समय अरिष्टवृषभ नामक दैत्य आता है जिसे बाल कृष्ण मार डालने के लिए उद्यत हैं। अरिष्ट वृषभ कहता है—'आज

में वृषभ का रूप धारण करके शत्रु पर अपनी सारी शक्ति का प्रयोग करूँगा और उसे मार कर वृन्दावन मे सुखपूर्वक विचरण करूँगा। मेरे गर्जन को सुन कर देव रमणियो का गर्भपात हो जाता है और मेरे खुर के प्रहार से विस्तृत पृथ्वी थरथराने लगती है। जब वह कृष्ण को निर्भीकतापूर्वक अपने सम्मुख खडा हुआ देखता है, तो उसे बडा आश्चर्य होता है।' कृष्ण उत्तर देते हैं—'मैं भय को नहीं जानता। इस पृथ्वी तल पर भयभीतो को निर्भय करने ही आया हूँ।' इस प्रकार कह कर कृष्ण अनेक बालकों की निर्भयता का वर्णन कर अपनी असामान्यता प्रकट करते हैं। अरिष्ट वृषभ उन्हे अपने जाति के अनुकूल अस्त्रो को ग्रहण करने के लिए कहता है। कृष्ण अपने भुज-दण्डो को ही स्वाभाविक अस्त्र बतलाते हैं। वे अपने एक पैर को पृथ्वी पर रख देते हैं और उससे कहते हैं कि इसे उठाओ। राक्षस उसे उठा नहीं पाता। इससे उसे विश्वास हो जाता है कि यह त्रिलोकीनाथ हैं। इनके द्वारा मारे जाने से मुझे मोक्ष प्राप्त होगा। कृष्ण उसे उठा कर फेंक देते हैं। उसके मुख और नेत्रो से रक्त की धारा निकलने लगती है, उसका शरीर थरथराने लगता है और वह मर जाता है। दामक आ कर यमुना नदी मे रहने वाले कालीय नाग की सूचना देता है। कृष्ण उस गर्वीले सर्पराज का गर्व खर्व करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

—तृतीय अङ्क

कृष्ण कालीय ह्रद मे प्रवेश करना चाहते हैं और गोपियाँ उन्हें उस जलाशय में प्रवेश करने से रोकती हैं। वे सभी को सान्त्वना दे कर ह्रद मे प्रवेश कर जाते हैं। कालीय और कृष्ण मे युद्ध होता है तथा भगवान् उसके फनो पर आरूढ हो जाते हैं। कालीय उसे भयकर विष ज्वाल से भस्मसात करने का प्रयत्न करता है, पर असफल रहता है और कृष्ण के हाथ से उसका दमन होता है। कालीय भगवान् की शरण मे आता है और निवेदन करता है—"प्रभु ! आपके वाहन गरुड के भय से ही मैं यहाँ आया हूँ।" कृष्ण उत्तर देते हैं—"तेरे फन पर मैंने अपने चरणों का चिह्न बना दिया है। अब तुम्हें गरुड कष्ट नहीं देगा।" कालीय सपरिजन ह्रद मे निकल कर चला जाता है और कृष्ण गोप-गोपियो से आ कर मिलते हैं। इसी समय कस के यहाँ से भट आता है और कहता है—"मथुरा मे 'धनुर्यज्ञ' हो रहा है, जिसमे कंस ने आप लोगों को सपरिजन बुलाया है।" भगवान् कस को मारने की इच्छा से तत्काल इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं।

—चतुर्थ अङ्क

कंस कृष्ण और बलराम को अपने पहलवानों से मरवाने की बात सोचता है। इसी समय ध्रुवसेन नामक भट आता है। और निवेदन करता है कि श्रीकृष्ण और बलराम ने नगर में प्रविष्ट होते ही धोबी से वस्त्र छीन लिये हैं और कुवलयापीड हाथी को मार डाला है। कृष्ण मदनिका नामक कुब्जा को देख कर जो कि राज प्रासाद के लिए सुगन्धित द्रव्य ले कर जा रही थी, उसके हाथ से सुगन्धित द्रव्य को छीन कर अपने शरीर में लगा लेते है और कुब्जा के कुबड़ेपन को ठीक कर देते हैं, कृष्ण धनुःशाला के रक्षक को मार कर धनुष के दो खण्ड कर डालते हैं। कंस चाणूर और मुष्टिक को उन गोप बालों के साथ युद्ध करने की आज्ञा देता है। युद्ध पटह बजता है और कृष्ण के साथ चाणूर का और बलराम के साथ मुष्टिक का मल्लयुद्ध होता है। वे दोनों असुर कृष्ण और बलराम के हाथ से मारे जाते हैं। कृष्ण राज प्रासाद पर चढ़ जाते हैं और कंस का सिर पकड़ कर उसे नीचे गिरा देते हैं। कंस का प्राणान्त हो जाता है। सभा में कोलाहल होता है और कंस की सेना युद्ध के लिए सन्नद्ध होती है। बलराम सैन्यमन्थन के लिए उद्धत होते हैं। इसी समय वहाँ वसुदेव उपस्थित होते हैं और वे बतलाते हैं कि ये दोनो पुत्र उन्हीं के हैं। बलराम रोहिणी पुत्र हैं और श्रीकृष्ण देवकी नन्दन। कंस का वध करने के लिए ही साक्षात भगवान् वासुदेव अवतरित हुए हैं। वसुदेव के इस कथन से उग्रसेन को कारागार से मुक्त किया जाता है और उनका राज्याभिषेक होता है। वृष्णि राज्य की पुनः प्रतिष्ठा होती है। आकाश से दुन्दुभिनाद और पुष्प वृष्टि होती है। देवर्षि नारद भगवान् का गुणानुवाद करते हुए प्रकट होते हैं और उनको प्रणाम कर चले जाते हैं। नाटक भरत वाक्य के साथ समाप्त होता है।

पंचम अङ्क

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना संयोजन

नाटक की इस कथावस्तु का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत, महाभारत का हरिवंश एवं पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण का चरित्र है। नाटककार ने पौराणिक कथावस्तु को नाटकीयता प्रदान करने के लिए अपनी काव्य प्रतिभा, कल्पना एवं मौलिक उद्भावना से पर्याप्त सहायता ली है और कथानक का संगठन कल्पना द्वारा प्रस्तुत किया है। यह सत्य है कि इस नाटक के स्रोत पुराणों के साथ कृष्ण विषयक किंवदन्तियाँ भी हैं। अगाध पानी के द्वारा मार्ग दिये जाने वाली घटना अभिषेक में भी वर्णित है, प्रेम सागर में भी इस प्रकार की अद्भुत

घटनाओ की कमी नही है। हरिवश पुराण तथा अन्य पुराणो मे भी कृष्णलीला का यह रूप प्राप्त नही है। कोनो के मतानुसार भास प्रणीत बालचरित नाटक पर्याप्त प्राचीन है, क्योकि न तो इसमे राधा का ही वर्णन आया है और न शृङ्गारिक प्रसगो का ही। नाटककार भास ने नन्द गोप की पुत्री को मृत दिखला कर नाटकीय गतिमत्ता प्रस्तुत की है। यह स्वाभाविक है कि मृतपुत्री को एकान्त स्थान मे विसर्जित करने के लिए नन्द गोप जाय और पुत्री के स्थान पर उसे किसी व्यक्ति विशेष द्वारा दैवी वरदान के रूप में पुत्र मिल जाय। मृतपुत्री श्वास के अवरुद्ध होने से मृत घोषित की गयी होगी, पर जब उसमे पुन श्वास का सचार हुआ होगा तो उसका पुनर्जीवित हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही। भास की यह कल्पना न तो हरिवश पुराण मे मिलती है और न श्रीमदभागवत मे ही। वसुदेव और नन्द गोप का वार्तालाप भी नाटककार की अपनी कल्पना है। नाटककार ने कृष्ण को सातवाँ पुत्र बताया है, जब कि पुराणो मे कृष्ण आठवें पुत्र हैं। इस प्रकार कृष्ण के बालचरित को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए उक्त नाटक निबद्ध किया गया है।

कथानक सयोजन में कुछ व्यतिक्रम आया है। प्रथम अङ्क मे हम पाते हैं कि वसुदेव श्रीकृष्ण को नन्द गोप के हाथो मे समर्पण करते हैं तो रात्रि का पर्यवसाण हो जाता है। तत्पश्चात् जब वे मथुरा मे पहुँचते हैं तो मथुरावासियो को निन्द्रा मे निमग्न पाते है। यहाँ काल की एकता की कमी खटकती है। नाटककार ने गोपियों का रूपचित्रण भी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मे चित्रित किया है। भोली गोप कुमारियों को बालकृष्ण के अद्भुत पराकम पर विश्वास नही होता, पर नाटककार ने इस प्रकार के प्रसगो को अपनी कल्पना के अतिशय द्वारा चमत्कृत बनाने का पूरा प्रयास किया है।

शास्त्रीय विश्लेषण

स्थापना मे नारद का यह कथन कि लोको के आदि, अमर, अव्यय लोकहित के लिए, कस को मारने के लिए वृष्णि कुल मे उत्पन्न भगवान् नारायण को देखने आया हूँ। अरे यह भगवती देवकी है। माया से शिशु रूप को प्राप्त त्रिभुवनपति को ले कर वसुदेव के साथ धीरे धीरे अपने घर से निकल रही है। भगवान् नारायण शोक सन्तप्त परिवार एव देवताओ का उद्धार करने के लिए इस भूमि पर अवतरित हुए हैं, इस वचन मे प्रारम्भ नामक अवस्था है। बताया है—

"तत् भगवन्तं लोकादिमनिधनमव्ययं लोकहितार्थं कसवधार्थं वृष्णिकुले प्रसूत

नारायणं द्रष्टुमिहागतोऽस्मि । अये, इयमत्रभवती देवकी । मायया शिशुत्वमुपागतं त्रिलोकेश्वरं प्रगृह्य वसुदेवेन सह शनैः स्वगृहान्निष्क्रामति ।"[1]

यह अवस्था प्रथम अङ्क के अट्ठाइसवें पद्य तक चलती है। पश्चात् "कुमारस्य किं करिष्यति भवान्"[2] वसुदेव के इस प्रश्न के उत्तर में नन्द गोप का कथन एवं वसुदेव द्वारा मथुरा में लौट आना तथा बाल कृष्ण का संवर्द्धन होना, प्रयत्न नामक अवस्था है। प्रयत्न के अन्तर्गत कंस द्वारा स्वप्नावस्था में चाण्डाल कन्याओं का देखा जाना, राज्यश्री का निकल जाना, शाप का प्रवेश होना आदि सम्मिलित हैं। वसुदेव का यह कथन भी प्रयत्न के अन्तर्गत है—"मयापि नामानृतं वक्तव्यं भविष्यति। अथवा कुमार रक्षणार्थमनृतमपि सत्यं पश्यामि। किमिदानीं करिष्ये। भवतु, दृष्टम् ! दारिका प्रसूता तया।"[3]

प्राप्त्याशा नामक अवस्था का आरम्भ वृद्ध गोपालकों के इस कथन से होता है कि जब से नन्द गोप को पुत्र हुआ है तब से यहाँ गोधन आदि की वृद्धि हुई है। दस दिन का ही जब नन्द गोप कुमार था तो विष से पूर्ण स्तनों वाली पूतना नामक राक्षसी यशोदा का वेश धारण कर आयी। उसने कुमार को ले कर उसे स्तन पान कराया। कृष्ण ने उसे सोयी हुई जान कर पटक दिया और वह दानवी के रूप में आ कर मर गयी। जब कुमार एक मास का हुआ तो शकट नामक दानव शकट का वेष धारण कर आया और कृष्ण ने एक ही पैर के प्रहार से उसे चूर कर दिया। इसी प्रकार उनके द्वारा यमल और अर्जुन नामक दानवों के मारे जाने का वर्णन किया है। इस स्थल से प्राप्त्याशा का आरम्भ होता है। बताया है—

"अन्यच्चेदमाश्चर्यम् । दशरात्रप्रसूते नन्दगोपपुत्रे पूतनानाम दानवी विषसम्पूरितस्तना नन्दगोप्या रूपं गृहीत्वागता। ततस्तया दारकं गृहीत्वा तस्य मुखे स्तनः प्रक्षिप्तः ततस्तां विज्ञाय सुप्ता पातिता सापि दानवी भूत्वा तत एव मृता । ततो मासमात्रे नन्दगोपपुत्रे शकटो नाम दानवः शकटवेषं गृहीत्वागतः।"[4]

प्राप्त्याशा में ही अरिष्ट वृषभ का वध और कालीय नाग का दमन भी सम्मिलित है। यह अवस्था चतुर्थ अंक के उस स्थल तक जाती है, जहाँ कंस

1. बालचरित, प्रथम अङ्क, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६२, पृ० ४-५
2. वही, पृ० २८
3. वही, पृ० ४३
4. वही, पृ० ५४

की ओर से धनुर्याग युद्ध का सन्देश ले कर भट आता है। भट के आने की पूर्व की स्थिति प्राप्त्याशा है।

भट के कथन से नियताप्ति की स्थिति प्रारम्भ हो जाती है, भट कहता है—"मथुरायां धनुर्महो नाम महोत्सवो भविष्यति। तमनुभवितु सपरिजनाभ्यां भवद्भ्यामागन्तव्यमिति।"[1] यह नियताप्ति की स्थिति कुवलयापीड के वध, कुब्जा के कुब्जत्व को दूर करना, धनुशाला के रक्षक को मार कर धनुष के दो टुकड़े कर डालना, चाणूर और मुष्टिक के वध होने तक है। कृष्ण राज-प्रासाद पर चढ़ कर जब कंस को पटकने के लिए तैयार होते हैं तो वहाँ से फलागम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। दामोदर का यह कथन—

"कंसासुरञ्च यमलोकमहनयामि"[2] से फल प्रारम्भ होता है और वसुदेव के निम्न कथन से फल का पर्यवसान हो जाता है—"भो भो मथुरावासिनः शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः। अस्य खलु दैत्येन्द्रपुरार्गलोत्पाटनपटो सर्वजनपराङ्मुखावलोकिनो वसुदेवसम्भवस्य वासुदेवस्य प्रसादात् पुनरधिगतराज्यस्योग्रसेनस्य शासनमिदानीमवघुष्यते।"[3]

अर्थ प्रकृतियों की दृष्टि से इस नाटक में बीज, बिन्दु और कार्य ये तीनों तो स्पष्ट हैं। पताका और प्रकरी के रूप में कोई भी स्वतन्त्र कथानक नहीं हैं। जितने भी सहायक कथानक हैं वे सभी नायक के साथ सम्बद्ध हैं और उनसे नायक की ही महत्ता अभिव्यक्त होती है। बीज का प्रारम्भ नारद के कथन से होता है। नारद रंगमंच पर आ कर लोकहित कंस संहार के लिए देवकी के घर में विष्णु रूप में श्रीकृष्ण के अवतार का निर्देश करते हैं। इस बीज का विकास प्रथम अंक में होता है। वसुदेव बालक कृष्ण को ले कर मथुरा नगरी से प्रस्थान करते हैं और आभीर ग्राम में पहुँचते हैं। यह सब बीज की स्थिति है। बिन्दु का प्रारम्भ निम्न पद्य से माना जा सकता है—

> किं द्रष्टव्यः शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले
> त्वयाऽप्यस्य सुदुष्टस्य कंसो मृत्युर्भविष्यति।[4]

बिन्दु में आशा निराशा की स्थिति भी आती है। दामोदर को ले कर

---

१. बालचरित, चतुर्थ अङ्क, चौखम्बा संस्करण सन् १९६२, पृ० ८३
२. वही, पंचम अङ्क, पृ० ९०
३. वही, पृ० १००
४. वही, पद्य १।११

वसुदेव जब यमुना पार करने लगते हैं और गहन अन्धकार उनके सामने उपस्थित होता है तब कुछ देर के लिए वह स्तब्ध हो जाते हैं। द्वितीय अङ्क का कथानक मूल कथा से विच्छिन्न जैसा ही है। शाप का उपस्थित होना, राज्यश्री का निर्वासित होना एवं कंस का भयभीत होना आदि प्रकरी के रूप में लिया जा सकता है। इस कथावस्तु से नायक के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है तथा यह ध्वनित होता है कि पराक्रमी नायक के उत्पन्न होते ही कंस के सिर पर मृत्यु झूलने लगी है। उसकी राज्यश्री अब निकलना चाहती है और पुनः वृष्णि राज्य स्थापित होना चाहता है। अतः द्वितीय अङ्क का समस्त कथानक प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति है। तृतीय और चतुर्थ अङ्कों के कथानक में बिन्दु का विकास ही हुआ है। कार्य की स्थिति भट्ट द्वारा धनुर्मह यज्ञ की सूचना से घटित होती है और नाटक के अन्त में जा कर परिपक्वता को प्राप्त होती है।

सन्धियों की दृष्टि से इस नाटक में पाँचो ही सन्धियाँ हैं। नारद का विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आना और कंस वध हेतु श्रीकृष्ण के अवतीर्ण होने की सूचना देना मुख नामक सन्धि है। यहाँ नारद का दर्शनार्थ आना उपक्षेप है और देवकी की युक्ति परिकर है। वसुदेव के द्वारा कंस की मृत्यु की घोषणा परिन्यास है। नन्द गोप का वसुदेव तथा अपने गुणों का कीर्त्तन विलोभन है।

कृष्ण की रक्षा के हेतु नन्द गोप के वचन— 'यशोदा भी नहीं जानती कि पुत्र है अथवा पुत्री ?'' इत्यादि कथन में पात्र के अभीष्ट तथ्यों का समर्थन होने से युक्ति नामक सन्ध्यंग है। वसुदेव का नन्द से कृष्ण की रक्षा करने में यादवों के बीजन्यास के कथन से बीज का युक्ति द्वारा व्यवस्थापन समाधान है। वसुदेव का कन्या को देवकी के समीप रख कर कंस को वंचित करने का कथन छिपे हुए गूढ़ भेद का उद्घाटक होने से उद्भेद है। नन्दगोप के "ईश्वरास्स्वस्ति कुर्वन्तु" कथन में कार्य के प्रति प्रोत्साहन होने से भेद नामक सन्ध्यंग है।

प्रतिमुख सन्धि का प्रारम्भ बीज के तिरोहित होने पर कंस का अनिष्ट शकुनों का दर्शन करना एवं उसके वध की सूचना का मिलना है। शाप का कंस विनाश के लिए मथुरा में प्रवेश करना प्रतिमुख सन्धि के अन्तर्गत है। वसुदेव का श्रीकृष्ण को छिपा कर कंस को कन्या बतलाना और कंस के बुलाये जाने पर असत्य भाषण द्वारा कन्या उत्पत्ति का समाचार कहना गर्भ सन्धि के अन्तर्गत है।

बाल कृष्ण की कालीय दमन, अरिष्ट वृषभ का वध एवं दामोदर का

कस वध के लिए प्रतिज्ञ होना अवमर्श सन्धि के अन्तर्गत है। कस द्वारा कृष्ण का स्मरण एव अपनी मृत्यु का आह्वान निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत है। इस सन्धि मे विबोध, ग्रथन, आनन्द, कृति, समय, भाषण और वराप्ति नामक सन्ध्यग भी समाविष्ट है। इस सन्धि की समाप्ति 'प्रतिष्ठितमिदानिं वृष्णि-राज्यम्''[१] से होती है।

इस प्रकार इस नाटक मे पाँच सन्धियाँ हैं, वीर रस है और आरभटी वृत्ति है। बालचरित की बहुत-सी घटनाएँ और सवाद भास प्रणीत अन्य नाटको के समान हैं। इसमे पञ्चरात्रि के समान आमोद-प्रमोदमय ग्वालो के जीवन की झाँकी मिलती है। उनके पर्वों, उत्सवो और त्योहारो मे नाटककार ने पर्याप्त स्वाभाविकता लायी है। बालक दामोदर और सकर्षण तथा उत्तेजित सेना पञ्चरात्रि के अभिमन्यु की स्मृति दिलाते हैं। निर्जीव शस्त्रो का सजीव रूप मे रगमच पर अवतरण, 'दूतवाक्यम' के समान है। नारद का प्रादुर्भाव कुछ ऐसी ही परिस्थितियो मे 'अविमारक' मे हुआ है। प्रस्तुत नाटक मे जिस पकार कस के दुर्दिन आने पर उसकी राज्यलक्ष्मी उसे छोड कर चली जाती है उसी प्रकार अभिषेक मे रावण को छोड कर लकाश्री भी चली जाती है। इस नाटक के सवाद बडे ही सफल हैं। जहाँ भावनाएँ गहन और परिस्थिति जटिल होती हैं वहाँ कथोपकथन मे विशेष गति दिखलायी पड़ती है। रात्रि के घने अन्धकार का वर्णन 'अविमारक' और 'चारुदत्त' के समान ही है। इस नाटक मे छब्बीस पुरुष पात्र और दस से अधिक नारी पात्र हैं। नायक तो कृष्ण है और उपनायक सकर्षण। खल नायक कस को माना जा सकता है।

अविमारक : अनुचिन्तन

सौवीर राजकुमार अविमारक का आख्यान वर्णित होने के कारण इसका नाम 'अविमारक' रखा गया है। अविमारक का वास्तविक नाम विष्णुसेन था और अविरूपधारी असुर को मारने के कारण वह अविमारक सज्ञा से अभिहित किया गया है।

यह 'प्रकरण' है और इसकी कथा कवि कल्पित है। स्वाभाविक कथोपकथन होने से नाटकीयता का पूर्ण समावेश पाया जाता है। यह छ: अङ्कों का रूपक है। इसमे राजकुमार अविमारक और राजा कुन्तिभोज की कन्या कुरगी

---

१. बालचरित, चौखम्बा सस्करण, सन् १९६२, अक ५, पृ० १००

के प्रणय व्यापार की कथा अंकित है। अविमारक काशिराज की पत्नी सुदर्शना में अग्नि से उत्पन्न हुआ है। सुदर्शना ने अपने इस पुत्र को अपनी बहिन सुलोचना को दे दिया, जिसका सौवीर राज के साथ पाणिग्रहण हुआ था। यहाँ इसका नाम विष्णुसेन रखा गया। चण्ड भार्गव नामक अति क्रोधी मुनि के शापवश चाण्डालत्व को प्राप्त सौवीरराज अपने परिवार के साथ प्रच्छन्न रूप में कुन्तिभोज की नगरी में निवास करने लगा। विष्णुसेन ने अविरूपधारी किसी दुर्दान्त असुर का वध किया, जिससे उसका नाम अविमारक प्रसिद्ध हो गया।

कथावस्तु

राजा कुन्तिभोज की कन्या कुरंगी उद्यान भ्रमण के लिए गयी। वह उद्यान विहार कर वापस लौट रही थी कि एक उन्मत्त हाथी उसकी ओर झपटा। सभी अंगरक्षक हाथी को देखते ही भाग गये और राजकुमारी के साथ की स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं। इसी बीच एक सुन्दर युवा पुरुष वहाँ उपस्थित हुआ और उसने हाथी को स्वबाहुबल से खदेड़ दिया। हाथी के हटते ही राजकुमारी ने अन्तःपुर में प्रवेश किया। पराक्रम प्रदर्शन से कुरंगी का झुकाव अविमारक की ओर हो गया और वह उससे प्रेम करने लगी। अविमारक भी उसके रूप यौवन पर मुग्ध हो गया।

कौञ्जायन नामक अमात्य घटना को सुनाता हुआ कहता है—उस वीर व्यक्ति का अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ है कि वह युवा अन्त्यज है। अमात्य विभूतिक उसी का पता लगाने के लिए रुक गये हैं। राजा को कुञ्जायन की बात पर विश्वास नहीं होता कि अकुलीन व्यक्ति इतना निर्भय वीर और गुणवान् हो सकता है? इसी समय विभूतिक प्रवेश करता है और बताता है—वह अपने को अन्त्यज कहता है, पर इतनी सहृदयता दयालुता और दाक्षिण्य अन्त्यज में सम्भव नहीं है।

अमात्यों के वार्त्तालाप से ज्ञात होता है कि काशिराज का दूत कन्या माँगने के लिए आया है। राजा सोचने लगता है कि काशिराज और सौवीरराज में से किसे कन्या देनी चाहिये। सौवीरराज और काशिराज दोनों ही कुन्तिभोज के बहनोई हैं, सौवीरराज कुन्तिभोज की महारानी का भाई भी है। अतः कुन्तिभोज ने द्विविधा में पड़ कर काशिराज के दूत का प्रत्याख्यान नहीं किया।

—प्रथम अङ्क

कुरगी के प्रेम के कारण अविमारक की मन स्थिति बिगड़ती जा रही है। वह काम बाण से आहत हो कर दिन रात उसकी चिन्ता मे पड़ा रहता है। इधर कुरगी की भी वही स्थिति है। उसने भी भोजन पान एव श्रृगार का त्याग कर दिया है। उसकी इस दयनीय दशा से द्रवीभूत हो उसकी सखि नलिनिका धात्री के साथ अविमारक का पता लगाने निकल पड़ती है। धात्री मार्ग मे नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करती है। वह सोचती है कि यदि उस युवक का राजकुल मे प्रवेश करा दिया जाय तो राजकुल दूषित हो जायगा और उसे प्रवेश न कराया जाय तो कुरगी अपने प्राणो से हाथ धो बैठेगी। इसी समय कहीं से ध्वनि सुनायी पड़ती है कि ऐसा व्यक्ति अकुलीन नही हो सकता।

धात्री और नलिनिका अविमारक के पास गयी और गुप्तरूप से कन्यापुर में प्रवेश करने का उसे आमन्त्रण दे आयीं। अविमारक ने इस आमन्त्रण को स्वीकार किया। उसे अपने पराक्रम पर पूर्ण विश्वास था।

—द्वितीय अङ्क

कुरंगी अपनी परिचारिकाओ से अविमारक के सम्बन्ध मे पूछती है। वे परिहास करती हैं। शिलातल पर बैठ कर मागधिका कहती है कि काशिराज के यहाँ से दूत आया था, और महाराज ने दामाद को यहीं बुलाया है। इसी समय अविमारक चोर वेश मे राजान्त.पुर मे प्रविष्ट होता है। नलिनिका अविमारक को पहचान लेती है। राजकुमारी कुरगी सो रही है, उसी के पार्श्व मे अविमारक बैठ जाता है। इसी समय कुरगी की नींद खुलती है और पूछती है कि उस निर्दय ने क्या कहा? कुरगी अपनी सखि नलिनिका से आलिंगन करने को कहती है। अविमारक उसका आलिंगन करता है। राजकुमारी काँप जाती है, और अपने चारित्रिक पतन से दुःखी होती है। अविमारक उसे समझा कर शान्त करता है। सखियाँ हट जाती हैं और अविमारक कुरगी को ले कर शयनागार के भीतर चला जाता है।

—तृतीय अङ्क

अविमारक और कुरंगी का प्रेम वृद्धिगत होने लगता है। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो जाता है। इस घटना की सूचना राजा को मिलती है। अविमारक ने जब देखा कि वह पकड़ा जायेगा, तब वह वहाँ से निकल भागा। बाहर आ जाने पर उसे प्रियतमा वियोग ने इतना व्यथित किया, जिससे उसने आत्मघात करने का निश्चय कर लिया। अपने इस निश्चयानुसार प्रथम उसने जल मे

डूब मरने का प्रयास किया, पर असफल रहा। अनन्तर अग्नि प्रवेश द्वारा प्राण त्याग करने का निश्चय किया। निश्चयानुसार दावानल में प्रवेश भी किया। किन्तु अग्निदेव ने उसे नहीं जलाया। तत्पश्चात् उसने पर्वत शिखर से गिर कर प्राण देने की बात सोची। वह पर्वत शिखर पर चढ़ भी गया। वहाँ उसकी सस्त्रीक विद्याधर से भेंट हुई। विद्या द्वारा अविमारक की समस्त बातें ज्ञात कर विद्याधर ने अविमारक को एक ऐसी अँगूठी दी, जिसे बायें हाथ में धारण करने से वह अदृश्य और दाहिने हाथ में धारण करने से दृश्य हो सकता है। इस अद्भुत अँगूठी की सहायता से अविमारक ने पुनः कन्यान्तःपुर में प्रवेश करने का निश्चय किया।

—चतुर्थ अङ्क

नलिनिका और कुरंगी राज प्रासाद में बैठी हुई हैं। कुरंगी अविमारक के वियोग से सन्तप्त है। इसी समय अविमारक और विदूषक भी वहाँ पहुँच जाते हैं। कुरंगी के दर्शन कर अविमारक अत्यधिक प्रसन्न होता है। इसी बीच महारानी के पास से लेप लेकर हरिणिका आती है। हरिणिका और नलिनिका के चले जाने पर कुरंगी गले में फन्दा लगा कर प्राण त्याग करना चाहती है। किन्तु मेघ गर्जन सुनकर भयभीत हो जाती है। इसी समय अविमारक आकर उसका आलिंगन कर लेता है। विदूषक भी चला जाता है और अविमारक तथा कुरंगी भीतर चले जाते हैं।

—पंचम अङ्क

धात्री से ज्ञात होता है कि काशिराजकुमार जयवर्मा अपनी माता सुदर्शना के साथ कुरंगी से विवाह करने के लिए कुन्तिभोज के यहाँ आ गये हैं। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि सौवीरराज के मन्त्रियों ने कुन्तिभोज को पत्र लिखा है कि सौवीरराज सपरिवार पुत्र उन्हीं के नगर में निवास कर रहे हैं। राजा कुन्तिभोज को सौवीरराज मिल जाते हैं, पर उनके पुत्र का पता नहीं चलता। सौवीरराज कुन्तिभोज से अविमारक की वीरता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—'धूमकेतु राक्षस को उसने क्षण भर में ही धराशायी बना दिया है।' अविमारक के न मिलने से सभी को कष्ट होता है। इसी समय देवर्षि नारद उपस्थित होते हैं और कहते हैं—"सौवीर राजकुमार अविमारक कुन्तिभोज के अन्तःपुर में कुरंगी के साथ गान्धर्व विवाह कर समय यापन कर रहे हैं। हस्तिसम्भ्रम के समय से ही दोनों में प्रणय व्यापार चल रहा है।"

कुन्तिभोज इस समाचार से व्यथित होता है और सोचने लगता है कि

काशीराज जयवर्मा को क्या कह कर सन्तुष्ट किया जाय ? जयवर्मा का विवाह कुरंगी की छोटी बहिन सुमित्रा के साथ सम्पन्न करने की सलाह नारद ने दी। तदनुसार कुरंगी का विवाह अविमारक से और सुमित्रा का जयवर्मा से सम्पन्न किया गया।

—षष्ठ अङ्क

शास्त्रीय विश्लेषण एवं समीक्षण

अविमारक की कथावस्तु काल्पनिक है। यद्यपि इसका कथा स्रोत गुणाढ्य की बृहत्कथा में मिल सकता है पर है यह मूलतः काल्पनिक ही। यतः गुणाढ्य भास से अर्वाचीन है। इसे प्रकरण माना जा सकता है। यद्यपि प्रकरण के लक्षणानुसार नायक, विप्र, अमात्य या वणिक् होना चाहिये, किन्तु यहाँ नायक राजकुमार है। अतः एक लक्षण की न्यूनता है। प्रकरण का रचना विधान मुख्यतया नाटक के अनुसार होता है। अविमारक विपत्ति ग्रस्त है और कठिनाइयों में रह कर काम पुरुषार्थ की सिद्धि करता है। प्रकरण में तीन प्रकार की नायिकाएँ—(१) कुलस्त्री, (२) वेश्या और (३) कुलस्त्री वेश्या। प्रस्तुत रूपक में कुल स्त्री कुरंगी नायिका है। धात्री और सखियों की धूर्तता का सफल चित्रण हुआ है। इस प्रकरण का नामकरण भी नायक के नाम पर हुआ है। इसका अंगी रस शृंगार है।

अविमारक के कार्य व्यापारों में क्षिप्रता व्याप्त है। घटनाओं और स्थितियों की आवृत्ति भी पायी जाती है। इस रूपक में विद्याधर से मायामयी अँगूठी मिलती है, जो नाटक के व्यापार में निर्णायक भूमिका अदा करती है, क्योंकि इसके प्रयोग से नायक अदृश्य रूप से अन्तःपुर में प्रवेश कर अपनी प्रियतमा कुरंगी से एकान्त में मिल सका है।

संवादों की स्वाभाविकता के साथ भावाङ्कन की अपनी विशेषता है। परिस्थितियों, अवस्थाओं एवं भावों का वर्णन सार्थकता शब्दों में पाया जाता है। अभिनेयता गुण सर्वाधिक पाया जाता है।

नाटककार का उद्देश्य अविमारक और कुरंगी का विवाह सम्पन्न कराना है। राजा कुन्तिभोज कन्या विवाह की चिन्ता से आक्रान्त हैं। यह प्रस्तुत रूपक का बीज है। अतः "कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम्"[1] से आरम्भ नामक अवस्था आती है और यह काशीराज के दूत के आगमन तक रहती है।

---

१. अविमारकम्, चौखम्बा संस्करण, १९६२ ई०, १।२

कौञ्जायन राजा कुन्तिभोज से कुरंगी के विवाह के लिए बहुत से क्षत्रियों के सम्बन्ध में विचार करने को कहता है। अतएव—"स्वामिन् ! बहुष्वपि क्षत्रियेषु पूर्वसम्बन्धविशेषो सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ अस्मत्सम्बन्धयोग्याविति स्वामिना चिन्तितौ। तत्र पूर्वमेव सौवीरराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः । स चास्माभिरतिबाला कन्येत्यपदेशमुक्त्वा सुपूजितो विसर्जितः। इदानीं तु काशिराजेनपुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः। तत्र बलाबल-चिन्तायां स्वामी प्रमाणम्।"[१] से 'प्रयत्न' नामक अवस्था का आरम्भ होता है। कुरंगी का विवाह कराने का प्रयत्न आरम्भ होता है। कुरंगी और अविमारक दोनों में आकर्षण सम्पन्न होता है। हस्तिसम्भ्रम की घटना के पश्चात् ये दोनों आपस में एक-दूसरे को अपना हृदय समर्पित कर देते हैं।

धात्री और नलिनिका अविमारक के स्थान का पता लगाती हैं। दोनों उक्त स्थान पर पहुँच कर अविमारक की काम विह्वल अवस्था का दर्शन करती हैं तथा उसे कुरंगी के कन्यान्तःपुर में आने का निमन्त्रण दे जाती हैं। यहीं से प्राप्त्याशा नामक अवस्था आरम्भ होती है। धात्री कहती है—"पवेसमत्तं एव्व दुल्लहं। सक्कं अब्भन्तरे चिरं वसिदुं।"

अविमारक—"प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः । क्रियतामनर्गल विशाला प्रसादमाला।"

धात्री—"एवं करेम्ह। सव्वं अब्भन्तरकरणीअं संपादेम्ह। अप्पमत्तो एव पविसदु अय्यो।"

अविमारक—"भवति ! सकृदभिधीयतां राजकुलस्य विधानम्।"[२]

प्राप्त्याशा में आशा और निराशा की स्थिति आती है। अविमारक को अन्तःपुर में प्रवेश करने में कठिनाई का अनुभव होता है। वह अन्तःपुर में प्रविष्ट हो जाता है तथा एक वर्ष तक आनन्दपूर्वक कुरंगी के साथ रहता है। राजा कुन्तिभोज को अन्तःपुर में अविमारक की उपस्थिति की सूचना मिल जाती है। अतः वह वहाँ से भागता है। कुरंगी के वियोग से घबड़ा कर वह दो बार आत्महत्या करने का प्रयत्न करता है। इसी समय पर्वत शिखर पर उसे विद्याधर मिल जाता है और उससे वह मायावी अंगूठी प्राप्त करता है, जिसके बल से अदृश्य हो कर पुनः कुरंगी से मिलता है। मायावी अंगूठी की प्राप्ति

---

१. अविमारक, चौखम्बा संस्करण, १९६२ ई०, प्रथम अङ्क, ६वें पद्य के पश्चात्, पृ० २०-२१

२. वही, द्वितीय अङ्क, ७वें पद्य के पश्चात्, पृ० ४४

मे 'नियताप्ति' अवस्था आरम्भ होती है और यह नारद के आगमन तक स्थिर रहती है। पश्चात्—

> दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे।
> पूर्वं पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टो मायया पुनः ॥[1]

मे 'फलागम' का आरम्भ होता है तथा "जयवर्मणे सुमित्रा प्रदीयता काशिराजे" पर यह कार्यावस्था समाप्त होती है।

प्रस्तुत रूपक मे काशीराज और विद्याधर का कथानक पताका और प्रकरी हैं। बीज, बिन्दु और कार्य नामक अर्थ प्रकृतियाँ भी निहित हैं। बीज का प्रारम्भ राजा और रानी के मध्य विवाह की चिन्ता से होता है। यह बीज क्रमश. विकसित होता हुआ कौञ्जायन द्वारा बहुत से अन्य क्षत्रियो के सम्बन्ध मे विचार-विनिमय करने की विचारधारा प्रस्फुटित कर बिन्दु रूप में परिणत होता है। कथावस्तु मे कुरगी और अविमारक की मन्मथ पीड़ा जाग्रत होने से तनाव की स्थिति आती है। दोनो ही एक-दूसरे के लिए उत्कण्ठित हैं। आशा और निराशा की दोलायमान स्थिति आती है जिससे बिन्दु मे विस्तार होता है। काशीराज का आख्यान पताका है, जिससे कुरगी अविमारक के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सचेष्ट होती है। धात्री और सखियाँ उसके इस कार्य में सहायता पहुँचाती हैं। अस्थायी मिलन होता है, राजा द्वारा इस मिलन में बाधा उत्पन्न की जाती है अविमारक विद्याधर को प्राप्त करता है और उससे उसे चमत्कारी अँगूठी मिल जाती है। यह प्रकरी की स्थिति है। इसके आगे की कथा 'कार्य' नामक 'अर्थ प्रकृति' के अन्तर्गत है।

इस रूपक मे मुख, प्रतिमुख, गर्भ और निर्वहण नामक चार ही सन्धियाँ पायी जाती है। 'अवमर्श' सन्धि का अभाव है।

अविमारक और कुरगी का विवाह ही इस रूपक का फल या कार्य है। अतः "कन्यापितुर्हि सतत बहुचिन्तनीयम्" से मुख सन्धि का प्रारम्भ है। इस सन्धि के निर्वाह के हेतु सन्ध्यग का समावेश पाया जाता है। राजा कुन्तिभोज सपरिवार अपने राज्य के ब्राह्मणो को सन्तुष्ट कर चुका है। यह सम्पादित करने पर भी उसके मन मे कन्या विवाह की चिन्ता होने के कारण शान्ति नहीं है। अतः इस स्थल पर उपक्षेप नामक मुख सन्ध्यग है।

कुन्तिभोज देवी से कहता है कि कुरगी के विवाह हेतु अनेक राजदूत आये

---

१. अविमारक, ६।१४

हैं, पर विवाह वर की सम्पत्ति, योग्यता, स्वास्थ्य, रूप, गुण आदि की परीक्षा के बाद किया जाना चाहिये । अतः इस कथन में कुरंगी के विवाह रूपी बीज का बाहुल्य पाया जाने के कारण 'परिकर' नामक सन्ध्यंग है ।

कौञ्जायन उन्मत्त हाथी से अविमारक द्वारा कुरंगी की रक्षा किये जाने का निर्देश करता है । इस निवेदन से अविमारक प्रकाश में आता है । अतः विवाह रूपी बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की परिपक्वावस्था दर्शाने से 'परिन्यास' नामक सन्ध्यंग है ।

कौञ्जायन अविमारक को दर्शनीय, निरहंकारी, शूर, तरुण, निर्भय एवं गुणी बतलाता है, अतः यहाँ विलोभन नामक सन्ध्यंग है ।

भूतिक के आश्चर्यपूर्वक कथन—'सविस्मितम् अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः' में आश्चर्य की भावना प्रकट होने से 'परिभाव' नामक सन्ध्यंग है ।

कुरंगी के विवाह में भूतिक जाति विषयक शास्त्रीय परम्परा की उपेक्षा करता है, यह उपेक्षा रूपक की कथा के अनुरूप प्रकृत कार्य में प्रगतिदायक होने के कारण 'करण' नामक तत्त्व है ।

भूतिक "अनेक राजाओं के दूत आये हैं और आयेंगे" इस कथन द्वारा कुन्तिभोज का ध्यान अविमारक की ओर आकृष्ट करता है । अतः यहाँ भेद नामक सन्ध्यंग है।

कौञ्जायन राजा कुन्तिभोज से कुरंगी के विवाह के लिए बहुत से क्षत्रियों में से अपने योग्य क्षत्रिय कुमार का विचार कर लेने को कहता है और सौवीर राजा के द्वारा भी अपने पुत्र के कारण दूत भेजने का वर्णन करता है तथा उचित-अनुचित के विचार में राजा को स्वयं प्रमाण मानता है । राजा भी कौञ्जायन के कथन का समर्थन करता है । "बहुमुखा विवाहाः यथेष्टं साध्यन्ते"[1] से प्रतिमुख सन्धि का आरम्भ होता है । यहाँ विन्दु नामक अर्थ प्रकृति और प्रयत्न नामक अवस्था का संयोग है ।

राजा भूतिक से कहता है कि सौवीरेन्द्र ने अपना दूत नहीं भेजा, इसके उत्तर में भूतिक अपना सन्देह प्रकट करता है । कौञ्जायन भी विवाह को 'बहुमुख' कह कर प्रयत्न की चेष्टा बतलाता है । अतः इस स्थल पर बीज की खोज होने से परिसर्प नामक सन्ध्यंग है ।

राजा कुन्तिभोज का मन कन्या के विवाह की चिन्ता से भाराच्छन्न है,

१. अविमारक, प्रथम अङ्क, ११वें पद्य का पश्चात्वर्ती गद्य, पृ० २४

अतः वह राज्य को 'अहो महद्भारो राज्य नाम।'[1] कहकर राज्य के प्रति विरक्ति प्रकट करता है। अतएव विघ्रत नामक प्रतिमुख सन्ध्यग है।

अविमारक परिहास करता हुआ अपने लिए अक्षर और अर्थ जानने वाले ब्राह्मण का मिलना कठिन बतलाता है। इस स्थल पर गर्भ सन्ध्यग है। धात्री और नलिनिका अपने वार्त्तालाप में अविमारक की अकुलीनता और वंश को छिपाने की प्रवृत्ति प्रसंग में कार्य साधक बनती है। अत. प्रगमन नामक सन्ध्यंग है।

गर्भ सन्धि का प्रारम्भ धात्री और नलिनिका द्वारा अविमारक को आमन्त्रित किये जाने वाले स्थल से होता है। अविमारक को वह उक्त दोनो मार्ग भी बतलाती है। इस सन्धि में कुरगी और अविमारक की काम विह्वल अवस्थाएँ भी चित्रित हैं। दोनो के पारस्परिक वियोग के कारण एक-दूसरे की घटित होने वाली स्थिति का बोध भी इन्हे प्राप्त होता है। इस सन्धि में अभूताहरण, मार्ग रूप, अनुमान, अधिबल और विद्रव आदि अंगो का भी समावेश हुआ है।

नाटककार भास ने नलिनिका द्वारा कहलाया है कि सौवीरराज के मन्त्रियों ने दूत भेजे हैं कि हमारे स्वामी प्रच्छन्न रूप से आप ही के नगर मे निवास करते हैं। इस कथन से अविमारक की प्राप्ति हो जाने से कुरगी और अविमारक के विवाह की सम्भावना बढ जाती है। अत उक्त स्थल से निर्वहण सन्धि का आरम्भ होता है तथा नारद के 'निर्वृत्तो विवाहो ननु गान्धर्व' स्वसमय एव इदानीम् ।..........नित्यमग्निः साक्ष्येव । तथापि स्वजनपरितोषण-र्थमभ्यन्तर समयमात्रमुपाध्यायेत कारयित्वा शीघ्रमानीयतामिह कुमारः सहभार्यया" से समाप्त होती है।

इस सन्धि मे उपक्षेप, परिभाषण, प्रसाद, भाषण, पूर्वभावोपगूहन, वराप्ति और प्रशस्ति नामक सन्ध्यगो का भी समावेश हुआ है।

नाटक मे कैशिकी वृत्ति का प्रयोग हुआ है। इस वृत्ति द्वारा लालित्य और विलास प्रकट हुआ है। गीत और नृत्य का प्रयोग प्रचुरता से पाया जाता है। रूपक की समस्त कथावस्तु चरित्र, अर्थो और भावो का प्रकाशन अभि-नय द्वारा सम्भव है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अभिनय के साधनों और रूपों मे परिवर्तन किया जा सकता है। इसमें नौ पुरुष पात्र हैं और बारह स्त्री पात्र। नाटक काव्य तत्त्व और अभिनेय तत्त्व की दृष्टि से भी समृद्ध है।

१. अविमारक, प्रथम अङ्क, ११वें पद्य का पश्चातुवर्त्ती गद्य, पृ० २५

प्रतिमा : अनुचिन्तन

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का केन्द्र इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं के 'प्रतिमा-निर्माण' की घटना है। प्रतिमा दर्शन से ही भरत को दशरथ की मृत्यु का परिज्ञान हो जाता है। सारा घटना क्रम इसी प्रसंग पर आधृत है। भरत को राम वनवासादि का बोध भी इस घटना से हो जाता है। प्रो० ध्रुव का अभिमत है कि इस नाटक का पूरा नाम 'प्रतिमा-दशरथ' रहा होगा। संक्षिप्तीकरण करने से प्रतिमा नाम पड़ा है। यह संक्षिप्त रूप उसी प्रकार है, जिस प्रकार 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का 'प्रतिज्ञा' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' का 'स्वप्न' है।

कथावस्तु

प्रस्तुत रूपक में श्री राम के युवराज पद पर अभिषेक के प्रसंग से आरम्भ कर चौदह वर्षों का वनवास व्यतीत कर वापस अयोध्या लौटने तक का कथानक समाविष्ट है। राम के राज्याभिषेक के पश्चात् नाटक समाप्त होता है।

प्रतिहारी कंचुकी से कहती है—महाराज दशरथ राम का युवराज पद पर अभिषेक करने वाले हैं। अतः सभी प्रकार की तैयारियाँ की जायँ। कंचुकी उत्तर देता है—महाराज की आज्ञा से सभी प्रकार के सम्भार एकत्र कर दिये गये हैं। इसी समय अवदातिक नामक परिचारिका हाथ में वल्कल लिए पधारती है। वह परिहास में किसी को वल्कल देने जा रही है। सीता की दृष्टि उस पर पड़ती है। वे कौतूहलवश उस वल्कल को धारण कर लेती हैं। चेटी इसी समय बतलाती है कि आज महाराज दशरथ राम को युवराज पद पर अभिषिक्त कर रहे हैं। सहसा नगर में होने वाली वाद्य ध्वनि का होना बन्द हो जाता है। कारण जानने की सबके मन में जिज्ञासा होती है।

रामचन्द्र उपस्थित होते हैं, वे भी वल्कल को पहनना चाहते हैं। जनता का कोलाहल सुनायी पड़ता है। कंचुकी आकर निवेदन करता है कि कैकेयी ने राजा को अभिषेक रोकने का आदेश दिया है। उसने राजपद भरत के लिए माँगा है। महाराज इस अमंगल वचन से मूर्च्छित हो कर गिर पड़ते हैं और संकेत द्वारा यह समाचार आपको बताने के लिए भेजा है। सहसा हाथ में धनुष लिए लक्ष्मण प्रवेश करते हैं और बलपूर्वक दशरथ से राज्य छीन लेने

के लिए कहते हैं। राम उनका क्रोध शान्त करते हैं। राम के साथ वन जाने के लिए सीता और लक्ष्मण भी तैयार हो जाते हैं।

—प्रथमाङ्क

राम, सीता और लक्ष्मण को वन-गमन से रोकने मे महाराज दशरथ असमर्थ हो जाते हैं। राम के लिए वे नाना प्रकार से विलाप करते हैं। कौशल्या और सुमित्रा उन्हें नाना प्रकार से सान्त्वना देती हैं। इतने मे राम, लक्ष्मण और सीता को अयोध्या की सीमा के पार पहुँचा कर सुमन्त्र लौट आते हैं। सुमन्त्र से राम के वन-गमन का समाचार जान कर महाराज दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं। वे वार्धक्य के कारण राम के वियोग को सहन करने में असमर्थ होने से प्राणों का त्याग कर देते हैं।

—द्वितीयाङ्क

दिवगत इक्ष्वाकुवशी राजाओ का प्रतिमागृह सजाया जा रहा है और मृत महाराज दशरथ की प्रतिमा के स्थापन सस्कार के लिए कौशल्या आदि रानियों की तैयारी की जा रही है। महाराज दशरथ के अस्वस्थ होने का समाचार सुन भरत अपने मातुल गृह से चले आ रहे हैं और अयोध्या की सीमा पर निर्मित प्रतिमागृह की सजावट देख वहाँ रुक जाते हैं। अयोध्या से बहुत समय तक बाहर रहने के कारण यह प्रतिमागृह भरत को अपने पूर्वजो का स्मारक नहीं अपितु देव-मन्दिर प्रतीत हो रहा है। इतने मे भरत के स्वागतार्थ शत्रुघ्न का सैनिक सेवक आता है और उन्हें अयोध्या प्रवेश के लिए कृतिका नक्षत्र के बीत जाने की सम्मति देता है। अयोध्या प्रवेश के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा मे भरत प्रतिमागृह के दर्शन के लिए चल पडते हैं और देवकुलिक के द्वारा क्रमश दिलीप, रघु और अज की प्रतिमाओ का परिचय प्राप्त करते हैं। महाराज दशरथ की प्रतिमा का दर्शन कराये जाने पर और यह बतलाने पर कि प्रतिमागृह दिवगत रघुवशी राजाओ का स्मारक भवन है, भरत मूर्च्छित हो जाते हैं, मूर्च्छा दूर होने पर देवकुलिक भरत को राम के वनवासादि की कथा भी सुनाता है। इसी समय कौशल्या आदि देवियाँ प्रतिमा दर्शन के लिए वहाँ आती हैं। भरत कौशल्या से अपने को निरपराधी बतलाते हैं और कैकेयी को कोसते हैं। वशिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि उनका राज्याभिषेक करना चाहते हैं, पर वे राम, लक्ष्मण के पास वन जाने के लिए प्रस्थित होते हैं।

—तृतीयाङ्क

सुमन्त्र के साथ भरत रथारूढ़ हो कर राम के तपोवन में पहुँचते हैं, राम के आश्रम के पास पहुँचते ही उनकी ध्वनि राम, लक्ष्मण और सीता को सुनायी पड़ती है। भरत वहाँ पहुँच जाते हैं और स्नेहार्द्र हो कर मिलते हैं। वन में करुणा का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है। भरत राम से वापस लौट चलने और राज्य-भार सम्हालने का आग्रह करते हैं। पर राम उनसे पिता के सत्य की रक्षा हेतु उनके प्रस्ताव को स्वीकार नही करते हैं। भरत को ही राम का आग्रह स्वीकार करना पड़ता है। शर्त यह रहती है कि चौदह वर्षों के बाद अपना राज्य वापस लौटा लेंगे। भरत तब तक न्यास के रूप में उसकी रक्षा करेंगे। वे राम की चरण पादुकाएँ माँग लेते हैं, जो राम के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ विद्यमान रहेगी। राम भरत को सावधानीपूर्वक राज्य-रक्षा करने का आदेश देते हैं और भरत अयोध्या लौट आते हैं।

—चतुर्थाङ्क

सीता वन-वीरुधों को जल से सींचती हैं। राम आ कर सीता से कहते हैं—"कल पिताजी का श्राद्ध दिन है। पितरों का श्राद्ध सामर्थ्यानुकूल करने का विधान है। पर, मेरे पास आवश्यक पदार्थ नहीं।" सीता उत्तर देती हैं—"वैभवानुकूल श्राद्ध तो भरत करेंगे ही, आप वन्य पुष्प-फलों से श्राद्ध कीजिये।" राम उत्तर देते हैं—"कुश पर फलों को देख कर पिताजी को वन-वास का प्रसंग याद आ जायेगा और वे दुःखी होंगे।" राम और सीता के इस वार्तालाप के समय ही सन्यासी के वेश में रावण उपस्थित होता है। वह अपने को काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण कहता है तथा नाना शास्त्रों और प्राचेतस श्राद्ध कल्प में निष्णात कहता है। श्राद्ध-कल्प का नाम सुनकर राम विशेष अभि-रुचि दिखलाते हैं और पूछते हैं कि "पिण्डदान के समय पितरो को किस पदार्थ से तृप्त करना चाहिये।" रावण उत्तर देता है—"पितरो को सर्वाधिक प्रिय हिमालय के सप्तम शृंग पर रहने वाले काञ्चनपार्श्व नामक मृग होते हैं, पर उनकी प्राप्ति दुर्लभ है।" इसी समय काञ्चन मृग वहाँ दिखलायी पड़ता है। और रावण कहता है कि हिमालय आपका अभिनन्दन कर रहा है। राम, सीता से सन्यासी की शुश्रूषा करने का आदेश दे स्वयं पकड़ने दौड़ते हैं। सीता कुटज में प्रवेश करना चाहती हैं कि रावण अपने लोक-रावण-विग्रह को धारण कर उन्हें पकड़ लेता है। वह अपना परिचय भी उन्हें देता है। सीता विलाप करती हैं, पर रावण उसे साथ लेकर भाग चलता है। गृद्धराज जटायु सीता को ले जाते देख कर रावण पर आक्रमण करता है। पर रावण उसे प्रहार कर गिरा देता है।

—पंचमाङ्क

दो तापस सीता हरण करते हुए रावण को देख कर भयभीत होते हैं। वे जटायु के पराक्रम को देख कर उसकी चर्चा करते हैं। ऋषिकुमार सीता हरण और जटायु की घटना को अवगत कराने के हेतु राम को ढूंढ़ने निकल पड़ते हैं।

विष्कम्भ के पश्चात् अयोध्या के दृश्य उपस्थित होते हैं। कञ्चुकी राम का पता लगाने के हेतु गये हुए सुमन्त्र के लौट आने का समाचार देता है। सुमन्त्र, सीता हरण का वृत्तान्त भरत को सुनाते हैं। वे कहते हैं—"जब मैं उन्हें देखने के लिए तपोवन में पहुँचा तो तपोवन को शून्य पाया। मालूम हुआ कि वे वानरों की नगरी किष्किन्धा में गये हैं। वहाँ सुग्रीव एक वानर है जिसकी स्त्री को उसके बड़े भाई ने हर लिया है। समान दु ख वाले श्री राम वहीं चले गये हैं। यत माया का आश्रय ले कर राक्षसेन्द्र रावण ने सीता का हरण कर लिया है।" सुमन्त्र के इस आख्यान को सुन कर भरत को अत्यधिक मनोव्यथा होती है और वे अपना क्रोध कैकेयी पर उतारते हैं। कैकेयी उनके उपालम्भ से जर्जरित हो जाती है। वह सुमन्त्र से दशरथ को मिले श्राप का वर्णन करने को कहती है और बतलाती है कि ऋषि श्राप को सत्य करने के लिए मैंने राम को वन भेजा है। भरत की आज्ञा से सुमन्त्र दशरथ को मिले श्राप का वर्णन करते हैं। इस वृत्तान्त को सुन कर भरत लज्जित होते हैं और कैकेयी से क्षमा-याचना करते हैं। वे रावण पर आक्रमण करने के लिए उत्कण्ठित होते हैं।

—षष्ठांक

तापस के मुख से ज्ञात होता है कि राम ने सीता का हरण करने वाले रावण का वध कर डाला। उन्होंने विभीषण का अभिषेक किया है और वानरों सहित वे पधार रहे हैं। सीता और राम तापसों के बीच आ कर उन्हें आनन्दित करते हैं। वे सीता को वनवास के स्थल दिखा कर उनकी स्मृति को ताजी करते हैं। इसी समय उन्हें भरत और उनकी सेना के वहाँ पहुँचने का समाचार प्राप्त होता है। भरत के साथ सुमन्त्र और कैकेयी आदि हैं। सबकी उपस्थिति में भरत अपने अग्रज राम के हाथों में राज्य-भार समर्पित कर देते हैं और कैकेयी की आज्ञा से राम अपना राज्याभिषेक स्वीकार करते हैं। पुष्पक-विमान पर आरूढ़ हो कर राम अयोध्या को प्रस्थान करते हैं और भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

—सप्तम अङ्क

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना संयोजन

प्रतिमा नाटक की कथावस्तु का मूल स्रोत रामायण का इतिवृत्त है। नाटककार भास ने रामायण की समस्त कथावस्तु को अपने इस नाटक के लिए आधारभूत ग्रहण किया है। उसने नाटकीयता एवं रसभाव की दृष्टि से मूल कथावस्तु में यथासम्भव परिवर्तन किया है। इस नाटक के लिए घटना चक्र गृहीत है उसमें रामायण की कथा की अपेक्षा निम्नलिखित भिन्नताएँ हैं —

(१) प्रथम अङ्क की वल्कल की घटना रामायण में नहीं है। नाटककार की यह अपनी कल्पना है। इसका उद्देश्य सीता और राम के मधुर गार्हस्थ्य का प्रकाशन है। वाल्मीकि ने राम के राज्याभिषेक के अवसर पर भरत के साथ शत्रुघ्न को भी अनुपस्थित दिखलाया है। पर 'प्रतिमा' में केवल भरत ही अनुपस्थित रखे गये हैं, और शत्रुघ्न को राज्याभिषेक के समय अयोध्या में उपस्थित दिखलाया गया है।

(२) महाकवि वाल्मीकि ने दशरथ की मृत्यु के पूर्व उनके पूर्वजों का कोई दृश्य अंकित नहीं किया है पर इस नाटक के द्वितीय अङ्क में मृत्यु शैय्या पर पड़े दशरथ के समक्ष स्वर्ग से आये हुए उनके पूर्वजों का दृश्य निबद्ध किया गया है, यह दृश्य कवि की कल्पना है।

(३) तृतीय अङ्क की घटना नाटककार की एकमात्र नाटकीय कल्पना है। रामायण में प्रतिमागृह की कोई चर्चा नहीं है। भास ने प्रतिमागृह सम्बन्धी कल्पना कर नाटक को एक नया ही मोड़ दिया है। उनकी इस कल्पना का प्रभाव भवभूति के उत्तर रामचरित में चित्र-विधि कल्पना पर भी प्राप्त होता है।

प्रस्तुत नाटक में राम और रावण का जैसा मिलन वर्णित है वैसा रामायण में नहीं। निश्चयतः नाटककार भास ने घटनाओं को सजीवता प्रदान करने के लिए मारीच रूपी माया मृग के बदले काञ्चन पार्श्व मृग की कल्पना की है और दिवंगत दशरथ के श्राद्ध के लिए इस मृग के अन्वेषण में राम को सीता के पास से दूर हटाया है। रावण आ कर मायावी रूप में अपने को श्राद्धकल्प चेतस् कहना ही राम के लिए आकर्षण की वस्तु बन जाता है। और वे अपने पिता का विधिवत् श्राद्ध करने के लिए पिण्डदान में विधेय, सर्वोत्कृष्ट सामग्री को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं। रावण इस अवसर पर अनुचित लाभ उठा कर राम को काञ्चन पार्श्व मृग द्वारा सर्वोत्कृष्ट श्राद्ध

करना बतलाता है। वे पिता के उद्धार की कामना से रावण के सकेतानुसार काञ्चनपार्श्व मृग को पकडने के लिए दौड पडते हैं। इस प्रकार रावण को सीताहरण का अवसर प्राप्त हो जाता है।

षष्ठ अङ्क में सुमन्त्र का पुन दण्डकारण्य मे जाना और रावण के द्वारा सीता अपहरण की घटना से परिचित होना नाटककार की कल्पना है। वाल्मीकि ने इस प्रकार का कोई निर्देश नही दिया है। साथ ही सुमन्त्र द्वारा वर्णित सीताहरण के वृत्तान्त से दुखित भरत का अपनी माता कैकेयी को उपालम्भ देना और कैकेयी का यह कहना कि चौदह दिन के वनवास के बदले चौदह वर्ष का वनवास सम्भ्रमवश उसके मुँह से निकल पडा। आदि कथानक प्रतिमा नाटक के इतिवृत्त की विशेषता है। रावण विजय के लिए भरत का सेना समुद्योग भी नाटककार की निजी कल्पना है।

सप्तम अङ्क मे राम का राज्याभिषेक लका विजय के अनन्तर जन स्थान मे होता है। अयोध्या का जन-समुदाय भी इस उत्सव में सम्मिलित होता है। और विभीषण, सुग्रीव आदि भी विद्यमान रहते हैं। भरत अयोध्या से सैन्य सजा कर रावण-विजय के लिए प्रस्थान करते हैं और जन स्थान मे पहुँचने पर उन्हें रावण विजय का समाचार मिलता है। कैकेयी की अनुमति से राम राज्य ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाते हैं और राज्याभिषेक होता है। पुन. सभी अयोध्या आते हैं और वहाँ धूमधाम से राज्याभिषेक होता है। इस प्रकार नाटककार ने नवीन कल्पनाओ द्वारा इस नाटक के इतिवृत्त को समृद्ध बनाया है।

शास्त्रीय विश्लेषण

नाटक का इतिवृत्त प्रख्यात है। कथावस्तु राम से सम्बद्ध है जिसमें सुख-दु ख का समन्वय है। "नान्द्यन्ते तत. प्रविशति सूत्रधारः" से नाटक का प्रारम्भ होता है। मुद्रालकार के समाविष्ट रहने के कारण सभी पात्र भी इस श्लोक में समाविष्ट हो गये हैं। नाटक का नामकरण भी इस तथ्य का पोषक है कि इक्ष्वाकु वशी राजाओ की प्रतिमाएँ स्थापित कराना कवि को अभीष्ट है। नाटक का कार्य, या फल राम का राज्याभिषेक है। आरम्भ मे बीज रूप में भी इसे दिखलाया गया है और विघ्न प्रदर्शित कर राम को वनवास दिलाया है। अत. इस नाटक की प्रारम्भ नामक अवस्था निम्नलिखित वाक्य से प्रारम्भ होती है—"अहो अत्याहितम्। परिहासेनापीम वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद्

भयमासीत् किं पुनर्लोभेन परधनंहरतः।"[१] इस सन्दर्भ से कैकेयी द्वारा राम के राज्याभिषेक में उपस्थित की गयी बाधा ध्वनित होती है, अतः यह सन्दर्भ प्रारम्भ नामक अवस्था है। यह अवस्था राम के निर्वासन तक चलती है। राम अन्त पुर में आते हैं और सीता के साथ प्रमोद वार्त्तालाप चलता है। इसी समय अभिषेक वाद्यों का बजना बन्द हो जाता है। राम राज्याभिषेक की कल्पना करते हैं। "वाद्य बज रहे हैं, गुरु वर्ग समवेत हैं, मैं सिंहासन पर बैठा दिया गया हूँ। मंगलमय तीर्थजलों से पूर्ण घटों द्वारा मेरा अभिषेक किया जा रहा है और सभी राजा लोग मुझे बधाई दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में मेरी दृढ़ता पर लोग आश्चर्य कर रहे हैं। पर पुत्र यदि पिता की आज्ञा का पालन करता है तो इसमें आश्चर्य को क्या बात है? इसी समय—"विश्रम्यतामिदानीं पुत्रेति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारो च्छ्वसितमिव मे मनः। दिष्टया स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः।"[२] इस स्थल पर बीज अलक्षित होने लगता है और प्रारम्भ नामक अवस्था विकसित होती है। "बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम"[३] सीता का यह कथन राजकुल में जाने अनजाने रूप में घटित होने वाली घटनाओं की ओर इंगित करता है। राम और मैथिली का वार्त्तालाप प्रारम्भ नामक अवस्था के अन्तर्गत है।

प्रयत्न नामक कार्य अवस्था राम के वनगमन के पश्चात् घटित होती है। दशरथ का राम वियोग में दुःखित होना और मृत्यु को प्राप्त करना इसी अवस्था के अन्तर्गत है। हमारा अनुमान है कि प्रयत्न की स्थिति राम के निम्नलिखित कथन से आरम्भ होती है—

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैवतावन्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजानामथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे।[४]

प्रयत्न में राज्याभिषेक हेतु किये गये सभी प्रयास सम्मिलित हैं। कंचुकी जब राम से यह निवेदन करता है कि कैकेयी ने भरत को राज्य-तिलक माँगा है, अतः उनका राज्य के प्रति लोभ प्रकट होता है। राम कंचुकी के इस आरोप का खण्डन करते हैं और वे पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर वन जाने की तैयारी करने लगते हैं। वे अवदातिका द्वारा लाये गये वल्कलों

---

१. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६१ ई०, प्रथमाङ्क, पृ० ९

२. वही, प्रथमाङ्क, पृ० १८

३. वही, पृ० १९

४. वही, पद्य १।१४

को धारण करते हैं। लक्ष्मण और सीता भी वल्कल धारण कर वन को प्रस्थित हो जाते हैं। पुत्र वियोग की ज्वाला से महाराज दशरथ का हृदय धधकने लगता है। कौशल्या महाराज को धैर्य देती हैं, पर दशरथ राम के वियोग को सहन करने मे असमर्थ रहते हैं। प्रयत्न की यह स्थिति द्वितीय अङ्क तक चलती है।

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ मे प्रतिमागृह की साज-सज्जा दिखलायी पडती है और भट के इस कथन से प्राप्त्याशा की स्थिति आरम्भ हो जाती है—"नास्ति विलापराधो नास्ति। ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृत-सन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तः-पुरैरिहागन्तव्यमिति। अत्रेदानीं त्वया किं कृतम्?"[1] राम के राज्याभिषेक रूपी बीज को अलक्षित होने पर भरत द्वारा राज्याभिषेक की प्रवृत्ति प्राप्त्याशा के अन्तर्गत है। दशरथ की मृत्यु हो जाने पर भी सूत उनसे समाचार को छिपा लेता है। भरत ननिहाल से लौटते समय कृत्तिका-नक्षत्र के कारण अशुभ मुहूर्त होने से अयोध्या के बाहर ठहर जाते हैं। समय-यापन की दृष्टि से वे प्रतिमागृह मे जाकर इक्ष्वाकुवशी राजाओ की प्रतिमाओं का दर्शन करना चाहते हैं। यहाँ उन्हे सकेत रूप मे दशरथ की मृत्यु और राम के वनगमन का समाचार प्राप्त होता है। साथ ही उन्हे यह भी ज्ञात होता है कि उनकी माता कैकेयी ने उन्हीं के लिए राज्याभिषेक मांगा है। भरत उद्विग्न हो जाते हैं और स्वय वनवासी बन कर चौदह वर्ष व्यतीत करना चाहते हैं। वे राज्याभिषेक के हेतु वन मे जाकर राम को वापस लौटा लाने का प्रयास करते हैं, पर राम पिता की आज्ञा को सत्य चरितार्थ करने के लिए भरत को चौदह वर्षों तक राज्य की रक्षा करने का आदेश देते हैं। भरत राम के समक्ष वनवास के पश्चात राज्य स्वीकार करने की शर्त उपस्थित कर राम की आज्ञा से अयोध्या मे लौट आते हैं और राज्य का सचालन करते हैं। हमारी दृष्टि मे भरत का अयोध्या लौट कर राम की पादुकाओ को सिंहासन पर आसीन कर राज्य सचालित करना प्राप्त्याशा नामक अवस्था है। राम की चरण पादुकाओं को प्रतीक रूप मे सिंहासन पर आसीन किया गया है। अतः नाटककार ने इस समस्त इतिवृत्त को *प्राप्त्याशा के अन्तर्गत रखा है।*

नियताप्ति की स्थिति भी पादुकाओ के सिंहासनासीन होने के सन्दर्भ मे

---

१. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा सस्करण, सन् १९६१ ई०, तृतीयाङ्क, पृ० ६८

आरम्भ हो जाती है। नियताप्ति में फल प्राप्ति निकट रहने पर भी आशा और निराशा का द्वन्द्व चलता है। पंचम अङ्क में रावण सन्यासी के वेष में उपस्थित होता है और अपने को प्राचेतस श्राद्धकल्प कह कर राम के मन में आस्था उत्पन्न करता है। राम रावण की बातों का विश्वास कर काञ्चन पार्श्व मृग को पकड़ने के लिए जाते हैं और रावण सीताहरण कर लेता है। राम लंका पर आक्रमण करते हैं और रावण का वध कर सीता को प्राप्त करते हैं। यह समस्त कथानक नियताप्ति के अन्तर्गत है।

भरत सुमन्त्र को दण्डकारण्य में राम का समाचार लाने के लिए भेजते हैं। सुमन्त्र लौटकर सीताहरण का समाचार देता है। भरत उत्तेजित होकर कैकेयी को अपमानित करते हैं। कैकेयी अपना स्पष्टीकरण देती है, जिससे भरत को सन्तोष होता है। भरत लंका के ऊपर आक्रमण करने के लिए उत्कंठित हो जाते हैं। रावण विजय के पश्चात् राम लौट कर जन स्थान में आते हैं, भरत भी ससैन्य वहाँ पहुँचते हैं। सब की उपस्थिति में राम के चरणों में राज्य-भार समर्पण कर देते हैं और कैकेयी के आदेश से राम राज्याभिषेक स्वीकार करते हैं। यह समस्त इतिवृत्त फलागम है। प्रथम अङ्क में राज्याभिषेक की तैयारी में जिस बीज की स्थापना की गयी थी, वही बीज यहाँ फलरूप में प्रस्तुत हुआ है।

प्रस्तुत नाटक में पाँचों ही अर्थ प्रकृतियां हैं। बीज का न्यास आवदातिका के कथन से होता है। महाराज दशरथ राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहते हैं। प्रतिहारी सूचना देता है—"शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषकसम्भारा आनीयन्तामिति।"[1] इस स्थल से बीज नामक अर्थ प्रकृति का प्रारम्भ होता है। कंचुकी द्वारा इस बीज का उपन्यास निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है :—

> "इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः
> रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥"[2]

इस प्रकार बीज शनैः-शनैः प्रस्फुटित होता हुआ विन्दु नामक अर्थ प्रकृति की ओर अनुधावित होता है। विन्दु अर्थ प्रकृति की स्थिति राम के निर्वासन की आज्ञा से आरम्भ होती है और यह विन्दु शनैः-शनैः विस्तृत होता है। राम

---

१. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६१, प्रथम अङ्क, पृ० ६

२. वही, पद्य १-४

वियोग मे दशरथ की मृत्यु भी इसी के अन्तर्गत है। द्वितीय अङ्क का कथानक भी हमारी दृष्टि मे बिन्दु अर्थ प्रकृति के अन्तर्गत ही है।

भरत की प्रासङ्गिक कथा को पताका और जटायु की कथा को प्रकरी कहा जा सकता है। प्रकरी के अन्तर्गत उन तापसो का आख्यान भी सम्मिलित है, जो जटायुमरण और सीताहरण का समाचार राम को देने के लिए भ्रमण कर रहे हैं। भरत के समस्त आख्यान को पताका माना जायेगा।

कार्य अर्थ प्रकृति के अन्तर्गत रावण वध के पश्चात् राम और भरत का जनस्थान मे मिलना है। यहाँ कैकेयी की अनुमति से राम राज्याभिषेक ग्रहण करने की स्वीकृति देते हैं। अतएव—

"अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेक पुरस्कृत्यत्वद्दर्शनमभिलपत ।"

तीर्थोदकेन मुनिभि स्वयमाहृतेन नानानदीनदगतेन तव प्रसादात्

इच्छन्ति ते मुनिगणा. प्रथमाभिषिक्त द्रष्टु मुख सलिलसिक्तमिवारविन्दम।[१]

उक्त सन्दर्भ मे कार्य नामक अर्थ प्रकृति है।

मुख सन्धि का आरम्भ प्रमोदवश लायी हुई अवदातिका के वल्कल वस्त्र से होता है। सीता परिहासवश वल्कल वस्त्र धारण करती हैं और यहो से राम के राज्याभिषेक में उत्पन्न होने वाले विघ्नो का सकेत मिलता है। दशरथ द्वारा की गयी राज्याभिषेक की घोषणा जिसे बीज मे उपन्यस्त किया गया है, उसमे सहसा विघ्न उत्पन्न होता है और कैकेयी राम के स्थान पर भरत को राज्याभिषिक्त करने की याचना करती है। राम का वनगमन होता है, अतएव दशरथ द्वारा राज्याभिषेक की घोषणा से ले कर वनगमन तक का इतिवृत्त आरम्भ और बीज का सयोग होने से मुख नामक सन्धि है। इस सन्धि मे अवदातिका द्वारा वल्कल लाना और सीता का उन वल्कलो को धारण करना तथा अवदातिका द्वारा सीता के सौन्दर्य की प्रशसा करना परिकर नामक सन्ध्यग है। राम मैथिली के समक्ष अपने लिए वल्कल की याचना करते हैं और अपने कार्यो को अन्य राजाओ की अपेक्षा विशिष्ट बतलाते हैं। अत 'अन्यै.नृपै.' पद से राम के स्वगुणो का आख्यान होने के कारण विलोभन नामक सन्धि अग है। राम की इष्टादिक प्राप्ति के लोभ के कारण यह तत्त्व विलोभन कहलायेगा। राम

१ प्रतिमा नाटक, चौखम्बा सस्करण, सन् १९६१ ई०, प्रथमाङ्क, पद्य ७-९

अपने राज्याभिषेक में "म" लेदेवेनताडितम्"—कह कर देव द्वारा उपस्थित किये गये विघ्न की ओर सकेत करते हैं जिससे उनका वनगमन सिद्ध होता है। अतएव यहाँ युक्ति नामक सन्ध्यंग है। राम सीता को वन चलने के लिए मना करते हैं। पर लक्ष्मण सीता के वन जाने का समर्थन करते हुए कहते हैं —"स्त्रियों के लिए पति ही सर्वस्व है, अतः ऐसे श्लाघनीय अवसर से सीता को वञ्चित करना उचित नहीं"। लक्ष्मण के इस कथन में वन गमन में बीज के सहायक कार्य में प्रोत्साहन मिलने से भेद नामक सन्ध्यंग है। सीता वन जाने के लिए तैयारी करती है। अपने आभूषणों को उतार कर अलग कर देती है। राम सीता को इस प्रकार आभूषणहीन देख कर कहते हैं कि तुम्हारी इस वेषभूषा से पिताजी को अपार वेदना होगी। इस प्रकार राम द्वारा व्यथा व्यक्त करने के कारण विधान नामक सन्ध्यंग है। लक्ष्मण राम से वल्कल वस्त्र माँगते हैं और वे आश्चर्य प्रकट करते हुए तर्क देते हैं कि सब वस्तुओं में से आप मुझे आधा हिस्सा देते हैं, पर इस चीर धारण में आप क्यों मत्सरी कर रहे हैं ? इस प्रकार आश्चर्य प्रकट करने के कारण परिभावना नामक सन्ध्यंग है। राम के वनगमन के पूर्व कंचुकी महाराज दशरथ की दयनीय अवस्था का वर्णन करता हुआ उनसे वन न जाने की प्रार्थना करता है। इस अवसर पर लक्ष्मण कहते हैं कि चीरधारी वनवासियों के पास कोई दर्शनीय वस्तु नहीं है। राम भी लक्ष्मण के कथन का समर्थन करते हुए कहते हैं कि हमारे जाने पर राजा प्रमुख स्थलों के दर्शन करेंगे। इस प्रकार के कथन में वनगमन रूपी बीज का उद्‌भेद होने से उद्‌भेद नामक सन्ध्यंग है। जब कंचुकी राम की सरलता का वर्णन करता हुआ कैकेयी के विघ्न का कथन करता है तो राम उत्तेजित होने के स्थान पर अपने वन गमन की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। अतः यहाँ समाधान नामक सन्ध्यंग है।

राम के वियोग से दशरथ का दुखित होना तथा उनके वियोग में दशरथ का मरण प्राप्त करना प्रतिमुख नामक सन्धि है। कौशल्या दशरथ को सान्त्वना देती है। राम, लक्ष्मण और सीता के वियोग से व्यथित दशरथ को शान्ति प्रदान करने का पूर्ण प्रयास करती है। आदि कथानक प्रतिमुख सन्धि के अन्तर्गत है।

गर्भ सन्धि का प्रारम्भ प्रतिमागृह से होता है। यहाँ भरत की प्रासंगिक कथा पताका है और प्राप्त्याशा नामक अवस्था से इसका मिश्रण हुआ है। अतः यह गर्भ सन्धि है। राम को राज्याभिषक रूपी बीज के लक्षित होने पर पुनः अलक्षित हो जाने से उसकी बार-बार खोज की जाती है। भरत द्वारा उस

ओर प्रवृत्त होने से फल का एकान्तिक निश्चय हो जाता है। अतएव यहाँ गर्भ सन्धि मानी जा सकती है।

भरत राम को लौटाने के लिए वन जाते हैं। राम उनको समझा कर वापस लौटाते हैं कि वन छोड़ कर अयोध्या लौट चलने से पिता की आज्ञा की अवहेलना होगी। अतएव वनवास कार्य पर्यन्त आप ही राज्य की रक्षा करें। भरत की शर्त स्वीकार कर राम अपनी पादुकाएँ भरत को दे देते हैं और भरत प्रतिनिधि रूप में राम की पादुकाओं को सिंहासन पर आरूढ़ कर राज्य रक्षा का कार्य करते हैं। अतएव इस प्रसंग में अवमर्श सन्धि है।

राम रावण का वध कर वापस जनस्थान पर लौटते हैं। भरत भी सुमन्त्र द्वारा सीताहरण का समाचार प्राप्त कर रावण पर आक्रमण करते है। उनकी सेना भी तैयार हो जाती है। वे कैकेयी और अन्य माताओं के साथ जनस्थान पर पहुँचते हैं और वहीं राम के चरणों में राज्य समर्पित कर देते हैं। यहाँ से निर्वहण सन्धि का आरम्भ होता है और भरतवाक्य के साथ इसकी समाप्ति हो जाती है।

'प्रतिमा' नाटक में सूच्य कथावस्तु को प्रकट करने के लिए 'प्रवेशक' 'विष्कम्भक' और 'मिश्रविष्कम्भक' की योजना की गयी है। तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक सूत के साथ भरत के आने का सन्देश देता है। पुनः चतुर्थाङ्क में भरत के ही आने की सूचना दी जाती है।

छठे अङ्क में कञ्चुकी प्रवेश करता है और सूचना देता है कि राजकुमार भरत को सूचित कर दिया जाय कि वन में राम के दर्शनार्थ गये सुमन्त्र लौट आये हैं। इस प्रकार सुमन्त्र के वापस लौटने और सीताहरण होने की सूचना भरत को दी गयी है। यह विष्कम्भक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी के द्वारा भरत में उत्तेजना आती है और वे कैकेयी का स्पष्टीकरण सुन सन्तुष्ट होते हैं तथा लंका पर आक्रमण करते हैं और जनस्थान में राम से मिलते हैं।

मिश्र विष्कम्भक द्वितीय अङ्क के आरम्भ में राजा और देवियों के आने की सूचना देता है। सप्तम अङ्क के प्रारम्भ में भी इसी से राम के आने की भी सूचना मिलती है।

प्रस्तुत नाटक में करुण तथा वीर का सम्मिश्रण है। करुण की प्रधानता पायी जाती है। दिवंगत इक्ष्वाकु राजाओं की प्रतिमाओं के स्मारक गृह प्रतिष्ठापन द्वारा भरत के करुण रस का अंकन किया है। करुण रस का उन्नयन शनैः-शनैः होता जाता है और देवकुलिक द्वारा दशरथ की प्रतिमा का परिचय प्राप्त करते ही भरत का हृदय व्यथित हो जाता है और वे मूर्च्छित हो कर

गिर पड़ते हैं। राम के समक्ष पहुँचने पर भरत अपने लिए निर्घृण शब्द का प्रयोग कर करुण रस की सीमा का अतिक्रमण कराते हैं।

नाटक में कैशिकी वृत्ति है।

'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' : विवेचन

प्रस्तुत नाटक का नामकरण अमात्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञाओं पर आश्रित है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि प्रद्योत ने वत्सराज को बन्दी बना लिया है तो वह प्रतिज्ञा करता है—"यदि मैं वत्सराज को छुड़ा नहीं लेता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं"। इस प्रतिज्ञा के पूर्ण होने के अवसर पर ही एक दूसरी बात सामने आती है। उदयन बन्दी गृह से वासवदत्ता को ले कर ही भागना चाहता है। अतः इस समाचार को ज्ञात कर वह पुनः प्रतिज्ञा करता है—"यदि वत्सराज के द्वारा मैंने उसी प्रकार वासवदत्ता का हरण नहीं कराया जिस प्रकार अर्जुन के द्वारा सुभद्रा का हरण हुआ था, तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।" वह अन्य प्रतिज्ञा करता है—"घोषवती वीणा, भद्रवती हथिनी तथा वासवदत्ता का मैं हरण नहीं करा देता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।" यौगन्धरायण की इन प्रतिज्ञाओं के कारण इस नाटक का नाम प्रतिज्ञा यौगन्धरायण पड़ा है। यह एक सफल रूपक है और इसमें भास की पूर्ण प्रौढ़ता विद्यमान है। कथानक का विन्यास पात्रों का चरित्रांकन, संवाद और प्रभावान्विति सभी इस नाटक में सफलता के साथ अंकित हैं। कथावस्तु का विन्यास तो बड़े ही सुन्दर रूप में घटित हुआ है। कथा भाग को गतिमत्ता देने के लिए सूच्यांशों की अधिकता इस नाटक में है। उदयन के बन्दी बनाये जाने के और वासवदत्ता के हरण करने का समस्त वृत्तान्त सूच्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। संवादों की भी अपनी विशेषता है। ये प्रसंगानुकूल होने पर भी वे दर्शकों के समक्ष एक नया वातावरण उपस्थित करते हैं। सभी कथन मनोविकारों के तथ्यों पर आश्रित हैं। वत्सराज के बन्दी बनाये जाने पर जहाँ यौगन्धरायण को अपनी नीति पर खीझ होती है वहीं उसमें आत्म-विश्वास भी घनिष्ठ रूप में मिलता है। नाटक की कथावस्तु निम्न प्रकार है।

कथावस्तु

वत्सराज का विश्वासी तथा बुद्धिमान मन्त्री यौगन्धरायण स्वयं प्रद्योत की योजनाओं को ज्ञात कर सालक के साथ मंच पर आता है। वह वार्त्तालाप के प्रसंग में यह सूचित करता है कि वेणु वन के पास ही घने जंगल के बीच नाग

वन को स्वामी प्रातःकाल प्रस्थान करेंगे। अतः उनसे पहले ही मिल लेना चाहिये। वह सालक के रक्षा सूत्र और पत्र को साथ स्वामी की रक्षा के लिए भेजना चाहता है। इसी बीच हंसक जो राजा उदयन के साथ अंग रक्षक के रूप में गया हुआ था समाचार लाता है कि राजा बिना किसी की प्रतीक्षा किये ही प्रातःकाल वन में चला गया। वहाँ उसे कुछ ही दूर पर एक नीला हाथी दिखलायी पड़ा। उसे देखते ही वह रुमण्वान् के बार-बार अनुनय करने पर भी कुछ सैनिकों के साथ अपनी वीणा ले कर चल दिया। प्रद्योत ने कपट से शाल वृक्ष की ओट में एक कृत्रिम नीले रंग के हाथी की रचना करा कर उसके चारों ओर अपने योद्धाओं को नियुक्त कर दिया था। वत्सराज उसे वास्तविक हाथी समझ पकड़ने चल दिया। किन्तु वहाँ उसे प्रद्योत के सैनिकों ने युद्ध में पराजित कर बन्दी बना लिया। मैं स्वयं उसके साथ जाने के लिए उद्यत था, पर प्रद्योत के मन्त्री शालंकायन ने कहा कि उसे यह वृत्तान्त कौशाम्बी में कहना चाहिये। जब मैं स्वामी की प्रदक्षिणा करके चलने लगा तो वे बहुत कुछ कहना चाहते थे, पर उनकी आँखों में आँसू भर आये और उनका गला अवरुद्ध हो गया। अतः उन्होंने केवल इतना ही कहा—"उत्तो—गच्छ जो अन्ध"[१] अर्थात् जा कर यौगन्धरायण से मिलो। मैंने भी अपने उत्तरदायित्व को ध्यान में रख कर इस समाचार को आपके समक्ष प्रस्तुत कर देना उचित समझा।

इस वृत्तान्त को सुन कर यौगन्धरायण बहुत ही चिन्तित हुआ। उसने इस वृत्तान्त को प्रतिहारी के द्वारा अन्तःपुर में राजमाता के पास पहुँचा दिया। राजमाता वत्सराज के बन्दी होने के समाचार को सुन कर दुःखी हुई और यौगन्धरायण के बुद्धि वैभव की प्रशंसा करती हुई प्रार्थना करने लगी कि उसे उदयन को बन्धन मुक्त कराना चाहिये। यौगन्धरायण राजा को मुक्ति दिलाने के हेतु प्रतिज्ञा करता है "यदि मैं वत्सराज को बन्धन से न छुड़ाऊँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।" सौभाग्यवश उसे द्वैपायन व्यास एक अद्वितीय वस्त्र प्रदान करते हैं जिसमें वह अपना स्वरूप तिरोहित कर शत्रु पुर में स्वच्छन्द विचरण कर अपना लक्ष्य सिद्ध कर सके।

—प्रथम अङ्क

द्वितीय अङ्क महासेन प्रद्योत की राजधानी से प्रारम्भ होता है। वासवदत्ता को माँगने के लिए अनेक राजाओं के प्रस्ताव आये हैं। राजा प्रद्योत कंचुकी से वासवदत्ता के विवाह के सम्बन्ध में वार्तालाप करता है। राजमहिषी

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पृ० ३३-३४

भी बुलायी जाती है। वह कहती है कि वासवदत्ता को वीणा सीखने की उत्सुकता है और वह उत्तरा नाम की वैतालिक के पास वीणा सीखने गयी है। राजा कहता है कि मगध, काशी, वंग, मिथिला तथा शूरसेन देश के नरेश कन्या ग्रहण के इच्छुक हैं, पर इसे किस नृपति को दिया जाय यह निश्चय नहीं कर पाता। इसी समय सहसा कंचुकी प्रवेश करता है और वह कहता है वत्सराज, राजा सतर्क हो जाता है और वह कंचुकी अपने अक्रम वचन के लिए क्षमा माँगता हुआ निवेदन करता है कि वत्सराज वन्दी बना लिया गया। प्रद्योत को बड़ी कठिनाई से कंचुकी की बातों पर विश्वास होता है। वह आदेश देता है कि राजकुमार के अनुरूप सत्कार कर वत्सराज को भीतर लाओ। उसके चले जाने पर रानी उदयन को योग्य वर कहती है, किन्तु प्रद्योत उत्तर देता है कि वह बड़ा उद्दण्ड है मेरे सम्मान का ध्यान नहीं रखता। उसे अपने भरतवंश, गान्धर्व वेद, सौन्दर्य और गजविद्या का दर्प है। कंचुकी लौट कर कहता है कि वत्सराज की घोषवती नाम की वीणा को शालंकायन ने आपके पास भेजा है। राजा उसे वासवदत्ता को दे देता है। राजा प्रद्योत वत्सराज की सुख सुविधा का ध्यान रखने का आदेश देता है। रानी कहती है कि अभी वासवदत्ता बच्ची है, अतः अभी विवाह की कोई चिन्ता नहीं।

—द्वितीय अङ्क

महासेन प्रद्योत की राजधानी उज्जयिनी में वत्सराज का विदूषक वेष परिवर्तित किये हुए दिखलायी पड़ता है। यौगन्धरायण उन्मत्त का वेष बनाये और रुमण्वान् श्रमणक का वेष बना कर भ्रमण कर रहे हैं। विदूषक के लड्डुओं को उन्मत्तक ने ले लिया है और वे दोनों सांकेतिक भाषा में वार्त्तालाप कर रहे हैं। विदूषक अपने मोदकों को माँगता है, पर उन्मत्तक उन्हें नहीं दे रहा है। इसी समय वहाँ श्रमणक के वेश में रुमण्वान् भी उपस्थित हो जाता है। वे कुछ बातचीत कर के मध्याह्न काल समझ मन्त्रणा के लिए अग्निगृह में प्रविष्ठ होते हैं। विदूषक बतलाता है कि वह वत्सराज से मिला था। हम लोगों ने उन्हें मुक्त करने का उपक्रम किया, पर वे वासवदत्ता का दर्शन कर मुग्ध हो गये हैं और उसके बिना चलना नही चाहते। विदूषक के पश्चात् रुमण्वान् भी यही कहता है। यौगन्धरायण इसे उचित नहीं समझता पर स्वामी की इच्छा का अनुवर्तन करते हुए प्रतिज्ञा करता है "जिस प्रकार अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया उसी प्रकार राजा वासवदत्ता का हरण नहीं कर लेता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। घोषवती वीणा नलागिरि हस्ति, वासव-

दत्ता तथा राजा को ले कर कौशाम्बी पहुँचा न दूँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।" इसी समय मध्याह्न काल के ढल जाने से जन कोलाहल सुनायी पड़ता है और वे इधर-उधर चल देते हैं।

—तृतीय अङ्क

गात्र सेवक का अन्वेषण करते हुए भट आता है। गात्र सेवक वत्सराज का चर है, जो वेश परिवर्तित कर प्रद्योत के यहाँ भद्रवती हस्ति का सरक्षक बना है। इसने नलागिरि हस्ति को मद्य पिला कर उन्मत्त कर दिया है। राजा ने वत्सराज को इसे वश मे करने के लिए मुक्त कर दिया है। इस सुअवसर का सदुपयोग कर वत्सराज वासवदत्ता के साथ भद्रवती हथिनी पर सवार हो कर भाग जाता है। प्रद्योत की सेना यौगन्धरायण और उसके साथियो पर आक्रमण करती है। दुर्भाग्यवश यौगन्धरायण की तलवार टूट जाती है और शत्रु उसे पकड लेता है। प्रद्योत का मन्त्री भरत रोहक उसे कारागार मे मिलता है और उसके साथ वाद-विवाद करते हुए वत्सराज के इस रीति से भागने की कटु आलोचना और भर्त्सना करता है। इसी बीच कचुकी महासेन के द्वारा दिये गये सुवर्ण पात्र रूप शृ गार उपायन को ले कर आता है, जो यौगन्धरायण की राज-भक्ति और गुणागुण ज्ञान की प्रशस्ति मे दिया गया है। यौगन्धरायण सर्वप्रथम इसे लेने से अस्वीकार करता है पर उसे अब यह ज्ञात होता है कि प्रद्योत ने वासवदत्ता और वत्सराज का विवाह एक चित्र-फलक पर सम्पन्न किया है, तो वह उस उपहार को सहर्ष स्वीकार कर लेता है।

—चतुर्थ अङ्क

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना संयोजन

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का आधार उदयन और वासवदत्ता की प्रेम कथा है। यह आख्यान गुणाढ्य की बृहत्कथा मे प्राप्त है। बृहत्कथा का आधार ले कर सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' की रचना की है। और उसके कथामुख नामक द्वितीय लबक की प्रथम तरंग मे उदयन के जन्म का आख्यान अङ्कित किया है। उदयन की जन्म कथा तो इसी तरंग मे है, पर उसके कार्य और गुणों का विवेचन तृतीय तरग मे आरम्भ होता है। यहां पर भी यौगन्धरायण और रुमण्वान् मन्त्रियो के नाम आये हैं। बताया है कि राजा वासुकि द्वारा प्रदत्त घोषवती वीणा को दिन-रात बजाया करता था। वह वीणा के तारों के मधुर स्वर रूपी मोहन मन्त्र से मदोन्मत्त जगली हाथियों को वश में कर बाँध लेता था। उसे यह चिन्ता थी कि उसके उच्च

वंश के अनुसार उसका विवाह भी किसी उच्च कुल की कन्या के साथ हो। उज्जयिनी के नरेश प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता सुन्दरी और गुणवती होने के साथ उच्चकुलीन भी थी। पर चण्ड महासेन अपना विरोधी होने के कारण उदयन को अपना जामाता नहीं बनाना चाहता था। उदयन अपनी संगीत कला द्वारा वन्य गजों को वश में करने के लिए सदैव अरण्यों में विचरण किया करता था। चण्ड महासेन ने विचार किया, यदि किसी युक्ति से उदयन को पकड़ कर यहाँ बुला लिया जाय, तो मैं उसे अपनी कन्या वासवदत्ता का संगीत शिक्षक बना दूं, जिससे वह वासवदत्ता के प्रति अनुरक्त हो जायगा और मेरा वशीभूत जामाता बन जायगा। अपनी इस कार्य सिद्धि के लिए चण्ड महासेन ने चण्डिका देवी की उपासना की और देवी ने उसे इच्छा सिद्धि का वरदान दिया।[१]

चतुर्थ तरंग में उदयन की कथा पुनः आगे की ओर बढ़ती है और यन्त्र संचालित नलागिरि हस्ति के समान एक कृत्रिम हस्ति बनाया जाता है। उसके पेट में योग्य योद्धाओं को छिपा कर उसे विन्ध्याचल के घोर अरण्य में रखवा देता है। उदयन को जब विन्ध्याचल अटवी में भ्रमण करते हुए नलागिरि हस्ति के घूमने की सूचना मिलती है, तो वह अपनी वीणा बजाता हुआ उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ता है। चण्ड महासेन के सैनिक वत्सराज उदयन को बन्दी बना लेते हैं और उज्जयिनी ले जाते हैं वहाँ उसका भव्य स्वागत होता है। उदयन वासवदत्ता का संगीत शिक्षक नियुक्त होता है। शनैः-शनैः उदयन और वासवदत्ता में अनुराग बढ़ने लगता है। यौगन्धरायण रुमण्वान् आदि मन्त्रियों को राज्य रक्षा का भार सौंप कर वसन्तक के साथ बुद्धि-बल से वत्सराज को छुड़ाने के लिए चल पड़ता है। दोनों ने वेप बदल कर अपने-अपने कार्य सम्पन्न किये। कथा बहुत विस्तृत है। यौगन्धरायण अपनी युक्ति से वासवदत्ता सहित उदयन को कोशाम्बी ले जाता है। यह वासवदत्ता हरण की कथा पञ्चम तरंग में वर्णित है।[२]

नाटककार भास ने इस कथा वस्तु को नाटकीय बनाने के लिए पर्याप्त परिवर्तन किया है। प्रथम परिवर्तन तो यह है कि यौगन्धरायण ने उदयन को मुक्त करने के लिए प्रतिज्ञाएँ की हैं और इन प्रतिज्ञाओं को उसने कार्य रूप में परिणत किया है। उदयन का प्रद्योत की सेना के साथ युद्ध होता है और

१. कथा सरित सागर, बिहार राष्ट्र-भापा-परिपद्, पटना, सन् १९६०, द्वितीय लम्बक, तृतीय तरंग, पद्य १-३० तक।

२. कथासरितसागर, द्वितीय लम्बक, चतुर्थ तरंग, पद्य १-७७ तक

बहुत समय तक उदयन वीरतापूर्वक युद्ध करता रहता है। उदयन का अश्व एक पैर पर खड़े-खड़े थक जाता है और उसके गिरते ही प्रद्योत के सैनिक उदयन को बन्दी बना लेते हैं। यहाँ लोककथा की अपेक्षा नाटक की कथा अधिक सशक्त और जीवन्त है। A S P. Ayyar ने लिखा है 'The interesting account of the soldiers who bewailed the loss of their relatives, and of the single soldier who caught Udayana by his hair and caught to chop off his head, but slipped in the pools of blood, and died and of Salankyana who had been wounded earlier, but recovered consciousness at the critical moment and prevented further violence on Udayana are not found in the folklore version, and are Bhasa's own creation.'[१]

हंसक का उदयन के साथ जाना और लौट कर बन्दी बनाने की सूचना देना भी नाटककार भास की अपनी कल्पना है। लोककथा में उदयन ने यौगन्धरायण के पास अपना कोई सन्देश नहीं भेजा है। पर भास ने यह सन्देश हंसक के द्वारा यौगन्धरायण के पास पहुँचाया है। लोककथा में महासेन की सेना को शक्तिशाली बताया गया है, पर इस नाटक में सेना के अत्यधिक होने पर भी आपसी अनैक्य एवं वीरों की वीरता की कमी के कारण सेना को शक्तिहीन ही बताया है। नाटककार कहता है—

व्यक्तं बलं बहु च तस्य न चैककार्यम्
संहातवीरपुरुषं च न चानुरक्तम्।
व्याजं ततः समभिनन्दति युद्धकाले
सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम्॥[२]

लोक कथा में यौगन्धरायण के कार्य एक जादूगर के कार्य प्रतीत होते हैं और वह जादूगर के रूप में ही अपना वेश परिवर्तन आदि करता है। पर इस नाटक में भास ने उसके रूप परिवर्तन का हेतु द्वैपायन व्यास द्वारा प्रदत्त चमत्कारी वस्त्र बताया है। वसन्तक, रुमण्वान् आदि भी यौगन्धरायण के कार्य में सहायता देने के लिए उज्जयिनी जाते हैं। पर लोक कथा में रुमण्वान् को कौशाम्बी में ही रहने दिया गया है। इसी प्रकार लोक कथा में वासवदत्ता ने यौगन्धरायण को राजमहल में नहीं बुलाया है और न उसका वार्तालाप

१ Bhasa, A S P. Ayyar, Madras, P 204.

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण ११४

अधिक समय तक उदयन के साथ ही हुआ है। पर नाटककार ने उदयन का वासवदत्ता के प्रति प्रेम दिखला कर कथा को नया ही रूप प्रदान किया है। इस प्रकार इस नाटक में कल्पना की योजना भी पर्याप्त रूप में मिलती है।[1]

शास्त्रीय विश्लेषण

प्रतिज्ञा यौगन्धरायण उच्चकोटि का रूपक है। इसमें महासेन के द्वारा वन्दी बनाये हुए उदयन ने वासवदत्ता का अपहरण किया है। पर उदयन और वासवदत्ता दोनों ही प्रमुख पात्रों के रूप में नहीं आते। नाटक का प्रमुख पात्र यौगन्धरायण है, जो अपनी कूटनीति से उदयन को महासेन के वन्दी गृह से छुड़ाने तथा वासवदत्ता से परिणयन कराने में सफल होता है। इसमें राजनीतिक चाल-बाजियों का पूर्ण अङ्कन किया गया है। कृत्रिम हाथी के छल से उदयन को पकड़े जाने की उद्भावना तथा महासेन द्वारा प्रथम तो उदयन का आदर करना, पश्चात् निष्कारण शृंखलावद्ध किया जाना दोषपूर्ण है। उदयन जैसा हस्ति-विद्या कुशल कृत्रिम हाथी के व्यामोह में कैसे पड़ सकता था? अतः ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार ने गुणाढ्य की वृहत्कथा में अङ्कित कल्पना से ही प्रभाव ग्रहण किया है और इसी कारण औचित्य की कमी रह गयी है। महासेन प्रद्योत के राजभवन को मनोरंजक बनाने में विशेष सहायक है। इसमें सन्देह नहीं कि यत्र-तत्र औचित्य की अवहेलना होने पर भी घटना-चक्र की गत्यात्मकता, नाटकीय कौतूहल एवं दृश्यों का स्वाभाविक विनियोग पाया जाता है। प्रसंगानुकूल भावात्मकता सामाजिकगत प्रभाव को अक्षुण्ण रखती है।

इस रूपक मे पाँचों सन्धियाँ सभी अर्थ प्रकृतियाँ और कार्य अवस्थाएँ प्राप्त हैं। चार अङ्क होने के कारण इसे 'प्रकरण' संज्ञा से अभिहित किया गया है। कथावस्तु अर्द्ध ऐतिहासिक होने पर भी कल्पित ही है, क्योंकि यह लोक कथा है। इसका नायक मन्त्री यौगन्धरायण है जो धीर प्रशान्त है। दश रूपक के अनुसार प्रकरण के सभी लक्षण इसमें घटित होते हैं तथा नाटककार ने भी इसे प्रकरण कहा है। इस रूपक का उद्देश्य प्रतिज्ञा पूर्ति ही है।

सूत्रधार पात्रों का परिचय वार्तालाप विधि से दिला कर प्रारम्भिक घटनाओं का सूत्रपात करता है। अतएव यौगन्धरायण के इस कथन से "हन्त यास्यति वलवान्, यस्यं सौहार्दम्। अथ वेणु वनाश्रितेपु गहनेपु नाग वनं श्वः प्रयाता

---

1. विशेष जानने के लिए देखें—भास, ए० एस० पी० ऐय्यर, २०३-२०४

स्वामी प्रागेव सम्भावयितव्य ।''[1] बीज का न्यास होता है और यह बीज यौगन्धरायण की निम्न प्रतिज्ञा मे प्रस्फुटित होता है। अतएव प्रथम अक मे प्रारम्भ नामक कार्य अवस्था है। यौगन्धरायण कहता है—

यदि शत्रु बलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।
मोचयामि न राजान नास्मि यौगन्धरायण ॥[2]

यही पर बीज नामक अर्थ प्रकृति भी है। यौगन्धरायण उन्मत्त पुरुष का वेष धारण कर विदूषक भिक्षुक का एव रमण्वान् श्रमणक का वेष धारण कर प्रद्योत की राजधानी उज्जयिनी में अपने-अपने कार्यों का सम्पादन करते हैं। यौगन्धरायण कौशाम्बी की प्रजा को आश्वस्त करता है और कार्य-सिद्धि के लिए वह उज्जयिनी की ओर प्रस्थान करता है। यहाँ बीज प्रस्फुटित हो कर जल मे तेल विन्दु के समान व्याप्त हो जाता है और स्वकार्य करने के लिए यौगन्धरायण उदयन पर विश्वास करता है। उसका यह विश्वास प्रयत्न अवस्था के साथ विन्दु नामक अर्थ प्रकृति के अन्तर्गत है।

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोय खन्यमाना ददाति।
सोत्साहाना नास्त्यसाध्य नराणा
मार्गारब्धा सर्वयत्ना फलन्ति ॥[3]

इस प्रकार समस्त द्वितीय अङ्क की कथावस्तु विन्दु अर्थ प्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था है।

तृतीय अङ्क मे विदूषक और यौगन्धरायण के वार्तालाप से नष्ट बीज पुनः दिखलायी पडने लगता है। गृहीत उदयन को मुक्त कराने के लिए, जो प्रयास कौशाम्बी के अमात्य और चरो द्वारा किया जा रहा है, उसका समावेश इसी कार्यावस्था में सम्भव है। यौगन्धरायण कहता है—

''या सा प्रयाणं प्रतीह प्रस्तुत कथा, तस्या श्व. प्रयोगकाल इति। कुतः, स्थानावगाह्यदसशय्याभागेष्वाश्रयेपूपन्यस्तोपधिव्याजो नलागिरिर्मन्त्रौषधिनियम-

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चौखम्बा सस्करण, प्रथम अङ्क, पृ० ६।७
2. वही, पृ० ११।१६
3. वही, पृ० ११।१८

सम्भृतः पुराणकर्मव्यामोहितः। अनुकूलमारुतमोक्तव्यः सज्जितो धूपः। रोष-प्रतिकूलोऽप्यसज्जितः प्रतिगजमदः। शालासन्निकृष्टमल्पसाधनं गृहमादीपयितु-मग्नित्रासित्वाद् वारणानाम्। गजपतिचित्तोद्भ्रमणार्थं देवकुलेषु स्थापिताः शंख-दुन्दुभयः। तेन नादेन सर्वसाधनपरिगतशरीरेणावश्यं श्वः प्रद्योतेन स्वामी शरणमुपगन्तव्यः। ततः स्वामिना शत्रोरनुमतेनैव बन्धनान्निष्क्रम्य सहव्यापन्नां घोषवतीं हस्तगतां कृत्वा नलागिरिः स्वाधीनः कर्त्तव्यः।"[1]

अर्थात्—स्वामी से कहो कि चलने के विषय में जो योजना हमने तैयार की है, उसे कार्य रूप में परिणत करने का समय कल है। नलागिरि के रहने, स्नान करने, भोजन करने और सोने के स्थान में औषध रूपी छल रख दिया गया है और नलागिरि को भी मन्त्र तथा औषधियों से ठीक कर लिया गया है।

वह अपने प्रतिदिन के काम में आसक्त रहेगा। धूप भी तैयार कर ली गयी है, जो कि अनुकूल वायु होने पर छोड़ दी जायगी। रोष को बढ़ाने वाला प्रति-गज मद भी तैयार कर लिया गया है। देवालय के समीप का घर भी जलाने के लिए ठीक कर लिया है, यतः हाथी आग से भागता है।

इस स्थल पर प्राप्त्याशा अवस्था स्पष्ट है। यौगन्धरायण द्वारा की गयी प्रतिज्ञा पूर्ण होती हुई दिखलायी पड़ती है, पर इसमें वासवदत्ता के प्रति मुग्धता की बात कह कर स्वयं उदयन ही बाधक बनता है। इन परिस्थितियों में बाध्य हो कर यौगन्धरायण को अपनी प्रतिज्ञा को पुनः बढ़ाना पड़ता है और प्राप्त्याशा की स्थिति विकसित होती हुई नियताप्ति के रूप में व्यक्त होती है। सामान्यतः उदयन वासवदत्ता में प्रेमोत्पादन की विधि प्राप्त्याशा है और अग्नि गृह योजना नियताप्ति है।

यौगन्धरायण युद्ध भूमि में तलवार के टूट जाने से प्रद्योत का बन्दी बनाता है और उसे प्रद्योत के शस्त्रागार में रखा जाता है। भरत रोहक द्वारा किये गये आक्षेपों का उत्तर यौगन्धरायण देता है। वह यौगन्धरायण को शृंगार नामक स्वर्ण पात्र भेंट स्वरूप प्रदान करता है। प्रद्योत वत्सराज द्वारा वासव-दत्ता के भगाये जाने का अनुमोदन कर चित्रफलक द्वारा उन दोनों का विवाह सम्पन्न करता है। यहाँ पर 'फलागम' नामक अवस्था है।

कृत्रिम हस्ति का प्रयोग 'पताका' नामक अर्थ प्रकृति है और तृतीयाङ्क

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चौखम्बा संस्करण, सन् १९६१ ई०, ३।४ के अनन्तर गद्य, पृ० ६०।६१

की कथा को प्रकरी बोधक माना जायगा और चतुर्थाङ्क मे कार्य नामक अर्थ प्रकृति है।

"हन्त पास्यति बलवान्" कथन के द्वारा यौगन्धरायण अपने सेवक सालक को राजा उदयन के समीप भेजने के लिए चिन्तित दिखलायी पडता है। उसके मन मे प्रद्योत द्वारा किये गये कुचक्रो का भय व्याप्त है। अत वह अपने स्वामी की रक्षा के हेतु प्रयत्नशील है। इस स्थल मे मुख सन्धि का आरम्भ होता है और प्रथमाङ्क मे यौगन्धरायण की गयी प्रतिज्ञा तक चलती है।

प्रतिमुख सन्धि "उन्मत्तसदृशो वेषो..... .मोचयिष्यति राजान"[1] स्थल से आरम्भ होती है। यहाँ नष्ट हुए बीज का अन्वेषण किया जाता है। यौगन्धरायण साधु के वेष को धारण कर राजा के छुडाने तथा अपने को गुप्त रूप मे रखने का वर्णन करके नष्ट हुए बीज की स्थापना करता है। यह सन्धि प्रद्योत और महारानी के पारस्परिक वर्तालाप मे भी समाहित है। देवी उदयन को वासवदत्ता के लिए सगीत शिक्षक नियुक्त करने का प्रस्ताव करती है। इस सन्धि को द्वितीय अङ्क मे तृतीय अङ्क के कुछ अश तक माना जायगा।

तृतीय अङ्क मे "या सा कालाष्टमी अतिक्रान्ता, तत्र भवती वासवदत्ता नाम राजदारिका धात्री द्वितीया कन्याकादर्शन निर्दोषमिति कृत्वाऽपनीतचचुकामा शिवकायामवघट्टितप्रणाली प्रस्तुत सलिलविषम राजमार्गं परिहृत्य यतद बन्धनद्वारस्याग्रतो भगवत्या दक्षिण्या स्थान तस्मिन्देवकार्यं कर्तुं गतासीत्"[2] स्थल से गर्भ सन्धि का प्रारम्भ होता है। विदूषक यौगन्धरायण को वत्सराज उदयन को वासवदत्ता के प्रति किस प्रकार प्रेम जाग्रत हुआ था, का वर्णन करता है। वह कहता है कि कालाष्टमी के दिन वासवदत्ता यक्षिणी की पूजा के लिए गयी थी। मार्ग ठीक न होने से वह कारागार के द्वार से जाने लगी। पालकी का पर्दा उठा हुआ था महाराज द्वार पर पहुँच गये और वासवदत्ता का दर्शन कर अपना हृदय वही छोड़ दिया। अतः उनका यह सकेत है कि कारागार मे वे तभी निकलेंगे जब साथ मे वासवदत्ता भी रहेगी। यह समस्त इतिवृत्त गर्भ सन्धि के अन्तर्गत है।

यौगन्धरायण विदूषक से राजा उदयन के असमय मे राग मे लिप्त होने

---

१. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, १।१७

२. वही तृतीय अङ्क पृ० २३

की आलोचना में फल प्राप्ति के विषय में पर्यालोचना करने से सन्दिग्ध मन है और वह फल प्राप्ति की आकांक्षा करता है। यहाँ अवमर्श सन्धि है।

चतुर्थ अङ्क में भट और गात्र सेवक का वार्त्तालाप रूपक की कथावस्तु को एक अर्थ के लिए एकत्र करता है। अतः यह निर्वहण सन्धि है। नाटककार यौगन्धरायण से मुख से राजा उदयन का साल वृक्षों में रचित कृत्रिम हाथी द्वारा ग्रहीत होने का वृत्तान्त पुनः स्मरण करा कर तथा प्रथम छद्म के प्रतिकार में अन्य छद्म उचित होगा, ऐसा कह कर रूपक की कथावस्तु का समाहार करता है। इस प्रकार भरत वाक्य तक यह सन्धि व्याप्त है।

सूच्य कथांश की अभिव्यक्ति के लिए चतुर्थाङ्क में प्रवेशक और द्वितीय अङ्क में विष्कम्भक की योजना की गयी है। इसकी आरभटी वृत्ति है और इसमें वीर रस है।

स्वप्नवासवदत्तम् : विवेचन

इस नाटक की कथा की एक घटना विशेष के आधार पर इसका नामकरण 'स्वप्नवासवदत्तम्' हुआ है। नाटक के पञ्चम अङ्क में राजा शीर्ष वेदना पीड़ित रानी पद्मावती को देखने के लिए समुद्र गृह जाता है। वहाँ उसको न पा कर उसकी प्रतीक्षा करने के हेतु बिछी हुई शैय्या पर लेट जाता है। शीघ्र ही उसे निद्रा आ जाती है। विदूषक सायंकालीन शर्दी से बचने के लिए अपना दुपट्टा लाने चला जाता है। इसके पश्चात् वासवदत्ता पद्मावती का समाचार लेने वहाँ आती है। वह सोते हुए राजा को पद्मावती समझ उसके पास लेट जाती है। पर, जब उसे ज्ञात होता है कि यह पद्मावती नहीं वत्स नरेश उदयन हैं, तो शीघ्र ही वह उठ बैठती है। राजा भी स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है। वह प्रणय भरी भाषा में उससे कुछ कहता है। वासवदत्ता को शंका होती है कि कहीं उसे यहाँ बैठे हुए कोई देख न ले। अतएव वह राजा के पलंग से नीचे लटकते हुए हाथ को पलंग पर रख कर जाने लगती है। हाथ का स्पर्श होते ही उदयन उठ बैठता है और वासवदत्ता के पीछे दौड़ता है। किन्तु द्वार पक्ष से टकराकर रुक जाता है। प्रस्तुत नाटक में यह सबसे बड़ी सरस घटना है। अतएव इसी के आधार पर इस नाटक का नामकरण किया जाता है।

इस नाटक के नामकरण के विषय में एक अन्य धारणा यह है कि आरुणि द्वारा छीने गये राज्य की पुनः प्राप्ति के हेतु वासवदत्ता राजा से पृथक् की गयी है। यौगन्धरायण मन्त्री छीने गये राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए चेष्टा करता है। इसी बीच भविष्य वक्ताओं ने यह घोषणा की कि मगध राज दर्शक

की बहन पद्मावती राजा उदयन की यदि पत्नी बन जाय तो राजा को चक्रवर्तित्व प्राप्त हो सकता है। इन भविष्यवाणियों को सुन कर यौगन्धरायण विचार करने लगा कि पद्मावती का विवाह उदयन से हो जाने पर मगध राज की सहायता से आरुणि को हराया जा सकता है। पर वासवदत्ता के रहते राजा दूसरा विवाह करने को तैयार नहीं होगा। दूसरी बात यह है कि दर्शक भी वासवदत्ता के रहते पद्मावती का विवाह उदयन के साथ नहीं करेगा। अतएव किसी प्रकार वासवदत्ता को राजा से अलग करना चाहिये। यौगन्धरायण आदि मन्त्रियों ने वासवदत्ता के साथ बैठ कर एक योजना तैयार की जिसके फलस्वरूप वासवदत्ता को पद्मावती के संरक्षण में रहना पड़ा। अतः इस नाटक का मुख्य कार्य खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति है। यदि नाटककार का ध्येय उक्त मुख्य कार्य की ओर ही होता तो वे इसका नाम 'उदयनोदय' रखते पर ऐसा प्रतीत नहीं होता। यह सम्भव है कि आरम्भ में राज्य की पुनः प्राप्ति ही मुख्य लक्ष्य रहा हो, पर कवि ने इस घटना को अपने नाटक का मुख्य कार्य नहीं माना है और न नायक अथवा अन्य किसी पात्र से इसके लिए विशेष प्रयत्न ही करवाया है। यह घटना केवल पंचम अङ्क के अन्त में ही एक बार आयी है। वहाँ भी मुख्य कथा से हटी हुई पार्श्व की वस्तु दिखलायी पड़ती है। अतएव पुनः राज्य प्राप्ति की घटना के आधार पर इस नाटक का नाम 'उदयनोदय' रखा जा सकता है।

कुछ समीक्षक इसका नाम 'पद्मावती-परिणय' भी रखने के पक्ष में है। पर इस नाटक का मुख्य कार्य यह भी नहीं है। न उदयन ही पद्मावती पर आसक्त है और न पद्मावती ही उदयन से विवाह करने के लिए उत्सुक है। विवाह की यह घटना तो नीरस है। इसके अतिरिक्त यह भी एक तर्क है कि नाटक का मुख्य कार्य इस घटना को माना जाय तो इस नाटक को तृतीय अङ्क के अन्त में ही समाप्त हो जाना चाहिये।

कुछ चिन्तक 'उदयनवासवदत्तम्' की संज्ञा इस नाटक को देने के पक्ष में हैं। पर यह भी संज्ञा ठीक प्रतीत नहीं होती। यदि इस नाटक में वासवदत्ता और उदयन के मिलन की ही कथा होती तो यह नाम सार्थक सिद्ध होता। वासवदत्ता तो उदयन के साथ ही थी, उसे उससे बुद्धिपूर्वक अलग किया गया है। अतएव 'उदयन-वासवदत्तम्' यह नाम भी सार्थक प्रतीत नहीं होता। संक्षेप में सरसता और कल्पना का जैसा मधुर संयोग स्वप्न दर्शन की घटना में है वैसा अन्य किसी घटना में नहीं, अतएव इस नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' यथार्थ है।

कथावस्तु

आरुणि ने वत्सराज उदयन पर आक्रमण कर उसे राज्यच्युत कर दिया और महाराज उदयन अपने बन्धु-बान्धवों के साथ लावाणक ग्राम में निवास करने लगे। इस पृष्ठभूमि में ही नाटक की कथावस्तु आरम्भ होती है। आरम्भ में ही तपोवन का दृश्य उपस्थित होता है। अमात्य यौगन्धरायण परिव्राजक वेष में और वासवदत्ता अवन्तिका के वेष में उपस्थित होते हैं। मगध के तपोवन में राजमाता के दर्शन के हेतु मगध राजकुमारी पद्मावती उपस्थित होती है। आते ही उसने कंचुकी से घोषणा करायी कि जिस आश्रमवासी तपस्वी को जिस वस्तु की आवश्यकता हो आ कर माँग ले। किन्तु एक भी आश्रमवासी कुछ भी माँगने नहीं आया। एकमात्र यौगन्धरायण ने न्यास के रूप में अपनी प्रोषितपतिका बहन को राकुमारी पद्मावती के हाथों में कुछ दिनों तक के लिए समर्पित करने की इच्छा व्यक्त की। यद्यपि यौगन्धरायण की माँग बड़ी थी—न्यास का संरक्षण कठिन था, तथापि वचनबद्ध होने के कारण पद्मावती ने स्वीकार कर लिया।

इसी समय एक ब्रह्मचारी आता है। वह भी राजगृह का निवासी था और वेदाध्ययन के लिए लावाणक ग्राम में गया हुआ था। लावाणक के जल जाने से वह उदास हो कर अपने घर चला आया। श्रान्त-क्लान्त होने के कारण वह क्षण भर के लिए विश्राम करने हेतु आश्रम में आ पहुँचा। घबड़ाहट का कारण पूछने पर उसने लावाणक का सारा आंखों देखा समाचार कह सुनाया। किस प्रकार महाराज उदयन वासवदत्ता के वियोग में और मन्त्रीवर यौगन्धरायण के वियोग में रोते हुए आग में जल मरने के लिए तैयार हुए। रुमण्वमान् मन्त्री ने बड़ी तत्परता से उदयन की देख भाल की है। ब्रह्मचारी के मुख से लावाणक का यह करुण समाचार सुन कर सभी की आँखों में आँसू आ गये और सभी ने उदयन के प्रेम की प्रशंसा की। महाराज उदयन के पवित्र प्रेम का समाचार सुन कर राजकुमारी पद्मावती सोचने लगी क्या वे पुनर्विवाह करेंगे? एक-एक कर सभी वहाँ से चले गये। वासवदत्ता भी राजकुमारी पद्मावती के साथ तपोवन से राजगृह चली आयी।

—प्रथम अङ्क

पद्मावती और वासवदत्ता एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्वक रहने लगीं। दोनों में अन्तरंग सख्यभाव उत्पन्न हो गया। एक दिन वे दोनों उपवन में कन्दुक

क्रीडा कर रही थी कि वासवदत्ता ने बड़ी चतुरायी के साथ पद्मावती से विवाह की चर्चा छेड़ी। वार्त्तालाप के प्रसग मे चेटी ने यह रहस्य प्रकट किया कि राजकुमारी वत्सराज उदयन के गुणो पर आसक्त है। इसी समय धात्री सूचित करती है कि किसी कार्यवश महाराज उदयन यहाँ आये हैं। उनके रूपगुण आदि को देख कर महाराज दर्शक ने उनसे कुमारी पद्मावती के साथ विवाह करने का निवेदन किया है। महाराज उदयन ने भी मगधराज के निवेदन को स्वीकार कर लिया है। बात पक्की हो चुकी है, वाग्दान भी हो चुका है। यह चर्चा चल रही थी कि दूसरी चेटी महारानी का आदेश ले कर आती है और कहती है शीघ्र चलिये, आज शुभ मुहूर्त है, अत. आज ही विवाह होगा। महारानी का आदेश सुन कर वासवदत्ता और पद्मावती आदि सभी वहाँ से चली जाती हैं।

—द्वितीय अङ्क

समस्त अन्त पुर मे पद्मावती के विवाह की चहल-पहल है। सभी प्रसन्न हैं, किन्तु वासवदत्ता के लिए यह दृश्य असह्य है। वह अपने नेत्रो के समक्ष अपने स्वामी का द्वितीय विवाह होते हुए कैसे देख सकती है? अतएव वह अपना मन बहलाने के लिए प्रमदवन मे चली जाती है। इसी समय उसे ढूंढती हुई एक दासी आती है और वासवदत्ता के हाथो मे पुष्प देते हुए कहती है—'महारानी ने आपसे जयमाल गूँथने को कहा है।' वासवदत्ता मनमसोस कर माला गूँथन लगती है। किन्तु माला के पुष्पों के साथ अविधवाकरण नामक जड़ी गूँथती है, पर सपत्नीमर्दन नामक जड़ी नहीं गूँथती, चेटी के पूछने पर वह उत्तर देती है—'पद्मावती की सौत मर चुकी है, अत. इसे गूँथने की आवश्यकता नही।' इसी समय दूसरी चेटी आती है और वासवदत्ता से माला ले कर शीघ्र चली जाती है। वासवदत्ता मन बहलाव के हेतु वही पर लेट जाती है।

—तृतीय अङ्क

शरद् ऋतु के मध्याह्न मे वासवदत्ता पद्मावती के साथ भ्रमण करती है, चेटी भी साथ है। सब के सब एक पाषाण खण्ड पर बैठ कर प्रेमालाप कर रही हैं। इसी समय विदूषक के साथ महाराज पद्मावती को खोजते हुए वहाँ आते हैं। वासवदत्ता के साथ रहने के कारण पद्मावती उदयन को आते हुए देख कर सकोच मे पड जाती है और वे सभी लता मण्डप मे छिप जाती हैं। उदयन भी घूमते-फिरते लता मण्डप के पास पहुँचते हैं और तीखी धूप होने के कारण वे वहाँ विश्राम करना चाहते हैं। जब पद्मावती को उदयन के आगे बढने का

आभास हुआ तो उसने आज्ञा दे कर चेटी द्वारा लताओं को झकझोरने को कहा। लताओं के हिलते ही भौंरे भन्ना उठे। भ्रमरों के भय से महाराज उदयन और विदूषक दोनों ही लता मण्डप से बाहर ही एक शिला खण्ड पर बैठ कर बातें करने लगे। विदूषक ने एकान्त पा कर पूछा—'मित्र आपको कौन अधिक प्रिय है, तब की वासवदत्ता या अब की पद्मावती ?' उदयन बड़े धर्म संकट में पड़ गये। वे कुछ कहना नहीं चाहते थे पर विदूषक के अत्यधिक आग्रह के कारण उन्हें कहना पड़ा कि पद्मावती मुझे बड़ी प्रिय है किन्तु वह वासवदत्ता से मेरे मन को हटा नहीं सकी। वासवदत्ता और पद्मावती उदयन के इस उत्तर को सुन कर बड़ी प्रसन्न हुईं। पर चर्चा के कारण वासवदत्ता का स्मरण हो जाने से उदयन की आँखें आँसुओं से भींग गयीं। विदूषक मुँह धोने को पानी लाने के लिए बाहर चला गया। अवसर देख कर वासवदत्ता ने पद्मावती को उदयन के पास भेज दिया और स्वयं बाहर निकल गयी। पद्मावती जब तक उदयन के पास आती है, तब तक विदूषक भी पानी लिए आ, पहुँचता है। विदूषक को देख कर पद्मावती पूछती है—'यह क्या आर्य पुत्र की आँखों में आँसू क्यों ?' विदूषक उत्तर देता है—'कुछ नहीं, हवा के झोंके से काश की धूल आँखों में आ पड़ी जिससे आँसू आ गये। लीजिये पानी मुँह धुलवा दीजिये।' पद्मावती ने उदयन का मुँह धुलवा दिया तो उनकी आँखें खुलीं और सामने पद्मावती को देख कर चौंक उठे। अवसर पा कर विदूषक ने कहा कि महाराज शीघ्र चलिये, मगधराज अपने मित्रों से आपका परिचय कराने वाले हैं।

—चतुर्थ अङ्क

पद्मावती की शिरोवेदना का समाचार ले कर चेटी आती है। वह महाराज से निवेदन करती है कि आप शीघ्र ही चलिये, समुद्र गृह में महारानी पद्मावती शिरोवेदना से पीड़ित हैं। मधुरिका वासवदत्ता को समाचार देती है जिससे वह मधुर कथाओं से पद्मावती का मनोविनोद करे। उदयन विदूषक के साथ समुद्रगृह की ओर प्रस्थान करता है। वह कहता है कि ज्यों ही मेरा पूर्व शोक मन्द हो रहा था, यह दूसरी विपत्ति आ पड़ी। वह समुद्र गृह में आता है और यहाँ आ कर देखता है कि पद्मावती अभी नहीं आयी है। वह लेट जाता है और विदूषक उसे कहानी सुनाने लगता है। उदयन को नींद आ जाती है और विदूषक प्रावारक लेने के लिए चला जाता है। इसी समय वहाँ वासवदत्ता भी आ जाती है। वह सोते हुए उदयन को पद्मावती समझ कर उसके पार्श्व में लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता का नाम ले कर

बोलने लगता है। वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि यह पद्मावती नहीं उदयन है। बहुत दिनों के पश्चात एकान्त में पति दर्शन होने के कारण वह एकटक दृष्टि से उदयन के मुँह की ओर देखती रहती है और जब वहाँ से जाने लगती है तो उदयन की नीचे लटकती हुई बाँह को ऊपर रख कर चली जाती है। उसके निकलते ही उदयन की नींद टूटती है और वह सुसुप्तावस्था में ही उसका पीछा करता है, पर द्वार का धक्का लगने से गिर पड़ता है। इसी समय वहाँ विदूषक आ जाता है। उदयन उससे कहता है कि उसने वासवदत्ता का दर्शन कर लिया है, पर विदूषक इसे स्वप्न या माया कहता है। उदयन कहता है कि यदि यह स्वप्न है तो सदैव ही स्वप्न बना रहे, क्योंकि जागरण से यह अधिक हितावह है। इसी समय कंचुकी आता है और निवेदन करता है कि आपका अमात्य रुमण्वान् आरुणि को मारने के लिए सेना के साथ तैयार है और मगध राज की सेना भी उसका अनुगमन कर ही रही है, अतः आप शीघ्र ही तैयार हो जाएँ।

—पंचम अङ्क

उज्जयिनी से महासेन का कांचुकीय रैभ्य तथा वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा उदयन से भेंट करने के लिए आती हैं। प्रतिहारी से यह भी ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति ने नर्मदा तटीय अरण्य में घोषवती नाम की वीणा प्राप्त की थी, जिसकी ध्वनि को सुन कर महाराज ने उसे मँगा लिया है तथा वासवदत्ता का स्मरण कर विलाप कर रहे हैं। उदयन को महासेन के यहाँ से कांचुकी तथा धात्री के आने की सूचना दी जाती है और पद्मावती के साथ वह उनसे मिलता है। उसे यह भी बतलाया जाता है कि 'महासेन ने तुम्हारा और वासवदत्ता का चित्र बनवा कर विवाह कर दिया है।' यह कह कर वह राजा के सामने चित्र रख देते हैं। वासवदत्ता का चित्र देखते ही पद्मावती को अवन्तिका की याद आ जाती है। वह राजा से कहती है—'ऐसी रूपवाली स्त्री तो यहीं रहती है।' राजा उसे लाने को कहता है। पद्मावती अवन्तिका को उपस्थित करती है और राजा उसका घूँघट उठा कर उसे पहचानता है। इसी समय ब्राह्मणवेषधारी यौगन्धरायण अपनी बहन को लेने आता है। वह प्रवेश करते ही राजा की दुहाई देता है। महासेन की धात्री वासवदत्ता को पहचान लेती है और यौगन्धरायण भी पहचान लिया जाता है। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

—षष्ठ अंक

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना-संयोजन

'स्वप्नवासवदत्तम्' का कथानक लोक कथाओं पर आधृत है। उदयन का कथानक लिखित रूप में सर्वप्रथम इसी नाटक में मिलता है। गुणाढय-कृत पैशाची 'वृहत्कथा' के अनूदित ग्रन्थ 'कथासरितसागर', 'वृहत्कथा मंजरी' और 'वृहत्कथा श्लोक' संग्रह में भी उदयन कथा प्राप्त है जिससे यह ज्ञात होता है कि मूल 'वृहत्कथा' में भी यह कथा अवश्य रहा है। पर 'वृहत्कथा' के रचयिता गुणाढ्य का समय भास का उत्तर काल है। 'वृहत्कथा' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' के कथानक में कई बातों में अन्तर पाया जाता है।

भास के मत से दर्शक मगध का राजा है, किन्तु गुणाढ्य के मत से प्रद्योत नाटक के अनुसार पद्मावती दर्शक की बहन है, किन्तु गुणाढ्य के मत से प्रद्योत की कन्या। भास के मतानुसार आरुणि द्वारा अपहृद वत्सराजा के उद्धार के लिए यौगन्धरायण ने समस्त योजना तैयार की, किन्तु गुणाढ्य ने लिखा है कि नये राज्य की प्राप्ति के लिए यौगन्धरायण ने इतना प्रयास किया है। भास के मत से वासवदत्ता अपने अज्ञातवास के जीवन में यौगन्धरायण की बहन बनी, किन्तु गुणाढ्य के मत से पुत्री। इस प्रकार भास और गुणाढ्य के मत में और भी कई भिन्नताएँ हैं, जिनसे स्पष्ट है कि भास और गुणाढ्य दोनों के कथानक लोककथाओं पर आधृत होने के कारण ही उनमें भिन्नता है।

शास्त्रीय विश्लेषण

नाटक में 'भारती' वृत्ति और विप्रलम्भ शृंगार है। छः अङ्क और पाँच सन्धियाँ हैं। इसमें वत्सराज के पद्मावती प्राप्ति हेतु यौगन्धरायण का प्रयत्न बीज है। इसी परिणय द्वारा अपहृत राज्य की प्राप्ति सम्भव है। प्रथमाङ्क में यौगन्धरायण, पुष्पकभद्र आदि ज्योतिपियों की उक्ति को प्रबल प्रमाण मान कर कहता है—'तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि'[1] विधि भाग्य भी विद्वानों के सुपरीक्षित वाक्यों का उल्लंघन नहीं करता है। यहाँ प्रारम्भ नामक कार्यावस्था और बीज नामक अर्थ प्रकृति का संयोग होने से मुखसन्धि भी है।

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, १।१

इस बीज के वपन हेतु यहाँ ब्रह्मचारी का प्रवेश नाटकीय योजना में महत्व रखता है। पद्मावती के विवाह के प्रधान लक्ष्य को दृष्टि में रख कर ही उदयन के गुणों का संकीर्तन ब्रह्मचारी द्वारा कराया गया है। उदयन के गुणों को श्रवण करने के अनन्तर पद्मावती के हृदय में प्रेम का संचार होता है। अत: यह विलोभन नामक अंग है। इसके अतिरिक्त इस सन्धि में युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, उद्भेद और भेद नामक अंग भी विद्यमान हैं।

बीज के अंकुरण का दृश्य और अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है। इसमें बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति और प्रयत्न नामक अवस्था का मिश्रण है। धात्री द्वितीय अङ्क में—'आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।... ......अन्य प्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता।'[1] कथन में उदयन के हृदय की विशालता के कारण पद्मावती का वरण करने का निश्चय द्योतित होता है।

बीज के दिखायी देने के उपरान्त पुनः नष्ट हो जाने पर जब उसका अन्वेषण बार-बार किया जाता है, तो गर्भ सन्धि होती है। इस सन्धि में पताका के न रहने पर भी प्राप्त्याशा का रहना आवश्यक है। इस नाटक में "अनतिक्रमणीयो हि विधि" वाक्य से गर्भ सन्धि प्रारम्भ होती है। यहाँ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था भी है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' के पञ्चम अङ्क की समाप्ति पर काञ्चुकीय द्वारा मन्त्री रुमण्वान् के शत्रु आरुणि पर आक्रमण के वर्णन में राज्य प्राप्ति का लोभ होने से अवमर्श सन्धि है। अत: जहाँ क्रोध, व्यसन या लोभ से फल प्राप्ति की पर्यालोचना की जाय और गर्भ सन्धि के द्वारा बीज का प्रकटन कर दिया गया हो, वहाँ यह सन्धि आती है। यह सन्धि छठे अङ्क में कंचुकी के "दिष्ट्या परैरपहृत राज्यं पुन. प्रत्यानीतम्" स्थान तक चलती है। शत्रु द्वारा अपहृत राज्य की प्राप्ति होने पर भी वासवदत्ता की सकुशल प्राप्ति होना शेष है, यह कह कर नाटककार कथावस्तु का समाहार करता है।

इधर-उधर बिखरी हुई कथावस्तु को एकत्र कर नाटककार जहाँ कार्य और फलागम का संयोजन करता है, वहाँ प्रयोजन के पूर्ण होने से निर्वहण सन्धि कही जाती है। छठे अङ्क के ग्यारहवें पद्य और उसके समीपवर्ती गद्य में वासवदत्ता की धात्री वासवदत्ता का चित्र राजा को देती है और पद्मावती

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, द्वितीय अङ्क, पृ० ७८-७९

उस चित्र में न्यास रूप में अवन्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता की समानता देखकर उसकी प्रतिकृति से मिलान कर सन्देह करती है और राजा भी आकृति सादृश्य के कारण सन्देह में पड़ जाते हैं। यह सब कथानक निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत है। इस सन्धि की समाप्ति कथानक को समेटते हुए निम्न प्रकार होती है—

पुष्पकाभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।[1]

सर्वं एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।[2]

'स्वप्नवासवदत्तम्' के द्वितीय अङ्क में प्रवेशक की योजना है। प्रवेशक द्वारा परिचारिकाओं और वासवदत्ता के साथ कन्दुक क्रीड़ा करती हुई पद्मावती के आने की सूचना दी गयी है। चतुर्थ अङ्क और पंचम अङ्क में प्रवेशक के पद्मावती, अवन्तिका और राजा के आने की सूचना दी गयी है। मिश्र विष्कम्भक का प्रयोग छठे अङ्क के प्रारम्भ में राजा और विदूषक के आगमन की सूचना देने के लिए किया है। इस प्रकार प्रकृत नाटक में पाँच अर्थोपक्षेपकों में से विष्कम्भक और प्रवेशक ये दो पाये जाते हैं।

'स्वनवासवदत्तम्' नाटक में अभिनय गुण भी वर्त्तमान है। कथावस्तु के गठन में तो नाटककार ने पूर्ण सतर्कता दिखलायी है। नाटक की समाप्ति में वासवदत्ता के पूर्ण परिचय तथा परिज्ञान हेतु चित्र फलक का देना, उसकी धात्री का आगमन, चरित्र की साक्षिणी उदयन की नव परिणीता पद्मावती स्वयं तथा यौगन्धरायण की उपस्थिति नाटक की कथावस्तु की पूर्णता को सूचित करते हैं। योगन्धरायण का अपूर्व त्याग एवं पति के चक्रवर्तीत्व की कामना से वासवदत्ता का कष्ट सहन करना इस नाटक का मूलाधार है। अपनी समस्त सुख-सुविधा का त्याग, सपत्नी का आह्वान, परिचारिका के रूप में काल यापन आदि अपूर्व घटनाओं से वासवदत्ता अनुकरणीय आदर्श नारी के रूप में उपस्थित होती है। भास ने इस नाटक में पात्रों का सुयोजन, चरित्रों का उदात्त रूप, घटनाओं की सुगमता और दृश्यों के साधारणीकरण द्वारा इसको पूर्णतया अभिनेय बनाया है। डॉ० सुखथंकर ने नाटकीय क्रियाओं की गतिविधि को ध्यान में रखते हुए इस नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कथा के सरस भागों को अङ्कों के द्वारा तथा नीरस अंशों को विष्कम्भक और प्रवेशक आदि

१. स्वप्नवासवदत्तम्, षष्ठ अङ्क, पृ० २६२

२. वही, पृ० २६४

अर्थोपक्षेपको द्वारा दिखलाया गया है। संक्षेप मे यह नाटक भास की सर्वश्रेष्ठ रचना है, विप्रलम्भ शृंगार का जितना सजीव वर्णन इस नाटक मे प्राप्त होता है, उतना अन्य नाटको मे नही।

चारुदत्त : विवेचन

भास नाटक चक्र का अन्तिम रूपक चारुदत्त है। यह रूपक चार अङ्कों मे विभक्त है। अध्ययन से यह अपूर्ण ही प्रतीत होता है, इसी को परिवर्द्धित कर शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना की है। रूपक का नामकरण विप्र पुत्र आर्य चारुदत्त के नाम पर हुआ है। नाटक की समस्त घटनाएँ उसीके कृत्यो पर अवलम्बित हैं। चारुदत्त की दरिद्रता के वर्णन से ही इसे दरिद्र चारुदत्त भी कहा जाता है। यह सरल और सुबोध रूपक है। इसका अभिनय भी बडी सरलता से किया जा सकता है। चरित्रों का तो यह 'एलबम' ही है। इसमे एक ओर चारुदत्त की सज्जनता दृष्टिगोचर होती है, तो दूसरी ओर शकार की दुर्जनता। इसकी सरस कोमल नायिकाएँ सभी को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। कथा-वस्तु अत्यन्त सुगठित है।

कथावस्तु

प्रस्तावना के पश्चात् विदूषक रंगमच पर दिखलायी पडता है। विदूषक चारुदत्त की प्रशसा करता है, वह बतलाता है कि इस समय चारुदत्त दारिद्र्य से ग्रस्त है, पर वह उसका साथ नही छोडेगा। द्वितीय दृश्य मे षष्ठी तिथि के दिन देवबलि करने के लिए वह चारुदत्त के पास पुष्प ले जा रहा है। इसी समय उसे पूजा से लौटता हुआ चारुदत्त दिखलायी पडता है। विदूषक और चेटी रदनिका भी प्रविष्ट होती है। चारुदत्त को अपनी दरिद्रता पर अपार क्षोभ है। विदूषक उसे सान्त्वना देता है।

विट और शकार से पीड़ा की गयी सम्भ्रान्त एव व्याकुल गणिका, वसन्त-सेना प्रविष्ट होती है। शकार के कथन से वसन्तसेना को ज्ञात होता है कि समीप में ही आर्य चारुदत्त का निवास स्थान है। वह अन्धेरे मे दृष्टि बचाकर रक्षा के हेतु चारुदत्त के घर के पास खड़ी हो जाती है। चारुदत्त विदूषक को मातृ देवियों को बलि अर्पण करने के निमित्त चतुष्पथ पर जाने का आग्रह करता है। विदूषक एकाकी जाने में भयभीत होता है, पर रदनिका के साथ जाने पर वह तैयार हो जाता है, विदूषक रदनिका को द्वार खोलने को कहता है, रदनिका दरवाजा खोलती है, बाहर खडी वसन्तसेना आँचल के छोर से हवा मार कर

दीपक को बुझा देती है। विदूषक रदनिका को चतुष्पथ पर चलने के लिए कह कर स्वयं दीपक जलाने अन्दर चला जाता है। इसी बीच में वसन्तसेना भी घर में प्रवेश कर जाती है। बाहर विट शकार को उत्तेजित करता है और वह रदनिका को वसन्तसेना समझ कर पकड़ लेता है। इतने में विदूषक दीपक लेकर बाहर आता है और शकार तथा विट द्वारा प्रताड़ित होती हुई रदनिका को बचा लेता है। विट विदूषक से अपने किये अनुचित व्यवहार की क्षमा-याचना करता है और आर्य चारुदत्त के व्यक्तित्व का भय मान कर चला जाता है। शकार वसन्तसेना को वापस माँगता है तथा विदूषक से उसका कुछ समय तक वाद-विवाद भी होता है। देव कार्य की समाप्ति की सूचना देने के लिए विदूषक और रदनिका चल देती हैं।

चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझ कर देव कार्य के विषय में पूछता है। वह अपना उत्तर वसन्तसेना को देता है, वह वसन्तसेना से बातचीत करना चाहता है, लेकिन वह मौन रहती है। इसी समय विदूषक और रदनिका प्रविष्ट होती है। विदूषक शकार का सन्देश देता है। वसन्तसेना पहचानी जाती है। वह चारुदत्त के पास अपना आभूषण न्यास रूप में रख कर विदूषक की सुरक्षापूर्ण देखरेख में अपने घर चली जाती है।

प्रथम अङ्क

गणिका और चेटी मदनिका मंच पर आती हैं। वसन्तसेना अपनी दासी के समक्ष चारुदत्त के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करती है। मदनिका चारुदत्त की दरिद्रता की ओर उसका ध्यान आकर्षित करती है, परन्तु इससे उसका स्नेह घटता नहीं।

जुआरी संवाहक विजयी जुआरियों के भय से अपनी सुरक्षा एवं शरण की याचना हेतु वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है। चारुदत्त का पुराना भृत्य समझ वसन्तसेना उसकी केवल रक्षा ही नहीं करती, अपितु वह उसे द्रव्य दे कर उसका ऋण चुकता कर देती है। इस प्रकार वसन्तसेना के वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से प्रभावित हो और अपने दैनिक जीवन से विरक्त हो, वह प्रव्रज्या ग्रहण करता है।

चेटक कर्णपुर प्रवेश करता है, वह अपनी वीरता की प्रशंसा में विशेष रूप से उन्मत्त हाथी के उत्पात से संवाहक भिक्षु की रक्षा और आर्य चारुदत्त के द्वारा उक्त कार्य के उपलक्ष्य मे मिले प्रावारक का वृत्तान्त सुनाता है। यह घटना वसन्तसेना तथा मदनिका दोनों के मानस मन्दिर में एक विचित्र कौतूहल प्रस्तुत

करती है। वसन्तसेना चारुदत्त का दर्शन करने के लिए लालायित है। अतः वह मदनिका के साथ भवन की छत की ओर चल देती है।

द्वितीय अङ्क

रात्रि का समय है। चारुदत्त अष्टमी तिथि को स्वर्णभाण्ड की रक्षा का भार विदूषक पर छोड़ देता है। विदूषक स्वर्णभाण्ड हाथ मे लिये सो जाता है। सज्जलक प्रवेश करता है, वह सुरंग बनाकर चारुदत्त के घर मे घुस आता है। वह दीपक बुझा देता है और विदूषक के हाथ से स्वर्ण मंजूषा ले लेता है और भाग जाता है।

रदनिका प्रवेश करती है, वह विदूषक को इस बात से अवगत कराती है कि सेंध बना कर चोर घुस गया, विदूषक उससे कहता है कि अच्छा हुआ कि मैंने स्वामी को स्वर्णभाण्ड दे दिया। यह सुन कर चारुदत्त पूछता है कि कब दिया? वह उत्तर देता है आधी रात को। चारुदत्त को विश्वास हो जाता है कि स्वर्णभाण्ड चुरा लिया गया। उसे इस बात से कष्ट है कि लोग मेरी दरिद्रता के कारण चोरी की बात पर विश्वास न करेंगे और मुझे ही बेईमान समझेंगे। इसी समय चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी प्रवेश करती है। चेटी ब्राह्मणी को अलंकारों के चुरा लिये जाने की बात बता देती है। ब्राह्मणी को कष्ट होता है, पर वह पतिदेव को लोकापवाद से बचाने के लिए अपनी शत सहस्र मूल्य वाली मुक्तावली विदूषक के हाथ भेजती है। चारुदत्त स्वर्णभाण्ड के स्थान पर वसन्त-सेना के यहाँ मुक्तावली भेजता है।

तृतीय अङ्क

वसन्तसेना के घर मदनिका हाथ में चित्रफलक लिये हुए प्रवेश करती है। वसन्तसेना चित्रगत प्रतिमा मे आर्य चारुदत्त की प्रतिकृति का आरोप करती है। इसी समय एक दूसरी चेटी आ कर वसन्तसेना को उसकी माता का आदेश सुनाती है, वह कहती है कि राज श्याल शकार की गाड़ी दरवाजे पर लगी है। माता आज्ञा देती है कि तुम अलङ्कृत हो कर जाओ। इस पर वसन्तसेना रुष्ट हो जाती है और जाना अस्वीकार कर देती है।

सज्जलक ने अपनी प्रेयसी मदनिका को वसन्तसेना की दासता से मुक्त करने के लिए चारुदत्त के घर अलंकारों की चोरी की है। वह इन आभूषणों के साथ मदनिका से मिलता है और उन्हें भेंट के रूप में देता है। मदनिका आभूषणों को पहचान लेती है। और कहती है कि तुम आभूषणों को कहाँ से लाये हो? सज्जलक चारुदत्त के घर से चोरी करने की बात बतला देता है। इसी समय वसन्तसेना भी आ जाती है।

एक चेटी वसन्तसेना को चारुदत्त के घर से एक ब्राह्मण के आगमन की सूचना देती है। वसन्तसेना उसे शीघ्र अन्दर प्रवेश करने का आदेश देती है। विदूषक वसन्तसेना से कहता है कि चारुदत्त तुम्हारे अलङ्कारों को जुए में हार गया है, उनके बदले में उसने मुक्तावली भेजी है उसे आप ग्रहण कीजिये। वसन्तसेना मुक्तावली ले लेती है। इसके पश्चात् वह समस्त अलङ्कारों को सज्जलक के हाथ चारुदत्त के यहाँ भेजती है पर चारुदत्त उन्हें अस्वीकार कर देता है। अतएव वसन्तसेना मदनिका को अपने अलङ्कारों से भूपित करके परिणीता नायिका के रूप में अपनी गाड़ी में बैठा कर सज्जलक के साथ विदा करा देती है। वसन्तसेना चारुदत्त के द्वारा भेजी गयी मुक्तावली धारण कर उसके घर अभिसरण करने को प्रस्तुत होती है। इसी समय आकाश में मेघ गरजते हैं।

चतुर्थ अङ्क

कथावस्तु का स्रोत एवं कल्पना मिश्रण

प्रकृत नाटक का इतिवृत्त किसी ऐतिहासिक या परम्परागत कथा से ग्रहण किया गया है। यह कथा गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' में भी उपलब्ध होती है। अतः सम्भव है कि भास और गुणाढ्य दोनों ने ही प्रचलित किसी अन्य लोक-कथा से स्रोत ग्रहण किया हो। हमारा अनुमान है कि गुणाढ्य ने 'वृहत्कथा' में जिन कथाओं का संकलन किया है, वे लोक-कथाओं के रूप में प्रचलित रही हैं। वहुत सम्भव है कि भास और शूद्रक की कथावस्तुओं का अध्ययन कर गुणाढ्य ने चारुदत्त की कथा अङ्कित की हो। भास का चमत्कार कितना है और लोक-कथा का क्या रूप था? इसके अध्ययन करने का कोई साधन नहीं है। अतः चारुदत्त कथा को ग्रहण कर नाटककार भास ने 'मृच्छकटिक' नाटक की रचना के लिए एक विस्तृत भूमि प्रदान की है।

शास्त्रीय विश्लेषण

प्रस्तुत प्रकरण में "कुत्र नु खलु दरिद्रब्राह्मणं लभेय। एष आर्य चारुदत्तस्य वयस्य आर्यमैत्रेयो नाम ब्राह्मण इत एवागच्छति।" सूत्रधार का यह कथन चारुदत्त की प्राप्ति हेतु बीज का वपन करता है। अत. यहाँ प्रारम्भ नामक अवस्था और बीज नामक अर्थ प्रकृति है। इसके प्रयोग से मुख सन्धि का आरम्भ भी होता है। यह सन्धि गणिका वसन्तसेना का आर्य चारुदत्त के प्रति शील की महत्ता के कारण आकृष्ट होना और अपने को समर्पित कर देना,

कथानक तक चलती है। इसमे परिकर, परिन्यास, विधान, करण, उद्भेद आदि सन्ध्यग विद्यमान हैं। इस सन्धि की समाप्ति गणिका के इस कथन से भगवान की कृपा से शत्रुओं के विरोध के कारण मैं प्रियजन के समीप आ गयी, वचन से होती है। यहाँ बीज के प्रति प्रोत्साहन पाये जाने के कारण भेद नामक सन्ध्यग है।

विदूषक का नायक के प्रति गणिका वसन्तसेना के विचारो को प्रस्तुत करना तथा वसन्तसेना का अनुराग दिखलाना बीज के लक्ष्यालक्ष्य रूप में फूट पडने के कारण प्रतिमुख सन्धि है।

द्वितीय अङ्क मे चेटी द्वारा "हा धिक् दारिद्रच. खलु एष" कथन में कथा के बीज के नष्ट हो जाने पर पुनः गणिका द्वारा "अत खलु कामयते" कथन मे बीज का अन्वेषण किये जाने के कारण इस स्थल पर गर्भ नामक सन्धि है।

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ मे विदूषक तथा नायक परस्पर आलाप करते हैं। निद्रा का न आना और भयभीत हो कर विदूषक का स्वर्णभाण्ड को दे देना ही अवमर्ष सन्धि है, क्योकि इसके द्वारा बीज को प्रकट किया गया है।

नाटककार स्वर्णभाण्ड के अपहृत हो जाने पर चारुदत्त वसन्तसेना के समीप मुक्तावली भेजता है। वसन्तक मुक्तावली को लेकर वसन्तसेना के पास पहुँचता है। इस कथन से बीज मे प्रयुक्त कथावस्तु का समाहार होने के कारण निर्वहण सन्धि है। वसन्तसेना चारुदत्त की प्राप्ति के विषय में चिन्तित है। वह अपना शरीर अलकृत कर अभिसार करती है और चारुदत्त की प्राप्ति रूपी बीज का अन्वेषण होने से विबोध नामक अग है।

चारुदत्त प्रकरण अपूर्ण होने पर भी नाट्य-कला से समृद्ध है। वसन्तसेना उन्मत्त हाथी से परिव्राजक की रक्षा करने वाले व्यक्ति को प्रावारक देने के गुण से चारुदत्त को अपना हृदय समर्पित कर देती है। वह अनुभव करती है कि नगर में अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति निवास करते हैं, पर रक्षक को पुरस्कार देने का किसी ने प्रयास नहीं किया। चारुदत्त गुणज्ञ और उदार है। उसने प्रावारक दे कर मेरे हृदय को जीत लिया। इस प्रकार वसन्तसेना के उक्त कथन से शृंगार रस के पोषण मे नाटकारम्भ होता है। नाटक के मध्य मे दरिद्रता का नग्न चित्रण कर करुण रस की अनुभूति सुन्दर रूप मे करायी है। लोक-रजन और लोकरक्षण करने मे भास अत्यन्त ही सफल हैं। नाटक अपूर्ण है फिर भी ब्राह्मण का गणिका के प्रति स्नेह दिखला कर शृंगार रस का पोषण किया गया है।

निष्कर्ष

भास के रूपकों में अर्थ प्रकृतियाँ, अवस्थाएँ, सन्धियाँ, एवं सन्ध्यंग भले ही यथार्थ रूप में न घटित हों पर प्रभावोत्पादकता की कमी नहीं है। इनके नाटकों की कथावस्तु विविध क्षेत्रों से संकलित है और यह विविधता इनकी प्रतिभा की मौलिकता को व्यक्त करती है। यह सत्य है कि रामायण की कथा से सम्बद्ध नाटकों का कथा संविधान बहुत शिथिल है। इससे भास की नाटकीय कुशलता का परिचय नहीं मिलता। हाँ, महाभारत से सम्बद्ध नाटकों में भास की प्रतिभा अधिक व्यक्त हुई है। सबसे अधिक सफलता तो उन्हें उदयन की प्रेम-कथा से सम्बद्ध नाटकों में मिली है। अतः 'स्वप्नवासवदत्तम्' एवं 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' भास के नाटकों में निश्चित रूप से उच्चकोटि के हैं। यों तो भास ने रामायण की मूलकथा में भी परिवर्तन किये हैं, परन्तु वे महत्वपूर्ण नहीं बन पाये हैं। प्रतिमागृह की कल्पना भास की अपनी निजी है जिसका आधार उस समय की प्रचलित परम्परा जान पड़ती है। प्रतिमा नाटक अभिषेक नाटक की अपेक्षा अधिक सफल है। इसकी कथावस्तु में तीन मौलिक उद्भावनाएँ की हैं—भरत को सीता हरण का पता पहले ही चल जाता है। राम नन्दिक ग्राम में ही भरत से राज्यभार सम्भाल लेते हैं और उनका अभिषेक भी वहीं हो जाता है तथा तीसरी उद्भावना इक्ष्वाकु वंश के मृत राजाओं की प्रतिमाओं का देवकुल में स्थापित किया जाना है।

महाभारत और कृष्ण सम्बन्धी नाटकों में भास की नाट्यकला अधिक विकसित हुई है। मध्यम व्यायोग तथा दूतघटोत्कच के इतिवृत्त में नयी उद्भावना की है। मध्यम व्यायोग में भीम तथा घटोत्कच का द्वन्द्वयुद्ध और घटोत्कच द्वारा भीम को पहचाने बिना हिडिम्बा के पास ले जाना इतिवृत्त में कौतुहल का समावेश कर देता है। कर्णभार के द्वारा कवि ने कर्ण की दानशीलता चित्रित की है। दूत-वाक्य में दुर्योधन और दूसरी ओर कृष्ण के चरित्रों के वैषम्य को चित्रित किया गया है। ऊरुभंग में दुर्योधन तथा भीम के गदायुद्ध का वर्णन है। इसमें अनीति का प्रयोग करने के कारण बलराम भीम पर क्रुद्ध हो जाते हैं किन्तु कृष्ण के द्वारा शान्त कर दिये जाते है। नाटककार ने अश्वत्थामा के प्रचण्ड चरित्र को उपस्थित कर एक मौलिक उद्भावना की है, जो मरते हुए दुर्योधन को पुनः विजय की आशा दिखलाता है। पञ्चरात्रम् के कथा निर्वाह में कवि ने पूर्ण सतर्कता प्रदर्शित की है। महाभारत के विराट पर्व की कथा को एक नया ही रूप दिया गया है। दुर्योधन के द्वारा द्रोण के कहने से पाण्डवों को आधा

राज्य देने की प्रतिज्ञा, अभिमन्यु का कौरवो के साथ युद्ध मे आना और भीम के द्वारा युद्ध मे बन्दी बना लिया जाना कवि की नवीन उद्भावनाएँ हैं। बालचरित के इतिवृत्त को नाटकीय रूप देने मे कवि ने सफलता प्राप्त की है। कंस के स्वप्न मे चाण्डाल युवतियो का आना, मच पर राज्यलक्ष्मी का मूर्त पात्रो के रूप मे उपस्थित होना, नयी कल्पनाएँ हैं। अविमारक की कथावस्तु भी लोककथा पर आधृत है। किसी ऋषि के शाप के कारण कुमार अविमारक अन्त्यज के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। इसी रूप मे उसका प्रेम कुन्तिभोज की पुत्री कुरगी से हो जाता है। यह प्रेम-कथा के आधार पर निर्मित सफल नाटक है। चारुदत्त मे चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रणय का रोमानी चित्रण पाया जाता है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे घटना-चक्र मे कार्यान्वयन का पूरा ध्यान रखा गया है। इसमे घटनाचक्र की गत्यात्मकता, नाटकीय कौतूहल एव दृश्यो का स्वाभाविक विनियोग विद्यमान है।

भास की नाट्य-कला का सस्कृत नाटको पर प्रभाव

नाटककार भास ने सस्कृत दृश्य काव्य के पथ को आलोकित किया है। जिस प्रकार वे रामायण, महाभारत आदि से प्रभावित हैं उसी प्रकार कालिदास आदि कवियो के नाटक भास की नाट्य-कला से प्रभावित हैं। भास के नाटको के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भास के समय मे नाट्य कला का पूर्ण विकास हो चुका था। रगमचीय उपयुक्तता तथा अभिनेयता भी परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। महाकवि कालिदास ने तो इनका स्मरण 'प्रथितयश' कह कर किया है।

कालिदास पर प्रभाव

यो तो कालिदास ने भरत नाट्य शास्त्र के सविधान को अपनाया है। पर काव्य के क्षेत्र मे भास की उपमाओं, भावो और शब्दों आदि से वे प्रभावित हैं। भास ने 'प्रतिमा नाटक' मे सीता के वल्कल की घटना का गुम्फन किया है। वल्कल धारण करने से सीता के सौन्दर्य की वृद्धि होती है। इस वल्कल धारण की परम्परा का प्रभाव कालिदास पर है। उन्होंने वल्कल धारण करने पर शकुन्तला की सौन्दर्य समृद्धि का चित्रण किया है। दोनो ही वर्णनो में पर्याप्त समता है। यथा—"भट्टिनी ! सर्वशोभनीयं सुरूप नाम अलकरोतु, भट्टिनी ! तव खलु शोभने नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं सवृत्तम्।"[1]

---

१ प्रतिमा नाटक, प्रथम अङ्क, चौखम्बा संस्करण, पृ० १२-१३

"इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी ।
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥"[१]

नाटककार भास ने प्रतिमा नाटक और स्वप्नवासवदत्तम् में तपोवन का वर्णन किया है और बतलाया है कि 'वहाँ हरिण निश्चिन्त हो कर स्नेहभाव सहित विचरण करते हैं। मृगों में और तपसियों में पारस्परिक वैसा ही वात्सल्य भाव है जैसा माता, पिता और सन्तान में होता है।'[२]

भास के प्रतीकों का प्रभाव भी कालिदास पर प्राप्त है। 'स्वप्नवासवदत्तम्'[३] में घोषवती वीणा की उपलब्धि राजा उदयन को वासवदत्ता के प्रति असीम शोक से विह्वल और आतुर कर देती है। इसी प्रकार शकुन्तला[४] में राजा दुष्यन्त को मछुआ के द्वारा प्राप्त मुद्रिका व्यथित कर देती है। भास ने घोषवती वीणा को वासवदत्ता के सम्पर्क से अत्यन्त सुखद एवं प्रिय समझा है। इसी प्रकार कालिदास ने भी शकुन्तला की कोमल अंगुली के स्पर्श से मुद्रिका को महनीय बतलाया है। भास की दृष्टि में घोषवती वीणा प्रतीक है तो कालिदास की दृष्टि में मुद्रिका। दोनों ही प्रतीकों का समान कार्य है। घोषवती वीणा जिस कार्य को सम्पादित करती है उसी को मुद्रिका भी। अतः स्पष्ट है कि कालिदास मुद्रिका की कल्पना के लिए भास की घोषवती वीणा की कल्पना से प्रभावित हैं।

भास ने अविमारक नाटक में ऋषि शाप को कुरंगी और अविमारक के विवाह में बाधक सिद्ध किया है। इस शाप कल्पना का प्रभाव कालिदास पर भी है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में दुर्वासा ऋषि के शाप का वर्णन आया है तथा उस शाप के प्रभाव के कारण राजा दुष्यन्त शकुन्तला का प्रत्याख्यान करता है। अतः संक्षेप में यह मानना अनुचित नहीं है कि महाकवि कलिदास इस शाप कल्पना के लिए भास के ऋणी माने जायें।

अभिषेक[५] नाटक में वृक्ष लताओं के प्रति सीता की सहृदय भावना परि-

---

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम् १।१९

२. प्रतिमा नाटक, ५-११ तथा स्वप्नवासवदत्तम् १।१२ की समता अभिज्ञान शाकुन्तलम् ४।१४ में दृष्टव्य है।

३. स्वप्नवासवदत्तम्, ६।१

४. शाकुन्तलम्, ६।११—६।१३

५. अभिषेक नाटक, ३।११

लक्षित होती है। इस प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे वृक्षो को दया पर रक्षित रहने का चित्रण आया है। भास के पात्र वृक्ष और लताओ के प्रति स्नेह अभिव्यक्त करते हैं। इस स्नेह भावना का प्रभाव 'अभिज्ञान शाकुन्तल'[१] के चतुर्थ अङ्क मे शकुन्तला की वन वृक्ष तथा लताओ के प्रति मृदुल भाव मञ्जरी का बोध कराता है।

भाव समानताओ के अतिरिक्त श्लोकार्धों मे समता भी प्राप्त होती है। श्लोकार्द्ध ज्यो के त्यो अंकित नहीं हैं, केवल उनकी प्रतिच्छाया ही देखी जा सकती है। कालिदास के 'रघुवंश महाकाव्य' पर कर्णभार के श्लोक की प्रतिच्छाया दिखलायी पड़ती है। दोनो कवियो के पद्य निम्न प्रकार हैं—

"अनेकयज्ञाहुतितर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसघमर्दन
सुरद्विपस्फालनकर्कशाङ्गुलि
मया कृतार्थ खलु पाकशासन।"[२]

"हरे ? कुमारोऽपि कुमारविक्रम सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुली
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनाम चिह्न निचखान सायकम्।"[३]

'स्वप्नवासवदत्तम्' मे भाग्यदशा का चित्रण चक्रारपंक्ति के समान किया गया है। भास की इस कल्पना को कालिदास ने 'मेघदूत' मे प्रयुक्त किया है। यक्ष कहता है कि मनुष्यो के सुख-दु ख चक्रवत् परिवर्तित होते रहते हैं। दोनो स्थलो के देखने से भास का प्रभाव कालिदास पर स्पष्ट लक्षित होना है—

'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति'[४]

"कस्यात्यन्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"[५]

---

१. शाकुन्तल, ४।९
२ कर्णभारम्, १।२३, पृ० २४
३. रघुवंश, ३।५५
४. स्वप्नवासवदत्तम्, १।४
५ उत्तरमेघ, श्लोक २२

'स्वप्नवासदत्तम्'[1] में पद्मावती के विवाह के अवसर पर कौतुकमाला के गूँथने का वर्णन आया है। कालिदास ने इस प्रभाव को अपने 'रघुवंश'[2] में मधूक माला के गूँथने के वर्णन में ग्रहण किया है।

इस प्रकार हम कालिदास के ग्रन्थों पर भास का पर्याप्त प्रभाव पाते हैं।

शूद्रक पर भास का प्रभाव

भास के 'चारुदत्त' का परिवृहण कर शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' की रचना की है। श्री बेलवेल्कर, सुखथंकर, डॉ० कीथ तथा अन्य यूरोपीय विद्वान् भी इसका समर्थन करते हैं। पर पी० वी० काणे और रेड्डी आदि इसमें संदिग्ध हैं।

'मृच्छकटिक' नाटक की कथावस्तु 'चारुदत्त' नाटक के समान ही है और भावों का अङ्कन भी उसी प्रकार पाया जाता है। इसे हम भास का प्रभाव ही नहीं कह सकते, अपितु इसे पूर्णतया अनुकरण मान सकते हैं।

भास ने भुजाओं की उपमा करिकर से दी है। 'मृच्छकटिक' में भी करिकर संवाहु कहा गया है। भास ने नरेन्द्र श्री को उत्साहयुक्त व्यक्तियों द्वारा उपभोग करने का वर्णन किया है। इस वर्णन का प्रभाव साहस में लक्ष्मी का वास है, "मृच्छकटिक" में भी पाया जाता है।

विशाखदत्त पर भास का प्रभाव

विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' पर महाकवि भास के नाटकों का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। इस नाटक का प्रारम्भ भास के समान ही 'नाद्यन्ते' से होता है। जिस प्रकार भास ने नान्दी के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश कराया है उसी प्रकार विशाखदत्त ने भी। भावो, विचारों और शब्दों के प्रयोग में तो पर्याप्त समता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा परिस्थिति विशेष में विभिन्न मानसिक स्थितियों का चित्रण विशाखदत्त में भास के समान पाया जाता है। "सखे किमसि वक्तुकामः" जैसे 'मुद्राराक्षस' के मनोवैज्ञानिक वाक्य भास से स्पष्ट प्रभावित हैं। 'मुद्राराक्षस' में प्रयुक्त अप्रमत्त, काशपुष्प, निवापञ्जलि,

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, तृतीयाङ्क, चेटी का कथन, नोवेल्टी संस्करण, पटना, पृ० ७०

२. रघुवंशम्, ६।२५

सवाप्पम्, कुटुम्बिनी आदि शब्द भी भास से ग्रहण किये गये प्रतीत होते हैं। भास ने जिस प्रकार अपराध की स्वीकृति का वर्णन किया है, उसी प्रकार 'मुद्राराक्षस' नाटक मे भी अपराध स्वीकृति का चित्रण किया गया है। भास ने 'सकाम' शब्द का प्रयोग किसी विशेष अभिप्राय से किया है। 'मुद्राराक्षस' मे इस शब्द का प्रयोग उसी अभिप्राय से प्राप्त होता है। भास ने स्त्री पात्रो मे 'विजया' को बहुत महत्व दिया है और उनके अधिकाश नाटकों मे 'विजया' आयी है। 'मुद्राराक्षस' मे शूद्रक ने भास से ही विजया को ग्रहण किया है।

नाटककार हर्ष पर भास का प्रभाव

नाटककार हर्ष भास के नाटको से पर्याप्त प्रभावित हैं। 'रत्नावली' नाटिका की कथावस्तु का आधार 'वृहत्कथा' चाहे न भी हो पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' अवश्य है। 'स्वप्नवासवत्तम्' मे वर्णित उदयन और वासवदत्ता की कथा 'रत्नावली' मे यत्किञ्चित् परिवर्तन के साथ ग्रहीत है। भास ने सान्ध्यकालीन वर्णनो का गुम्फन 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे किया है। वह सूर्य की किरणों के सक्षिप्त होने का और उनके अस्ताचल की ओर जाने का मनोरम अङ्कन करता है। ऐसा ही अङ्कन 'रत्नावली' नाटिका मे प्राप्त होता है। अतः यह मानना तर्कसगत है कि नाटककार हर्ष ने भास से प्रभाव ग्रहण किया है। दोनो ग्रन्थो के स्थल निम्न प्रकार है—

> "परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च सक्षिप्तकिरणो
> रथ व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्।"[१]
> सन्ध्यामृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पृष्टहेमारपक्ति
> व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतीवैष दिक्चक्रमर्क.॥[२]

भवभूति पर भास का प्रभाव

भवभूति ने 'महावीर चरित' 'मालतीमाधव' और 'उत्तर रामचरित' इन तीन रूपको की रचना की है। भवभूति ने भी भास से पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया है। इनके 'उत्तर रामचरित' की चित्रवीथि कल्पना पर भास का प्रभाव पाया जाता है। यह सत्य है कि 'उत्तर रामचरित' चित्र-

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, १।१६
२. रत्नावली, ३।५

वीथि कल्पना संस्कृत काव्य साहित्य में एक अद्भुत कल्पना है, और ऐसी कल्पना है, जो चित्र और काव्यकला दोनों का गठबन्धन करती है। नाटककार भास ने 'पञ्चरात्रम्' में 'सभाजयति' का प्रयोग प्रीतिपूर्वक 'सेवन' अर्थ में किया है। इसी प्रकार यह प्रयोग 'उत्तर रामचरित' में मिलता है। भास 'स्वप्नवासवदत्तम्' में मनुष्यों के हृदयों को आगम प्रधान बतलाते हैं। भास की इस उक्ति का प्रभाव ग्रहण कर भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' में महापुरुषों के हृदय को वज्र से कठोर और कुसुम से भी कोमल चित्रित किया है।

'मालती माधव' पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वासवदत्ता के अग्नि में जलने के उपरान्त भी उसके जीवित रहने का गुणगान किया गया है, क्योंकि जो स्त्री दग्ध हो चुकी है, उसके उपरान्त भी उसका पति अपूर्व स्नेह दर्शाता है, अतः वह मृत होने पर भी जीवित है। उसी प्रकार का वर्णन 'मालतीमाधव' में भी आया है। बताया है, 'उपरताप्य अनुपरता'।[1]

"न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति"[2]

'स्वप्नवासवदत्तम्' में 'प्रियंगुशिलापट्ट' का कथन आया है। 'मालती-माधव' के तृतीयांक में भी इसी प्रकार का वर्णन है। अतः भवभूति पर भास का प्रभाव स्वीकार करने में किसी प्रकार की भी हिचक नहीं होनी चाहिये।

भट्टनारायण और अन्य नाटककारों पर भास का प्रभाव

भट्टनारायण ने वीर रस प्रधान 'वेणीसंहार' नामक नाटक की रचना की है। यह भी महाभारत के आख्यान पर आधृत है। इस नाटक की कथावस्तु के गठन में भट्टनारायण ने भास के वीर रस प्रधान एकांकी 'ऊरुभंग' तथा 'दूतवाक्य' का अवश्य अध्ययन किया है और 'वेणीसंहार' के आख्यान को उक्त दोनों एकांकियों की प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्त किया है। भास के शब्दों और कल्पनाओं का प्रभाव भी भट्टनारायण पर है। 'मुरारि कवि' ने 'अनर्घराघव' की रचना की है। यह नाटक राम कथा

---

१. मालतीमाधव, पृ० ५६

२. वही, पृ० ३

पर आश्रित है। इन्होंने भी भास के 'अभिषेक' और 'प्रतिमा नाटक' से उपमाएँ और कल्पनाएँ ग्रहण की हैं।

'राजशेखर' ने 'बाल रामायण', "विद्धशाल मञ्जिका" और "कर्पूर मञ्जरी" की रचना की है। 'बालरामायण' पर भास के नाटको का प्रभाव है। राम, लक्ष्मण और सीता की पुष्पक विमान द्वारा यात्रा उसी प्रकार चित्रित है, जिस प्रकार 'अभिषेक' नाटक मे। समुद्र तट पर 'अभिषेक' नाटक मे राम की जिस भावभङ्गिमा का दर्शन कराया है, वैसा ही बाल रामायण मे राजशेखर ने भी किया है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के स्थलो के लिए राजशेखर भास के ऋणी हैं।

जयदेव कवि के प्रसन्न राघव पर भी भास का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार सस्कृत के सभी नाटककारो ने भास से कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य ग्रहण किया है।

● ●

तृतीय अध्याय

भास की कृतियों के शील, संवाद, भाषा-शैली एवं उद्देश्य

शील स्वरूप और रूपकों में उसका प्रयोग

कथावस्तु-गठन, कथा-स्रोत एवं शास्त्रीय विश्लेषण के पश्चात् नाटक का प्रमुख तत्त्व शील है। निःसन्देह कथावस्तु में पात्रों का चरित्र विशेष रूप से सहायक होता है। यदि वस्तु भवन के निर्माण में घटनाएँ इंटों का काम करती हैं, तो पात्र उन इंटों को जोड़ने वाले सीमेन्ट हैं। प्रत्येक रूपककार अपने रूपक में शील निरूपण या चरित्र-चित्रण के द्वारा ही अपने विचारों और सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता है। पात्रों को विभिन्न परिस्थितियों में रख कर ही जीवन के संघर्ष प्रदर्शित किये जाते हैं।

संस्कृत के नाट्य शास्त्रियों ने पात्र-नियोजन का जो महत्व स्वीकार किया है—उसका प्रधान हेतु यही है कि पात्र अपनी मनोवृत्ति, संस्कार, वातावरण एवं विभिन्न प्रकार के सम्पर्कों के कारण जिस शील या चरित्र को प्रदर्शित करते हैं, वह शील या चरित्र ही नाटक का मूलाधार होता है और उसी के द्वारा रूपककार अपने संदेश को प्रसारित करता है। 'भूमिकार्थमायोजिताः पात्राः'[१] अर्थात् नाट्य प्रयोक्ता अपने अभिनेताओं को नाटक के पात्रों के अनुरूप उनसे वाचिक, आंगिक, सात्विक और आहार्य अभिनय कराता है, जिससे पात्रों का चरित्र अभिव्यक्त होता है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र के चौवीसवें अध्याय में पात्रों के स्वभाव और गुणों का अध्ययन किया है। इस सन्दभ में उन्होंने देव और मनुष्य इन दोनों वर्ग के व्यक्तियों के स्वभाव, गुण एवं क्रिया कलापों का निर्देश करते हुए यह बतलाया है कि प्रत्येक पात्र अपने शील और व्यवहार द्वारा सामाजिकों को अनुरंजित करता है। अतः नाटक के शील का आधार मूलतः पात्र ही हैं। वे ही अपने क्रिया-कलापों से

---

१. अभिनव नाट्य शास्त्र, प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९६४ ई०, सूत्र ६९, पृ० १८३

दर्शको तक नाटककार के सन्देश को पहुँचाते हैं।[1] धनंजय ने भी अपने 'दश-रूपक' में नायक, उपनायक, प्रतिनायक एवं अन्य पात्रों के नियोजन और उनके स्वरूप विश्लेषण पर विचार प्रस्तुत किये हैं।[2] अतएव यह स्पष्ट है कि नाटक मे पात्रो की योजना का मूल उद्देश्य शील स्थापन है। जो नाटककार पात्रो के शील को जितना अधिक स्पष्ट रूप में चित्रित कर सकता है वह नाटककार उतना ही सफल माना जाता है।

शील शब्द शील्+अच् से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ प्रवृत्ति, चरित्र या रुचि है। अरस्तु का अभिमत है "चरित्र उसे कहते हैं, जो किसी व्यक्ति की रुचि, विरुचि का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रयोजन को व्यक्त करे।"[3] इस कथन से सिद्ध है कि चरित्र ही पात्रों की भद्रता या अभद्रता का द्योतन करता है। वस्तुतः रूपककार अपने चतुर्दिक फैले हुए व्यापक जगत् का निरीक्षण करता है और अपने इस निरीक्षण-अवलोकन द्वारा जो सत्य उसे दृष्टिगोचर होता है उसकी अभिव्यंजना शील के रूप मे करता है। शील का अर्थ केवल सद्गुण ही नहीं अपितु गुणदोषात्मक समस्त व्यक्तित्व है। मनुष्य की अच्छी और बुरी प्रवृत्तियो का यथार्थ चित्रण शील के अन्तर्गत है। प्रो० जगदीश पाण्डेय ने शील की व्याख्या करते हुए लिखा है—'व्यक्ति का शील आधारतः मनुष्य की हृदयावस्था का वह मानचित्र है, जिसका निर्माण एक प्रतिष्ठा नहीं, प्रतिक्षण चचल अतिक्रम है। यदि ज्ञान से मनुष्य के शील का सीधा या उल्टा लगाव नहीं, तो कोरी शारीरिक क्रिया का भी शील से कोई अटूट या अन्यो-न्याश्रय सम्बन्ध नही। जहाँ हाव के पीछे भाव नहीं वहाँ शील नहीं। क्रिया मात्र शील नहीं है, जब तक प्रतिक्रिया न हो।"[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने शील का विवेचन करते हुए बताया है—"शील हृदय की वह स्थायी स्थिति है, जो सदाचार की प्रेरणा आपसे आप करती है।"[5] अतएव स्पष्ट है कि शील स्थापत्य के द्वारा ही मानवीय मनोवेग, भावावेश, विचार, भावना, उद्देश्य, और संघर्ष का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म आकलन सम्भव होता है। यतः नाट्य साहित्य

---

१. नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्करण, सन् १९२९, श्लोक १००-१७५, पृ० २७६
२. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, सूत्र २-३०
३. डॉ० नागेन्द्र द्वारा अनूदित अरस्तु का काव्य शास्त्र, पृ० २२
४. शील निरूपण सिद्धान्त और विनियोग, पृ० १
५. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ५९

का मूलाधार चरित्र चित्रण ही है। यों तो काव्य, उपन्यास आदि में भी शील का विश्लेषण किया जाता है, पर अभिनय प्रधान होने के कारण रूपकों में शील का चित्रण एक विशेष परिवेश में होता है। जो रूपककार अपने मानस में शील का जैसा मानचित्र अंकित करता है, अपने पात्रों द्वारा वैसा ही अभिनय कराता है। अतः नाटक में विशेष रूप से शील का महत्व होता है।

रूपक की कथावस्तु के नेता पात्र होते हैं। पात्रों के अभाव में रूपकों के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं आ सकती। रूपक के पात्र जितने भी सजीव तथा सशक्त होंगे रूपक उतना ही सफल होगा। पात्रों की सजीवता उनके शील पर ही निर्भर है। रूपक की घटनाएँ तथा पात्रों के कार्य-कलाप परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए कथावस्तु का निर्माण करते हैं और कथानक को गतिशील बनाते हैं। पात्रों का शील घटनाओं से प्रभावित होता है और साथ ही वे घटनाएँ ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करती चलती हैं जिनमें शील का विकास होता है। घटनाओं के तथा पात्रों के शील में कार्य-कारण सम्बन्ध जितना ही व्यवस्थित और तर्कसंगत होगा, रूपक उतना ही सफल माना जायगा। भास के पात्रों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनके रूपकों में शील निरूपण निम्नलिखित प्रविधियों द्वारा सम्पन्न हुआ है—

(१) संवादों द्वारा
(२) कार्यकलापों द्वारा
(३) स्वगत कथनों द्वारा
(४) अन्य पात्रों के कथोपकथनों द्वारा

संवादों द्वारा शील की विभिन्न क्रिया प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त की गयी हैं। मानसिक संस्थान जिस पात्र का जैसा होता है, उस पात्र की विचारधारा भी वैसी ही अभिव्यक्त की जाती है। फलतः नाटककार भास ने संवादों में मानसिक, वैचारिक एवं भावनागत विशेषताओं की अभिव्यंजना पात्रों के संवादों द्वारा प्रस्तुत की है। स्वगतोक्तियाँ पात्रों के चिन्तन को उपस्थित करती हैं। जिन रहस्यों को रूपकों के पात्र दूसरे पात्रों के समक्ष प्रकट करना नहीं चाहते, उन रहस्यों को वे स्वगतोक्तियों द्वारा प्रकट कर देते हैं। भास विभिन्न प्रकार की मानसिक परिस्थितियों के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं। यही कारण है कि उनके पात्रों के संवाद चरित्रों पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। अन्य पात्रों के साथ प्रमुख पात्रों के जो वार्त्तालाप सम्पन्न हुए हैं, उनमें उनकी स्वाभाविक विचारधारा और चरित्रगत विशेषताएं स्पष्ट हुई हैं।

कार्य-कलापों द्वारा चरित्र का प्रमुख अंश प्रत्यक्ष होता है। यतः नाटक की कथावस्तु को गति देने के लिए उसमें कार्यकलापों का होना परमावश्यक है। कार्य-व्यापार की कमी ही नाटक की शिथिलता का सूचक है। नाटक के कार्य-व्यापार के माध्यम से एक ओर कथानक को गति मिलती है, दूसरी ओर पात्रों के चरित्र का प्रत्यक्षीकरण होता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि केवल वाणी के माध्यम से व्यक्ति का चरित्र उतना प्रभावशाली नहीं होता, जितना कि कार्य-व्यापारों के माध्यम से। अतएव पात्रों के कार्य कलाप चरित्र की अभिव्यक्ति के लिए सबसे प्रबल साधन हैं। नाटककार भास ने अपने पात्रों के कार्य-कलापों का बहुत ही सुन्दर अंकन किया है, जिससे उनके पात्रों के शील स्पष्ट रूप में प्रस्तुत होते गये हैं। भास जैसा विविध प्रकार के शीलों की प्रतिष्ठा करने वाला अन्य कोई नाटककार संस्कृत में नहीं है। इन्होंने शील-निरूपण के मार्ग में एकसूत्रता बनाये रखने का पूरा प्रयास किया है। भास के सभी पात्र मन, वचन और कर्म से अपने युग के सजीव प्रतिनिधि हैं। शील के क्षेत्र में भास ने एक निश्चित विधान की अवतारणा की है। इनके पात्रों के चारित्रिक विकास में एक सूत्रक्रम उपस्थित होता है।

भास के शील निरूपण की विशेषताएं

प्रथमावस्था में रूपककार अपने पात्रों की संस्कारगत प्रवृत्तियों की झाँकी देता है और तत्पश्चात् अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों की योजना कर उनमें सत् एवं असत् प्रवृत्तियों के विकसित होने का अवसर देता है। अन्त में किसी अलौकिक क्षमता वाले व्यक्तित्व से पात्र अपनी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करते हैं। रूपककार भास ने संस्कारजन्य प्रवृत्तियों का बड़ा ही महत्व प्रदर्शित किया है। उनके देव-दानव, राजा-राजकुमार, रानियाँ-राजकुमारियाँ, दास-दासियाँ आदि सभी पात्र संस्कारगत प्रवृत्तियों के अधीन हैं। उदयन, यौगन्धरायण, युधिष्ठिर, भीम, दुर्योधन, दशरथ, राम, लक्ष्मण, सीता, कौशल्या, कैकेयी, वासवदत्ता, पद्मावती, हिडिम्बा, तारा आदि सभी पात्रों में सांस्कारिक गुण और प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। प्रत्येक रूपक के प्रारम्भ से ही सामाजिक पात्रों के संस्कारजन्य गुणों से परिचित होने लगता है। यह सत्य है कि संस्कारगत प्रवृत्तियों का विकास रूपककार संघर्ष और परिस्थितियों के सहयोग से ही प्रस्तुत करता है। हमारी दृष्टि में भास का एक भी ऐसा पात्र नहीं है, जिसमें सांस्कारिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान न हों।

भास के शील स्थापत्य की दूसरी विशेषता अन्तर्द्वन्द्वों की है। सत्-असत्

प्रवृत्तियों का, देव-दानवों का, मनुष्य-पशु का अहंकारी दर्पहीन व्यक्तियों का द्वन्द्व सर्वत्र दिखलायी पड़ता है। सत् प्रवृत्तियाँ अन्त में विजयिनी होती हैं और पशुत्व के बन्धन से मुक्त हो पात्र देवत्व को ग्रहण कर लेता है। मानवीय पात्रों में सत् प्रवृत्तियाँ देवत्व का अंश हैं और असत् प्रवृत्तियाँ पशुत्व का। परिस्थितियों और संघर्षों के मध्य संस्कार किसी एक प्रवृत्ति को तिरोहित कर द्वितीय प्रवृत्ति का उद्घाटन करते हैं। मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का परिज्ञान भी भास को है। वे चरित्रों के द्वन्द्वों का उद्घाटन मानसिक विकारों और विभिन्न मनःस्थितियों के परिस्थितियों के विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत करते हैं जिससे विभिन्न भावों की अभिव्यञ्जना होती जाती है।

भास के शील के स्थापत्य की तीसरी विशेषता व्यक्ति वैचित्र्य की है। उनके पात्र वर्ग के प्रतीक रूप में जितने प्रस्तुत होते हैं उससे कहीं अधिक व्यक्तिगत विशेषताओं से वे युक्त रहते हैं। महाभारताश्रित नाटकों के चरित्र-चित्रण में कवि स्वतन्त्र नहीं है फिर भी कर्ण और दुर्योधन के चरित्र वैयक्तिक रूप में चरित्र हैं। कर्ण जैसी उदारता और दुर्योधन जैसी दृढ़ता कम ही पात्रों में मिलती है। द्रोणाचार्य को दक्षिणा देने के हेतु दुर्योधन अपने दर्प और स्वार्थ को भूल जाता है, और गुरु की दक्षिणा—पाण्डवों को राज्यार्द्ध देना स्वीकार कर लेता है। अतः भास ने पात्रों को वर्ग प्रतिनिधि के रूप में चित्रित न कर व्यक्ति विशेष के रूप में चित्रित किया है।

भास के चरित्र-चित्रण की चौथी विशेषता भावनाओं की मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को चरित्रों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव के रूप में प्राप्त करना है। दैवी गुण सम्पन्न पात्र हों अथवा मानवीय गुण युक्त पात्र हों, सभी के विचार और क्रियाओं में वैसी ही साधारणताएँ विद्यमान रहती हैं, जैसी कि हमारे जीवन में। अतः पात्रों के साथ साधारणीकरण करने में दर्शकों को कठिनाई नहीं होती। श्री मीर वर्य ने भास के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की प्रशंसा की है और उन्हें आधुनिक युग के नाटककारों के समान बतलाया है।[1]

भास ने निकट रूप से मानव जीवन का अध्ययन किया था और उसकी पूर्णता भी देखी थी। यही कारण है कि उनके शील का क्षेत्र अपरिमित है। उनके पात्रों में देव हैं, दानव हैं, राजा हैं, राजकुमार हैं, मन्त्री हैं, दास-दासियाँ हैं, विरक्त महात्मा हैं, साहसी सैनिक हैं, अनुरक्त युवक-युवतियाँ हैं,

---

१. "............in psychological subtlety Bhasa is a almost modern."—J. A. S. B. 1917, p. 278.

नर-पिशाच है और हैं निःस्वार्थी सहायक पुरुष और नारी पात्र । पुरुषों की अपेक्षा नारी हृदय की अभिव्यक्ति मे जितनी सफलता रूपककार भास को प्राप्त हुई है, उतनी सम्भवतः संस्कृत के अन्य रूपककार को नहीं । एक ओर कैकेयी मे माता की ममता है तो दूसरी ओर वासवदत्ता मे पति सेवा की भावना और पति के अभ्युदय की प्रबल कामना । हिडिम्बा राक्षसी होने पर भी मानवीय स्वभाव से पूर्ण है । वह पति मिलन की आकांक्षा से अपने पुत्र घटोत्कच को युवा पुरुष पकड लाने के लिए आदेश देती है । आरम्भ में नाटककार कौतूहल और चरित्रगत जिज्ञासा की भावना बड़े ही तीव्र रूप मे अंकित करते हैं । सामाजिक अनुभव करता है कि हिडिम्बा मनुष्य आहार करेगी, पर उसके चरित्र की जिज्ञासा विपरीत दिशा मे ही व्यक्त होती है । संक्षेप मे भास के नारी पात्रो मे सौन्दर्य, रोमांस, प्रेम और करुणा इन चारो का समन्वय है । इसी प्रकार पुरुष पात्रो मे संस्कारगत गुणो के साथ क्रान्ति, कर्त्तव्य, एव उत्थान की बलवती भावना भी पायी जाती है । हम यहाँ भास के प्रमुख पात्रो के शील का विश्लेपण कर उनकी कला एव प्रतिभा पर प्रकाश डालेंगे ।

प्रवृत्तियो के आधार पर भास के पात्रो का वर्गीकरण निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है—

(१) देव और देवियाँ ।
(२) राक्षस और राक्षसियाँ ।
(३) राजा और राजकुमार ।
(४) रानियाँ और राजकुमारियाँ ।
(५) अमात्य एव राज कर्मचारी ।
(६) नायक और नायिकाएँ ।
(७) शैतान और दुष्प्रवृत्ति के व्यक्ति ।
(८) विदूषक एव अन्य हास्य प्रधान पात्र ।
(९) प्रतिहार और दासियाँ ।
(१०) ऋषि, पुरोहित एवं गोपाल आदि ।
(११) गणिका ।
(१२) पशु, सर्प एव पक्षि ।

उक्त वर्गों मे विभक्त कर भास के प्रमुख पात्रो के चरित्र का विश्लेपण प्रस्तुत किया जायगा ।

राम : चरित्र विश्लेषण

राम और कृष्ण ऐसे चरित्र हैं, जिनके प्रति भारतीय हृदय सदा नतमस्तक रहा है। 'अभिषेक' और 'प्रतिमा' नाटक में राम का चरित्र निबद्ध है। 'प्रतिमा' में समृद्धि की देवी सीता के स्वामी के रूप में तथा 'अभिषेक' में ऋषियों के यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसहन्ता के रूप में चरित्रांकन आया है। राम ऐसे शक्तिशाली योद्धा हैं, कि उनका एक ही बाण सात शालिवृक्षों को एक साथ वेध सकता है और वे अपने कृत्यों से सुग्रीव और हनुमान को वालि का सामना करने तथा उस पर विजय प्राप्त करने का विश्वास दिला देते हैं। राम का एक ही बाण वालि को धराशायी बना देता है। इतना ही नहीं उनका बाण समुद्र को सुखाने की क्षमता भी रखता है। उन्होंने एक ही बाण से शक्तिशाली रावण को भी मार डाला।

राम जहाँ शक्ति की सीमा के आगार हैं वहाँ वे पूर्णतः भयमुक्त भी हैं। जब लंका में राम की सेना के पहुँचने पर गुप्तचर के रूप में शुक और सारण वानरों के वेष में सेना में सम्मिलित हो जाते हैं। पकड़े जाने पर विभीषण उन्हें उचित दण्ड देने का अनुरोध करता है, पर राम उन्हें यह कह कर मुक्त कर देते हैं कि इन बेचारे राक्षसों का क्या अपराध है ? इन्हें मारने से विजय थोड़े ही मिल जायगी और न इनको मारने से रावण ही मर जायगा। इस पर लक्ष्मण व्यंग्यपूर्वक सुझाव देते हैं कि यदि इन्हें मुक्त किया जाता है, तो इन्हें समस्त शिविर का निरीक्षण करने की भी अनुमति दी जानी चाहिये। लक्ष्मण के इस व्यंग्य को सुन कर राम उत्तर देते हैं कि यह अच्छा सुझाव है। वे नील को आदेश देते हैं कि तुम इन्हें ले जा कर समस्त शिविर दिखला दो। इस स्थल पर राम की निर्भयता पूर्णतः अभिव्यक्त होती है। रावण के साथ युद्ध के अवसर पर भी राम निर्भय ही दिखलायी पड़ते हैं। उन्हें अपनी मृत्यु का तनिक भी भय नहीं है।

राम केवल विजय प्राप्ति के लिए विजय लाभ से घृणा करते हैं। वे धर्म-युद्ध में संलग्न होते हैं और धर्म विजय को ही सत्य की विजय मानते हैं। निकृष्ट कोटि के विजेताओं के समान व्यर्थ न तो दूसरों की सीमा पर ही आक्रमण करना चाहते हैं और न किसी भी राष्ट्र की प्रजा को ही अपने अधीन करना चाहते हैं। जब विभीषण सत्य और न्याय की दुहाई दे कर सीता को मुक्त कराने की अपनी इच्छा व्यक्त कर उनकी शरण लेता है, उसे

वे लंका का राजा बना देने का संकल्प करते हैं। रावण की मृत्यु के पश्चात् अपने इस संकल्प को मूर्त्त रूप देते हैं।

लोकोपदेश राम के चरित्र की एक अन्य विशेषता है। सीता को निष्कलंक जानने पर भी वे तब तक उसे अंगीकार नहीं करते, जब तक अग्नि में उसकी परीक्षा नहीं हो जाती। उन्हें प्रजा और परिवार की गौरव समृद्धि का पूरा ध्यान है। अपने इक्ष्वाकुवंश को सदा पवित्र और यशस्वी बनाये रखने का वे प्रयास करते हैं।

राम विश्वस्त मित्र और सहायक हैं। सुग्रीव से वे मित्रता करते हैं, अतः सुग्रीव की कार्य सिद्धि के लिए वे बालि-वध करते हैं। इस कार्य में उन्हें थोड़ी-सी अनीति अपनानी पड़ती है, पर मित्र की सहायता करना अपना परम कर्त्तव्य समझ कर वे उक्त स्थिति को महत्व नहीं देते। घायल बालि जब उनसे प्रश्नोत्तर करता है, तो एक क्षण के लिए वे विचारमग्न हो जाते हैं।

स्नेही पति के रूप में राम का चित्रण 'प्रतिमा' नाटक में आया है। उनका वार्त्तालाप हार्दिक प्रेम और मधुरता से ओत-प्रोत है। सीता राम से कहती हैं कि जब वह वल्कल वस्त्र धारण कर लेती है, तब राम की आधी आत्मा उसमें प्रविष्ट हो जाती है। राम सीता पर एक दृष्टि डालते हैं, वे पाते हैं कि सीता ने अपने समस्त आभूषण उतार दिये हैं। वे सीता के समक्ष दर्पण ले कर खड़े हो जाते हैं, जिससे सीता पुनः अपने आभूषणों को धारण कर सके।

राम वन गमन के लिए सीता को आज्ञा नहीं देना चाहते। सुकुमार सीता को वन में बहुत कष्ट सहन करना पड़ेगा। जंगली वातावरण कभी भी उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं हो सकता है। अतः राम सीता को वन ले जाना नहीं चाहते थे, पर सीता के आग्रह को टालना सम्भव नहीं हो सका। सीता के तर्कों के समक्ष राम निरुत्तर हो गये और उन्हें सीता को साथ ले जाने की अनुमति देनी पड़ी। इससे राम के हृदय की विशालता प्रकट होती है।

राम वृक्षों का तन्मयतापूर्वक सिंचन करने वाली सीता से वार्त्तालाप करते हुए पिता का वार्षिक श्राद्ध करने की चर्चा करते हैं। कर्त्तव्य पालन के प्रति जागरूक होने के कारण वे सामर्थ्यानुसार अपने पिता का वार्षिक श्राद्ध करने के लिए चिन्तित हैं। श्राद्ध के लिए योग्यतम सामग्री प्राप्त करना चाहते हैं और इसी अवसर का लाभ उठा कर रावण उन्हें धोखा देने का प्रयास करता

है। भास ने राम को एक पत्नीव्रती के रूप में चित्रित किया है। पत्नी सीता के प्रति उनके मन में अपार निष्ठा है।

राम महत्वाकांक्षी नहीं हैं। वे राजा दशरथ के द्वारा अपने लिए राज्याभिषेक का निर्णय किये जाने पर संकोच करते हैं और उनके इस प्रस्ताव के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हैं, पर दशरथ राज्यत्याग देने की धमकी देते हैं, तभी वे उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं। कैकेयी द्वारा वरदान माँग लेने से जब 'राजतिलक' में बाधा आती है, तो वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। लक्ष्मण जब क्रुद्ध हो कर कैकेयी को बुरा-भला कहते हैं तो वे रुष्ट हो जाते हैं और लक्ष्मण को अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर शान्त करते हैं। राम के कार्यों से यह साफ प्रतीत होता है कि वे राज्य प्राप्ति के लिए तनिक भी चिन्तित नहीं हैं। भरत द्वारा राज्य के लौटाये जाने पर भी वे उसे लेने से इन्कार करते हैं। चौदह वर्ष व्यतीत हो जाने पर जब भरत बार-बार आग्रह करते हैं और किसी भी शर्त पर राज्य भार को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होते, तो वे माता कैकेयी की अनुमति प्राप्त कर राज्याभिषेक करने की स्वीकृति देते हैं।

राम के चरित्र में माता और पिता के प्रति अपार भक्ति है। रामायण के राम अपने पिता महाराज दशरथ के सम्बन्ध में वह कोमल भाव नहीं रखते, जो 'प्रतिमा' के राम में स्पष्ट झलकता है। प्रतिमा के राम अपने राज्याभिषेक के होते-होते रुक जाने से अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। इस अवसर पर प्रस्तुत किये गये राम का चरित्र तुलनीय है—

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव तावन्,
मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना
मथच न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥[१]

\+ \+ \+

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात् प्रहर्षादथवापि कामात्।
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तन्न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥[२]

---

१. प्रतिमा नाटक १।१४
२. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड २१।५६

वे कैकेयी सहित अपनी सौतेली माताओ का पूरा ध्यान रखते हैं। जितना सम्मान अपनी माँ कौसल्या का करते हैं उतना ही अन्य माताओ का भी। वनवास की आज्ञा मिलने पर वे कैकेयी और मन्थरा को एक शब्द भी नही बोलते।

भाइयो के प्रति भी उनके हृदय मे अपार स्नेह है। लक्ष्मण को तो सदा वे अनुज मानते ही हैं, पर भरत को भी वे अपार स्नेह करते हैं। वे सीता को जा कर उनसे मिलने के लिए कहते हैं, यह उनकी सबसे बड़ी प्रतिष्ठा है। शत्रुघ्न के लिए भी उनका हृदय कोमल स्नेह से आप्लावित है।

सेवकों और मित्रो की सुविधा का भी उन्हें पूरा ध्यान है। विभीषण, सुग्रीव, नील, हनुमान आदि के साथ उनका व्यवहार विचारपूर्ण और प्रेमिल है।

जब वे लक्ष्मण को वल्कल वस्त्र पहनने को देते हैं तो वे उनसे कहते हैं—'धैर्य की लड़ाई लड़ने का ये वस्त्र एक शस्त्र है।[१] ये हाथी को आत्म संयम का मार्ग दिखलाने के लिए अंकुश हैं[२] और हाँ चित्त मे उठने वाले विकारों का शमन करने के लिए धर्मोपदेश।'[३] जब लक्ष्मण उत्तेजित हो कर युद्ध करने के लिए कहते हैं तो वे लक्ष्मण को शान्त करने के हेतु उत्तर देते हैं—'क्या मुझे अपने बाणो का प्रयोग अपने पिता पर ही करना चाहिये। यदि मेरी माँ मेरा राज्य ले लेती है तो क्या मुझे अपने धनुष का प्रयोग उनके विरुद्ध करना चाहिये? क्या मुझे अपने छोटे भाई भरत का वध कर देना उचित है? जो इस परिस्थिति से बहुत दूर है, जिसे यहाँ की किसी भी घटना की जानकारी नही है। अब आपही बतलाइये कि उक्त तीनो अपराधो के करने पर कौन हमारे हृदय को सन्तोष प्रदान करेगा?' जब भरत राम को वन से लौटाने के लिए जाते हैं और राज्यग्रहण करने का अत्यधिक अनुरोध करते हैं, तथा राम पिता की आज्ञा पालन करने के हेतु वापस लौटना नही चाहते और भरत को ही किसी प्रकार चौदह वर्षों तक राज्य सचालित करने के लिए वे तैयार कर लेते हैं, तो भरत उनकी चरण पादुकाओ को राजसिंहासन पर आरूढ करने के लिए माँगते हैं। इस अवसर पर राम कहते हैं—'भरत ने जो एक

---

१. तपः सङ्ग्रामकवच, प्रतिमा १।२८
२. नियमद्विरदांकुशः, वही १।२८
३. खलीनमिन्द्रियाश्वानाम्, वही, १।२८

दिन में पा लिया है, वह मैं जीवन पर्यन्त परिश्रम करके भी नहीं पा सकूँगा।'[१] राम के इन विनम्रतापूर्ण वचनों से उनके चरित्र की समस्त उज्ज्वलता प्रकाश में आ जाती है। नाटककार भास ने राम के जीवन में उदारता, त्याग, सहिष्णुता, प्रेम, बन्धुता, सहृदयता, धैर्य एवं वीरता आदि गुणों का पूर्ण समावेश किया है। वे अवतारी पुरुष होने पर भी मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं करते।

गम्भीरता के होने पर भी राम के चरित्र में हास्य-व्यंग्य का भी समावेश है। जब भरत लक्ष्मण के हाथ से उनके लिए पानी लाने के हेतु जलपात्र छीन लेते हैं, तो वे सीता से कहते हैं—'वैदेही अब लक्ष्मण का पेशा समाप्त हो गया।' इस पर सीता लक्ष्मण का पक्ष लेती हुई उनकी वकालत करती हैं। वे कहते हैं—'वन में लक्ष्मण मेरी सेवा करेगा और भरत नगर में।'

प्रजा और राज्य के सम्बन्ध में उनके कर्त्तव्य भाव अत्यन्त उदात्त हैं। रावण द्वारा सीता हरण होने पर रावण के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अयोध्या में भरत को सेना भेजने के लिए अपना संवाद नहीं भेजते। वे सीता को रावण के यहाँ से लौटा लाना अपना निजी कर्त्तव्य मानते हैं, अयोध्या राज्य का नहीं। जनता के कल्याण का उन्हें इतना अधिक ध्यान है कि वे वन से भरत को उसी दिन अयोध्या लौट जाने की आज्ञा देते हैं। एक रात्रि भी वन में भरत को रहने देना नहीं चाहते। भरत के वन में रहने से प्रजा को कष्ट होगा। सम्भवतः राज्य को राजा से रहित देख कर कोई शत्रु आक्रमण कर दे, जिससे प्रजा को कष्ट उठाना पड़े। राज्य की उपेक्षा एक क्षण के लिए भी उन्हें सह्य नहीं। राज्याभिषेक के पश्चात् राम पितृदेव को सम्बोधन कर कहते हैं—'आप स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करें और कष्ट भूल जायें। आपने मेरा राज्याभिषेक करना चाहा था, वह अब पूरा हुआ। अब मैं पृथ्वी पर पुण्य-भार का वहन करने वाला राजा बन गया हूँ। मैंने न्यायपूर्वक प्रजापालन का उत्तरदायित्व सम्भाल लिया है।'[२] इससे राम की महत्ता स्वतः स्पष्ट होती है।

कृष्ण : चरित्र विश्लेषण

भास द्वारा गृहीत देव चरित्रों में दूसरा अवतारी चरित्र कृष्ण का है।

---

१. सुचिरेणापि कालेन यशः किंचिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य संचितम्॥ प्रतिमा ४।२६

२. प्रतिमा ७।१?

'बालचरित' रूपक मे कृष्णावतार मे घटित शैशव की घटनाओं का आकलन किया गया है। इस नाटक की सभी घटनाएं किशोर अवस्था की हैं। कृष्ण के जन्म के समय ही अनेक आश्चर्यजनक घटनाएं घटित होती हैं। भगवान् कृष्ण का जन्म कारागार में उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार ईसामसीह का अस्तबल मे। कारागार के द्वारों का खुल जाने से जन्म के समय ही उनको दैवी शक्ति का परिज्ञान हो जाता है। उनके शरीर से एक दिव्य ज्योति निकलती है, जो वसुदेव को मार्ग दिखलाती है। यमुना का जल स्वयं रास्ता दे देता है। कृष्ण के चरणों का स्पर्श करने के हेतु यमुना जल एक बार बढ़ता है और चरण धूलि का स्पर्श कर स्वयं शान्त हो जाता है। कृष्ण का चरित्र जन्म से ही महान् और आश्चर्यकारी दिखलायी पडने लगता है। भास ने इनका जीवन साक्षात् परात्पर ब्रह्म के रूप मे चित्रित किया है। भूभार का हरण करने के हेतु नर रूप में उनका अवतार हुआ है।

श्रीकृष्ण जिस प्रकार वृद्धिगत होते हैं, उसी प्रकार उनकी अद्भुत शक्तियों का परिचय प्राप्त होता है। व्रज मे पहुँचने से व्रज प्रदेश की पर्याप्त समृद्धि होती है। गायें अधिक दूध देने लगती हैं। फल पुष्पों की समृद्धि हो जाती है। धन-धान्य भी उत्तरोत्तर बढने लगते हैं।

कृष्ण जब दस दिनों के थे, तब पूतना नामक राक्षसी आ कर उन्हें स्तनपान करा कर विषैले दुग्ध से उनका प्राणान्त करना चाहती है, पर कृष्ण अपनी शक्ति का प्रयोग कर उसका ही प्राणान्त कर देते हैं। जब उनकी आयु एक माह की होती है, तो शकटासुर उनका वध करने के लिए आता है, पर कृष्ण अपने बाहुबल से उसका भी वध कर डालते हैं। जब उनकी अवस्था दो महीने से भी कुछ कम है, तब वे दो महान् वृक्षों को जड से उखाड कर फेंक देते हैं। गर्दभ के रूप मे आयी हुई धेनुका और अश्वरूप मे अपने को छिपाती हुई केशी का वध करते हैं। एक दिन एक भयंकर 'अरिष्ट वृषभ' उपस्थित होता है। वह गायों और ग्वालों को कष्ट देता हुआ कृष्ण के पास आता है। उसकी गर्जना ही भयोत्पादक है, सभी उस वृषभ को देख कर आतंकित हो जाते हैं। पर कृष्ण निर्भय रहते हैं, यत. उनका जन्म जगत् को भय से मुक्त करने के लिए ही हुआ है। कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हो कर एक पैर पर खडे हो जाते हैं और वृषभ को ललकार कर कहते हैं—'यदि तुम मुझे धक्का दे कर गिरा सकते हो तो गिरा दो।' अरिष्ट वृषभ उन पर झपटता है, पर वह एक भयंकर आघात के साथ भूमि पर गिर पडता है और पंचत्व

को प्राप्त हो जाता है। अरिष्ट वृषभ को इस बात से परम सन्तोष है कि उसकी मृत्यु विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के हाथ से हो रही है। उसे निश्चयत: स्वर्ग लाभ होगा।

ग्वाल बालों से कृष्ण को ज्ञात होता है कि यमुना का जल कालिय नाग के निवास के कारण विषैला हो गया है। विष ज्वालाएँ अहर्निश उठा करती हैं, कोई उधर जाने का साहस भी नहीं कर सकता है। इस समाचार को सुन कर वे निर्भय हो कालियह्रद की ओर उस विषैले नाग का दमन करने के लिए चल पड़ते हैं। गोपिकाओं के द्वारा रोके जाने पर भी ह्रद मे कूद पड़ते हैं और कालियनाग से लड़ जाते हैं। कालिय उनको जलाने की धमकी देता है। वे उससे कहते हैं—'यदि तुममें सामर्थ्य है तो तुम केवल मेरी एक भुजा को ही जलाओ।' नाग विष वमन करता है, पर उन पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। अन्तत: उन्हें विष्णु का अवतार समझ कर उनका अभिनन्दन और स्तवन करता है। वह अपना आत्म-निवेदन करता हुआ कहता है कि गरुड़ के भय से मैं यहाँ आकर अपने प्राणों की रक्षा कर रहा हूँ। मैं यहाँ से चला जाता हूँ, पर आप अपने वाहन गरुड़ से मेरी रक्षा कीजिये। कृष्ण रक्षा का वचन दे कर उसे वहाँ से चले जाने का आदेश देते हैं। इन सभी कथानकों से कृष्ण की निर्भयता, साहस, वीरता, सेवा वृत्ति आदि पर प्रकाश पड़ता है।

कंस का निमन्त्रण प्राप्त कर श्रीकृष्ण अपने भाई बलराम के साथ मथुरा जाते हैं। वहाँ राजा के धोबी और मदनिका से कपड़े और माला छीन लेते हैं। राजा के हाथी कुवलयापीड का वध करते हैं। यज्ञशाला में प्रवेश कर धनुष तोड़ देते हैं। चाणूर को मार डालते हैं और प्रासाद पर चढ़ कर कंस को नीचे गिरा कर मार डालते हैं। वे वृष्णि राज्य की पुन: प्रतिष्ठा करते हैं। इस प्रकार नाटककार भास ने कृष्ण के जीवन में अलौकिकता का समावेश किया है।

इतना सत्य है भास कुशल शिल्पी हैं, अत: उन्होंने देवत्व के साथ मानवीय पक्ष को भी उपस्थित करने में कमी नहीं की है। गोप बालकों के क्रीड़ा तथा गोपिकाओं के साथ हल्लीस नृत्य उनकी बाल सुलभ चेष्टा के निदर्शक हैं। गोपियों के घरों में घुस कर माखन चोरी भी प्रेक्षक के हृदय में अपूर्व रस का संचार करती है। वीरता और तेजस्विता की वे साक्षात् मूर्ति हैं। कुब्जा के शरीर को स्वस्थ करना उनकी कृतज्ञता का सूचक है।

कृष्ण के शरीर गठन और सौन्दर्य को देख कर कंस भी प्रभावित होता

है। नाटककार भास ने 'बालचरित' में कृष्ण के चरित्र मे भगवत तत्त्व का मुख्यतया और मानवीय तत्त्व का गौणतया समावेश किया है। माता पिता के प्रति अपार भक्ति विद्यमान है। कस वध के पश्चात् सर्वप्रथम वे अपने माता-पिता को कारागार से मुक्त करते हैं। कृष्ण स्वयं सौन्दर्य प्रेमी हैं और वे सदैव सुन्दरता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

'दूतवाक्यम्' मे कृष्ण के चरित्र मे राजनीति-तत्त्व प्राप्त होता है। वे एक सफल राजनीतिज्ञ हैं। उनका व्यक्तित्व इतना अधिक प्रभावशील है कि दुर्योधन की इस आज्ञा के प्रचारित होने पर भी कि उनके आने पर कोई भी सिंहासन से नहीं उठेगा, जो इस आज्ञा का उल्लघन करेगा, वह दण्ड का भागी होगा, सभी लोग खडे हो जाते हैं। दुर्योधन भी द्रौपदी के चीरहरण के चित्र के देखने मे दत्त-चित्त रहने पर भी अपना स्थान छोड देता है। जब दामोदर उस चित्र को हटाने का आदेश देते हैं तो दुर्योधन उस आज्ञा का पालन करता है।

दामोदर के तर्कों का उत्तर दुर्योधन नहीं दे पाता और प्रत्येक तर्क पर क्रुद्ध हो जाता है। वह तर्कों द्वारा परास्त हो कर उनको बन्दी बनाने का उपक्रम करता है, पर इसमे भी असफल रहता है। इस नाटक मे भी कृष्ण के दैवी रूप का प्राधान्य है। उनके द्वारा विश्वरूप का दिखलाया जाना और अस्त्र शस्त्रों को रगमच पर उपस्थित करना दैवी चमत्कार के अन्तर्गत है।

कृष्ण का देवत्व भी इस नाटक मे मानवीय गुणो एव दोपो से पर्याप्त मिश्रित है। दुर्योधन के साथ उनका वाद-विवाद उन्हें एक सामान्य व्यक्ति की तरह क्रोध प्रदान करता है, जिसके वशीभूत हो वे दुर्योधन को दुर्वचन बोलते हैं। इस प्रकार के वचनों का प्रयोग एक मनुष्य ही कर सकता है, देवता नही।

'दूत घटोत्कच' मे वासुदेव घटोत्कच के द्वारा दुर्योधन के पास एक सन्देश भेजते हैं, जो उनकी स्थिति के अनुकूल है—'तुम वही करो जो तुम्हारे सम्बन्धियो एव बाधवों के लिए हितकर और उपयुक्त हो। अन्यथा मृत्यु पाण्डवो के वेप मे तुम्हारे ऊपर आ जायेगी, कल के सूर्य की अस्त होती हुई किरणों के साथ।'

भास ने अवतारी कृष्ण के चरित्र में निम्नलिखित गुणों का समावेश किया है, जो मानवीय श्रेणी में उन्हें प्रतिष्ठित करते हैं।

(१) निर्भयता
(२) वीरता
(३) क्रोधाभिभूतता
(४) पाण्डवों के प्रति अनुराग
(५) सौन्दर्य, प्रेम तथा सौन्दर्य के प्रति आकर्षण
(६) अनीतिपूर्ण ढंग से दुर्योधन को गदा-युद्ध में परास्त करने के लिए भीम की सहायता करने के कारण पक्षपातपूर्ण नीति का अवलम्बन। अतः पक्षपात गुण का समावेश।
(७) माता-पिता के प्रति भक्ति
(८) मित्रवात्सल्य
(९) नृत्य एवं संगीत के प्रति अनुराग
(१०) कष्ट निवारणार्थ तत्परता
(११) कृतज्ञता
(१२) गुरुजनों के प्रति आदर
(१३) सामान्य व्यक्तियों के साथ भी सहयोग की प्रवृत्ति
(१४) दुष्टदलन की भावना

वलराम : चरित्र-विश्लेषण

वलराम का चरित्र दो नाटकों में पाया जाता है—(१) वालचरित और (२) ऊरुभंग। ये कृष्ण के वड़े भाई और वासुदेव एवं रोहिणी के पुत्र हैं। वालचरित में धनुर्मह यज्ञ के अवसर पर कृष्ण के साथ वे मथुरा जाते हैं। वहाँ 'मुष्टि' नामक मल्ल का वध करते हैं और कृष्ण के कार्यों में सहायता पहुँचाते हैं।

इनका वास्तविक चरित्र ऊरुभंग में उपलब्ध होता है। वे अपने शिष्य दुर्योधन और भीम के मध्य होने वाले गदायुद्ध के तटस्थ दर्शक हैं। वलराम अपने क्रोध एवं भयानकता के लिए विख्यात हैं। जव भीम युद्ध के नियमों का उल्लंघन कर दुर्योधन की जाँघ पर प्रहार करता है, तव वलराम क्रोधाभिभूत हो जाते हैं और आँखें लाल कर कहते हैं—'आज मैं अपने हल से भीम के वक्षस्थल को चीर डालूंगा। अनीतिपूर्ण ढंग से गदा चला कर दुर्योधन को आहत करने का दृश्य मैं देख नहीं सकता हूँ।'

नाटककार भास ने अमर्शशील और क्रोधी रूप में इन्हें चित्रित किया है। अधर्मयुद्ध देख सकने में ये असमर्थ हैं। उन्हें अपने शिष्य के विद्या-कौशल पर

अभिमान है। बलराम की इस अवस्था का चित्रण नाटककार ने निम्न प्रकार किया है—

> चलविलुलितमौलि. क्रोधताम्रायताक्षो
> भ्रमरमुखविदष्टां किंचिदुत्कृष्य मालाम्।
> असिततनु विलम्बिस्रस्त वस्त्रानुकर्षी
> क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्र.॥[1]

अर्थात्—जिनका मुकुट चचल एव कम्पित हो रहा है, जिनके नेत्र क्रोध के कारण लाल और विशाल हो गये हैं, भ्रमरो के द्वारा जिसका रस चूस लिया गया है, ऐसी माला को कुछ खींच कर और शरीर पर लटकते हुए नीले एव ढीले वस्त्र को सम्भालते हुए बलदेव जी पृथ्वी पर उतरे हुए मण्डल के बीच स्थित चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे हैं।

बलराम कहते हैं—'भीम ने शत्रु विनाशक मेरे हल का ध्यान नहीं रखा, युद्ध मे छल करते हुए उसने मेरा स्मरण नहीं रखा तथा दुर्योधन को छल से गिराते हुए उसने अपने कुल के विनय को भी ध्वस्त कर दिया।'[2] इस प्रकार बलराम के चरित्र मे निम्नलिखित गुण समवेत हैं—

(१) वीरता
(२) उग्रता
(३) अमर्षणशीलता
(४) अन्याय को देखते ही प्रतिशोध के लिए तत्परता
(५) शिष्यानुराग

'स्वप्नवासवदत्तम्' के मगल श्लोक मे भी बलराम की बाहुओ की प्रशसा की गयी है।

देव पात्रों मे राम, कृष्ण और बलराम के अतिरिक्त इन्द्र, अग्नि, और वरुण भी सम्मिलित हैं। पर इन पात्रो का चरित्र महत्वपूर्ण नहीं है, अत. इनके चरित्रो का अध्ययन यहां नहीं प्रस्तुत किया जा रहा है।

कात्यायनी : चरित्र-विश्लेषण

राक्षसो के राजा कस के सहार मे सहायता पहुँचाने के लिए कात्यायनी

---

१. ऊरुभग, २६वां पद्य
२. ऊरुभग, २७वां पद्य

देवी का अवतार होता है। नन्दगोप की स्त्री यशोदा के यहाँ कन्या-रूप में इसका जन्म होता है। कन्या जन्म लेते ही मर जाती है और नन्द उसे विसर्जित करने के लिए यमुना के तट पर आते हैं। वे तर्क-वितर्क और सन्ताप कर रहे हैं, जिसे सुन कर वसुदेव उन्हें पहचान लेते हैं। वे श्रीकृष्ण को नन्द को दे देते हैं और स्वयं मृत कन्या को ले कर मथुरा लौटते हैं। मार्ग में कन्या में प्राण संचार हो जाता है और कंस को वे कन्या जन्म की सूचना देते हैं। धात्री उस कन्या को ले कर आती है और कंस उसे कंमशिला पर पटक देता है। उसका एक भाग तो पृथ्वी पर गिरता है, पर एक तेजोमय अंश आकाश में उड़ जाता है और त्रिशूल ले कर कात्यायनी के रूप में दिखलायी पड़ता है। कात्यायनी के साथ कुण्डोदर, शूल, नील तथा मनोजव नामक उसके परिवार के सदस्य भी हैं। भगवती कात्यायनी कंस का नाश करने को कहती है। यही बात कुण्डोदर, शूल, नील तथा मनोजव भी कहते हैं।

नाटककार भास ने कन्या के दो भाग दिखला कर शिव के अर्धनारीश्वर रूप को प्रस्तुत किया है। कन्या का आधा भाग कात्यायनी के रूप में प्रकट होता है और आधा शिव के रूप में। इस देवी के मन्दिर का चित्रण प्रतिज्ञा नाटक में आया है। नाटककार ने कात्यायनी के मानवीय गुणों का चित्रण नहीं किया है। इसका दैवी रूप ही उपलब्ध होता है।

देवी के रूप में कंस की राजलक्ष्मी और रावण की लंकाश्री भी चित्रित की गयी हैं। राजलक्ष्मी मधूक ऋषि के अभिशाप के साथ अलक्ष्मी, खलति, कालरात्रि, महानिद्रा और पिंगलाक्षि को रोकती है। पर जब राजलक्ष्मी को यह ज्ञात होता है कि यह विष्णु-आज्ञा है तब वह स्वयं ही वहाँ से चली जाती है। इस प्रकार नाटककार ने देवी-देवताओं की अवतारणा कर मानवीय गुण कर्मों का विश्लेषण किया है।

राक्षस एवं राक्षसियाँ

भास ने रावण और कंस के चरित्रों का विस्तारपूर्वक चित्रण किया है। पर इस वर्ग में रावण, कंस, घटोत्कच, इन्द्रजित्, विभीषण एवं कुम्भकरण आदि सम्मिलित हैं। राक्षसियों में हिडिम्बिका का चरित्र प्रधान है। नाटककार जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करना चाहता है, अतः वह सभी प्रकार के पात्रों के चरित्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के गुण-स्वभावों की स्थापना करता है।

रावण : चरित्र विश्लेषण

वाल्मीकि द्वारा चित्रित रावण के चरित्र में नाटककार भास ने पर्याप्त परिष्कार किया है। वह दुर्गुणों का ही आगार नहीं है, बल्कि उसमें ज्ञान-विज्ञान का भी समावेश हुआ है। 'प्रतिमा' में वह सन्यासी ब्राह्मण के रूप में आश्रम में आता है और इस भय से कि कहीं राम उसे पहचान न लें, वह छिपा हुआ सा ही उनसे बातें करता है। वह नाना शास्त्रों में दक्षता प्राप्त करने की चर्चा करता है और विशेष रूप से अपने को 'प्राचेतस श्राद्धकल्प' कहता है। राम अपने पिता का वार्षिक श्राद्ध करने के लिए ब्राह्मण वेषधारी रावण से पिण्डदान के हेतु सबसे उत्तम वस्तु के सम्बन्ध में पूछते हैं। रावण स्वर्णमृग की बात कहता है। थोड़े ही समय में उधर की ओर ही आता हुआ स्वर्णमृग दिखलायी पड़ता है। रावण राम से अनुरोध करता है कि हिमालय आपका अभिनन्दन कर रहा है। आप शीघ्र ही स्वर्णमृग को पकड़ लीजिये और अपनी कामना पूरी कीजिये। राम मृग को पकड़ने के लिए दौड़ जाते हैं। सीता को ब्राह्मण वेषधारी रावण की अन्तस् भावना अच्छी प्रतीत नहीं होती। अत उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि स्त्रियों के हृदय में छठी बुद्धि निवास करती है।

रावण अपने भयंकर रूप का प्रदर्शन करता है और अपना परिचय स्पष्ट रूप में देता है। सीता भयभीत हो कर भीतर जाना चाहती है। पर रावण अपनी महत्ता की व्याख्या कर उसे जीत लेना चाहता है। जब सीता रावण की बात को स्वीकार नहीं करती तो वह उसे बलपूर्वक ले जाने लगता है। वह लंका में सीता को अशोक वाटिका में रख देता है और साम, दाम आदि सभी के द्वारा वह उसे वशीभूत करना चाहता है। जब नाना तरह के प्रलोभन देने पर भी सीता रावण की अधीनता स्वीकार नहीं करती तो वह राम और लक्ष्मण दोनों के कृत्रिम सिर वहाँ उपस्थित करता है और सीता से कहता है कि अब तुम्हारी रक्षा करने वाले नहीं रहे। तुम विधवा हो, अतएव मेरे साथ अब तुम विवाह कर सकती हो। सीता उत्तर देती है—'जिस तलवार से तुमने उन दोनों भाइयों का वध किया है, उसी तलवार से मेरा भी वध कर डालो। मुझे जीवित रहने की अब तनिक भी इच्छा नहीं है।'

रावण के उपर्युक्त आख्यान से तीन गुण प्रस्फुटित होते है। पहला गुण तो यह है कि रावण बलपूर्वक किसी नारी के सतीत्व का अपहरण नहीं करना चाहता। अनुनय-विनय द्वारा प्रसन्न होने पर यदि कोई नारी स्वीकृति दे, तो वह उसे ग्रहण कर सकता है।

द्वितीय गुण उसका यह है कि वह सर्वथा नारी के लिए युद्ध करना नहीं चाहता है। अन्यथा वह राम के सम्मुख युद्ध के हेतु प्रस्तुत होता और उन्हें पराजित कर सीता को ले जाता। पर ऐसा न कर वह धोखे से ही छिप कर सीता का हरण करना चाहता है। वह राम, लक्ष्मण की वीरता से परिचित है, तो भी वह उनका सब तरह से सामना करने के लिए तैयार है।

उसने सीता का हरण अकारण नहीं किया। लक्ष्मण ने राम के संकेत से शूर्पणखा को अपरूप किया था और खरदूषण का वध भी उन्हीं के द्वारा हुआ था। अतएव इस अपमान का बदला चुकाने के लिए रावण ने सीता-हरण किया। रावण के हृदय में पुत्र के प्रति अपार वात्सल्य भाव है। वह इन्द्रजित् की मृत्यु पर अत्यन्त दुःखी होता है। जब उसे पुत्र मृत्यु का समाचार प्राप्त होता है तब वह मूर्च्छित हो कर गिर जाता है और चेतना लौटाने पर कहता है—'हाय ! वत्स तुम अस्त्र-शस्त्र संचालन में कितने निपुण थे। तुम्हारी वीरता विश्वविख्यात थी। मनुष्य और राक्षसों की तो बात ही क्या तुम शक्र को भी जीतने वाले थे। माता पिता के तुम हृदयहार थे। तुम हमें रोने के लिए छोड़ कर क्यों चले गये ?' इस उद्गार से रावण के हृदय की वात्सल्यता प्रकट होती है। भाई के प्रति भी रावण के हृदय में कम प्रेम नहीं है। सीता-हरण के अवसर पर विभीषण रावण को तर्क द्वारा पराजित कर सीता को लौटा देने का आग्रह करता है। रावण के इस निन्द्यकार्य की वह भर्त्सना करता है, जिससे वह क्रोधाभिभूत हो जाता है। वह विभीषण को डाँटता है, पर उसे मारता नहीं। विभीषण के अत्यधिक आग्रह करने पर वह उसे राज-सभा से निर्वासित कर देता है।

रावण प्रजावत्सल शासक है। उसके शासनकाल में लंका में सभी प्रकार की समृद्धि व्याप्त है। उद्यान, भवन, सरोवर, मार्ग, सड़कें, गलियाँ, चबूतरे, मन्दिर आदि सभी सभ्यता के अनुरूप हैं। हनुमान ने लंका की समृद्धि का सुन्दर चित्रण किया है। वे वहाँ के भवनों को सुन्दर, भव्य और दिव्य बतलाते हैं। वहाँ के तालाब सदा जल से परिपूर्ण रहते हैं, वाटिकाओं में नाना प्रकार की वृक्षावलियाँ सुशोभित हैं और वृक्षों में विभिन्न प्रकार के फल और पुष्प। जीवन के सभी सुख साधन वहाँ उपलब्ध हैं। हनुमान द्वारा किये गये लंका के इस चित्रण से रावण की कुशल शासकीयता प्रकट होती है। उसने सीता-हरण का अपराध कर अपने जीवन में सबसे बड़ी मूर्खता की है।

रावण तर्क करना नहीं जानता। जब हनुमान रावण की सभा में पहुँच

कर नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगते हैं, तो रावण उत्तर नही दे पाता। इसी प्रकार वह विभीषण के तर्कों का भी उत्तर नही दे पाता है। जब हनुमान यह पूछते हैं कि स्वर्णमृग के रूप मे तुमने राम को क्यों धोखा दिया, जब तुममे युद्ध करने की क्षमता थी, तो तुम राम की अनुपस्थिति मे सीता को क्यो चुरा कर लाये ? इन तर्कों के प्रति रावण निरुत्तर है। अतः स्पष्ट है कि वह तर्क करना नही जानता है।

मनोवैज्ञानिक सूझ बूझ भी उसमे नहीं है। वह इस आधारभूत सत्य का अनुभव नही करता है कि सीता जैसी नारी, शक्ति, धन और समृद्धि के गुण-गान से अधीन नही हो सकती है। सीता-हरण के विरोध में आये एक पक्षी जटायु के लडते हुए मर जाने पर आश्चर्यचकित हो जाता है। विभीषण जैसे भाई के विरोध को देख कर वह स्तब्ध है। हनुमान द्वारा राजकुमार अक्ष और पाँच सेनापतियो द्वारा संचालित सेना को पराजित देख कर वह आश्चर्य-चकित है। वह अपनी मूर्खता के कारण इन सभी बातो का मनोवैज्ञानिक आधार नही ढूँढ पाता है। दर्प और क्रोध की मात्रा भी उसमे कम नही है। मन्दोदरी के प्रति इसके हृदय मे वात्सल्य है। वह सर्वस्व बलिदान कर भी सीता को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वह सीता के समक्ष विधवा विवाह का प्रस्ताव रखता है। इस प्रकार रावण का समस्त मनोविज्ञान असफल हो जाता है।

सक्षेप में रावण के चरित्र मे दृढता, वीरता, सहिष्णुता, नीतिमत्ता, वात्सल्यता आदि गुण विद्यमान हैं।

कंस : चरित्र विश्लेषण

बालचरित मे वह एक अत्याचारी और लोभी के रूप मे चित्रित हुआ है, यह अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना कर राजा बनता है। यह अत्यन्त क्रूर और निर्भय है। कसशिला पर बच्चो को पटककर मार डालता है। इसकी कठोरता का जन्म भी भय से होता है। ऋषि मधुक का शाप उसे बेचैन करता है और अपने को भविष्यवाणी की गयी मृत्यु से बचाने के लिए ऐसे कार्य करता है, जो मूल्यवान् हैं। बाहरी प्रदर्शन मे वह बहादुर है। वह दम्भ भरता है कि वह यमराज के लिए भी मृत्यु है और भय के हृदय मे भी आतक उत्पन्न कर सकता है। पर है वह यथायत कायर। अतः बालक कृष्ण जब उसे पकड लेते हैं, तब वह बिना युद्ध किये ही भवन की छत पर से गिरा दिया जाता है। वह तनिक भी प्रतिरोध नहीं करता।

उसने कृष्ण को मारने के लिए अनेक प्रकार के प्रयास किये, किन्तु उसके सभी प्रयास विफल हुए। औद्धत्य उसमें प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। कंस के चरित्र में एक गुण है कि वह वसुदेव पर विश्वास करता है। जब लोग यह कहते हैं कि देवकी ने कन्या प्रसव की है, तो कंस कहता है कि वसुदेव असत्य भाषण नहीं करेंगे, अतः उनसे ही पूछ लिया जाय। वसुदेव के कहने पर उसे विश्वास हो जाता है।

वासना और तृष्णा उसमें सर्वाधिक रूप में समाविष्ट है। वह स्वप्न में भी अप्सराओं के साथ आलिंगन करता है। मधूक ऋषि के अभिशाप के कारण उसकी समृद्धि समाप्त हो रही है। वह डरपोक है, यह इसी से सिद्ध होता है कि अपने शत्रु दामोदर के समक्ष स्वयं नहीं पहुँचता, बल्कि उन्हें मारने के लिए पूतना, शकट, धेनुका, केशी, अरिष्ट वृषभ, कुवलयापीड, चाणूर आदि को भेजता है। यह भयभीत होने के कारण ही गलत कार्य कर बैठता है। दया और ममता गुणों का उसमें अभाव है। वह महत्वाकांक्षी है और अपने राज्य को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए गुरुजनों को भी कष्ट देता है। अपराधियों को कठोर दण्ड देने में उसे तनिक भी हिचक नहीं है।

विभीषण : चरित्र चित्रण

विभीषण राक्षस होने पर भी उत्तम प्रकृति का है। वह अपने भाई रावण से सीता को वापस लौटा देने का आग्रह करता है। वह रावण से निवेदन करता हुआ कहता है—"सीता हरण एक ऐसा अपराध है, जिससे समस्त राक्षस जाति का विनाश हो जायगा।" वह परस्त्री लम्पटता को पाप बतलाता है। नाटककार भास ने इसे न्यायप्रिय भगवद्भक्त के रूप में अंकित किया है। वह अन्याय का विरोध करने के लिए अपने बड़े भाई रावण से वाद-विवाद करने लगता है।

विभीषण अनुभवी और कुशल उपदेशक है। आते ही वह राम से कहता है कि यदि समुद्र मार्ग नहीं देता है, तो इसे दिव्य अस्त्रों का प्रयोग कर संन्यस्त कीजिये। राम विभीषण के परामर्शानुसार वैसा ही करते है, और उन्हें मार्ग मिल जाता है। शुक-सारण राक्षसों को विभीषण पहचानता है और धोखा देने के कारण उन्हें दण्ड देने को कहता है।

विभीषण अच्छा मनोवैज्ञानिक भी है। वह जानता है कि राम बिना हिचक के उसका स्वागत करेंगे। राक्षस होने पर वह एक सुधारक और क्रान्तिकारी के रूप में उपस्थित होता है। आश्रम में एक नारी द्वारा यह प्रश्न

पूछे जाने पर कि राक्षस अतिथियों के भोजन की क्या व्यवस्था की जाय, जो मनुष्य भक्षण के अभ्यस्त हैं, इस पर सन्यासी उत्तर देता है—'मनुष्य भक्षण से विभीषण ने अपने को बचा लिया है।' सम्भवतः युगो पहले लका मे नर-भक्षियो की परम्परा थी, पर विभीषण ने इस क्रूर परम्परा को बन्द कर दिया। इसी प्रकार राजा होने पर विभीषण ने लका मे पर्याप्त सुधार किया। राम की लका विजय मे वह एक प्रमुख सहायक था।

घटोत्कच : चरित्र-चित्रण

घटोत्कच का चरित्र 'मध्यमव्यायोग' और 'दूतघटोत्कच' इन दो नाटको मे अकित है। मध्यमव्यायोग मे इसका शरीर अत्यन्त सुगठित और बलशाली बताया है। उसकी आँखें चन्द्र-सूर्य की भाँति तेजस्वी है, उसका वक्ष स्थल पीन तथा विस्तीर्ण है, केशराशि कनककपिश वर्ण की है तथा कौशेयवस्त्र धारण किये हुए है। जब मध्यम ब्राह्मण कुमार जल पीने के हेतु बाहर जाना चाहता है, वह सहर्ष उसे बाहर जाने की आज्ञा दे देता है। वह यह आशका नही करता कि यह कही भाग कर चला जायगा। उसमे आत्मविश्वास और सहानुभूति की भावना पूर्णतया विद्यमान है।

जब वह भीम के साथ वार्तालाप करता है, तब उसका व्यक्तित्व मलिन नही होता। वह निर्भीकतापूर्वक उनसे सघर्ष ले लेता है। इसमे दृढता के साथ विनय भी उचित रूप मे विद्यमान है। जब भीम को ले कर वह अपनी माता के पास पहुँचता है और वहाँ जा कर उसे पता लगता है कि ये उसके पिता हैं, तो वह उनके चरणो मे अवनत हो जाता है और अपने कृत्य के लिए क्षमा याचना करता है।

घटोत्कच मे अपार मातृभक्ति है। वह ब्राह्मण के वध को हेय मानता है, पर माता की आज्ञा पालन करने के हेतु वह इस नीच कृत्य को करने के लिए बाध्य होता है। भीम के साथ युद्ध करने मे उसे तनिक भी हिचक नही और न उसके मन मे भय ही है। उसके मन मे माता की आज्ञा के पालन के समक्ष अन्य सभी बातें नगण्य हैं।

'दूतघटोत्कच' मे घटोत्कच का चरित्र विशेष विकसित हुआ है। उसमे वीर रस कूट-कूट कर व्याप्त है। कभी भी वह अवमानना सहन करने के लिए प्रस्तुत नही। जब दुर्योधन आदि कौरव उसका तिरस्कार करते हैं, तो वह मुष्टि बाँध कर उनसे युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। वीरता के साथ-ही-साथ घटोत्कच मे शालीनता तथा शिष्टता का भी समावेश है। वह धृतराष्ट्र

को नम्रतापूर्वक प्रणाम करता है। मर्यादा का भी उसे सदैव ध्यान है। धृतराष्ट्र को प्रणाम करते समय उसे स्मरण हो आता है कि प्रथम बड़े व्यक्तियों का प्रणाम निवेदन करना चाहिये तत्पश्चात् अपना। अतः वह युधिष्ठिर आदि का प्रणाम निवेदित कर अपना प्रणाम कहता है।

वाक्पटुता भी उसमें विद्यमान है। जब दुर्योधन यह कहता है कि तुम्हीं राक्षस नहीं, हम लोग भी राक्षस के समान व्यवहार कर सकते हैं, तो घटोत्कच उत्तर देता है कि तुम लोग तो राक्षसों से भी निकृष्टतर हो। जैसा व्यवहार तुम लोगों ने किया है, वैसा राक्षस भी नहीं कर सकते।

'दूतघटोत्कच' में इसका चरित्र बहुत ही उन्नत रूप में अङ्कित हुआ है। उसके चरित्र के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि वह क्रूर राक्षसी स्वभाव का त्याग कर चुका है। घटोत्कच जब भी कौरवों की सभा में उत्तेजित होता है, तब धृतराष्ट्र ही उसे शान्त करते हैं। गुरुजनों के प्रति घटोत्कच की विनय-श्रद्धा श्लाघ्य है। उसके स्वभाव में नाटककार भास ने गुणात्मक परिवर्तन प्रस्तुत कर अपनी कला का परिचय दिया है। यथार्थ में वह राक्षस स्वभाव का त्याग कर चुका है।

अन्य राक्षस चरित्रों में इन्द्रजित् का चरित्र आता है। यह पिता का परम भक्त है, शूरवीर है और है निर्भय। राम के साथ युद्ध करने के लिए रणभूमि में उपस्थित हो जाता है। अशोक वाटिका में से हनुमान को बाँध कर यही लाता है। इसके चरित्र में तीन बातें प्रमुख दिखलायी पड़ती हैं—(१) पितृ-भक्ति, (२) निर्भयता और वीरता तथा (३) आत्म सम्मान। आत्म-सम्मान के प्रतिकूल यह कोई भी कार्य नहीं करना चाहता है।

हिडिम्बा : चरित्र-चित्रण

हिडिम्बा भीम की पत्नी और घटोत्कच की माँ है। वह अपने पति से बहुत प्यार करती है और उसे पुनः प्राप्त करने के लिए वह अपने पुत्र घटोत्कच को पाण्डवों के वनवास के स्थान पर मनुष्य लाने के लिए भेजती है। हिडिम्बा के चरित्र में निम्नलिखित गुण दिखलायी पड़ते हैं—

(१) पति-भक्ति तथा पति से मिलने के लिए वह अत्यन्त लालायित है। अतः वह एक मनुष्य को आहार के हेतु लाने के लिए अपने पुत्र को भेजती है।

(२) राक्षसी प्रवृत्ति को मानव प्रवृत्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है। अन्त में यह रहस्योद्घाटन होता है कि उसने मनुष्य को आहार के लिए नहीं बुलाया, अपितु पति मिलन के लिए।

(३) हिडिम्बा मे साहस और त्याग की प्रवृत्ति भी है। वह अपने पुत्र को साहस और वीरता का पाठ पढाती है।

(४) प्रेम और सौहार्द्र भी विद्यमान हैं।

राजा एव राजकुमार

नाटककार भास ने धृतराष्ट्र, दशरथ, दुर्योधन, शकुनि, शल्य, कुन्तिभोज, उग्रसेन, महासेन, उदयन, विराट, युधिष्ठिर, दर्शक आदि प्रधान राजाओ का चरित्र चित्रण किया है। राजकुमारो मे सं वीर और दुर्जय प्रमुख हैं। इस प्रकार राजा और राजकुमारो के चरित्र बडी ही सतर्कतापूर्वक निबद्ध किये गये हैं।

उदयन : चरित्र चित्रण

वत्सराज उदयन का चरित्र नाटककार भास ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्त' मे अङ्कित किया है। यह केवल सौन्दर्य प्रेमी और विलासी ही नही है अपितु वीर, योद्धा और साहसी भी है। उदयन अत्यन्त सुन्दर है। इसी कारण वासवदत्ता उसको दर्शनीय कहती है। पद्मावती की चेटी उसे सरचापहीन कामदेव कहती है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह तृतीय पाण्डव अर्जुन की छत्तीसवी पीढी का राजा है, जिसके पिता का नाम शशाक और पितामह का नाम सहस्राक था। उदयन मे राजोचित सभी गुण वर्तमान हैं। वह जितना वीर है, उतना ही सरल, सहृदय और गुणी भी। वह एक पत्नीव्रती है। अपनी प्रियतमा वासवदत्ता के जल मरने की सूचना पा कर वह भी अग्नि मे कूद कर भस्म होने को तैयार है। उसके पवित्र प्रेम का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी ने बहुत ही ठीक कहा है—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ता ।[१]

अय्यर ने उदयन के चरित्र की विशेषता के सम्बन्ध मे लिखा है कि भास ने इस चरित्र के निर्माण मे अनेक तत्त्वों को ग्रहण किया है। उनका यह चरित्र अनेक मानवीय गुणो से युक्त है। लिखा है—

'In Udayna, Bhasa has created a delightful character, combining in himself the roles of King Arthur, Don Juan and

---

१. स्वप्नवासवदत्त, अङ्क १ श्लोक १३

Prince Charming. No doudt, this character has been taken over from the folk-lore which, however, emphasizes more the Don Juan aspect of the king, making him not only the darling of all women and an adept in the fine arts, but also a philanderer who forgets one fair woman the moment he sees another.'[१]

अर्थात्—उदयन के चरित्र में भास ने राजा आर्थर, डॉन, जुआन और राजकुमार चार्मिंग की भूमिकाओं को संयुक्त करते हुए, एक मनोरंजक चरित्र का निर्माण किया है। निश्चयतः भास ने राजा उदयन के चरित्र को साहसी, दयालु, वीर, प्रेमी एवं कुशल सैन्य संचालक के रूप में प्रस्तुत किया है।

उदयन वीणा-वादन में आचार्य है। उसके इस गुण के कारण उन्मत्त गज भी अधीन हो जाते हैं। वीणा-वादन की निपुणता से पशु-पक्षी भी मुग्ध हो जाते हैं। उसके इस गुण के कारण वासवदत्ता के पिता महासेन ने लकड़ी का एक विशालकाय हाथी बनवा कर जंगल में रखवा दिया। उदयन भ्रमवश उसे वास्तविक हाथी समझ पकड़ने गया तो स्वयं महासेन के सैनिकों द्वारा पकड़ लिया गया। वे उदयन को पकड़ कर उज्जयिनी ले गये जहाँ वह राजमहल में रह कर वासवदत्ता को वीणा सिखलाने लगा। साथ रहने के कारण उन दोनों में प्रगाढ़ स्नेह हो गया और अवसर पा कर उदयन वासवदत्ता को ले कर वहाँ से भागा एवं अपनी राजधानी में आ कर उसने वासवदत्ता से विवाह कर लिया। उदयन वासवदत्ता के प्रेम में इस प्रकार मग्न हो गया कि उसे अपने शासन की भी सुधि नहीं रही। अन्ततोगत्वा उसे अपने राज्य से भी हाथ धोना पड़ा। पश्चात् अपहृत राज्य के उद्धार के लिए उदयन के मन्त्रियों ने गुप्त योजना बनाकर महारानी वासवदत्ता के जल मरने की अफवाह फैला दी। अनन्तर उदयन का विवाह मगधराज की बहन पद्मावती के साथ सम्पन्न हुआ। मगधराज की सहायता से ही उदयन ने अपने अपहृत वत्सराज्य का उद्धार किया।

वत्सराज उदयन के इस आख्यान से उसके चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वह केवल कलाप्रिय ही नहीं है, अपितु वीर योद्धा भी है। वह उज्जयिनी नरेश प्रद्योत के सैनिकों के साथ भयंकर युद्ध करता है और यह युद्ध पर्याप्त समय तक चलता रहता है। उसकी युद्ध प्रविधि का आतंक अवन्तिनरेश के सैनिकों पर इतना व्याप्त हो जाता है कि वह जब मूर्च्छा दूर

---

१. A. S. P. Ayyar, Bhasa, Madras, p. 368-69.

होने पर पुन. चैतन्य स्थिति को प्राप्त करता है, तो बन्दी बनने पर भी अवन्ति नरेश के सैनिक उसे देख कर भागने लगते हैं। उसकी वीरता शत्रुओ के हृदय मे इतनी अधिक प्रविष्ट है कि वे रण-भूमि मे उसका नाम सुनते ही कांपने लगते हैं।

शस्त्रधारियो द्वारा रक्षित बड़े-बड़े दांत वाले उन्मत्त गजो को पकड़ने के लिए प्रयास करना भी उसकी वीरता का एक उदाहरण है। उन्मत्त हाथियो और सिंहों के आखेट के लिए अकेले ही भयंकर बनों मे चले जाना कम वीरता नहीं है। उसकी निर्भयता का एक उदाहरण 'स्वप्नवासवदत्त' मे आया है। विदूषक जब मण्डप मे सांप होने की बात कह कर राजा को भीतर जाने से रोकता है तो राजा उदयन निर्भय होकर हँसता हुआ उस स्थल पर पहुँच जाता है। और निरीक्षण कर बतलाता है कि वायु के झोंके से झूलती हुई माला की छाया है। एक साहसी व्यक्ति ही बिना किसी हिचक के नाग की ओर दौड सकता है। अन्यथा विदूषक के समान कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जो सांप का नाम सुनते ही मूच्छित हो जाते हैं। अकेले ही विन्ध्य के घने अरण्य मे आखेट के लिए भ्रमण करना उदयन के लिए मनोविनोद का साधन है।

वह शिक्षा-प्रेमी और वैदिक सस्कृति का सरक्षक है। लावाणक ग्राम मे उसने एक वैदिक शिक्षा सस्थान प्रतिष्ठित किया है, जिसमे दूर-दूर प्रदेशो के अनेक छात्र पर्याप्त सख्या मे अध्ययन करने के लिए उपस्थित होते हैं। अपने छोटे से राज्य को उसने सभी प्रकार से ऐसा समृद्ध और ख्यात बनाया है, जिससे यह राज्य सस्कृत वाङ्मय के अध्ययन का केन्द्र बन गया है। मगध देश का ब्रह्मचारी लावाणक ग्राम मे वेदाध्ययन के लिए जाता है और लौट कर राजगृह के आश्रम में अग्निदाह के कारण उत्पन्न हुई स्थिति का चित्रण करता है। वत्सराज उदयन मे मानवता भी कूट-कूट कर भरी है। वह उस काल के राजाओ के समान केवल विलासी और कला-प्रिय ही नही है, किन्तु मानवता से परिपूर्ण है। राजा और विदूषक का वार्तालाप अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे सम्पन्न हुआ है। प्रकृति के प्रति उसके हृदय मे अपूर्व प्रेम है। सुन्दर पुष्पों से युक्त प्रकृति की रमणीयता देख कर उदयन का हृदय मचल उठता है। घोषवती वीणा को ले कर जब उदयन बजाना आरम्भ करता है तो तानसेन की सगीत-ध्वनि के समान जगली जानवरो के हृदय भी परिवर्तित हो जाते हैं। वन्य गज पालतू बन जाते हैं और चारो ओर शान्ति का वातावरण व्याप्त हो जाता है।

उदयन सयमी और आर्य परम्परा का पूर्ण रक्षक है। वह अवन्तिका

की ओर तब तक नहीं देखता जब तक उसे यह विश्वास नहीं हो जाता कि यह वासवदत्ता है। सन्देह के अनेक कारणों के उपस्थित होने पर भी वह वासवदत्ता को पहचाने बिना ग्रहण नहीं करना चाहता है।

नाटककार भास ने एक क्रान्तिकारी विचार यह भी प्रस्तुत किया है कि बहु-पत्नीत्व की प्रथा होने पर भी उदयन एक पत्नीव्रती है। वासवदत्ता के रहते हुए वह पद्मावती के साथ विवाह करने को कभी भी तैयार नहीं होता। यही कारण है कि यौगन्धरायण और रुमण्वान् ने वासवदत्ता को छिपाने के लिए कृत्रिम अग्निकाण्ड की योजना की है। वासवदत्ता के जल मरने के समाचार से उदयन अवश्य चिन्तित होता है और वह जीवन से विरक्त-सा हो जाता है। यद्यपि वह वासवदत्ता को भूल नहीं पाता, पर तो भी वह पद्मावती से विवाह कर लेता है। उसका यह कथन कितना मार्मिक है—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूप-शील-माधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥[1]

× × ×

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।
कथं सा नु मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥[2]

स्पष्ट है कि उदयन के चरित्र में एक ऐसी विशेषता भास ने अंकित की है, जिसका निर्वाह उत्तरकालीन नाटककार नहीं कर सके हैं।

उदयन मनोविज्ञान का भी अच्छा ज्ञाता प्रतीत होता है। जब विदूषक यह पूछता है कि पद्मावती और वासवदत्ता में से किसे वह अधिक प्यार करता है, तो उस समय उदयन उत्तर देता है—

किमिदानीं भवान् महति बहुमानसंकटे मां न्यस्यति ?[3]

अर्थात्—तुम इस समय मुझे बहुत बड़े संकट में गिराते हो। विदूषक कहता है, आप नि.संकोच कहिये। एक तो मर गयी, दूसरी पास में नहीं है। वत्सराज उदयन कहना नहीं चाहते, पर विदूषक उत्तर प्राप्त किये बिना उन्हें

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, श्लोक ४।४
२. वही, ६।११
३. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, चतुर्थ अंक, पृ० १३४

छोडने के लिए तैयार ही नही है। अत उसे कहना ही पडता है—'यद्यपि पद्मावती अपने रूप, शील और माधुर्य से मुझे प्रिय है, फिर भी वासवदत्ता मे आसक्त मेरे मन का हरण नही कर पाती है।' राजा के इस कथन मे कितना मनोवैज्ञानिक तथ्य है, यह स्पष्ट है। वह समानानुरागी है, अत उसका यह कथन दोनो को ही सन्तुष्ट करने वाला है। राजा विदूषक से भी पद्मावती और वासवदत्ता के सम्बन्ध में सम्मति मांगता है। विदूषक कहता है—'पूजनीया वासवदत्ता मुझे अधिक मान्य हैं। माननीया पद्मावती युवती, सुन्दर, क्रोधहीन, अभिमान रहित, मिष्टभाषिणी तथा सभी लोगो पर समान अनुराग करने वाली हैं। पर वासवदत्ता मुझे स्वादिष्ट भोजन दे कर निरन्तर सम्मानित करती थी। इस हास-परिहास ने राजा के मन को चचल बना दिया और उसके मुख से भाव-विभोर हो कर उक्त कथन निकल पडा। राजा के इस कथन मे मनोवैज्ञानिक तथ्यो का पूर्णतया समावेश पाया जाता है—

> दुःख त्यक्तु बद्धमूलोऽनुराग स्मृत्वा स्मृत्वा याति दु ख नवत्वम्।
> यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्प प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धि प्रसादम्॥[1]

इस प्रकार उदयन के चरित्र को प्रभावक और उदार बनाने मे पूरी सतर्कता दिखलायी है। वह गुरुजनो के प्रति कितना सम्मान अपने हृदय में रखता है, इसका उदाहरण नाटककार भास ने महासेन और अगारवती के यहाँ से आये हुए ब्राह्मण और धात्री के कथानक द्वारा प्रस्तुत किया है। जब ये दोनो सन्देश सुनाने के लिए अन्त.पुर मे उदयन के समीप पहुँचते हैं, तो उदयन आसन से उठ कर इनका स्वागत करता है। गुरुजनो का सन्देश भी उदयन को गुरुजनो के समान ही मान्य है। अत. वह सन्देश सुनाने वाले व्यक्तियो का गुरुजन के समान ही आदर-सत्कार करता है।

प्रद्योत (महासेन) : चरित्र-चित्रण

महासेन प्रद्योत अत्यन्त प्रभावशाली और शक्तिशाली अवन्ति का राजा है। सर्वत्र उसके आधिपत्य का सम्मान है। इसमे यदि कोई बाधक है, तो केवल उदयन। उदयन को ले कर वह सर्वदा चिन्तित रहता है। पर वह गुणग्राहक भी है। मन-ही-मन वत्सराज उदयन के गुणो का प्रशसक है। जब महारानी अगारवती उदयन को कन्या देने के विषय मे कहती है, तो वह उत्तर देता है कि

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा सस्करण, चतुर्थ अक, ४।६

वर के योग्य सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी वत्सराज उदयन दर्प से भरा हुआ है। इससे स्पष्ट है कि प्रद्योत वत्सराज के गुणों का प्रशंसक है। उसकी महती सेना की आलोचना यौगन्धरायण ने की है और बताया है कि उसकी सेना में परस्पर फूट है और वीरों की भी कमी है। अतः सार्थक नाम वाला होने पर भी महासेन उदयन के समक्ष निस्तेज है। इस प्रकार महासेन के चरित्र में यह कमी दिखलायी पड़ती है कि वह सैन्य संगठन मे असफल है। उदयन के वन्दी बनाये जाने पर वह उसके साथ राजकुमार जैसा व्यवहार करता है। इससे महासेन की प्रकृति का पता चलता है। महासेन के चरित्र में परिवार के प्रति ममता की भावना भी मिलती है। वह अपनी पत्नी और कन्या से प्यार करता है। वह अपने शत्रुओं के प्रति भी उदार व्यवहार करता है। जब अंगारवती वासवदत्ता के भगाये जाने के कारण लज्जित हो कर आत्म-हत्या करने का प्रयत्न करती है तो वह भाग कर उसके पास जाता है और वह कहता है—'वासवदत्ता ने उदयन के साथ क्षत्रिय गान्धर्व विधि से विवाह किया है। अतः इसमें लज्जा की कोई बात नहीं। क्षत्रियों के यहाँ गान्धर्व विवाह विधेय है।' इस प्रकार अंगारवती को समझाकर सन्तुष्ट करता है। तथा वे दोनों वासवदत्ता और उदयन का चित्र तैयार करा कर विवाह विधि सम्पन्न करते हैं। तथा 'स्वप्नवासवदत्तम्' के अन्तिम अंक में सन्देश के रूप में इस चित्रपट को प्रेषित करते हैं।

प्रद्योत अन्य भारतीय राजाओं के समान ही वीर और उदार है। उसकी दृष्टि में संगीत आदि का महत्व कन्याओं के लिए ही है। वह अपने ज्येष्ठ पुत्र गोपाल को अर्थशास्त्र की शिक्षा देता है और छोटे पुत्र अनुपालक को व्यायाम की शिक्षा दे कर वीर बनाता है। पर अपनी कन्या वासवदत्ता को वीणा-वादन का अभ्यास कराता है। वह पितृगृह में कन्याओं को सभी प्रकार की क्रीड़ाएँ करने के लिए साधन प्रस्तुत करता है। उसके इस कथन में कितना सार समाहित है, यह विचारणीय है— 'क्रीडतु क्रीडतु। नैतत् सुलभं श्वशुर-कुले।'[1]

उदयन के चरित्र में जहाँ एक प्रेमी के गुणों का समवाय मिलता है वहाँ महासेन के चरित्र में पिता के गुणों का। महासेन के व्यक्तित्व का विकास पिता के रूप में जितना अधिक दिखलायी पड़ता है, उतना अन्य किसी रूप में नहीं। अंगारवती के साथ भी उसका सम्बन्ध एक प्रेमी का नहीं है अपितु

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चौखम्बा संस्करण, पृ० ६७

पति-पत्नी का है। वह कन्या के विवाह हेतु वर का चयन करते समय अपनी सहधर्मिणी अगारवती से भी परामर्श करता है। इससे स्पष्ट है कि महासेन के चरित्र मे पारिवारिक मर्यादाओ की रक्षा का तत्त्व अधिक है। जहाँ उदयन अपने मन्त्री यौगन्धरायण के ऊपर शासन करता है, वहाँ महासेन अपने मन्त्री भरत रोहक से भयभीत रहता है। यह सत्य है कि भरत वंश के राजाओ की परम्परा का निर्वाह महासेन पूर्णतया करता है।

धृतराष्ट्र चरित्र चित्रण

'दूतवाक्य', 'दूतघटोत्कच' और 'ऊरुभग' मे धृतराष्ट्र का चरित्र अंकित हुआ है। यह घटनाओ के कुचक्र मे फँसा हुआ एक ऐसा दु:खी वृद्ध व्यक्ति है जो कि न तो केवल युद्ध मे मृत अपने पुत्रो के लिए दु खी है, किन्तु अन्धेपने मे भी दु खी है। बुद्धि मे वह सत्य का दिग्दर्शन कर लेता है और पाण्डवों के सत्य-पक्ष को भी वह जानता है, पर भावात्मक रूप मे वह अपने पुत्रो के साथ ही है। वह परिवार में फूट और बँटवारे को कभी भी पसन्द नही करता। वह शकुनि से स्पष्ट कह देता है कि वृद्ध सम्राट् युद्ध को पसन्द नही करता। अभिमन्यु की मृत्यु पर वह जयद्रथ की भर्त्सना करता है। जब श्रीकृष्ण 'दूत-वाक्यम्' में शान्ति का सन्देश ले कर दुर्योधन की सभा मे उपस्थित होते हैं और दुर्योधन उनका अपमान करता है, तो धृतराष्ट्र को हार्दिक दु ख होता है और अपने पुत्रो के किये गये अपराध के लिए श्रीकृष्ण से क्षमा-याचना करता है। इस अवसर पर धृतराष्ट्र का चरित्र अत्यन्त ममतापूर्ण चित्रित हुआ है। धृतराष्ट्र के हृदय मे अपने पुत्रों के प्रति अपार ममता है। यही कारण है कि वे उनके अन्याय का विरोध नही कर पाते हैं। सौ पुत्रो के पिता होने पर भी उन्हें अग्नि देने वाला कोई नहीं। यो तो प्रत्येक समय धृतराष्ट्र धर्मात्मा, न्याय-निपुण और विचारक के रूप में प्रस्तुत होते हैं। पर ममतावश वे स्पष्टरूप से अन्याय का विरोध नही कर पाते हैं। संक्षेप मे धृतराष्ट्र के चरित्र में निम्न-लिखित गुण प्राप्त होते हैं—

(१) विवेकशीलता।

(२) ममता का आधिक्य।

(३) अन्याय का अनुभव करते हुए भी अन्याय को रोकने की अक्षमता।

(४) परिवार को एकसूत्र मे आबद्ध रखने की भावना।

(५) धर्म के प्रति आस्था।

दुर्योधन : चरित्र चित्रण

भास द्वारा महाभारत के आधार पर रचित छः रूपकों में से चार रूपकों का नायक दुर्योधन है। इन चार रूपकों में एक नाटक, एक व्यायोग और दो उत्सृष्टिकांक हैं। रूपक के शिल्प विधान के आधार पर ही दुर्योधन का नायकत्व घटित हुआ है। नाटक में वह धीरोदात्त रूप में है तो व्यायोग में उद्धत्त, और उत्सृष्टिकांक में सामान्य मनुष्य के रूप में उसका चित्रण हुआ है। महाभारत के दुर्योधन को भास ने अपनी चरित्रचित्रण की प्रतिभा द्वारा सर्वथा नवीन और साहसिक रूप प्रदान किया है। महाभारत के दुर्योधन से किसी भी सामाजिक को सहानुभूति नहीं हो सकती। पर भास का दुर्योधन अपनी उदात्तता और कमजोरियों के रहने पर भी हमारी सहानुभूति का पात्र है। महाभारत के दुर्योधन में उदारता नाम की कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती। पर भास द्वारा 'पंचरात्रं' में चित्रित दुर्योधन उदारता की सजीव मूर्त्ति है। महाभारत का दुर्योधन कृष्ण के कहने पर भी पाण्डवों को राज्य देने के लिए तैयार नहीं होता। राज्य तो बड़ी वस्तु है, वह तो सुई की नोंक के बराबर भूमि भी पाण्डवों को नहीं देना चाहता। "सूच्यग्रं नैवदास्यामि विना युद्धेन केशवः" यह उसका नारा है। पर "पंचरात्रं" में दुर्योधन केवल गुरु द्रोणाचार्य के कहने से ही आधा राज्य देने को प्रस्तुत हो जाता है। यथा—

> बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम्
> मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ।[१]

'पंचरात्र' के दुर्योधन में वे सभी गुण हैं, जो एक धीरोदात्त नायक में होने चाहिये। उसकी उदारता तो पूर्व पद्य में स्पष्ट ही है। उसकी नम्रता उस समय प्रकट होती है जब वह अपने गुरुजनों का आदर करता है और अपने अपराधों को सूचित करते हुए कहता है—

> यदि विमृशसि पूर्वजिह्मतां मे यदि च समर्थयसे न दास्यतीति
> शरशतकठिन प्रयच्छ हस्तं सलिलमिदं करणं प्रतिग्रहाणाम् ।[२]

---

१. पंचरात्रम् : ३।२५
२. वही १।३२

शकुनि और कर्ण के द्वारा बहुत समझाने पर भी वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है। उसने द्रोणाचार्य को दक्षिणा के रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा की, और वह अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करता है।

वह गम्भीर है, विषम स्थिति मे भी वह अपना सतुलन बनाये रखता है। जहाँ पर शकुनि अपने सतुलन को बिगाड़ देता है। आधे राज्य की बात शकुनि को क्रुद्ध कर देती है, पर दुर्योधन पर उसको कोई प्रतिक्रिया नही होती, वह गम्भीर बना रहता है। द्रोणाचार्य कहते हैं कि यदि कौरव पाण्डवो को आधा राज्य अपनी इच्छा से नही देंगे, तो पाण्डव उनसे बलपूर्वक छीन लेंगे। द्रोण की इस कटु बात को सुनकर कौरव पक्ष के सभी लोग क्रुद्ध हो जाते हैं, और द्रोण से कहने लगते हैं कि इस प्रकार राज्य कैसे ले लेंगे। परन्तु दुर्योधन गम्भीरतापूर्वक अपनी जिज्ञासा का समाधान कराता है।

दुर्योधन एक वीर योद्धा है जिसे अपने कर्तव्य का सदैव ध्यान रहता है। युद्ध मे अभिमन्यु के बन्दी बना लिये जाने की सूचना प्राप्त करने के बाद दुर्योधन के उद्‌गार उसकी कर्तव्य परायणता पर प्रकाश डालते हैं।

'दूतवाक्य' के नायक दुर्योधन का चरित्र 'पञ्चरात्रम्' मे प्रतिपादित दुर्योधन के चरित्र से सर्वथा भिन्न है। इस रूपक मे दुर्योधन की उद्धतता का चित्रण ही प्रधान है। यह उद्धतता महाभारत मे वर्णित उद्धतता से भी आगे बढ़ी हुई है। महाभारत का दुर्योधन दूतरूप में आने वाले कृष्ण के लिए विश्राम-स्थल आदि की व्यवस्था करता है, और उनके सभा मे आने पर उन्हें सम्मानपूर्वक आसन प्रदान करता है। किन्तु 'दूतवाक्य' के दुर्योधन में इतनी सहिष्णुता नही कि वह भगवान् कृष्ण को अपनी सभा में सम्मानपूर्वक आसन भी दे सके। जब कंचुकी श्रीकृष्ण के प्रति आदरसूचक शब्द व्यक्त करता है, तो वह क्रुद्ध हो जाता है। इतना ही नहीं वह अपने सभी सभासदो को आज्ञा देता है कि वे लोग कृष्ण के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए अपने आसन से उठ कर खड़े न हों। जो इस आज्ञा का उल्लघन करेगा उसे स्वर्ण कार्षापण दण्ड मे देने होंगे। वह अपनी उद्धतता के कारण कृष्ण का अपमान करता है। अत. स्पष्ट है कि 'दूतवाक्यम्' में दुर्योधन की उद्धतता पूर्णतया चित्रित की गयी है।[1]

'दूतवाक्य' और 'ऊरुभंग' के दुर्योधन मे महान् अन्तर है। विश्वास

---

१. दूतवाक्यम्, १:२२

नहीं होना कि यही वह दुर्योधन है जो गलती रहने पर भी असहिष्णुता और उदण्डता की चरम सीमा का स्पष्ट अतिक्रमण कर रहा है। 'ऊरुभंग' का दुर्योधन एक सच्चे मनुष्य की तरह सहनशील, परिस्थितियों के द्वारा प्रभावित होने वाला, परिस्थितियों को समझने वाला, कर्मफल के सिद्धान्त पर विश्वास करने वाला एवं कर्त्तव्यपरायण है। महाभारत के इस पात्र को भास ने अपने चरित्रचित्रण की प्रतिभा द्वारा हमारे हृदय पर अधिष्ठित कर दिया है। भास का यह दुर्योधन धीर होने के साथ उदार भी है। वह गदा के आघात से भूमि पर गिरे हुए भीम पर उस अवस्था मे प्रहार नहीं करता। उसकी सहनशीलता उसके चरित्र को उज्ज्वलता प्रदान करती है। जब बलराम उसके साथ हुए छल की बात कहते हैं तब वह उत्तर देता है—'गुरुदेव, आप मुझे छल से पराजित समझ रहे हैं, तो निश्चय ही आज मैं परास्त नहीं हुआ।' वह जानता है कि उसे भीम ने नहीं अपितु कृष्ण ने ही परोक्ष रूप से पराजित किया है। अतः वह अपनी स्थिति से सन्तुष्ट है। उसे अपमानित होने का भी विशेष दुःख नहीं है क्योंकि वह जानता है कि उसका अपराध दण्ड की अपेक्षा कहीं ज्यादा है। वह अपनी परिस्थिति का अनुभव कर बलराम और अश्वत्थामा दोनों से अनुरोध करता है कि युद्ध करने से अब कोई लाभ नहीं। कौरववंश के सहायक प्रायः सभी नष्ट हो चुके हैं और कौरववंश भी नष्टप्राय है। वह अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए अपने पुत्र दुर्जय से कहता है—'अहमिव पाण्डवाः शुश्रूषयितव्याः। तत्रभवत्याश्चाम्बायाः कुन्त्या निदेशो वर्तयितव्यः। अभिमन्योर्जननी द्रौपदी चोभे मातृवत्पूजयितव्ये। पश्य पुत्र।'[१]

श्लाघ्यश्रीरभिमानदीप्तहृदयो दुर्योधनो मे पिता
तुल्येनाभिमुखं रणे हत इति त्वं शोकमेवं त्यज
स्पृष्ट्वा चैवं युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षौमापसव्यं भुजं
देयं पाण्डुसुतैस्त्वया मम समं नामावसाने जलम्।[२]

इस कथन से दुर्योधन की दूरदर्शिता प्रकट होती है। साथ ही उसके हृदय की विशालता, सात्विकता और पवित्रता भी अभिव्यक्त हो जाती है।

---

१. ऊरुभंग, पृष्ठ-४७
२. वही, १।५३

उसे अपनी असमर्थता का उस समय अत्यन्त दुःख होता है, जब वह अपने माता-पिता का अभिवादन करने में अपने को असमर्थ पाता है। इस परिस्थिति मे वह अपने धैर्य एवं साहस का त्याग नही करता। वह अपने माता-पिता और पत्नियो को बडी दृढता और साहस के साथ समझाता है।

'दूतघटोत्कच' के नायक दुर्योधन का स्वरूप उक्त तीनो ही दुर्योधनो के स्वरूप से भिन्न है। यहाँ दुर्योधन साधारण मनुष्यो की अपेक्षा कही अधिक उद्धत है। किन्तु उसकी उद्धतता स्वभावजन्य नहीं परिस्थितिजन्य है। वह विवेकशील है। वह शकुनि के द्वारा मना करने पर अपना विवेक नही खोता और अपने पिता को प्रणाम करने जाता है। यह सत्य है कि उसकी बुद्धि स्वार्थवश विवेकहीन हो गयी है। भीष्म के बध का बदला वह अभिमन्यु के वध से लेता है और उस बालक को अनेक लोगो द्वारा मिल कर मारना उसे अन्यायपूर्ण नही लगता। वह अत्यन्त अहकारी है। उसे अपनी सैन्यशक्ति पर भी अटूट विश्वास है। इसलिए वह अर्जुन की प्रतिज्ञा के प्रायश्चित को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हो जाता। इतना होने पर भी उसमे शालीनता का अश है। वह भगवान् कृष्ण के सन्देश को ले कर आये हुए घटोत्कच से कहता है कि जनार्दन ने क्या सदेश दिया है, उसे निर्भय हो कर सुनाओ। पर उसकी यह शालीनता क्षण भर के लिए ही रहती है। वह कृष्ण के सदेश का सुन कर हँस पडता है और उसका उपहास करता है। पूरे रूपक मे दुर्योधन क्रोध को वश मे किये रहता है, पर घटोत्कच की कटूक्तियो को सुन कर उसका सयम टूट जाता है और वह बुरी तरह घटोत्कच से झिडकता है। जब घटोत्कच धृत-राष्ट्र की इच्छा से चुप रह जाता है और दुर्योधन की ओर उन्मुख हो कर कहता है कि क्या प्रार्थना करनी है? तो दुर्योधन क्रुद्ध हो जाता है। इस प्रकार दूतघटोत्कच के दुर्योधन का चरित्र भास के अन्य तीन रूपको के चरित्र की अपेक्षा भिन्न है। निश्चयतः भास ने महाभारत के लोह दुर्योधन को अपनी प्रतिभा-पारस के स्पर्श से स्वर्ण बना दिया है, इसमे कोई अतिशयोक्ति न होगी।

कर्ण : चरित्र-चित्र

दुर्योधन के मित्र कर्ण का चित्रण एक उदार वीर योद्धा के रूप मे अंकित हुआ है। उसकी दानप्रियता को कवि ने भली-भाँति प्रकट किया है। 'पञ्च-रात्रम्' और 'कर्णभार' में कर्ण के चरित्र के दो रूप प्राप्त होते हैं। कवि ने उसकी दानप्रियता का भली-भाँति उद्घाटन किया है। कर्ण विचारशील

विवेकी व्यक्ति है। वह प्रत्येक कार्य के लिए विवेक का आश्रय लेता है। जब द्रोणाचार्य शकुनि के द्वारा क्रोधित किये जाते हैं तो कर्ण आचार्य को शान्त करते हुए कहता है—

हितमपि परुषार्थं रुष्यति श्राव्यमाणो
वर पुरुषविशेषं नेच्छति स्तूयमानम्
गतमिदमवसानं रक्ष्यतां शिष्यकार्यं
गज इव बहुदोषो मार्दवेनैव वाह्यः।[1]

कर्ण की विवेकशीलता का परिचय उस समय मिलता है जब इसी नाटक में दुर्योधन उनसे सम्मति माँगता है। कर्ण दुर्योधन से कहता है—मैं इस सम्बन्ध में विशेष क्या कहूँ ? भगवान राम ने जिस सौहार्द का अनुभव तथा पालन किया, मैं उसका निषेध नहीं करता हूँ, राज्य देना चाहिये या नहीं, इस विषय में आपका अधिकार है। युद्ध आरम्भ हो जाने पर हम आपकी सहायता करेंगे। यथा,

रामेण मुक्तां परिपालितां च सुभ्रातृतां न प्रतिषेधयामि
क्षमाक्षमत्वे तु भवान् प्रमाणं संग्रामकालेषु वयं सहायाः।[2]

इस प्रकार 'पञ्चरात्रम्' के कर्ण में वीरता, उदारता और विचारशीलता का समन्वित रूप मिलता है। कर्ण के इन गुणों का पूर्ण उभार नाटककार भास ने 'कर्णभार' रूपक में किया है। कवच और कुण्डलों के दान के द्वारा उसकी उदारता और दानवीरता का परिचय प्राप्त होता है। अपने शस्त्रों के निष्फल होने का उसे दुःख है। परन्तु वीर होने के कारण वह रणभूमि से मुँह नहीं मोड़ सकता। वह युद्ध को सभी प्रकार से उपादेय मानता है। अतएव कहता है—

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे।[3]

कर्ण की विवेकशीलता का परिचय उस समय प्राप्त होता है, जब इन्द्र

---

१. पञ्चरात्रम्, १।४०
२. पञ्चरात्रम्, १।४५
३. कर्णभारम्, १।१२

उसके प्रत्यभिवादन मे उसे दीर्घायु होने का आशीर्वाद न दे कर अक्षय यश प्राप्त करने का आशीर्वाद देता है। इन्द्र के इस कपट का समाधान कर्ण अत्यन्त दार्शनिक ढग से करता है। वह सोचता है—'केवल धर्म ही मनुष्य के द्वारा यत्नपूर्वक साध्य है। राज्यलक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा की भाँति चचल है। अतएव प्रजा का पालन करने वाला अपने शरीरपात के पश्चात् केवल यश से ही जीवित रहता है।'[1] कर्ण के इस चिन्तन से यह फलित होता है कि विवेकशीलता और उदारता ये दोनो ही गुण उसके चरित्र मे विशेष रूप से समाहित हैं।

कवच-कुण्डल दे देने पर भी कर्ण इन्द्र से अपने इस दान के बदले मे प्रतिफल की आशा नही करता। महाभारत के कर्ण ने जहाँ शक्ति की स्वय याचना की है, वहाँ इस नाटक का कर्ण इन्द्र के कहने पर भी शक्ति को अस्वीकार करता है। आदर्श दानवीर कर्ण का चरित्र अत्यन्त उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। शल्य के द्वारा कवच-कुण्डल देने का निषेध करने पर भी वह अपनी उदारता से पराङ् मुख नही होता। सक्षेप मे कर्ण के चरित्र मे निम्नलिखित गुण प्राप्त होते हैं -

(१) अपूर्व ब्राह्मणनिष्ठा तथा महती दानशीलता
(२) शरीर की अपेक्षा यश-लाभ की कामना
(३) प्रतिफल की इच्छा का अभाव
(४) शूरवीरता
(५) कष्टसहिष्णुता
(६) विवेकशीलता
(७) उदारता एवं धीरता

युधिष्ठिर : चरित्र-चित्रण

भास ने युधिष्ठिर का चरित्र धर्मराज के रूप मे प्रस्तुत किया है। इनमे क्षमा, बान्धव-स्नेह, न्यायपरायणता एव सहृदयता का मञ्जुल समन्वय हुआ है। वे किसी के अपकार को स्मरण रखना नही चाहते। उदारता और न्यायप्रियता उनके सबसे बडे गुण हैं। उनके धर्मपालन करने की शक्ति का परिचय आचार्य द्रोण प्रस्तुत करते हैं। उनका कथन है कि युधिष्ठिर की धर्मभीरुता के कारण ही द्यूत सभा में पाण्डव अपने अपमान को सहते रहे।

१. कर्णभारम्, १।१७

उन्होंने अपने धार्मिक स्वभाव के कारण भीम को नियन्त्रित कर रखा था अन्यथा भीम शकुनि आदि का वध उसी समय कर डालता। द्रोणाचार्य का कथन है—

येन भीमः सभास्तम्भं तोलयन्नेव वारितः
यद्येकस्मिन् विमुक्तःस्यान्नास्माञ्छकुनिराक्षिपेत् ।[1]

उनकी क्षमाशीलता का उदाहरण विराट के इस कथन से प्राप्त होता है कि युधिष्ठिर समर्थ होने पर भी क्षमा कर सकता है। पर मैं क्षमा करने में असमर्थ हूँ। जिन कौरवों ने उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिये हैं, उन्हीं कौरवों के प्रति उनका मन कभी रुष्ट नहीं होता। वे कौरवों और पाण्डवों के बीच भेद नहीं कर पाते—

एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि
वैरप्रियैस्तैर्हि कृतेऽपराधे यत्सत्यमस्माभिरिवापराद्धम् ।[2]

अर्थात् समानोदक भाव—एक वंशज भाव मनस्वियों के हृदयों को भी कम्पित कर देता है। शत्रुता से प्रेम करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अपराध किया है। परन्तु मुझे ऐसा लग रहा है मानो सचमुच मैंने ही अपराध किया है। यह एक वंशज होने का ही तो दण्ड है।

आज मैं भूमि पर पर्णशय्या बना कर सोता हूँ, राज्य से च्युत हूँ, द्रौपदी के अपमान को सहन कर रहा हूँ और दूसरों के आश्रय में हूँ। इतना सब होने पर भी मेरी क्षमा की प्रशंसा सर्वत्र की जा रही है। इस प्रकार युधिष्ठिर के चरित्र में क्षमा, उदारता और सहिष्णुता के गुण समन्वित हैं।

नाटककार भास ने युधिष्ठिर की गम्भीर प्रकृति का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। वे एक सदाशय और दृढ़प्रतिज्ञ सिद्ध हुए हैं। अज्ञातवास के अवसर पर उनकी गम्भीर प्रकृति का चित्रण अनेक परिस्थितियों में किया गया है। विराट के यहाँ वे भगवान् के नाम से गुप्त रूप में निवास करते थे। अभिमन्यु के बन्दी बना लिये जाने की सूचना प्राप्त कर जब बृहन्नला चौंक पड़ती है और चिन्तित हो जाती है, तो वे उसे सावधान करते हुए कहते हैं—'बृहन्नले ! किमेतत् ?' अन्त में जब विराट अर्जुन को युद्ध की सफलता के

---

१. पञ्चरात्रम्, १।३८

२. पञ्चरात्रम्, २।६

उपलक्ष्य में उत्तरा देने की बात कहता है तब युधिष्ठिर के मन में स्वाभाविक विचार आता है कि वही विराट अर्जुन और उत्तरा के सम्बन्ध मे किसी सन्देह के वशीभूत हो कर तो ऐसा नही कर रहे हैं ? यदि मेरी यह शका सत्य है तो लज्जा की बात है । पर जब अर्जुन उत्तरा को पुत्र-वधू के रूप में ग्रहण करता है, तब उनका मन प्रसन्न हो जाता है । उनके चरित्र की यह उदात्तता अत्यधिक प्रभावशाली है । सक्षेप मे युधिष्ठिर के चरित्र मे निम्नलिखित गुण समवत हैं—

(१) सदाशयता
(२) बन्धुओ के प्रति ममता
(३) क्षमाशीलता
(४) धर्मभीरुता
(५) उदात्तता
(६) अपकार-विस्मरणशीलता
(७) सहानुभूति

विराट : चरित्र-चित्रण

राजा विराट का चित्रण सज्जन एव सुसस्कृत व्यक्ति के रूप में हुआ है । पाण्डवो के प्रति उनका स्नेहभाव है । महाभारत के विराट मे जो दोष थे, उनका नाटककार भास ने परिष्कार किया है । विराट आत्म-निरीक्षक और विवेकी है । महाभारत का विराट सहिष्णु नही, वह तनिक-सी बात पर क्रुद्ध हो ब्राह्मण युधिष्ठिर को पासे फेंक कर मारता था । पर भास का विराट अपने पुत्र की असमर्थता की बात सुन कर भी क्रुद्ध नही होता, क्योंकि वह सहिष्णु एवं विवेकी है । उसकी आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति का परिचय उस समय प्राप्त होता है जब दुर्योधन उस पर आक्रमण कर देता है । विराट आक्रमण के कारण को अपने में ढूँढता हुआ सोचता है—

'भोः ! किन्नु खलु दुर्योधनस्य मामन्तरेण वैरम् । आयज्ञमनुभवितुमनागत इति । कथमनुभवामि । कीचकाना विनाशेन वयमुन्नीतसन्तापाः । सवृत्ताः । अथवा परोक्षमपि पाण्डवाना स्निग्ध इति । सर्वथा योद्धव्यम् । हास्तिनपुरनिवासाच्छीलज्ञो भगवान् दुर्योधनस्य । अथवा,'[1]

१. पञ्चरात्रम्, पृष्ठ ६१

कामं दुर्योधनस्यैष न दोषमभिधास्यति।
अर्थित्वादपरिश्रान्तः पृच्छत्येव हि कार्यवान्।[१]

स्पष्ट है कि यहाँ विराट स्वयं आत्म-निरीक्षण कर रहा है और दुर्योधन के दोष को नगण्य मान रहा है। उसकी उदात्त भावना उसे स्वय ही आत्म-निरीक्षण के लिए प्रेरित करती है।

विराट की सुसंस्कृत वृत्ति का परिचय उस समय मिलता है जब युद्ध का समाचार देने वाला भट कहता है कि केवल दुर्योधन ही युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ है, अपितु पृथ्वी के सभी राजा युद्ध में सम्मिलित हुए हैं। द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, शल्य, कर्ण, शकुनि और कृपाचार्य सभी आये हैं। उनके चलते हुए रथों के कम्पायमान भुजदण्डों से ही हम लोग पराजित हो गये हैं, बाणों से नहीं। विराट पुनः पूछता है कि क्या आदरणीय गांगेय भी युद्ध में सम्मिलित हुए हैं? यहाँ अपमानित हो कर भी विराट ने औचित्य प्राप्त सत्कार का त्याग नहीं किया है। इससे उनकी सुसंस्कृत मनोवृत्ति का परिचय प्राप्त होता है।

दुर्योधन द्वारा गायों के त्रस्त होने पर विराट अपने आपको धिक्कराते हैं। युद्ध का समाचार जानने के लिए जब वे जयसेन को पुकारते हैं और जयसेन जय-जयकार करता हुआ प्रवेश करता है तब वे कहते हैं—'अलं महाराजशब्देन अवधूतं मे क्षत्रियत्वंउच्यताम् मे रणविस्तारः' इन शब्दों में उनका क्षत्रियत्व प्रकट होता है।

अपने पुत्र से विराट का स्नेह असाधारण है। और इसी स्नेह के कारण वे यह समझ बैठते हैं कि कुमार ने कौरव पक्ष को परास्त किया है। पाण्डवों के प्रति स्नेह के कारण वे अभिमन्यु के प्रति बन्दियों जैसा व्यवहार नहीं करते। जब उन्हें कुमार के उत्तर से पाण्डवों की उपस्थिति का ज्ञान होता है तब वे हर्ष विभोर हो कर कह उठते हैं—

'शूराणां सत्यसन्धानां प्रतिज्ञां परिरक्षताम्
पाण्डवानां निवासेन कुलं मे नष्टकल्मषम्।'[२]

उनके इस कथन से पाण्डवों के प्रति उनका आदरभाव स्पष्ट होता है।

---

१. पञ्चरात्रम्, २।६
२. वही, २।६६

विराट मे सामान्य मनुष्य की-सी शकालुप्रवृत्ति भी विद्यमान है, जो अर्जुन को उत्तरा प्रदान के रूप मे प्रकट हुई है और अर्जुन के द्वारा पुत्रवधू के रूप मे उत्तरा का ग्रहण होने से जिसका समाधान हो गया है। सक्षेप मे विराट के चरित्र मे निम्नलिखित गुण प्राप्त होते हैं—

(१) ब्राह्मणो के प्रति अपार श्रद्धाभक्ति
(२) पुत्र के प्रति वात्सल्य
(३) गोसरक्षण के प्रति आस्था
(४) सज्जनता
(५) सरलता
(६) वीरता
(७) स्वार्थ और लोलुपता का अभाव
(८) साहस, धैर्य और युद्धक्षमता
(९) विलास, धन एवं वैभव के स्थान पर प्रेम का महत्व

शकुनि : चरित्र-चित्रण

शकुनि का चरित्र दुष्टता के लिए प्रसिद्ध है। उसका चित्रण भी इसी रूप मे किया गया है। वह युधिष्ठिर की महत्ता और अर्जुन की वीरता से इतना जलता है कि वह दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर को किसी बलिष्ट शत्रु वाले ऊसर देश के दिये जाने का विरोध किये बिना नही रह सकता। वह कहता है—

'शून्यमित्यभिधास्यामि कः पार्थाद् बलवत्तर'
ऊपरेष्वपि सस्य स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः।'[1]

इसमे स्पष्ट है कि शकुनि अत्यन्त ईर्ष्यालु प्रकृति का है। वह अर्जुन के नामाक्षरो से अकित बाण के प्राप्त होने पर भी ईर्ष्या से कहता है कि यह कोई दूसरा अर्जुन हो सकता है। इस सन्देह से उसकी स्वाभाविक दुष्टता प्रकट होती है। मामा होने के कारण दुर्योधन शकुनि पर प्रेमभाव रखता है और उसे अपना हितैषी समझता है। पर वस्तुतः है वह दुर्योधन का मित्र-मुख शत्रु। द्यूत-क्रीडा करना, धोखा देना, की हुई प्रतिज्ञा को ठुकरा देना आदि उसके स्वाभाविक गुण हैं। शकुनि का चरित्र 'पञ्चरात्रम्', 'दूत-

१. पञ्चरात्रम्, १।४६

वाक्यम्' दोनों ही में आया है और दोनों में ही उसकी नीच प्रकृति का चित्रण किया गया है।

शल्य : चरित्र-चित्रण

नाटककार भास ने महाभारतीय शल्य के चरित्र में भी पर्याप्त विकास किया है। वह कर्ण के सारथी के रूप में चित्रित है तथा कर्ण के चरित्र को उभारने के लिए एक माध्यम पात्र है। वह कर्ण की प्रत्येक अनुभूति से प्रभावित हो कर पूरी सहानुभूति प्रकट करता है। महाभारत के शल्य में यह बात नहीं है। वह क्रूर और निर्दयी तथा विश्वासघाती है जबकि भास का शल्य मानवतावादी है। जहाँ दुःखद घटना का वर्णन आता है वहाँ उसे स्वयं ही कष्ट का अनुभव होता है। इस प्रकार सब कुछ मिला कर देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शल्य कर्ण की भाँति एक ही भावधारा में अनेक तरंगों के घात-प्रतिघात को सहता हुआ बहता चलता है।

जब कर्ण इन्द्र को ब्राह्मण समझ अपनी रक्षा के साधनभूत कवच-कुण्डलों को देने लगता है, वहाँ शल्य शुभचिन्तक के रूप में कह उठता है और कर्ण को दान देने से रोकता है। और अन्त में वह कर्ण से कहता है—

'भोः अंगराज ! वंचितः खलु भवान'[1]

कर्ण शल्य का उत्तर देता हुआ कहता है—'न खलु। शक्रः खलु मया वञ्चितः।'[2] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शल्य के उक्त कथन का विश्लेषण करने से अवगत होता है कि शल्य कर्ण के प्रति सहानुभूति रखता है और उसके अभ्युदय के प्रति उसके हृदय में महान् आस्था है। वह कर्ण का सहृदय सारथी है, तथा सदैव उसका शुभचिन्तक भी है। शल्य के तर्क अकाट्य होते हैं। वह अपनी प्रत्येक बात का समर्थन तर्क द्वारा ही करता है। शल्य को ही कर्ण अपने शस्त्रों के कुण्ठित होने की चर्चा करता है। इस प्रकार नाटककार भास ने शल्य के चरित्र में सहानुभूति, सहृदयता निर्मलता, आस्था, समयोचित तर्कणा-शक्ति, वीरता एवं रथ-संचालन की अद्भुत क्षमता का समावेश किया है।

कुन्तिभोज : चरित्र-चित्रण

कुन्तिभोज का चरित्र एक प्रकार से अवन्ति नरेश प्रद्योत के समान है।

---

१. कर्णभारम्, पृ० २४
२. वही, पृष्ठ २४

वह भी कन्या के विवाह की चिन्ता से आकुलित है। अविमारक नाटक की समस्त घटनाओं का केन्द्र-बिन्दु एक प्रकार से कुन्तिभोज ही है। कुन्तिभोज राजनीति का विशेष ज्ञाता है। उसके निम्नलिखित कथन से राज्यभार की महत्ता के साथ राजनैतिक सूझबूझ का परिचय भी प्राप्त होता है—

> धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्धया
> प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।
> ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
> रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः।'[१]

कुन्तिभोज के चरित्र का घरेलू विकास ही विशेष रूप में परिलक्षित होता है। वह अपनी पट्टमहिषी के साथ बैठ कर कन्या के विवाह की चिन्ता करता है और शीघ्र ही उसका पाणिग्रहण कर चिन्ता से मुक्त हो जाना चाहता है। उसके विचार में कन्या के चरित्र और शील का अत्यधिक महत्व है। उसका सम्बन्ध विभिन्न देश के राजाओं के साथ भी है। वह ऋषि और साधुओं पर आस्था करता है। वस्तुतः कुन्तिभोज का जीवन एक सरल रेखा के समान है।

सौवीरराज : चरित्र-चित्रण

सौवीरराज का चरित्र विकसित नहीं हो पाया है। यह चण्ड भार्गव के अभिशाप से चाण्डालावस्था को प्राप्त हो गया था। कहा जाता है कि चण्ड भार्गव एक बार सौवीर नरेश के राज्य में पधारे। उनके शिष्य को व्याघ्र ने मार डाला था। उसी समय सौवीरराज भी मृगया प्रसंग से उसके आश्रम में गये और उन्हें देख कर ऋषि ने उन्हें कटूक्तियाँ सुनाना आरम्भ किया। कारण ज्ञात न होने से सौवीरराज ने उन्हें चाण्डाल कह दिया। अब क्या था, ऋषि का क्रोध उबल पड़ा। उन्होंने राजा को शाप दे दिया—'सदार पुत्र चाण्डाल हो जाय।' उनके इस शाप को सुन कर राजा ने बहुत अनुनय-विनय की, इस पर मुनि ने शाप की अवधि एक वर्ष कर दी। सौवीरराज को अन्त्यजवेष में सपरिवार रहना पड़ा।

अविमारक नाटक के षष्ठ अंक में सदार पुत्र सौवीरराज का साक्षात्कार कुन्तिभोज से होता है। वह कुन्तिभोज को चण्ड भार्गव ऋषि के शाप की

---

१ अविमारक, १।१२

चर्चा करता है। वह कुन्तिभोज से अविमारक द्वारा धूमकेतु राक्षस के मारे जाने का भी वृत्तान्त कहता है। इस आख्यान से उसके चरित्र के निम्नलिखित गुण प्रस्फुटित होते हैं—

(१) वीर और मृगयासक्ति
(२) क्रोधी
(३) ऋषि और मुनियों की भक्ति
(४) कष्ट सहिष्णुता

वालि : चरित्र-चित्रण

किष्किन्धा के शक्तिशाली राजा के रूप में वालि उपस्थित होता है। यह वीर, साहसी, निर्भय और साम्राज्यवादी है। सुग्रीव वालि का सामना करने में असमर्थ है, अतः वह पराजित हो कर ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगता है। सीताहरण के पश्चात् राम से उसकी मित्रता होती है। राम को शक्तिशाली और पराक्रमी जान कर वह उनकी सहायता से वालि के साथ युद्ध करता है। वालि राम के वाणों से आहत होने पर जो तर्क-वितर्क करता है, उससे उसकी प्रतिभा का परिज्ञान होता है। वालि राम से पूछता है—'आपने धोखे से छिप कर मुझे क्यों मारा ? मैंने आपका क्या अपराध किया था ? आप तो धर्मोद्धारक हैं, फिर इस प्रकार की अनीति क्यों की ?' राम वालि के तर्क का उत्तर देते हैं कि तुमने अपने छोटे भाई की पत्नी को अपने यहाँ रख लिया, यही तुम्हारा अपराध है। वालि के आख्यान से उसके निम्नलिखित गुणों का उद्घाटन होता है—

(१) साहस और वीरता
(२) निर्भयता
(३) अपने ऊपर अमिट विश्वास
(४) धर्म-अधर्म के निर्णय की क्षमता
(५) तर्कणा शक्ति

सुग्रीव : चरित्र-चित्रण

सुग्रीव राम का विश्वासभाजन है। वह अपनी कार्य-सिद्धि के हेतु राम से मित्रता करता है। इसका चरित्र 'अभिषेक' रूपक में प्रारम्भ से ले कर अन्त तक किसी-न-किसी रूप में वर्तमान है। वालि से संत्रस्त हो कर वह राम की शरण जाता है और वालि-वध होने पर किष्किन्धा का अधिपति

होता है। राज्य प्राप्ति के पश्चात् वह सच्चे मित्र के समान राम के कार्य को सम्पादित कराने मे सहयोग देता है।

सुग्रीव मे राजनीतिक पटुता भी विद्यमान है। जब राम विभीषण को शरण देते हैं, तब सुग्रीव पर्याप्त सशंकित दिखलायी पडता है। उसका कहना है कि शत्रु के भाई का विश्वास क्या ? सुग्रीव राम के प्रत्येक कार्य मे मन्त्रणा देता है और उसकी मन्त्रणा एक राजनीतिज्ञ व्यक्ति की होती है। सुग्रीव के चरित्र मे निम्नलिखित गुण दिखलायी पडते हैं—

(१) राजनीतिज्ञता
(२) कृतज्ञता
(३) मित्रता के निर्वाह की क्षमता
(४) समयोचित सूझ-बूझ
(५) धीरता और कर्त्तव्यपरायणता

राजकुमारो मे अविमारक, उत्तर, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, अगद आदि प्रमुख हैं। नाटककार भास ने उक्त राजकुमारो के चरित्र का विश्लेषण कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

अविमारक : चरित्र-चित्रण

'अविमारक' नाटक के नायक रूप मे कुमार अविमारक का चित्रण आया है। इसका वास्तविक नाम विष्णुसेन है। यह काशिराज की पत्नी सुदर्शना मे अग्नि देव से उत्पन्न हुआ है, पर पालन के लिए इसे सौवीरराज की पत्नी सुलोचना को दे दिया गया है। यह अत्यन्त पराक्रमी और वीर है। बचपन मे ही इसने 'अवि' नामक राक्षस का वध कर दिया है। चण्ड भार्गव ऋषि के अभिशाप से वर्ष भर वह चाण्डालत्व को प्राप्त हुआ।

सहज पराक्रमशालिता और परदुःखकातरता उसके स्वभाव के अंग हैं। इसी कारण वह राजकुमारी कुरंगी को हाथी द्वारा आक्रमण किये जाने पर मुक्त करता है। उसका सौन्दर्य अद्भुत है, इसी कारण कुरंगी प्रथम दर्शन मे ही उसे अपना हृदय समर्पित कर देती है।

हस्तिसम्भ्रम के पश्चात् अविमारक एक प्रेमी के रूप मे प्रस्तुत होता है। वह कुरंगी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे मिलने के लिए प्रयत्न करता है। मदन-पीडा उसे मर्मान्तक होती है। वह छद्मवेश मे राजभवन मे प्रवेश करता है और कुरंगी के साथ एक वर्ष तक रहता है। जब राजा कुन्ति-

भोज को इस बात का पता लगता है, तो वह भाग निकलता है और आत्म-हत्या करने को सन्नद्ध हो जाता है। शैल शिखर पर उसे मेघनाद नामक विद्याधर मिलता है, जो सहानुभूति वश उसे एक जादूभरी अँगूठी देता है, जिसके सहारे वह प्रच्छन्न हो कर कन्यान्तःपुर में प्रविष्ट हो सकता है। इस अँगूठी की विशेपता यह रहती है कि दाहिने हाथ में धारणा करने पर व्यक्ति अदृश्य हो जाता है और बायें हाथ में पहनने पर प्रत्यक्ष हो जाता है। अविमारक इस अँगुलीयक की सहायता से कुरंगी से मिलता है और अन्तःपुर में क्रीड़ाएँ करता है।

उक्त आख्यान से अविमारक के शील में निम्नलिखित गुणों का समवाय दिखलायी पड़ता है—

(१) वीरता और पराक्रमशीलता
(२) निर्भयता
(३) सौन्दर्य-प्रियता
(४) काम-विह्वलता एवं मदन-पीड़ा को सहन करने में असमर्थता
(५) कार्य-सिद्ध करने की क्षमता
(६) सहिष्णुता
(७) पारिवारिक जीवन के प्रति आस्था

उत्तर : चरित्र-चित्रण

विराट राजकुमार उत्तर साहसी योद्धा एवं सामन्त हैं। वह कौरवों के साथ युद्ध करने के लिए जाता है। अर्जुन की सहायता से वह कौरव-सेना पर विजय प्राप्त करता है। जब विराट उसे बुला कर युद्ध का समाचार पूछता है तो वह विजय का श्रेय अपना स्वीकार नहीं करता। वह स्पष्ट रूप से कह देता है कि इस युद्ध में विजय उसकी वीरता का परिणाम नहीं है, किन्तु वृहन्नला के सहयोग से यह विजय प्राप्त हुई है। अज्ञातवास की समाप्ति के पश्चात् जब पाण्डवों का रहस्य प्रकट हो जाता है और उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ होना निश्चित हो जाता है तो वह अपने वीर बहनोई को प्राप्त कर अत्यधिक प्रसन्न होता है। वह कौरवों के शिविर में जा कर उत्तरा और अभिमन्यु के परिणय होने की सूचना देता है तथा उन्हें उस परिणय में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित करता हैं।

[illegible] और साहसी एवं पितृभक्त है।

लक्ष्मण : चरित्र-चित्रण

'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटक में लक्ष्मण का चरित्र अङ्कित हुआ है। 'अभिषेक' नाटक में लक्ष्मण राम के आज्ञाकारी सेवक और विनीत भक्त के रूप में सामने आते हैं। वे राम के अभिषेक के बन्द किये जाने पर क्रुद्ध हो जाते हैं और आवेश में आ कर दशरथ से युद्ध करने तक की बात कर डालते हैं। वे कैकेयी को मार कर राम का बलपूर्वक अभिषेक करने का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं—

'यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥'[१]

इस कथन से यह स्पष्ट है कि लक्ष्मण राम के चौदह वर्ष तक वन में रहने के कारण अत्यधिक दुखी हैं। उन्हें इस बात का कष्ट है कि राम किस प्रकार वन में निवास करेंगे ? जब राम सीता को वन ले जाने से इन्कार करते हैं तो लक्ष्मण तर्क दे कर सीता को राम के साथ वन जाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

लक्ष्मण के चरित्र को नाटककार ने रामायण की अपेक्षा अधिक विनीत रूप में अङ्कित किया है। जब राम सीता के अग्नि-परीक्षण का प्रस्ताव करते हैं तो लक्ष्मण को यह प्रस्ताव उचित नहीं लगता। किन्तु वे आज्ञापालन करते हैं और अपनी असमर्थता को व्यक्त करते हुए कहते हैं—"निष्फलो मम तर्कः।"[२]

स्पष्ट है कि लक्ष्मण राम के शुद्ध आज्ञाकारी हैं। उनमें भ्रातृ-प्रेम अत्यधिक है। जहाँ भी उनकी उद्दतता व्यक्त होती है वहाँ राम का नियन्त्रण उन्हें मार्ग पर ले आता है। अतः संक्षेप में लक्ष्मण राम के आज्ञाकारी सेवक और विनीत भक्त हैं।

भरत : चरित्र-चित्रण

भरत कठोरतापूर्वक धर्म का पालन करने वाले न्यायनीति के समर्थक हैं। वह अपने पिता और बड़े भाई राम को अत्यधिक प्यार करते हैं। उन्हें अपने परिवार के गौरव पर गर्व है। जब सुमन्त्र द्वारा भरत को सीताहरण का

---

१. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा संस्करण, श्लोक सं० १।२३
२. अभिषेक नाटक, चौखम्बा संस्करण, षष्ठ अङ्क

समाचार मिलता है तो भरत अपनी माँ कैकेयी के ऊपर अत्यधिक क्रुद्ध होते हैं और उसकी भर्त्सना करते हैं। पर जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि ऋषि अभिशाप के कारण यह दुर्घटना घटित हुई है, तो उनके मन में अत्यधिक पश्चाताप होता है। और वे अपनी माँ से क्षमा-याचना करते हैं। जब वे ननिहाल में हैं तभी अयोध्या में समस्त अनिष्ट घटनाएँ घटित होती हैं। दूत उन्हें लेने जाता है और वे अत्यन्त उत्सुकता से अयोध्या को प्रस्थान करते है। अयोध्या में प्रवेश करने के पूर्व प्रतिमादर्शन से ही उन्हें समस्त परिस्थिति का परिज्ञान हो जाता है। इस अवसर पर उन्होने जो उद्गार व्यक्त किये हैं, उनसे उनके हृदय की व्यथा ज्ञात की जा सकती है—

'अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥'[1]

प्रतिमा नाटक में भरत का चरित्र उत्तरोत्तर निखरता गया है। जब अयोध्या में गुरुजन लोग उनके अभिषेक का प्रस्ताव करते हैं, तो वे तुरन्त ही राम को उनका राज्य लौटाने वन चल देते हैं। वन में राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव करते हैं, पर राम जब यह कहते हैं कि धर्म इसी में है कि जिसे माता ने राज्य दिया वह राज्य का उपभोग करे। राम के इस उत्तर को सुन कर भरत की दशा विलक्षण हो जाती है और वे कहते हैं—'आपका जन्म जिस वंश में हुआ है उसी में मेरा भी हुआ है। हम दोनों के एक ही पिता हैं। केवल मातृ-दोष से पुरुषों को दोषी नही माना जा सकता। मैं आर्त हूँ, मुझ पर दया कीजिये—

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो,
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद्यथावत् ॥[2]

इस सन्दर्भ से भरत के चरित्र में निम्नलिखित गुण प्राप्त होते हैं। निस्सन्देह भरत का चरित्र सभी प्रकार की कालिमाओं से रहित है—

---

१ प्रतिमा नाटक, चौखम्बा संस्करण, श्लोक सं० ३।१०
२. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा संस्करण, श्लोक सं० ४।२१

(१) अपने वंश के प्रति अपार अनुराग
(२) पिता और बड़े भाई के प्रति अटूट भक्ति
(३) त्याग और संयम
(४) धर्मभीरुता

शत्रुघ्न : चरित्र-चित्रण

शत्रुघ्न का चरित्र भरत के चरित्र के साथ ही सम्बद्ध मिलता है। इनके चरित्र का विशेष विकास नहीं पाया जाता है। अभिषेक और प्रतिमा नाटक इन दोनों में ही शत्रुघ्न का चरित अविकसित रह गया है। प्रतिमा नाटक में शत्रुघ्न वशिष्ठ और वामदेव के आने की सूचना राम को देते हैं। यहाँ नाटककार भास ने एक नयी कल्पना प्रस्तुत की है। वाल्मीकीय रामायण में बताया गया है कि शत्रुघ्न भरत के साथ ननिहाल जाते हैं। पर नाटककार भास उन्हें अयोध्या में ही रहने देता है और वे राम का अभिषेक करने के लिए तीर्थोदक का कलश लेकर प्रस्तुत रहते हैं। इस प्रकार शत्रुघ्न के चरित्र में भ्रातृ-भक्ति के साथ राम की सेवा की वृत्ति भी दिखलायी गयी है।

अंगद : चरित्र-चित्रण

अंगद के चरित्र का भी स्वतन्त्र विकास दिखलायी नहीं पड़ता। यह बालि और तारा का पुत्र है। इसे नाटककार ने बालि की मृत्यु के समय ही प्रस्तुत किया है। बालि मरते समय अपने इस पुत्र को राम और सुग्रीव को समर्पित कर देता है। सीतान्वेषण के लिए गयी हुई वानर सेना का नायक अंगद ही है। अंगद की देख-रेख में ही चारों दिशाओं में सीतान्वेषण के लिए वानरों को भेजा जाता है। हनुमान अंगद के आदेश से ही समुद्र पार कर लंका जाते हैं और सीता का पता लगाते हैं। इस प्रकार अंगद के चरित्र में साहस, वीरता, संगठन शक्ति एवं सेवा वृत्ति आदि गुण प्रधान हैं।

रानियाँ एवं राजकुमारियाँ

नाटककार भास का राजपरिवारों के साथ निकट का सम्बन्ध रहा है। यह भी सम्भव है कि वे स्वयं राजा या सामन्त कुमार रहे हों। यही कारण है कि उन्होंने राजपरिवारों का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। राजपरिवारों के अन्तःपुर का सूक्ष्म और जीवन्त चित्रण अनुभूति के बिना सम्भव नहीं है। इन्होंने वासवदत्ता, पद्मावती, अंगारवती, गान्धारी, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी,

मालवी और तारा आदि रानियों का यथार्थ चरित्र अंकित किया है। इसके अतिरिक्त सीता, कुरंगी, दुश्शला जैसी राजकुमारियों के चरित्र भी अंकित किये गये हैं। भास चरित्रों के प्रस्तुतीकरण में अद्वितीय हैं। नारी-चरित्रों के चित्रण में उनकी प्रमुख विशेषता यह है कि पात्र के साथ सामाजिकों का सीधा सम्बन्ध अंकित रहता है और उन्हें पात्रों के सम्बन्ध में धारणा बनाने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है।

वासवदत्ता : चरित्र-चित्रण

भास के नारी चरित्रों में सबसे प्रमुख वासवदत्ता का चरित्र है। यह चरित्र 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्ता' दोनों नाटकों में विकसित हुआ है। वह अपने पति के अभ्युदय के लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए तैयार रहती है। उसे अपने उच्चकुल का अभिमान है। 'स्वप्नवासवदत्तं' के प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही तपोवन में राजपुरुषों द्वारा की जाने वाली उत्सारणा सुन कर उसे दुःख होता है। वह कहती है—'तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः।'[१] चाहे परिचय हो अथवा न हो वह अपने बराबरी वालों को देख कर प्रसन्न होती है, उनसे स्नेह करती है। उसके मन में ईर्ष्या की भावना तनिक भी नहीं है। प्रथम अंक में पद्मावती को देख कर यह कहती है—'राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते।'[२] वह दूसरे के गुणों की प्रशंसा करती है। वासवदत्ता के चरित्र में स्त्रियों की ईर्ष्यालु प्रकृति का दर्शन नहीं होता। प्रायः यह देखा जाता है कि स्त्रियाँ अपने को ही सुन्दर समझती हैं और वे दूसरी स्त्रियों के सौन्दर्य को नगण्य मानती हैं। पर वासवदत्ता के चरित्र में यह दोष नहीं है। वह पद्मावती के रूप को देख कर उसकी प्रशंसा करती है।

रूपयौवनशालिनी होने पर भी वह पतिव्रता और सती नारी है। वह पर पुरुष दर्शन नहीं करती। प्रथम अंक में ब्रह्मचारी के तपोवन में प्रवेश करने पर वह लजाते हुए 'हम' कह कर अपनी अरुचि प्रकट करती है। पद्मावती को वासवदत्ता के इस चरित्र से विश्वास हो जाता है कि इसकी रक्षा करना कठिन नहीं है।

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, प्रथम अंक, पृ० ८

२. वही, पृ० १७

वासवदत्ता के हृदय मे राजा के प्रति अपार स्नेह है। जब ब्रह्मचारी आ कर राजा के मूर्च्छित होने की बात सुनाता है तो वह रोने लगती है। और अपने मन मे दुःख से कहती है कि अब यौगन्धरायण का मनोरथ पूरा हो। पचम अक मे पद्मावती की अस्वस्थता का समाचार सुन कर वह राजा के लिए चिन्तित हो जाती है। वह सोचती है कि विरह व्यथित राजा के लिए पद्मावती विश्राम स्वरूप है, उसके अस्वस्थ हो जाने से राजा को कष्ट होगा। चतुर्थ अक मे जब वह पद्मावती से वार्तालाप करती है तब वह बतलाती है—'राजा तुम्हें जितना प्रिय है उससे भी अधिक वासवदत्ता को प्यारा है।' उसको अपने सुख की अपेक्षा राजा का हित अधिक अभीष्ट है। यह जान कर कि खोये हुए राज्य की प्राप्ति के लिए मगधराज दर्शक की मित्रता आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब राजा का पद्मावती से विवाह हो। इतना ही नही वह अपनी सुख सुविधाओ का त्याग कर यौगन्धरायण के साथ दर दर भटकती हुयी अपनी सौत पद्मावती के घर मे न्यास रूप मे रहना स्वीकार कर लेती है। अपने विषय मे राजा के मुख से निकला हुआ एक प्रेमोद्गार ही उसे उत्साहपूर्वक सभी प्रकार के कष्ट सहन करने के लिए पर्याप्त है। राजा कहता है—

"पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्ध न तु तावन्मे मनो हरति ॥"[१]

इस कथन को सुन कर वासवदत्ता अपने सौभाग्य की प्रशसा करती हुयी कहती है—"दत्त वेतनमस्य परिखेदस्य। अहो अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते।"[२] वह अपने स्वार्थ के लिए पद्मावती को राजा से विरक्त नही करती। वह उसके सामने राजा की प्रशसा कर उसके अनुराग को वृद्धिगत करती है। वह असमय मे राजा के समक्ष उपस्थित भी नही होना चाहती। उसे भय है कि कहीं राजा के हित के लिए की हुयी यौगन्धरायण की योजना असफल न हो जाय। उसके मन मे यह पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार वह राजा को प्रेम करती है उसी प्रकार राजा भी उससे प्रेम करता है। उसके मन मे पद्मावती और उदयन के विवाह के होने पर भी दुःख नही है।

नाटककार भास ने वासवदत्ता को आदर्श सपत्नी के रूप मे चित्रित किया

---

१. स्वप्नवासदत्तम्, चौखम्बा सस्करण, प्रथम अर्क, पृ० १७ श्लोक सं० ४।४
२ वही, चौखम्बा सस्करण, पृ० १९

है। उसे पद्मावती को देख कर ईर्ष्या नहीं होती। प्रथम अंक में राजा के साथ पद्मावती के भावी विवाह का समाचार सुन कर वह उसे आत्मीय समझने लगती है। विवाह के समय वह स्वयं सौभाग्य माला गूँथती है। इस प्रकार नाटककार ने वासवदत्ता का यह प्रेम जीवन संघर्ष की कसौटी पर कस कर खरा दिखलाया है। उदयन की सुख-सुविधा के लिए वह अपनी समस्त सुख-सुविधा का त्याग कर सकती है। उसका प्रेम आदर्श प्रेम है। वह आरम्भ से ले कर अन्त तक अपने पवित्र प्रेम का परिचय देती है। पतिव्रता नारी के लिए पति ही सर्वस्व है। पति के लिए ही उसका तन-मन-धन सब कुछ समर्पित है। स्त्री-सुलभ ईर्ष्या रहते हुए भी उसने कभी उसे प्रकट होने नही दिया। वह पद्मावती को सौत की तरह नहीं छोटी वहन की तरह आजीवन मानती रही। संक्षेप में वासवदत्ता एक आदर्श नारी है। उसका पतिव्रत अन्य नारियों के लिए अनुकरणीय है।

पद्मावती : चरित्र-चित्रण

पद्मावती मगध के राजा दर्शक की वहन है। यह एक अत्यन्त सुन्दरी है। वासवदत्ता इसके रूप की प्रशंसा करती है। वह कहती है—"नहि रूपमेव, वागपि खल्वस्य मधुरा।"[१] अर्थात् पद्मावती केवल सुन्दर ही नहीं है अपितु मधुर भाषिणी भी है। नाटककार ने इसे तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अन-अहंकारा, मधुरवाक् और सदाक्षिण्या, आदि विशेषणों से युक्त किया है। अवस्था कम होने पर भी सांसारिक व्यवहार का ज्ञान उसमें प्रौढ़ है। वह ब्रह्मचारी के आने पर जब वासवदत्ता पर पुरुष दर्शन में अरुचि प्रकट करती है तो पद्मावती उसकी रक्षा को सहज मानती है। उसका अभिमत है कि जो नारियाँ अपरिचित पुरुषों से उत्साहपूर्वक मिलती-जुलती है उनकी रक्षा करना कठिन है। जो नारियाँ इस प्रवृत्ति की नहीं होती उनकी रक्षा सरलतापूर्वक की जा सकती है। पद्मावती की इस विचारधारा में उसका प्रौढ़ ज्ञान समाहित प्रतीत होता है।

उसकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र है, वह किसी भी बात के रहस्य को शीघ्र ही अवगत कर लेती है। कठिन-से-कठिन समस्या का समाधान वह प्राप्त कर लेती है। चतुर्थ अङ्क में विदूषक राजा को यह बतलाने के लिए बाध्य करता

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० १९

है कि पद्मावती और वासवदत्ता मे से उसे कौन अधिक प्रिय है। उस समय राजा अपने निर्णय को बतलाने मे झिझकता है। वह राजा की हिचकिचाहट से उसके मनोगत भाव को समझ लेती है। वह जान जाती है कि राजा के मन से वासवदत्ता का ध्यान अभी दूर नही हुआ है। यदि उसे पद्मावती अधिक प्रिय होती तो वह इस बात को स्पष्ट शब्दो मे कह देता 'वासवदत्ता तो जीवित है ही नही।' उसके रुष्ट होने का कोई भय नही है। इससे प्रतीत होता है कि वासवदत्ता को वह अधिक प्रेम करता है। अपने मन की बात को वह स्पष्ट शब्दो मे नही कह सकता है, क्योकि ऐसा करने से उसे पद्मावती के रुष्ट होने का भय है। पद्मावती इस रहस्य को समझ जाती है। यह उसकी बुद्धि की कुशाग्रता का परिचायक है।

पद्मावती वृद्धो का आदर करने वाली धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री है। वह तपोवन मे पहुंचते ही वृद्ध तपस्विनियों को प्रणाम करती है। वह उदार एव दानी है। अतएव तपोवन मे पहुंचते ही घोषणा करवाती है कि जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो, वह उसे आ कर माँग ले। राजकुमारी अर्थियो को उनकी मनचाही वस्तु देना चाहती है। याचको के न आने पर जब यौगन्ध-रायण आ कर घोषणा के अनुसार अपनी बहन को न्यास के रूप मे रखने की माँग करता है, तो कचुकी उसकी माँग स्वीकार करने मे आगा-पीछा करता है। इस पर पद्मावती उसे डाँटती है। वह कहती है—'आर्य ! प्रथममुद्घोष्य क· किमिच्छती त्ययुक्तमिदानी विचारयितुम्। यदेष भणति तदनुतिष्ठ-त्वार्य·।'[1]

उसका स्वभाव दयालु और सरल है। दूसरे के दुःख का वृत्तान्त सुन कर वह घबडा जाती है। प्रथम अङ्क मे ब्रह्मचारी के मुख से वासवदत्ता के जल जाने पर राजा के मूच्छित होने की बात सुन कर वह स्तब्ध हो जाती है। जब राजा के होश मे आने का समाचार उसे ज्ञात होता है, तब उसके मन को शान्ति मिलती है।

पद्मावती भी राजा उदयन से वासवदत्ता के समान ही प्रेम करती है। ब्रह्मचारी के मुख से राजा के गुणो को सुन कर उसके हृदय मे प्रेम का अकुर उत्पन्न होता है। उसके इस भाव को उसकी चेरी भी जानती है। वह वत्स-राज उदयन से अगाध प्यार करती है। उसके मन में यह विश्वास है कि जितना राजा से वह प्रेम करती है, उतना वासवदत्ता नहीं करती थी।

---

१ स्वप्नवासदत्तम्, प्रथम अङ्क, पृ० २८

वह आदर्श सपत्नी है। इस गुण में उसका स्थान वासवदत्ता से भी उन्नत है। वासवदत्ता उदार सौत होने पर भी कभी-कभी उसके मन में ईर्ष्या आ जाती है, पर पद्मावती के चरित्र में कहीं ईर्ष्या नहीं दिखलायी देती है।

नाटककार भास ने पद्मावती को धर्मात्मा और उदार हृदया चित्रित किया है। तपोवन में जब वह राजमाता के दर्शन करने आती है, तो उसकी धर्म-प्रियता और उदारता का चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

सत्यपरायणता भी उसके चरित्र का एक पहलु है। घोषणा के पश्चात् वह न्यास रूप में यौगन्धरायण की बहन को रखने से इन्कार नही करती। अतः सत्यपरायणता स्पष्ट होती है।

उसका स्वभाव सरल और हृदय विशाल है। अपने संरक्षण में रखने पर भी उसने वासवदत्ता का सदा आदर किया है। 'आर्या' शब्द से सदा ही वह उसे सम्बोधित करती रही है। ईर्ष्या-द्वेष का तो लेशमात्र भी उसके चरित्र में नहीं है।

वासवदत्ता के प्रकट होने पर वह आश्चर्य में डूबती-उतराती अपने अन-जाने रूप में किये गये अपराध के लिए पैरों में गिर कर क्षमा-याचना करती है। इस प्रकार आदि से अन्त तक पद्मावती का चरित्र एक सती-साध्वी भार-तीय रमणी का चरित्र है।

अंगारवती : चरित्र-चित्रण

अंगारवती के चरित्र का विकास 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में पाया जाता है। यह महासेन प्रद्योत की पत्नी है। यह पतिपरायणा और अपने कर्त्तव्य तथा त्याग से गार्हस्थ्य-जीवन को स्वर्ग बनाने वाली नारी है। यह आरम्भ में कन्या विवाह के लिए चिन्तित दिखलायी पड़ती है। राजा महासेन इस घरेलू समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिए रानी के साथ बैठ कर परामर्श करता है। अंगारवती विभिन्न राजाओं द्वारा वासवदत्ता की माँग किये जाने पर वत्सनरेश उदयन के हाथ उसका विवाह करने की सम्मति देती है। राजा उसे विपरीत वृत्ति वाला कह कर जामाता के रूप में अस्वीकार करता है।

वासवदत्ता को वीणावादन की अधिक अभिरुचि होने के कारण अंगारवती उसे वीणा भेंट करती है तथा उसके लिए शिक्षक भी नियुक्त कर देती है। वह उदयन को इस कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ समझती है। राजा प्रद्योत षड्यन्त्र कर उदयन को अपने यहाँ बुलाता है और अंगारवती की सलाह से उसे वासवदत्ता

का वीणा-शिक्षक नियत कर दिया जाता है। अगारवती के चरित्र मे निम्न-लिखित गुण हैं—

(१) पतिपरायणाता
(२) पारिवारिक समस्याओं के समाधान का पूरा प्रयत्न
(३) घरेलू कार्यों मे यथोचित परामर्श दे कर उन्हें सरल बनाने का प्रयास
(४) गार्हस्थ्य जीवन को मधुमय बनाने के हेतु आवश्यक सेवा और त्याग
(५) कन्या को सुयोग्य वर को सौंप कर निश्चिन्त हो जाने वाली मातृ-भावना

गान्धारी : चरित्र-चित्रण

गान्धारी महाराज धृतराष्ट्र की पतिव्रता पत्नी है। वह एक सुयोग्य माता भी है। दुर्योधन के दुष्ट होने पर भी वह उससे स्नेह करती है। 'ऊरुभग' मे आया है कि उसके पति धृतराष्ट्र अन्धे थे, अत वह पति-भक्ति के रूप मे अपनी आंखो पर पट्टी बांधे रहती थी। इससे उसका अपूर्व पातिव्रत प्रकट होता है। जब दुर्योधन को भीम गदा युद्ध मे आहत कर देता है तो धृतराष्ट्र और गान्धारी उससे मिलने के लिए युद्ध भूमि में पहुँचते हैं। गान्धारी दुर्योधन को सम्बोधित कर कहती है कि पुत्र तुम कहाँ हो ? हम लोग तुमसे मिलने के लिए बेचैन हैं।

'जात सुयोधन ! देहि मे प्रतिवचनम्। पुत्रशतविनाशदु स्थित समाश्वासय महाराजम्।'[१] गान्धारी के इस कथन से उसके हृदय की मर्मव्यथा तो प्रकट होती ही है साथ ही उसका पुत्र वात्सल्य भी प्रकट होता है। वह अपने को धन्य मानती है कि उसने निर्भय सन्तान उत्पन्न की है। उसका यह गौरवपूर्ण कथन भारतीय रमणी के लिए आदर्श है। इस प्रकार इस नाटक मे नाटक-कार ने गान्धारी के चरित्र का विशेष विकास नहीं दिखाया है। केवल उसके तीन ही गुण विकसित हो पाये हैं—(१) सन्तान, वात्सल्य (२) पतिपरायणता एव (३) वीर सन्तान उत्पन्न करने का अभिमान। नि सन्देह वह एक आदर्श-रमणी है।

मालवी : चरित्र-चित्रण

मालवी दुर्योधन की पत्नी है। वह दुर्योधन को हृदय से प्यार करती है।

---

१. ऊरुभग, प्रथमाङ्क, पृ० ३६

जब दुर्योधन रणभूमि में भीम द्वारा आहत हो कर अन्तिम साँस गिनता है उस समय मालवी उपस्थित हो कर अपने पति का दर्शन करती है। दुर्योधन रोती हुई मालवी को आश्वासन देते हुए कहता है—'मालवी ! गदाघात से मेरी भृकुटि भिन्न हो गयी है, वक्षस्थल भी रुधिराप्लुत हो गया है, पर तू इसलिये मत रो कि तेरा पति युद्ध में मारा गया, है, वह परांगमुख हो कर युद्ध से भागा नहीं है।' दुर्योधन के इस कथन में केवल आश्वासन ही नहीं है किन्तु मालवी का अनुराग भी व्यक्त हुआ है। वस्तुतः मालवी सुयोग्य पत्नी और वात्सल्यमयी माँ है।

कौशल्या : चरित्र-चित्रण

कौशल्या विश्वस्त पत्नी और उदार हृदया माँ है। वह दशरथ की उसी प्रकार सेवा करती है जिस प्रकार गान्धारी धृतराष्ट्र की। 'प्रतिमानाटक' में कौशल्या के चरित्र का विकास तो नहीं हुआ है पर उसकी एक किरण अवश्य प्रस्फुटित हुयी है। वह राम के वन-गमन के अवसर पर दशरथ को सान्त्वना देती है। दशरथ के कथन से कौशल्या का महत्व व्यक्त होता है। दशरथ कहते हैं—"कौशल्ये ! सारवती खल्वसि। त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः।[१] अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम्। नैव सोढुं न संहर्तुंशक्नोमि मुषितेन्द्रियः।[२]" कौशल्या में नेता बनने का गुण है पर वह अपने इस गुण का उपयोग नहीं करती। जब लंका विजय कर राम जनस्थान में पधारते हैं तो भरत की सेना के साथ कौशल्या भी वहाँ पहुँचती है। वह वहाँ अपना किसी भी प्रकार का आदेश या प्रत्यादेश नहीं देती। अतएव नाटककार भास ने कौशल्या का चरित्र सहृदयतापूर्वक अंकित किया है। महाराज दशरथ कैकेयी से आतंकित रहते हैं पर कौशल्या से नहीं।

सुमित्रा : चरित्र-चित्रण

सुमित्रा महाराज दशरथ से अपार स्नेह करती है पर उसे सबसे पीछे स्थान प्राप्त होता है। उसके पति दशरथ कौशल्या का सम्मान करते हैं और कैकेयी से भयभीत रहते हैं। सुमित्रा माध्यस्थ का काम करती है। उसके दो पुत्रों में से एक पुत्र लक्ष्मण राम की सेवा में नियुक्त है और दूसरा शत्रुघ्न

---

१. प्रतिमा नाटक, पृ० ५४

२. वही; पद्य २।६

भरत की सेवा मे। जब महाराज दशरथ राम के वियोग में मूर्च्छित हो कर पड जाते हैं तो कौशल्या और सुमित्रा जा कर उन्हे धैर्य देती हैं। दशरथ सुमित्रा की प्रशसा करते हुए कहते हैं कि तुम धन्य हो, तुमने ऐसे सत्पुत्र को जन्म दिया है जो रात-दिन छाया के समान रघुकुल श्रेष्ठ राम की वन मे सेवा करता है। दशरथ के इस कथन से सुमित्रा का महत्व स्पष्ट प्रकट होता है। सन्दर्भ निम्न प्रकार है—अयि सुमित्रे।

तवैव पुत्र' सत्पुत्रो येन नक्तन्दिव वने।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥[१]

इस प्रकार सुमित्रा के चरित्र मे धैर्य, सेवावृत्ति और पतिपरायणता समाविष्ट है।

कैकेयी : चरित्र-चित्रण

'प्रतिमा नाटक' की कथावस्तु का विस्तार कैकेयी के चरित्र से ही हुआ है। उसके वचनो से राम का वनवास, दशरथ-मरण एव परवर्ती समस्त घटनाएं घटित होती हैं। इसी कारण उसे सभी की ताडना एव उपालम्भोक्तियां सहन करनी पड़ती हैं. जब भरत कहते हैं कि तेरे कुकृत्य के कारण प्रतापी इक्ष्वाकुवशी राजाओ की स्त्रियो का अपहरण होने लगा तो कैकेयी से रहा नहीं जाता और उसका स्वाभिमान जाग्रत हो जाता है। वह प्रतिहारी को भेजकर भरत को भीतर बुलाती है, और कहती है कि पुत्र, तुम्हे मालुम नहीं। ये सारी घटनाएँ ऋषि शाप के कारण घटित हुयी हैं। कैकेयी सुमन्त्र के द्वारा अभिशाप की समस्त घटना को भरत के समक्ष प्रस्तुत करती है, जिससे भरत को सन्तोष होता है और वे कैकेयी को निरपराध समझते हैं।

'पुरा मृगया गतेन महाराजेन कस्मिश्चित सरसि कलश पूरयमाणो। वनगजबृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशकया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसित।''[२] वह कहती है कि ऋषिशाप को सत्य करने के लिए ही मैंने राम के वनवास का वर मांगा था और मैं चौदह दिन के लिए ही वनवास चाहती थी, किन्तु मानसिक विकलता के कारण चौदह

---

१. प्रतिमा नाटक : २।१०
२. वही : षष्ठाङ्क, पृ० १६४

वर्ष का वनवास निकल गया। फलतः राम को चौदह वर्षों तक वन में रहना पड़ेगा।'[1]

कैकेयी के इस आख्यान से उसके चरित्र पर पूरा प्रकाश पड़ता है। वह हृदय से निर्दोष है, पर भवितव्यतावश उसे ऐसे दुःखद कार्य करने पड़े जिनका फल उसे स्वयं अवमानना और भर्त्सना के रूप में प्राप्त हुआ है।

तारा : चरित्र-चित्रण

तारा के कारण ही वाली और सुग्रीव का युद्ध हुआ। वाली जब सुग्रीव से युद्ध करने के लिए जाने लगता है तो तारा उसे बहुत रोकती है। वह वाली के पैरों में गिर कर प्रार्थना करती है कि इस युद्ध में अवश्य ही अनिष्ट घटना घटित होगी। अतएव युद्ध में सम्मिलित नहीं होना चाहिये। पर वाली को अपने बल-पौरुष पर अटूट विश्वास था। अतः वह तारा की उपेक्षा कर सुग्रीव से युद्ध करने के लिए गया। राम द्वारा वाली के आहत होने पर तारा युद्ध-भूमि में जाती है और वाली की मृत अवस्था को देख कर चिन्तित होती है। उसकी रक्षा का भार सुग्रीव ग्रहण कर लेता है।

तारा के चरित्र में प्रमुख दो बातें हैं—पहली बात तो यह है कि तारा वाली से प्रेम करती है और वाली की रक्षा का सदैव प्रयास करती है। दूसरी बात यह है कि तारा की तर्कप्रतिभा अद्भुत है। वह युद्ध के लिए जाते हुये वाली को अनुनय-विनय के साथ अपने तर्क से भी रोकती है। तारा के चरित्र का विशेष विकास नाटककार ने नहीं दिखाया है।

सीता : चरित्र-चित्रण

राजकुमारियों में सीता का स्थान प्रथम है। राम के साथ सदैव सीता संलग्न है। पतिपरायणता के साथ वह सुख-दुख की सहधर्मचारिणी भी है। आदर्श पातिव्रत का ऐसा उदाहरण भारतीय साहित्य में और दूसरा नही। राम के साथ वन में निवास करने को वह अपना अहोभाग्य मानती है। उसका यह कथन—"तत खलु मे प्रसादः।"[2] अर्थात् वन मेरे लिए प्रसाद होगा। जब राम सीता को वन में साथ ले जाने से इनकार करते हैं तो सीता के मन में अपार वेदना होती है। लक्ष्मण के अनुरोध पर राम सीता को साथ ले जाने

---

१. प्रतिमा नाटक, षष्ठांक पृ० १६५

२. वही, प्रथम अंक, पृ० ४०

के लिए तैयार हो जाते हैं तो सीता लक्ष्मण को भी साथ ले जाने के लिए निवेदन करती है। राम नगरवासी जनो को सम्बोधन कर कहते हैं—

"स्वैर हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्त. ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।"[1]

स्पष्ट है कि सीता के वनगमन से राम दुखी हैं।

सीता के चरित्र की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह परिस्थितियो के अनुकूल अपने को परिवर्तित कर लेती है। वन मे पहुँच कर सीता कुटी की व्यवस्था करती है और स्वच्छता एव सफाई का भी पूरा ध्यान रखती है। सीता के इस कथन मे कितना त्याग और संयम समाहित है यह अनुमान की वस्तु है—"आर्ये ! उपहारसुमन-आकीर्ण सम्मार्जित आश्रम । आश्रमपदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचार. । तद् यावदार्यपुत्रो नागच्छति । तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि"।[2]

राम वृक्षो मे जल देती हुयी सीता को देख कर उसके कठोर श्रम की प्रशसा करते हैं। वे कहते हैं कि सीता का जो हाथ दर्पण उठाने के श्रम से भी थक जाता था, वही हाथ अब घडो के उठाने मे भी नहीं थक रहा है। वननिवास लताओ के साथ स्त्रियों की भी सुकुमारता को कठोरता के रूप मे परिणित कर देता है। राम के इस कथन से सीता की कोमलता मिश्रित कठोरता व्यक्त होती है। राम का कथन निम्न प्रकार है—

"योऽस्या. कर. श्राम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेद कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वन स्त्रीजनसौकुमार्यं सम लताभि. कठिनीकरोति ॥"[3]

जब राम अपने पिता का वार्षिक श्राद्ध अपने वैभव के अनुरूप करना चाहते हैं तो सीता उन्हें समझाती हुयी कहती हैं कि वैभवानुरूप श्राद्ध तो भरत करेंगे ही, आप वन्य-जीवन के उपयुक्त पुष्प-फल से ही श्राद्ध कीजिये। इस कथन से सीता की समझदारी प्रकट होती है। वह समयोचित सलाह राम को देती है।

सीताहरण में सीता के चरित्र का उत्कर्ष रूप प्रदर्शित हुआ है। नाटककार

---

१. प्रतिमा नाटक, प्रथमाक, पद्य २९

२. वही, पचम अक, पृ० १२५

३. वही ५।३

ने लक्ष्मण को वहाँ से पहले से ही हटा दिया है, जिससे लक्ष्मण के प्रति कटु वचन कहने का अवसर ही नहीं आया। इस प्रकार नाटककार भास ने वाल्मीकीय रामायण में सीता के चरित्र में जो कमियाँ रह गयीं थी उनका परिष्कार किया है। लंका में रावण द्वारा नाना प्रकार के प्रलोभन दिये जाने पर भी सीता अपने चरित्र में अटल है। भय, आंतक और नाना प्रकार की धमकियाँ भी सीता को विचलित करने में असमर्थ हैं। जब सीता किसी प्रकार रावण की बात को स्वीकार नहीं करती तो वह राम और लक्ष्मण के कृत्रिम सिर उसके समक्ष प्रस्तुत करता है और कहता है कि अब तुम्हारे रक्षक ही नहीं रहे तो तुम्हारा उद्धार कौन करेगा ? अब तुम विधवा हो गयी हो, अतएव तुम्हें स्वतन्त्र रूप से वरण करने का अधिकार है। क्षत्रियों में विधवा विवाह वर्जित नहीं। अतएव तुम्हें अभी भी विचार करने के लिए अवसर प्राप्त है। तुम चाहो तो अपने जीवन को सुखी, समृद्ध और ऐश्वर्यशाली बना सकती हो। रावण के इस वक्तव्य को सुन कर सीता मूर्च्छित हो जाती है और चेतना लौटने पर विलाप करती हुयी रावण की भर्त्सना करती है। वह निर्भय हो कर रावण को खोटी-खरी बातें सुनाती है। इसी समय इन्द्रजित के वध का समाचार सुन कर रावण क्रोधाभिभूत हो कर सीता को मारने के लिए उठता है। उपस्थित राक्षस वर्ग किसी प्रकार समझा-बुझा कर रावण को शान्त करता है।

स्पष्ट है कि नाटककार भास ने सीता के चरित्र को सभी दृष्टिकोणों से विकसित किया है। 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' दोनों नाटकों में ही सीता के चरित्र की उज्ज्वल किरणें दिखलायी पड़ती है। संक्षेप में सीता के चरित्र में निम्नलिखित गुणों का समवाय पाया जाता है—

(१) पतिपरायणता एवं पति की सहधर्मचारिणी वन-सेवा की भावना

(२) परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होने की क्षमता

(३) वन के वातावरण में भी पशु-पक्षियों और वन-लताओं के प्रति अपार वात्सल्य

(४) दृढ़ता एवं निर्भीकता

(५) कठिन से कठिन विपत्ति के आने पर भी साहस और धैर्य का सद्भाव

(६) पुरजन-परिजन के प्रति सेवा की भावना

(७) गुरुजनों का आदर-सत्कार

कुरंगी : चरित्र-चित्रण

कुरंगी का चरित्र 'अविमारक' नाटक की नायिका के रूप में विकसित है। वह रूप यौवन सम्पन्ना अविवाहिता कन्या है। यौवन के उभार के अवसर पर उसे अविमारक का दर्शन होता है और मदन ज्वर से ग्रस्त हो जाती है। यह सत्य है कि उसका प्रेम शुद्ध और सात्विक है। किसी भी प्रकार के प्रलोभन का उसमें समावेश नहीं है। अविमारक के कुल-शील का उसे ज्ञान नहीं, फिर भी उसके तरुण यौवन तथा सुगठित सुन्दर शरीर को देख कर वह लुब्ध हो जाती है। प्रथम दर्शन में ही उसकी आसक्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह अविमारक के अभाव में जीवित नहीं रह सकती। फलतः उसकी सखियाँ उसकी प्राण-रक्षा के लिए अविमारक को ढूँढने जाती हैं। कामदशा से विह्वल होने पर भी उसमें शील संरक्षण की भावना सुरक्षित है। प्रथम बार रात्रि में उसके अनजाने अविमारक उसका आलिंगन करता है और उसे यह पता चलता है कि यह अविमारक है तो उसे पश्चात्ताप होता है। वह इसे महान् चारित्रिक पतन मानती है। स्त्रीसुलभ हाव-भाव तथा रूठने की भावना भी उसमें विद्यमान है। जब सखियाँ परिहास करती हैं, तो वह रूठने का अभिनय करती है। एक वर्ष के संयोग के बाद उसे अविमारक का वियोग सहन करना पड़ता है, जिसमें उसकी दशा विचित्र हो जाती है। वह वियोग से घबड़ाकर आत्महत्या करना चाहती है पर अविमारक आ कर उसकी रक्षा कर लेता है। वस्तुतः कुरंगी का प्रेम अत्यन्त उत्कृष्ट और विशुद्ध है। वह वसनात्मक प्रेम का आचरण करने पर सात्विक प्रेम के निकट है। अविमारक उसका प्रेमी नहीं अपितु पति है। स्त्रीजनोचित कमियाँ और विशेषताएँ दोनों ही उसके चरित्र में पायी जाती हैं। यौवन का उभार होने पर भी वह कुपथ का अनुसरण करना नहीं चाहती। विवेकशीलता और विचारशक्ति भी उसमें समाहित है। कुरंगी में प्रेम का संचार वीरतापूर्ण घटना के घटित होने पर ही होता है। हस्तिसम्भ्रम से रक्षा करने के कारण ही वह अविमारक को अपना हृदय समर्पित करती है। वह वीर-पूजक नारी है अतः वीर प्रिय का स्वागत करती है। जो अपने प्राणों की बाजी लगा कर उसकी रक्षा करता है, उसके लिए वह अपना सब कुछ समर्पित कर देती है। इस प्रकार कुरंगी सच्ची प्रेमिका और सफल पत्नी है।

दुश्शला : चरित्र-चित्रण

दुश्शला एक दुखी नारी है यह गान्धारी की पुत्री है। जब इसे अभिमन्यु

की मृत्यु का समाचार ज्ञात होता है तो वह कहती है कि जिसने उत्तरा को विधवा बनाया है, उसकी पत्नी का वैधव्य खिड़की से झाँक ही रहा है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि उसका पति जयद्रथ ही अभिमन्यु का घातक है तो वह मूर्छित हो जाती है। उसके मन में यह विश्वास बैठ जाता है कि अभिमन्यु के घातक की रक्षा करने वाला संसार में कोई नहीं है । वस्तुतः दुश्शला के चरित्र का विकास विशेष रूप में अंकित नहीं हुआ है। 'दूत घटोत्कच' में दुश्शला की एक हल्की-सी झलक ही प्राप्त होती है। इसके चरित्र में दृढ़ता एवं स्त्रियोचित रुदन आदि की प्रवृत्ति पायी जाती हैं। जब उसे यह ज्ञात होता है कि उसका पति ही अभिमन्यु की हत्या करने वाला है, तो वह सिहर जाती है और अपने भाग्य को कोसने लगती है।

मन्त्रियों के चरित्र

राजाओं के चरित्रों के समान ही मन्त्रियों के चरित्र-चित्रण में भी नाटककार भास सफल है। राजाओं के मन्त्रिगण राजनीति-शास्त्र का किस प्रकार अध्ययन कर शास्त्र और राजनीति शास्त्र का पाण्डित्य प्राप्त करते थे। प्रद्योत अपने राजकुमारों की शिक्षा का वर्णन करता हुआ कहता है कि मेरा ज्येष्ठ पुत्र अर्थ-शास्त्र में पटु है। उसने अर्थ शास्त्र की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की है। यह सार्वजनीन सत्य है कि भारतीय अर्थ-शास्त्र के अन्तर्गत ही राजनीति भी सम्मिलित है। षड्ङ्ग राज्य का परिज्ञान, गुप्तचर-व्यवस्था, पुलिस, विधि, न्याय-व्यवस्था, कृपिकर्म, व्यापार आदि विषयों का परिज्ञान प्रत्येक मन्त्री के लिए आवश्यक माना जाता था। नाटककार भास के मन्त्री व्यवसायात्मिका बुद्धि में परिनिष्णात निर्णयकारिणी शक्ति से सम्पन्न हैं। समाजशास्त्रीय अनेक कारणवाद का आशय ले कर प्रशस्त जीवन की उपासना में समय यापन करते हैं। कला, नीति, दर्शन, धर्म, अध्यातम आदि की पूर्णतया उन्नति करना भी मन्त्रियों के दायित्व में सम्मिलित है। समाज विशाल और विराट है और मानव-जीवन में निष्ठा उत्पन्न कर उसे लक्ष्यग्राही तथा सोद्देश्य बनाना प्रत्येक मन्त्री का कर्त्तव्य है। समाज के लक्ष्यों की इयत्ता नहीं है, अतः जो मन्त्री जितनी सतर्कता से समाज के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रयास करता है, वह जीवन में उतना ही सफल होता है। पूर्ण मानवता की सिद्धि राज्य द्वारा होती है। अतः मन्त्रियों का चरित्र राज्य की सत्ता द्वारा मानवता की प्रतिष्ठा करने में ही अभिव्यक्त होता है।

यौगन्धरायण : चरित्र-चित्रण

भास द्वारा निरूपित मन्त्रियो मे तीन ही मन्त्रियो का चरित्र राजनीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—(१) यौगन्धरायण (२) रुमण्वान् (३) और भरत रोहक। विदेश मन्त्री के रूप मे सालकायन का चरित्र भी महत्वपूर्ण है। यौगन्धरायण का चरित्र अमात्य और विश्वस्त सेवक की दृष्टि से महनीय है।

भास ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और "स्वप्नवासवदत्तम्" मे यौगन्धरायण का चरित्र निबद्ध किया है। प्रथम नाटक मे उसकी राजनीति का व्यावहारिक रूप दिखलायी पडता है, तो द्वितीय मे शास्त्रीय। वत्सराज उदयन को प्रद्योत धोखे से बन्दी बना कर अपने यहाँ बुला लेता है, पर यौगन्धरायण अपनी योग्यता और प्रतिभा से उसको मुक्ति वहाँ से करा लेता है। बुद्धिमत्ता और नीतिकौशल का वह चूडान्त निदर्शन है। कलाकार और विलासी राजा का पूर्णतया सरक्षण करते हुए उसको पराधीनता से मुक्त करा लेना यौगन्धरायण की प्रमुख विशेषता है।

प्रथम बार वह अपने प्रयास मे असफल रहता है और छल से वत्सराज बन्दी बना लिया जाता है, पर अपनी इस असफलता का वह सुन्दर प्रतीकार करता है कि विरोध पक्ष के मन्त्रियों का मस्तक सदा के लिए नत हो जाता है। प्रथम अङ्क मे वह प्रतिज्ञा करता है कि यदि वत्सराज को मैं मुक्त नही करा सका, तो मेरा नाम यौगन्धरायण नही। वह अपने मूल को ब्याज सहित वापस लाता है। महासेन जैसे प्रतापी और बहुसैनिक राजा के यहाँ से वासवदत्ता का अपहरण सामान्य बात नही, पर उसने अपने गुप्तचरो का जाल बिछा कर समस्त उज्जयिनी को अपने अधीन कर लिया है। वत्सराज को मुक्त करने के लिए वह स्वय अपने को दाव पर रख देता है। वेश बदल कर वह विपत्तियो का सामना करता है। अधिक क्या, उसे पागल का अभिनय करना पडता है। वासवदत्ता सहित उदयन के भगा देने पर उसे तलवार के टूट जाने से स्वयं बन्दी बनना पडता है, पर इसका उसके मन मे रचमात्र भी दु ख नही है। उसकी बन्दी अवस्था मे जब भरत रोहक वत्सराज पर आक्षेप करता है, तब यौगन्धरायण तर्कयुक्त वचनो से उसका समाधान कर देता है।

यौगन्धरायण मे निम्नलिखित गुणो का विकास दिखलायी पडता है—

(१) कुशल राजनीतिज्ञता तथा गुप्तचर व्यवस्था का पूर्ण पाण्डित्य

(२) प्रत्युत्पन्न मतित्व

(३) पराक्रमशाली
(४) आत्मविश्वास की पराकाष्ठा
(५) बुद्धिमत्ता के साथ आवश्यकता पड़ने पर शस्त्र व्यवहार की पटुता
(६) स्वामि-भक्ति के साथ कर्त्तव्यपरायणता
(७) त्याग एवं कर्मठता—अहर्निश कार्य करने की अपूर्व क्षमता

'स्वप्नवासवदत्तम्' में इसका चरित्र शास्त्रज्ञ राजनीतिक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसके चरित्र का सबसे बड़ा गुण 'स्वामि भक्ति' है। स्वामी के हित में अपना हित समझता है और स्वामी के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानता है। इसके मन में वत्सराज उदयन के प्रति बहुत प्रेम और आदर है। इसका स्वभाव इतना निर्मल है कि राजा के भावी सम्बन्धियों को भी आत्मीय समझता है। प्रथम अङ्क में पद्मावती को देख कर वह कहता है—'भर्तृदारा-भिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता।'[१] यह राजा के हित साधन के लिए सर्वदा चिन्तित है।

वत्स देश का बहुत बड़ा भाग आरुणि के द्वारा छीन लिया गया है। उदयन को अपने राज्य की तनिक भी चिन्ता नहीं है। वह अपने मन्त्री पर राज्य भार छोड़ कर निश्चिन्त हो गया है। अतः मन्त्री यौगन्धरायण इस खोये हुए राज्य को लौटाने के लिए चिन्तित है। वत्स नरेश की सेना अल्प है, अतः आरुणि का सामना बिना किसी समर्थ राजा की सहायता के नहीं किया जा सकता है। उस समय दो ही समर्थ राजा थे—(१) उज्जयिनी नरेश प्रद्योत और (२) मगध नरेश दर्शक। प्रद्योत वासवदत्ता के अपहरण के कारण उदयन से रुष्ट थे, अतः उसकी सहायता करने को तैयार नहीं। मगध नरेश भी बिना किसी आत्मीयता के सहायता नहीं करना चाहते। अतः मगध नरेश के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए योजना तैयार की। इस योजना के फलस्वरूप ही वासवदत्ता को मगध राजकुमारी पद्मावती के संरक्षण में रखा गया था। यौगन्धरायण यह जानता था कि वासवदत्ता के रहते उदयन दूसरा विवाह करने के लिए तैयार नहीं होगा और न मगध नरेश ही अपनी बहन का विवाह कर सकेगा। अतएव वासवदत्ता को अग्नि में दग्ध मृत घोषित करने पर ही पद्मावती का विवाह उदयन के साथ हो सकेगा, आरुणि से युद्ध कर पुनः राज्य प्राप्त कर लिया जाय।

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अङ्क, पृ० १६

राजा का इतना अधिक हितैषी और उपकार करने वाला होने पर भी उसके मन मे अहकार या अनुचित धृष्टता का लेश नही है। वह नम्रता की मूर्ति है। अपने प्रयत्न मे सफल होने पर भी वह वासवदत्ता को विमुक्त करने के कारण राजा के समक्ष जाने मे हिचकिचाता है। वह कहता है—

'प्रच्छाद्य राजमहिषी नृपतेर्हितार्थं
काम मया कृतमिद हितमित्यवेक्ष्य।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवासौ
किवक्ष्यतीति हृदय परिशकित मे।'[1]

सहनशीलता और आशावादिता गुण भी उसके चरित्र मे समवेत हैं। वह इस ससार को नीरस और दु खमय नही मानता। उसके विचार मे दु ख के बाद सुख अवश्य आता है।

वह केवल भावुकता की धारा मे प्रवाहित होने वाला ही व्यक्ति नही है, अपितु वह विचारशील है। वह सूक्ष्म और तर्क दृष्टि से समस्त कार्यों और उक्तियो को समझता है और मन मे उनकी आलोचना या प्रत्यालोचना करता है। प्रथम अङ्क मे पद्मावती के तपोवन मे प्रवेश करने पर जब भट आश्रम-वासियो को हटने के लिए कहते हैं तो उसे आश्चर्य होता है। वासवदत्ता के पूछने पर कि कौन उत्सारणा कर रहा है, वह कहता है—'भवति ! यो धर्मदात्मा-नमुत्सारयति'[2]

प्रथम अङ्क मे ब्रह्मचारी के आने पर वह आगे बढ कर ब्रह्मचारी से बातें करता है। इसका हृदय विशाल है, यह दूसरो की प्रशसा करने मे नही हिच-कता। यह दूसरो के श्रम को भी समझता है। ब्रह्मचारी के मुख से उसे यह मालूम होता है कि अमात्य रुमण्वान् वासवदत्ता के विरह से दु.खी राजा को सम्भालने मे सतत व्यस्त है, तो वह उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा करता है। सहायक व्यक्ति के गुणो की प्रशसा करना ही श्रेष्ठ मनुष्यता है।

यह हास्य प्रिय भी है। नाटक के अन्त मे राजा के समक्ष ब्राह्मण के वेष मे उपस्थित होता है। यह अपनी बहन को माँगता है। धात्री के द्वारा वासव-दत्ता के पहचाने जाने पर जब राजा उसे भवन मे जाने को कहता है, तो यह

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, ६।१५
२. वही, प्रथम अङ्क, पृ० ७

उनका विरोध करता है। यह कहता है—"न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्। मम भगिनी खल्वेषा।"[1] इस सन्दर्भ से उसकी हास्यप्रियता सिद्ध होती है।

इस प्रकार यौगन्धरायण आरम्भ से अन्त तक अपनी गतिविधियों द्वारा उक्त दोनों नाटकों की कथावस्तु को प्रमाणित करता है। वह साहसी, विद्वान्, निर्भीक, और स्वाभिमानी है। राजनीति के क्षेत्र में चाणक्य के समान कूट-नीतिज्ञ है, पर वह समस्त वत्सदेश को उदयन के अधीन कराने के लिए प्रयत्नशील है। वह उदयन को प्रभुसत्ता सम्पन्न सम्राट बनाना चाहता है तथा बाह्य आक्रमणों से भी वत्सदेश की रक्षा करना चाहता है।

यौगन्धरायण का मन्त्रित्व कोई खरीदा हुआ नहीं है। यह उसे वंश परम्परा-से प्राप्त हुआ है। अतः उसका राजनीतिक ज्ञान जन्मजात है। यही कारण है कि उसे अपनी सभी योजनाएँ सफल होती हुई दिखलायी पड़ती हैं। विद्वान् होने पर भी वह नियतिवादी है। आत्मविश्वास तो उसमें पाया जाता है, पर अहङ्कार नहीं है। उदारता और वीरता का मणिकांचन संयोग भी इसके चरित्र में पाया जाता है। भास ने इसके चरित्र में शील विकास की चरम सीमा अङ्कित की है। वीर योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ एवं अपार कष्ट सहिष्णु है। उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति का विकास पूर्णतया हुआ है।

रुमण्वान् : चरित्र-चित्रण

उदयन के मन्त्रियों में रुमण्वान भी एक विद्वान मन्त्री है। यह भी राजा के सुख-दुःख में सदैव साथी रहता है। अग्निगृह में मन्त्रणा करते समय वत्स-राज के द्वारा वासवदत्ता के अपहरण का प्रस्ताव सुन कर वह खिन्न हो जाता है और साथ छोड़ कर चल देने का प्रस्ताव करता है। यौगन्धरायण उसे धैर्य देता है। इस प्रकार प्रतिज्ञायौगन्धरायण में रुमण्वान् का चरित्र भयभीत व्यक्ति के रूप में आया है। यों राजनीति का ज्ञान रुमण्वान् को भी यौगन्धरायण से कम नहीं है, पर उसका व्यावहारिक प्रयोग उसे ज्ञात नहीं।

'स्वप्नवासवदत्तम्' में रुमण्वान को रणनीति विशारद भी कहा गया है। वह मगध की सहायता से ससैन्य आरुणि पर आक्रमण करता है। और खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। रुमण्वान् राजा के सुख-दुःख का भी साथी है। अग्निदाह में वासवदत्ता के भस्म होने पर वह वत्सराज उदयन को

1. स्वप्नवासवदत्तम्, षष्ठ अङ्क, पृ० २५२

सभी प्रकार से धैर्य देता है एव उनकी पूर्णतया देख-रेख करता है। प्रथम अङ्क मे ब्रह्मचारी ने रुमण्वान मन्त्री की सेवा का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

'अनाहारे तुल्य. प्रततरुदितक्षामवदन,
शरीरे सस्कार नृपतिसमदु खं परिवहन्।
दिवा वा रात्री वा परिचरति यत्नैर्नरपतिम्,
नृप. प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरम ।'[1]

श्री ए० एस० पी० अय्यर ने रुमण्वान के चरित्र के सम्बन्ध मे ठीक ही लिखा है कि वह राजभक्त एव अपने कार्य में कुशल मन्त्री है। उसकी योग्यता राज सचालन की किसी भी आधुनिक मन्त्री से कम नही है। यद्यपि यौगन्धरायण को तुलना मे उसकी प्रतिभा फीकी मालूम पडती है, पर सामान्य मन्त्री की अपेक्षा उसकी प्रतिभा कई गुनी समृद्ध है। अय्यर ने लिखा है—

"Rumanvan is a very devoted minister, and is efficient in his own way"[2]

रुमण्वान की तुलना यौगन्धरायण से भले न की जाय, पर भरत रोहक और कौञ्जायन से की जा सकती है। इन दोनो की तुलना मे रुमण्वान की राजनीति ऊँची पडती है।

भरत रोहक : चरित्र-चित्रण

महाराज प्रद्योत के मन्त्रियो में दो मन्त्री प्रमुख हैं—भरत रोहक और सालङ्कायन। एक गृह मन्त्री है और दूसरा विदेश मन्त्री। भरत रोहक राजनीति का अच्छा ज्ञाता है। महाराज प्रद्योत पर इसका पूर्ण प्रभाव है। यह अपनी प्रतिभा और कौशल से समस्त राज्य का दायित्व वहन करता है। पर यौगन्धरायण की प्रतिभा के समक्ष इसे पराजित होना पडता है। 'नलागिरि' हाथी का निर्माण विदेश मन्त्री सालङ्कायन की देख-रेख में होता है। पर उसका यथार्थ प्रयोग भरत रोहक के निर्देश से किया जाता है। भरतरोहक चुने हुए सैनिकों को विन्ध्याटवी में छिपा देता है और अवसर पा कर वे उदयन पर आक्रमण करते हैं। उदयन को बन्दी बना लेने की योजना को मूर्त्त रूप देने का कार्य

१. स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अङ्क, श्लोक १४
२. भास, मद्रास संस्करण, पृ० ४११

भरत रोहक द्वारा ही सम्पादित होता है। यौगन्धरायण अपने गुप्तचरों का जाल अवन्ती में बिछा देता है और वेष-परिवर्तन कर रोहतक को ऐसा फांसा देता है, जिससे उसकी समस्त राजनीति धराशायी हो जाती है।

जब युद्ध करते हुए यौगन्धरायण की तलवार टूट जाती है और वह बन्दी बना कर प्रद्योत के शस्त्रागार में टिकाया जाता है, उस समय अमात्य भरत रोहक की प्रतिभा का साक्षात् दर्शन होता है। वह यौगन्धरायण से राजनैतिक शास्त्रार्थ करता है और कहता है कि उदयन ने चोर के समान वासवदत्ता का अपहरण कर निन्दित कार्य किया है। इस आक्षेप का यौगन्धरायण मुंह तोड़ उत्तर देता है और प्रद्योत तथा भरत रोहक दोनों की राजनीति को असफल बतलाता है। उसकी तर्कणा शक्ति के समक्ष भरत रोहक को झुकना पड़ता है और वह उसका राजोचित सम्मान करता है। उसकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता की प्रशंसा करता हुआ उसे 'भृंगार' नामक स्वर्णपात्र पुरस्कार में देता है। यौगन्धरायण शत्रु नृपति के यहाँ से पुरस्कार लेना अस्वीकृत कर देता है, पर जब उसे यह ज्ञात होता है कि प्रद्योत ने वत्सराज द्वारा वासवदत्ता के भगाये जाने का अनुमोदन किया है और दोनों के चित्र तैयार करा कर विवाह-विधि सम्पन्न कर दी है, तो वह उस पुरस्कार को स्वीकार कर लेता है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में जो भरत रोहक का चरित्र आया है, उसके उसके निम्नलिखित गुणों पर प्रकाश पड़ता है--

(१) राजनीतिक ज्ञान का अभिमान।
(२) योजनाओं के कार्यान्वियन की क्षमता
(३) अवन्ती नरेश और वत्स-नरेश में सन्धि कराने का प्रयास
(४) राज्य की समृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाओं का संचालन
(५) वीरता और पराक्रम का समन्वय
(६) पराजय में भी विजय का अनुभव
(७) कूटनीतिज्ञता पर अविश्वास

सालङ्कायन : चरित्र-चित्रण

यह युवा मन्त्री है और राज्य के विदेशीय विभागों की देख-रेख करता है। इसने अल्पावस्था में ही महाराज प्रद्योत और उनके राज्य से विश्वास प्राप्त कर लिया है। उदयन को धोखा दे कर अवन्ती में ले जाने का प्रयास उसी के द्वारा सफल होता है। जब महासेन के सैनिकों द्वारा उदयन मूच्छित

हो जाता है और उसकी चेतना पुनः लौटती है, तो कुछ सैनिक उसे मार डालने का प्रयास करते हैं पर सालङ्कायन उदयन की रक्षा करता है और उसे बन्दी बना कर उज्जयिनी ले जाता है। महासेन उदयन के घावों का उपचार कराता है और स्वस्थ होने पर उसे वासवदत्ता का वीणा-शिक्षक नियुक्त करता है। सालङ्कायन के इस आख्यान से यह स्पष्ट होता है कि वह राजा का प्रिय पात्र मन्त्री था और राजा ने उसे अपनी वैदेशिक नीति के नियन्त्रण का अधिकार दिया था। राजनीति और बुद्धिमानी में वह भरत रोहक के ही समान है। अन्तर दोनों में इतना ही है कि भरत रोहक वृद्ध और अनुभवी है, पर साल-ङ्कायन युवक और राजनीति शास्त्र का केवल ज्ञाता, प्रयोगात्मक दृष्टि से वह राजनीति में अभी अपूर्ण है। यही कारण है कि यौगन्धरायण के समक्ष उसे भी पराजय स्वीकार करनी पड़ती है।

कौञ्जायन : चरित्र-चित्रण

कुन्ति-भोज का मन्त्री कौञ्जायन है। यह स्वामिभक्त और राजनीति का ज्ञाता है। कौञ्जायन मन्त्रि पद के कष्ट का अनुभव करता हुआ कहता है—

'भो कष्टममात्यत्वं नाम। कुतः —
प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलम्,
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति।
अमात्या इत्युक्ता. श्रुतिसुखमुदारैर्नृपतिभिः,
सुसूक्ष्मं दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषा.।'[१]

इस कथन से स्पष्ट है कि कौञ्जायन की दृष्टि से अमात्य पद अत्यन्त कष्टदायक है। वाटिका-भ्रमण के लिए गयी हुई कुमारी कुरंगी जब लौटती है तब उसके ऊपर एक उन्मत्त हाथी टूट पड़ता है। साथ में रहने वाली युव-तियाँ भाग जाती हैं। और रक्षक भी इधर-उधर हो जाते हैं। हाथी राजकुमारी का प्राणान्त करने ही वाला है कि इसी बीच एक सुन्दर युवक आ पहुँचता है और उन्मत्त गज को शुण्डादण्ड पकड़ कर सड़क पर फेंक देता है। कुरंगी इस दर्शनीय वीर की वीरता को देख कर प्रभावित हो जाती है और उसे अपना हृदय सौंप देती है। कौञ्जायन राजकुमारी पर किये गये आक्रमण और उसकी प्राण रक्षा का संवाद राजा कुन्ति-भोज को सुनाता है। कुन्ति-भोज अपना क्रोध कौञ्जायन पर ही उतारते हैं और इस दुर्घटना का पूरा विवरण प्राप्त करने

१. अविमारक, ३।५

का आदेश देते हैं। कौञ्जायन की बुद्धिमत्ता कहीं भी प्रकट नहीं होती। नाटककार भास ने उसके चरित्र का स्पर्श कर के ही छोड़ दिया है। अतएव संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि कौञ्जायन की नियुक्ति मन्त्री के पद पर थी। उसका कार्य राज्य की घटनाओं का विवरण एकत्र करना ही था।

भूतिक : चरित्र-चित्रण

कुन्ति-भोज का व्यवस्था, न्याय और विधि मन्त्री के रूप में भूतिक का नाम आता है। भूतिक का प्रवेश प्रथम अङ्क में होता है और उसका अस्तित्व अन्तिम अङ्क तक पाया जाता है। कथावस्तु के कलेवर निर्माण में भूतिक का महत्वपूर्ण स्थान है। भूतिक अविमारक के चले जाने पर कहता है—'पृथ्वी में बहुत से रत्न छिपे पड़े हैं। इस पुरुष के निश्छल पराक्रम से बहादुरों का बुद्धि पराक्रम फीका पड़ गया है।' वह इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि अविमारक के कुलगोत्र और वंश का परिचय प्राप्त करे। भूतिक इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है। भूतिक के निम्नलिखित कथन से उसकी सचिवोचित बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है। वह कहता है—

"सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्त्तव्यम्। गुणबाहुल्यं तदात्वमायतिं चावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यमित्यर्थः।"[1]

इस कथन से स्पष्ट है कि भूतिक उदारता का पक्षपाती नहीं है। वह किसी भी कार्य में जल्दबाजी और दीर्घसूत्रता दोनों का परित्याग आवश्यक मानता है। गुण-गौरव और तात्कालिक स्थिति का विचार करना नितान्त आवश्यक है।

स्पष्ट है कि भूतिक कूटनीतिज्ञ है। वह किसी भी कार्य के उदारतापूर्वक करने में विश्वास नहीं करता है। कार्य को आरम्भ करते ही उसके सम्बन्ध में सभी बातों का विचार कर लेना आवश्यक होता है। राजा कुन्ति-भोज भूतिक की बातों को महत्व देता है और जब उसे अन्य किसी का विश्वास नहीं होता है तब वह भूतिक की बातों का विश्वास करता है।

कुमार अविमारक का पता लगाने के लिए भूतिक ही प्रस्थान करता है और वह सौवीरराज्य की स्थिति का पता लगाता है। वह कुमार विष्णुसेन की वीरता और उसके अभिशाप इन दोनों बातों की जानकारी प्राप्त कर महाराज से निवेदन करता है कि विष्णुसेन ने राक्षसों का वध कर सौवीर राज्य

---

१. अविमारकम्, प्रथम अंक, पृ० २०

को सुदृढ बना लिया है। इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि भूतिक गुप्तचर-व्यवस्था मे भी पटु है और उसने गुप्तचरो द्वारा सौवीर राज्य की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। सक्षेप मे भूतिक के चरित्र मे निम्नलिखित गुण उपलब्ध है—

(१) राजनीतिज्ञता
(२) बुद्धिमत्ता
(३) गुप्तचर-व्यवस्था मे आस्था
(४) कार्य करने की योजना-पटुता
(५) भूत और भविष्यत की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक विश्वास
(६) उदारता और अनुदारता की मध्यवर्तिनी नीति का अनुसरण
(७) स्वामी के कार्य की चिन्ता

सुमन्त्र : चरित्र-चित्रण

वृद्ध सचिव सुमन्त्र महाराज दशरथ के परम हितैषी और उनके सुख-दु ख के साथी हैं। उनका आवागमन अन्त पुर मे भी निषिद्ध नहीं है। राजा, रानियाँ, राजकुमारियाँ आदि सभी से वे मिलते-जुलते हैं और सभी के साथ उनका पारिवारिक सम्बन्ध है। भगवान् राम को वन पहुँचाने वही जाते हैं। वह वृद्ध हैं, अत राम के वनवास के कारण उनका शरीर और अधिक जर्जर हो गया है। वह नितान्त सौम्य प्रकृति के साधु पुरुष हैं। उनके प्रति सभी का श्रद्धा है। इसी से श्रीराम वन मे भरतादि के पहुँचने पर उनसे कहते हैं कि आप *महाराज दशरथ के ही समान भरत का हित-साधन तथा सरक्षण कीजिये।* भरत पुन उन्हें वन में राम का पता लगाने के लिए भेजते हैं और वहाँ आ कर सीता हरण का समाचार भरत को सुनाते हैं।

'प्रतिमा' नाटक में सुमन्त्र का चरित्र सहयोगी और अभिभावक दोनो के समन्वित रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। दशरथ की मृत्यु के पश्चात् सुमन्त्र ही उस परिवार के सच्चे सलाहकार और अभिभावक हैं। वे सारथी के कार्य में भी निपुण हैं। जब भरत ननिहाल से लौटने पर घबड़ा जाते हैं और अपने ऊपर अविश्वास करने लगते हैं, उस समय सुमन्त्र ही उन्हें धैर्य बंधाते हैं।

राम का राज्याभिषेक देखने के लिए अत्यन्त लालायित हैं। अतः वे कहते हैं कि राम के राज्याभिषेक के पश्चात् मै सन्यास ग्रहण कर लूंगा। स्पष्ट है

कि सुमन्त्र केवल अमात्य ही नहीं अपितु दशरथ के वे संवेदनशील सहयोगी हैं। वे प्रत्येक घटना से प्रभावित होते हैं।

सामन्त, नायक एवं नायिकाओं के चरित्र

नाटककार भास ने देव-दानव, राजा-मन्त्री, महिषी-राजकुमारियाँ आदि के चरित्रांकन के समान ही वीर-सामन्तों, नायकों एवं नायिकाओं के चरित्र को प्रस्तुत किया है। भास की यह चरित्रावली उस वाटिका के समान हैं, जिसमें विविध प्रकार के यूथिका, मालती, पाटल, शेफालिका आदि पुष्प विकसित हो अपनी सुरभि विकीर्ण करते हैं। भास ने भी चरित्रों के विभिन्न पहलू उपस्थित किये हैं। कहीं ममता की मन्दाकिनी प्रवाहित होती है तो कहीं करुणा की कालिन्दी। एक ओर दर्प का हिमतुंग है तो दूसरी ओर नम्रता का समलत मैदान। निश्चयतः भास ऐसे शिल्पी हैं जिनकी लेखनी पारस का स्पर्श पाते ही लोह-चरित्र भी स्वर्ण बन गये हैं। शील के विकास में क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, भावनाओं एवं संवेदनाओं का पूर्णतया विश्लेषण हुआ है।

वीर सामन्तों में भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा: भीम, अर्जुन, अभिमन्यु एवं हनुमान आदि प्रधान हैं। नायकों में केवल चारुदत्त और गणिका नायिका में वसन्तसेना की गणना की जा सकती है।

भीष्म : चरित्र-चित्रण

"पञ्चरात्रम्" में भीष्मपितामह का चरित्र आया है। द्रोणाचार्य की चंचलता का समाधान भीष्मपितामह की गम्भीरता के द्वारा सम्पन्न होता है। इनकी पाण्डवों के प्रति सहज सहानुभूति है। वे सर्वथा न्याय की बात करते हैं। व्यक्ति की पहचान उन्हें अच्छी तरह से है। वे जानते हैं कि शकुनि वास्तव में दुर्योधन का शत्रु ही है। अतः वे दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं—

"पौत्र, दुर्योधन ! अवभृथस्नानमात्रमेव खलु तावत्। मित्रमुखस्य शत्रोः शकुनेर्वचनं न श्रोतव्यम्। पश्य पौत्र !"

यत् पाण्डवा द्रुपदराजसुतासहायाः।
कान्ताररेणुपरुषाः पृथिवीं भ्रमन्ति।
यत्त्वं च तेषु विमुखस्त्वयि ते च वामा-
स्तत्सर्वमेव शकुनेः परुषावलेपः॥[1]

---

१. पञ्चरात्रम्, प्रथम अङ्क, श्लोक ३६

भीष्म प्रकृति से शान्त हैं, पराक्रमशाली हैं और हैं कुशाग्रबुद्धि। कीचकों के वध की बात सुन कर उन्हें विश्वास हो जाता है कि यह काम मध्य पाण्डव अर्थात् भीम का ही किया हुआ होगा। वे द्रोणाचार्य को पञ्चरात्र की शर्त स्वीकार करने को तैयार करते हैं। शर्त स्वीकार करवा देने के पश्चात् वे अपने विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिए दुर्योधन को अत्यन्त चतुराई से विराट पर आक्रमण करने की सलाह देते हैं। भीष्म की नीतिज्ञता का परिचय उस समय मिलता है जब तृतीय अङ्क मे भीष्म "वत्स ! गान्धारराज !! जरा-शिथिल मे चक्षु वाच्यतामयं शर.।"[1]

भीष्म का नीतिज्ञ रूप में भास ने सुन्दर चित्रण किया है। यद्यपि "पञ्चरात्रम्" का नायक दुर्योधन है, पर भीष्म ही एक ऐसे पात्र हैं, जो नाटक की कथावस्तु को गतिशील बनाते हैं। नाटक के शरीर मे भीष्म का स्थान मस्तिष्क जैसा है।

द्रोण चरित्र-चित्रण

"पञ्चरात्रम्" मे द्रोणाचार्य का चरित्र ऐसे वीर योद्धा के रूप मे चित्रित हुआ है, जिसमे बालको जैसी चचलता है। आचार्य द्रोण से जब दुर्योधन दक्षिणा माँगने का आग्रह करता है, तब दक्षिणा माँगने के स्थान पर उनके नेत्रो मे आँसू उमड पडते हैं। उनका यह आचरण उस बालक के समान है जिसे मनोवाञ्छित फल मिलने मे आशका है। अत देने वाले के हृदय में अपने प्रति सहानुभूति जाग्रत करने के लिए बालक जैसी चेष्टा करनी पडती है। दुर्योधन की ओर से पञ्चरात्र की शर्त रखी जाती है। भीष्म पितामह उन्हें इस शर्त को स्वीकार करने के लिए सलाह देते हैं। अतः द्रोण शीघ्र ही दुर्योधन की शर्त को स्वीकार कर लेते हैं। इससे भीष्म पितामह को यह आशका होने लगती है कि इनकी इस जल्दीबाजी के कारण दुर्योधन कहीं समझ न जाय नहीं तो सब गुड गोबर हो जायगा।

द्रोणाचार्य जब देखते हैं कि शकुनि उनकी दक्षिणा के पूरी होने मे अडगा लगा सकता है, तब वे उसे प्यार से समझाते हैं। द्रोणाचार्य की वीरता में किसी को आशका नही है। भीष्म के निम्न कथन मे द्रोणाचार्य का महत्व पूर्णतया प्रकट है—

---

1. पञ्चरात्रम्, तृतीय अङ्क, पृ० १२१

"अहं हि मात्रा जनितो भवान् स्वयं ममायुधं वृत्तिरपह्नवस्तव,
द्विजो भवान् क्षत्रियवंशजा वयं गुरुर्भवान् शिष्यमहत्तरा वयम् ।"[१]

द्रोणाचार्य धर्मपरायण एवं स्नेही व्यक्ति हैं। उनकी कामना है कि संसार के सभी प्राणी सुखी हों। वे पाण्डवों का पैतृक राज्य दिला कर अपनी इच्छा को पूर्ण करते हैं। संक्षेप में द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व में वीरता, त्याग, समस्त प्राणियों की सुख-कामना एवं आचार्यत्व की प्रकृति निहित है।

अश्वत्थामा : चरित्र-चित्रण

अश्वत्थामा अहंकारी रूप में ऊरुभंग में प्रस्तुत हुआ है। भीम द्वारा दुर्योधन के प्रति किये गये व्यवहार से वह क्षुब्ध है। अतः उसकी वाणी अहंकार से परिपूर्ण है। वह अपने पराक्रम का स्वयं ही परिचय देता है—

'छलबलदलितोरुः कौरवेन्द्रो न चाहं
शिथिलविफलशस्त्रः सूतपुत्रो न चाहं।
इह तु विजयभूमौ द्रष्टुमद्योद्यतास्त्रः
सरभसमहमेको द्रोणपुत्रः स्थितोऽस्मि ॥'[२]

अर्थात्—जिसकी जंघा छल से तोड़ दी गयी है, ऐसा मैं दुर्योधन नहीं हूँ, ढीले और निष्फलशस्त्रवाला मैं सूतपुत्र—कर्ण नहीं हूँ, बल्कि इस विजयभूमि पर अस्त्र-शस्त्र से सज्जित मैं द्रोणपुत्र हूँ, जो किसी लड़ाकू योद्धा की तलाश में आज अकेले खड़ा हूँ।

अश्वत्थामा में सहृदयता और उदारता का अभाव है, वह दुर्योधन के निषेध करने पर भी अपनी युद्ध करने की इच्छा का त्याग नहीं करता। उसके अहंभाव की उस समय पराकाष्ठा हो जाती है, जब वह पाण्डवों के साथ श्रीकृष्ण को भी मार डालने की धमकी देता है।[३] दुर्योधन के युद्ध निवारक वचनों का उस पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और वह दुर्योधन को भी कटुवचन कहने से नहीं चूकता। वह कहता है—'भीम ने संग्राम में गदा प्रहार करने के साथ ही तुम्हारे केशों को पकड़ा और तुम्हारी दोनों जंघाओं के साथ ही तुम्हारे

---

१. पञ्चरात्रम्, प्रथम अङ्क, श्लोक २७
२. ऊरुभंगम्, प्रथम अङ्क, पद्य ५७
३. वही, ६०वाँ पद्य।

गर्व का भी हरण कर लिया।' वह युद्ध करने के अपने आग्रह पर दृढ रहता है और रात्रि मे अपनी राक्षसी वृत्ति का परिचय देता है।

अश्वत्थामा सामाजिको के मध्य क्रूर, निर्दयी, अहकारी और विवेक शून्य के रूप मे आता है। यद्यपि दुर्योधन के साथ हुए अन्याय का बदला लेना उचित था, पर जब स्वय दुर्योधन ही उसका विरोध करता है, तब अश्वत्थामा का यह व्यवहार नितान्त अनुचित और निन्दनीय है।

भीम : चरित्र-चित्रण

भास ने भीम का चित्रण दो रूपको मे किया है। 'मध्यमव्यायोग' मे वे नायक रूप मे और 'पञ्चरात्रम्' मे सहायक पात्र के रूप में। दोनो ही स्थानो पर उनका उद्धत स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। यह सत्य है कि उनके उद्धत स्वरूप को विवेक ने नियन्त्रित कर दिया है, जिससे उनकी उद्धतता उद्दण्डता की सीमा मे प्रविष्ट नही हो पायी है। उनके पराक्रमी होने का प्रबल प्रमाण यही है कि वे बिना किसी शस्त्र सहायता के कीचकों जैसे वीर योद्धाओं का वध कर डालते हैं।[१] अभिमन्यु को रथ पर से उतार कर बन्दी बना लेते हैं। भीम की शक्ति का परिचय केशवदास के इन शब्दो मे मिलता है कि यदि अकेला भीम भी आश्रम में है, तो समझो सभी पाण्डव यही हैं।[२]

भीम को अपने पराक्रम का अभिमान है, जो सर्वथा उचित है। अपनी शक्ति का वर्णन करते हुए वह कहता है—

काञ्चनस्तम्भसदृशो रिपूणा निग्रहेरत. ।
अय तु दक्षिणे बाहुरायुधं सहज मम ॥[३]

भीम की वीरता को भीष्म पितामह भी स्वीकार करते हैं।[४] भीम की निर्भयता भी प्रसिद्ध है। वह सभा-भवन मे द्रौपदी के साथ होने वाले अत्याचार को देख कर वहां के स्तम्भ को उखाड कर बदला लेना चाहता है, पर बडे भाई युधिष्ठिर की आज्ञा मान कर शान्त हो जाता है।

---

१ पञ्चरात्रम्, १।४६-५०
२. मध्यमव्यायोग, ११वें पद्य के आगे का गद्य, पृ० ११
३. वही, ४२वा पद्य
४. पञ्चरात्रम्, ३।१४

घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण परिवार को कष्ट में डाला हुआ देख कर भीम घटोत्कच के ऊपर क्रुद्ध होता है और वह कहता है—'इस वृद्ध ब्राह्मण को सपरिवार छोड़ दो, अपराध करने पर भी ब्राह्मण का वध नहीं किया जा सकता है। तुम क्यों इस प्रकार का निन्द्य कर्म करके पाप के भागी बन रहे हो।' इस कथन से भीम की ब्राह्मण के प्रति शुद्ध भावना अभिव्यक्त होती है। इसी भावना के वशीभूत हो कर वह ब्राह्मण कुमार के बदले में अपने शरीर को देना चाहता है। 'मध्यमव्यायोग' और 'पञ्चरात्रम्' में भीम के एक अन्य रूप पर भी प्रकाश पड़ता है। वह रूपक में पत्नी के प्रेमभाव के कारण ही अभिमन्यु को बन्दी बना लेता है। वह कहता है—

जानाम्येतान् निग्रहादस्य दोषान् को वा पुत्रं मर्षयेच्छत्रुहस्ते ।
इष्टापत्त्या किन्तु दुःखे हि मग्ना पश्यत्वेनं द्रौपदीव्याहृतोऽयम् ॥[1]

अभिमन्यु के बन्दी होने में जो दोष थे, उनको भीम जानता था, पर उसने केवल द्रौपदी को पुत्र-दर्शन से प्रसन्न करने के लिए यह कार्य किया है। इसी प्रकार मध्यमव्यायोग में अपनी पत्नी हिडिम्बा की सहायता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वह जाति से राक्षसी है, पर आचरण से वैसी नहीं है।[2]

'ऊरुभंग' में भी भीम का कृत्य दिखलायी पड़ता है। दुर्योधन का भीम के साथ गदा-युद्ध होता है। आरम्भ में दुर्योधन अपने असीम बल पौरुष का परिचय देता है। वह गदा-युद्ध में गिरे हुए भीम पर अपनी गदा का प्रहार नहीं करता। भीम श्रीकृष्ण का संकेत प्राप्त कर दुर्योधन की जांघ में गदा प्रहार करते हैं, जिससे उसकी जांघ चूर-चूर हो जाती है और वह मृत्यु की घड़ियाँ गिनने लगता है। इस स्थल पर वीरता का कार्य करने पर भी भीम को अपयश ही प्राप्त हुआ। शास्त्र-विरुद्ध युद्ध करने के कारण भीम को आन्तरिक संकोच है। अतः 'ऊरुभंग' में भीम का पौरुष कलंकित ही हुआ है। उसके शील की यह रिक्तता है। नाटककार महाभारत से चली आयी इस रिक्तता को भर नहीं सका है। संक्षेप में भीम के चरित्र में निम्नलिखित गुण दृष्टिगोचर होते हैं—

---

१. पञ्चरात्रम, २।४६

२. जात्या राक्षसी, न समुदाचारेण।—मध्यमव्यायोग, ४९वें पद्य के आगे, पृ० ४४

(१) अहंकार और दर्पोक्तियों की ओर प्रवृत्ति
(२) निर्भयता एवं साहस का सद्भाव
(३) पुरुषार्थ पर विश्वास और आस्था
(४) दयालुता एवं निर्बलों के उद्धार की कामना
(५) सामाजिक परम्पराओं के प्रति श्रद्धा
(६) पत्नियों के प्रति प्रेम
(७) सामाजिक मर्यादाओं की रक्षा की ओर झुकाव
(८) कार्य-सिद्धि के लिए नीति का त्याग
(९) शारीरिक बल का सद्भाव और तज्जन्य दर्प की प्रवृत्ति
(१०) बड़े भाई की आज्ञाकारिता
(११) अपमान के प्रतिकारार्थ सजगता

अर्जुन : चरित्र-चित्रण

भास ने पात्र रूप में अर्जुन का केवल 'पञ्चरात्रम्' में ही चित्रण किया है। अन्य रूपकों में भी अर्जुन की वीरता का वर्णन आया है। पर अर्जुन प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत नहीं होते। इस नाटक में भी उनका चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त रूप में निबद्ध है।

अर्जुन नेक वीर योद्धा हैं जिनकी प्रशंसा उनका प्रबल शत्रु शकुनि भी करता है। वह कहता है—'कः पार्थाद्बलवत्तरः'। अर्जुन अपने अज्ञातवास के प्रति सतर्क हैं। इसी कारण वह अभिमन्यु को देख कर अपने हृदय को सन्तुष्ट कर डालते हैं। भीम द्वारा अभिमन्यु के बन्दी बना लेने पर वह अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठते हैं, पर वह अपनी उत्कंठा को प्रकट नहीं होने देते। यद्यपि वह अन्तःपुर में नृत्य निर्देशिका बन कर रहते हैं और उत्तरा के साथ नित्य सम्पर्क में आते हैं, पर चरित्र की दृढ़ता के कारण उनकी इच्छा वासनात्मक न हो कर वात्सल्यात्मक ही होती है। अपने चरित्र की उज्ज्वलता का परिचय वह 'पञ्चरात्रम्' में उत्तरा को पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार कर के देते हैं—

इष्टमन्तःपुरं सर्वं मातृवत् पूजितं मया।
उत्तरैषा त्वया दत्ता पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते॥[1]

अर्जुन की युधिष्ठिर के प्रति अपार श्रद्धा है, वह उनके समक्ष अपने प्रिय

---

१. पञ्चरात्रम्, २।७१

पुत्र का भी आलिंगन नहीं कर सकता है। अर्जुन के चरित्र में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं—

(१) बड़े भाई के प्रति श्रद्धा-भक्ति
(२) वीरता एवं उदारता
(३) आत्म संयम एवं रणनीति में पटुता
(४) कला-कौशल में प्रवीणता
(५) प्राप्त कार्य को योग्यतापूर्वक संचालित करने की प्रवृत्ति

अभिमन्यु : चरित्र-चित्रण

अभिमन्यु को एक ऐसे वीर योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो युद्ध नीति में भले ही पूर्ण रूप से निष्णात न हो, पर शक्ति के प्रदर्शन में वह सफल है। कौरव पक्ष के समस्त वीरों के पलायन कर जाने पर भी वह लड़ता रहता है। भास ने लिखा है—'भयेप्येको वाल्यान्न भयमभिमन्युर्गणयति।'[1] भय के कारण सामने आने पर भी केवल अभिमन्यु निर्भय भाव से लड़ता जा रहा है।

अभिमन्यु के पराक्रम की प्रशंसा अर्जुन इन शब्दों में करते हैं—

सरथतुरगदृप्तनागयोधे शरनिपुणेन न काश्चिदप्यविद्धः ।
अहमपि परिक्षतो भवेयं यदि न मया परिवर्त्तितो रथः स्यात् ॥[2]

वीर होने पर भी उसमें अभिमान की प्रवृत्ति अत्यधिक है। विराट के यहाँ बन्दी बनाये जाने पर पाचक वेषधारी भीम जब उसे नाम ले कर पुकारते हैं, तो उसके अभिमान को चोट पहुँचती है और वह कहता है कि यहाँ पर नीच व्यक्ति भी क्षत्रिय कुमारों को नाम ले कर पुकारते हैं, क्या यही यहाँ की प्रथा है। छद्मवेष धारी अर्जुन और भीम की बातों से वह क्रुद्ध हो जाता है, उसकी यह प्रवृत्ति स्वाभाविक है। अर्जुन उसके क्रोध को बढ़ा कर आनन्द लेना चाहते हैं। अतः वे कहते हैं—'अपने पिता अर्जुन और मामा श्रीकृष्ण को स्मरण कर के युवक तथा युद्ध विशारद होने पर आपको युद्ध में परास्त नहीं होना चाहिये।' इस कथन को सुन कर उसकी क्रोध की सीमा टूट जाती है और वह स्वच्छन्द प्रलाप करने लगता।

---

१. पञ्चरात्रम्, २।२४
२. वही, २।५१

ब्राह्मणों के प्रति उसकी श्रद्धा क्षत्रियोचित है। बन्दी के रूप मे जब उसे विराट के सम्मुख लाया जाता है और उसे बताया जाता है कि यही महाराज हैं, तो वह अभिवादन न कर के कहता है—'आ., कस्य महाराज.' पर जैसे ही उसे ज्ञान होता है कि वे ब्राह्मण के साथ है तो वह झट से ब्राह्मण का अभिवादन करता है। वह अपने क्षत्रियत्व का परिचय देता हुआ युधिष्ठिर से कहता है—'मैं अपनी प्रशसा नही करना चाहता, मेरे वश मे इसकी आदत है ही नहीं, यदि आप मेरी वीरता देखना चाहते हैं तो अपने पक्ष के आहत व्यक्तियों मे लगे बाणों को देखिये। एक भी बाण दूसरे के नाम से अंकित नहीं मिलेगा, सभी बाण मेरे ही होगे।'

'दूतघटोत्कच' मे भी अभिमन्यु का वीर चरित्र आया है। वह अपनी वीरता से कौरव सेना के सभी महारथियों को परास्त किये हुए हैं। उसकी वीरता को देख कर दुर्योधन, शकुनि आदि सभी आतंकित हैं। अत. उसका वध अकेला कोई भी महारथी नही कर सका। कई महारथियो ने मिल कर तथा जयद्रथ ने धोखा दे कर अभिमन्यु का वध किया। अभिमन्यु के व्यक्तित्व मे निम्नलिखित गुण सन्निविष्ट हैं—

(१) अद्भुत वीरता और युद्ध सचालन में पटुता
(२) गुरुजनों और ब्राह्मणो के प्रति आदर भाव
(३) अहंकार का समावेश तथा आत्म सम्मान की प्रवृत्ति का आधिक्य
(४) उत्साह सम्पन्नता एव शूरता
(५) मर्यादा के निर्वाह की भावना का सद्भाव
(६) अपने वंश के प्रति गौरव की भावना
(७) आत्मश्लाघा के साथ सत्योदघाटन की प्रवृत्ति
(८) निर्भयता और कर्मठता
(९) अद्भुत साहस के साथ कर्मठता
(१०) प्रतिभा सम्पन्नता के साथ युद्ध प्रविधि का परिज्ञान

चारुदत्त : चरित्र-चित्रण

'चारुदत्त' नाटक का नायक चारुदत्त उज्जयिनी के व्यावसायिक ब्राह्मण के रूप में उपस्थित होता है। यह अत्यन्त दानी, गुणवान एवं रूपवान है। यह अपनी परोपकार प्रवृत्ति एव असाधारण गुणो के कारण सभी को प्रभावित करता है। वह जात्या तो ब्राह्मण है, पर कर्म से वैश्य। उसकी समृद्धि सब की

समृद्धि है, वह सरोवर की भांति है, जो दूसरों की पिपासा का शमन कर स्वयं सूख जाता है। वह दानशीलता के कारण ही दरिद्र हो गया है। उसकी दरिद्रता इतनी बढ़ी हुई है कि वह अपने भृत्यों का भी भरण-पोषण नहीं कर पाता। फलतः संवाहक को भी अपने यहाँ से हटा देता है।

यह स्वयं सार्थवाह है और सार्थवाहों के संघ का नेता भी है। उसकी परोपकारी दान प्रवृत्ति के कारण ही प्रभावित हो कर वसन्तसेना उससे अपना प्रणयसूत्र जोड़ती है। इसका एकमात्र कारण यही है कि वह किसी ऐसे विप्र से अनुराग नहीं करती, जो जाति और कर्म दोनों से ब्राह्मण हो। उसके हृदय में ऐसे पुरुष की मूर्त्ति विद्यमान है, जो जन्म से ब्राह्मण हो, पर व्यवसाय आदि के द्वारा अपने वैभव की समृद्धि करने वाला हो। द्वितीय अङ्क में संवाहक चारुदत्त का परिचय देते हुए कहता है—

"आकृतिमान् अविभ्रमन् अनुत्सिक्तो ललितो ललिततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत आचितस्तुष्टो भवति। दत्त्वा न विकत्थते। अल्पमपि स्मरति, बहुकमप्यपकृतं विस्मरति। अज्जुके ! किं बहुना तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापिग्रीष्मदिवसेन वर्णयितुं न शक्यम्। किं बहुना, दक्षिणतया परकीयमिवात्मनः शरीरं धारयति।"[1]

संवाहक के इस कथन से स्पष्ट है कि चारुदत्त रूपवान, गुणवान, अहङ्कार रहित, ललित एवं अपने सौन्दर्य पर अभिमान न करने वाला, चतुर, मधुर, दक्ष, सहृदय, प्रतिष्ठित और याचकों को सन्तुष्ट करने वाला है। वह दान देकर किसी से कहता नहीं। दूसरे के अल्प उपकार को भी स्मरण करता है। बहुत बड़े अपकार को भी वह भूल जाता है। अधिक क्या, उस गुणवान कुलपुत्र के गुणों का वर्णन करने के लिए पर्याप्त समय अपेक्षित है। दया, दाक्षिण्यादि गुण उसमें पूर्णतया विद्यमान हैं। वह संगीत विद्या का प्रेमी और पारखी भी है। वह शरणागत-रक्षक है। जब राजश्यालक शकार से त्रस्त हो कर वसन्तसेना सुरक्षा के लिए उसके यहाँ आती है, तो उसे रक्षा का वचन देता है।

चारुदत्त असीमित उदारता और द्यूत व्यसन के कारण निर्धन हो गया है, वह अपनी निर्धनता पर पश्चाताप करता है। वह दरिद्रता को षष्ठपातक

---

१. चारुदत्त, द्वितीय अङ्क, पृ० ६१-६२

मानता है। इतना होने पर भी वह अपने बौद्धिक सन्तुलन को नहीं खोता है। वह धर्म का भी विचार करता है।

चारुदत्त स्वभावतः गम्भीर और उदार है। जब भी उसे कोई सत् एवं मनोरम कार्यों की सूचना देता है तो वह उसे पुरस्कार देता है। कर्णपूर उसका कृतज्ञ है। धरोहर वस्तु को वह एक पवित्र एवं संरक्षणीय द्रव्य समझता है। वसन्तसेना के पास भेजी गयी मुक्तावली इस बात की साक्षी है। विदूषक अलङ्कारों की चोरी का उत्तरदायित्व उसी के माथे मढ़ता है और अपने यह कह कर अलग हो जाता है कि अच्छा हुआ कि अलङ्कार भाण्ड मैंने आपको दे दिया। वह वीर भी है। जब विदूषक उसे सूचित करता है कि शकार वसन्तसेना को घर से निकालने की धमकी दे गया है तो वह उसे उपेक्षा भाव से सुन कर टाल देता है।

चारुदत्त देवी-देवताओं के प्रति भी निष्ठावान् है। वह देवताओं को भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चना कर प्रसन्न करना चाहता है। वह एक विलासप्रिय व्यक्ति है। ब्राह्मणी जैसी पत्नी को पा कर भी रूपमयी एवं यौवन से सम्पन्न वसन्तसेना को हृदय से प्यार करता है। यह स्मरणीय है कि वसन्तसेना पर मोहित होने पर भी वह अपने गार्हस्थ्य जीवन एवं धर्म को भुला नहीं देता। निश्चयतः चारुदत्त के चरित्र में उदारता, कलाप्रियता, धार्मिक निष्ठा, परोपकार वृत्ति, निरहंकारता एवं सहिष्णुता गुण विद्यमान है।

वसन्तसेना : चरित्र-चित्रण

वसन्त सेना उज्जयिनी की प्रसिद्ध गणिका है। इसने चारुदत्त के साथ रागात्मक सूत्र जोड़ लिया है। वह अभिजात्य कुल की महिला होने का गौरव करती है। जब चारुदत्त भ्रमवश उसे परिचारिका समझ अपने इस व्यवहार के अपराध की क्षमा याचना करता है, तो वह भी अपने अपराध की क्षमा याचना करती हुई कहती है—'अदत्तभूमिप्रवेशप्रधर्षणेनापराद्धाहमार्यं शीर्षेण प्रसादयामि।'[1] अर्थात् गृह प्रवेश की अनुभूति प्राप्त किये बिना मैं आपके घर में बलपूर्वक चली आयी हूँ। अतः इस अपराध के लिए आप मुझे क्षमा कीजिये।

वसन्तसेना चारुदत्त के उत्कृष्ट गुणों के कारण अपना हृदय उसे समर्पित करती है। उसमें साहस और शरणागत वत्सलता दोनों ही गुण विद्यमान हैं। जब सम्वाहक उसके घर शरण लेता है तो वह शरणागत-रक्षक होने के कारण

---

१ चारुदत्त, प्रथम अङ्क, पृ० ४६

उसे अपने यहाँ स्थान दे देती है। साथ ही संवाहक के द्वारा चारुदत्त का परिचय प्राप्त कर उसका विशेष सत्कार करती है। चारुदत्त की दरिद्रता से वह अच्छी तरह परिचित है, फिर भी वह उससे प्यार करती है। अन्य वेश्याओं के समान उसका प्रेम अर्थमूलक और कृत्रिम नहीं है। वह तो उसके गुणों से आकर्षित है।

वसन्तसेना में कृपणता रञ्चमात्र भी नहीं है। वह स्वभावतः परोपकारी प्रवृत्ति की महिला है। उसकी उदारता संवाहक के संरक्षण में दृष्टिगोचर होती है। वह संवाहक को विजयी जुआरियों से मुक्ति दिलाने के लिए पर्याप्त धन देती है। वह आत्मश्लाघा से रहित है। उपकृत व्यक्ति से प्रत्युपकार की कामना नहीं करती। दास-दासियों के साथ भी वसन्तसेना का मधुर व्यवहार है। सज्जलक मदनिका के प्रणयवश चारुदत्त के यहाँ चोरी का आभूपण लाता है। वसन्तसेना उन आभूपणों को पहचान कर रुष्ट नहीं होती। किन्तु वह अपनी दासी मदनिका को उन समस्त आभूपणों को पहना कर सज्जलक के साथ उसका परिणय करा देती है और उसे सदा के लिए दासता से मुक्त कर देती है। वह गम्भीर प्रकृति की नायिका है, और सदा इस बात का प्रयत्न करती है कि ऐसा कोई भी कार्य उसके द्वारा सम्पन्न न हो जिससे समाज में उसका उपहास हो।

ब्राह्मणी : चरित्र-चित्रण

ब्राह्मणी आर्य चारुदत्त की परिणता भार्या है। यह एक पतिपरायण आर्य महिला के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। यह चारुदत्त में पूर्ण निष्ठा रखती है और पत्नी के समस्त कर्त्तव्यों का पूर्णरूप से वहन करती है। वह चारुदत्त के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहना पसन्द करती है। वह सदा इस बात का प्रयत्न करती है कि चारुदत्त अधिक-से-अधिक सुख-सुविधा प्राप्त करे। जब उसे यह ज्ञात होता है कि वसन्तसेना के आभूपण चोरी हो जाने के कारण चारुदत्त दुःखी है तो वह अपनी मुक्तावली को वसन्तसेना को देने के हेतु भेज देती है। चारुदत्त के समान यह भी धार्मिक विचार की सहिष्णु महिला है। ब्राह्मणी चारुदत्त और वसन्तसेना के रागात्मक सम्बन्ध को जानती है, फिर भी उसमें इतना धैर्य है कि वह किसी भी विकार का दुर्भाव नहीं होने देती। संक्षेप में चरित्र में ब्राह्मणी के भारतीय उदार ललना के सभी गुण विद्यमान हैं उसकी पतिपरायणता और सेवा-वृत्ति अन्य नारियों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है।

दास-दासियाँ, विदूषक एवं दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियो का चरित्र

नाटककार भास ने चरित्रो की विविधता के हेतु अपने नाटकों में दास-दासियाँ, विदूषक एव दुष्ट प्रकृति के स्त्री पुरुषो को भी स्थान दिया है। भास ने चोर, दुराचारी, अधिक जैसे पात्रो का चयन कर उनके स्वभाव गुणो का यथार्थ निरूपण किया है। समाज मे केवल सज्जन, राजा, महाराजा, मन्त्री एव वीर योद्धा ही निवास नहीं करते हैं, अपितु साधारण स्थिति के व्यक्ति भी रहते हैं। भास समग्र समाज के चित्रकार हैं, अत उनकी रचनाओ मे चरित्रो की विविधता स्वयमेव समाविष्ट हो गयी है।

संवाहक : चरित्र-चित्रण

सवाहक चारुदत्त के भृत्य के रूप मे हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। इसका पूर्ण परिचय हमे तब प्राप्त होता है जब वसन्तसेना के घर विजयी जुआरियो के भय से शरण लेता है। वह वसन्तसेना को अपना परिचय देते हुए पाटलिपुत्र का निवासी बतलाता है। वह जन्म से वणिक् है, पर भाग्य के परिवर्तन के कारण सवाहक वृत्ति का आश्रय लेता है। उसने आगन्तुक व्यक्तियो से सुन लिया था कि उज्जयिनी मे विशिष्ट एव उदार श्री सम्पन्न व्यक्ति रहते हैं। इसी कौतूहल से वह उज्जयिनी मे आया। सौभाग्यवश आर्य चारुदत्त के यहाँ उसे मालिस करने का कार्य प्राप्त हो गया। सवाहक ने इस कला मे प्रवीणता प्राप्त की और इसे अपनी आजीविका का साधन बनाया था। चारुदत्त के निर्धन होने पर वह सेवामुक्त कर दिया गया और द्यूतक्रीड़ा द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करने लगा। एक दिन दुर्भाग्यवश वह जुए मे दस स्वर्ण मुद्राएँ हार गया और जुआरियो के भय से उसने वसन्तसेना के घर मे आश्रय लिया। वसन्तसेना ने उसे निश्चित द्रव्य दे कर छुडा लिया। इस घटना से दुखित हो कर उसने सन्यास ग्रहण किया।

सवाहक इस परिस्थिति मे भी सत्स्वभाव का व्यक्ति प्रतीत होता है। वह गुणो के प्रति आदर करता है, कृतज्ञता उसके चरित्र का विशेष गुण है। उपकार का बदला वह प्रत्युपकार से देना जानता है। सवाहक के चरित्र में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं—

(१) गुणानुराग और गुणी व्यक्तियो के प्रति स्वाभाविक स्नेह
(२) कृतज्ञता एव अपने साथ किये हुए उपकार का सदा स्मरण
(३) सेवा-परायणता एव कला के प्रति अनुराग

(४) परिस्थिति के अनुकूल अपने को परिवर्तित करने की क्षमता
(५) सकल्प दृढ़ता एवं संकल्प को मूर्तिमान रूप देने की क्षमता।

मदनिका : चरित्र-चित्रण

प्राचीन समय में दास प्रथा विद्यमान थी। मनुष्य भी पशुओं के समान खरीदे और वेचे जाते थे। खरीदे हुए मनुष्य दास के नाम से पुकारे जाते थे और ये स्वामी की सम्पत्ति समझे जाते थे। मदनिका भी वसन्तसेना की इसी प्रकार की दासी है जिसे मुक्त करने के लिए सज्जलक चारुदत्त के यहाँ से चोरी करता है। दासी होने पर भी मदनिका और वसन्तसेना के बीच पवित्र प्रेमभाव है। वसन्तसेना की दृष्टि में मदनिका एक विश्वासपात्र दासी है, तभी तो वह चारुदत्त के प्रति अपने प्रेम का कारण मदनिका से कहती है। मदनिका सज्जलक के साथ गुप्त रूप से प्रेम करती है। यद्यपि मदनिका एक गणिका की परिचारिका है, फिर भी वह उत्तम एव सत्स्वभाव की महिला है। जब सज्जलक चोरी के अलकारों के साथ उससे मिलता है तो वह उसे उचित परामर्श देती है। मदनिका समयानुसार कार्य करने की क्षमता रखती है। वह सज्जलक से कहती है कि आर्य चारुदत्त की ओर से तुम वसन्तसेना को अलंकार दे दो। ऐसा करने से तुम निर्दोष सिद्ध होगे। इस प्रकार मदनिका के चरित्र में आदर्श गृहणी का जीवन झाँकता है। उदारता, स्वामिभक्ति एवं विश्वासपात्रता उसके विशेष गुण हैं।

'अविमारक' नाटक में चन्द्रिका नामक चेटी का उल्लेख आया है। तथा नलिनिका, मागधिका और विलासिनी ये तीनों कुरंगी की सखियाँ हैं। कुरंगी की धात्री जयदा भी प्रतिभा और वात्सल्य में किसी से कम नही है। अविमारक से कुरंगी को मिलाने का कार्य नलिनिका मागधिका और विलासिनी के सहयोग से करती है। नाटककार भास ने इस सखी और इन दासियों का चरित्र स्पष्ट रूप में अकित किया है। वसुमित्रा और हरिणिका कुन्तिभोज की पत्नी की दासियाँ हैं। ये दोनों दासियाँ महिषी की सेवा में सदैव तत्पर रहती हैं। इस प्रकार नाटककार भास ने दास-दासियों का चित्रण विस्तारपूर्वक किया है।

विदूपकों में तीन ही व्यक्तियों के चरित्र प्रधान हैं—(१) वसन्तक (२) मैत्रेय और (३) सन्तुष्ट।

वसन्तक उदयन का सखा है, मैत्रेय चारुदत्त का और सन्तुष्ट अविमारक का। नाटककार भास ने इनके चरित्रों को भी यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

वसन्तक : चरित्र-चित्रण

विदूषक का अवतार हास्य रस के लिए किया जाता है। यह जात्या ब्राह्मण और उम्र मे नायक से छोटा होता है। इसका नाम पुष्पवाचक या ऋतुवाचक होता है। इसके वेष, भाषा और कार्य भी हास्योत्पादक होते हैं। यह नायक का नर्म सचिव माना जाता है। नायक-नायिका के प्रेम-मिलन की व्यवस्था मे यह बड़ा निपुण होता है। खाने-पीने की वस्तुओ मे इसे बड़ा आनन्द आता है। उदयन के विदूषक का नाम वसन्तक है, यह बड़ा सुकुमार है। न अधिक गर्मी सह सकता है न अधिक सर्दी। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के चतुर्थ अङ्क में प्रमदवन मे राजा एक शिलातल पर बैठ कर पद्मावती की प्रतीक्षा करने का प्रस्ताव करता है तो वह कहता है—'अरे, इस समय शरत् कालीन तीक्ष्ण धूप है, अत. यहाँ बैठना उचित नहीं।' इसी प्रकार वह पञ्चम अङ्क मे कहता है— 'अतिशीतलेयं वेला, आत्मन प्रावारकं गृहीत्वा आगमिष्यामि।'[१] वसन्तक सुखी जीवन चाहता है और अन्य संस्कृत नाटको के विदूषकों के समान यह भी भोजन की ही चर्चा करता है। यह कहानियाँ कह कर राजा का मन बहलाव करना भी जानता है। वसन्तक के हृदय मे कोई बात पच नहीं सकती। वह मुँहफट है, अतः सभी बातो को कह डालता है। यही कारण है कि यौगन्धरायण ने राजा से वासवदत्ता को नियुक्त करने का रहस्य उसे नहीं बतलाया है। वसन्तक शृ गार रस से भी सुपरिचित है।

मैत्रेय : चरित्र-चित्रण

चारुदत्त के विदूषक का नाम मैत्रेय है। यह जन्मना ब्राह्मण है। यह चारुदत्त के साथी, घनिष्ठ मित्र एव प्रधान सहायक के रूप में उपस्थित हुआ है। जब चारुदत्त एक श्रीसम्पन्न व्यक्ति था, उस समय वह उसके घर खूब खाता-पीता था और आनन्दमय जीवन व्यतीत करता था। पर जब से चारुदत्त दरिद्रता का जीवन व्यतीत करने लगा है, तब से वह पक्षियों की भाँति इधर-उधर खा-पीकर एक मात्र रहने के लिए उसके घर आता है। वह अपने व्यवहार से कभी भी चारुदत्त को मानसिक कष्ट नहीं पहुँचाता।

मैत्रेय कट्टर धार्मिक नहीं है। उसकी देवी-देवताओं के प्रति भी श्रद्धा नहीं। वह भीरु प्रकृति का है। यही कारण है कि वह अंधेरे मे चतुष्पथ [illegible]

१. स्वप्नवासवदत्तम्, पञ्चम अङ्क, पृ० १८३

बलि अर्पण हेतु जाने में असमर्थता दिखलाता है। जब मदनिका साथ में भेजी जाती है तब कहीं स्वयं भी जाने को तैयार होता है। वह व्यंग्य और हास्य करना भी जानता है। चारुदत्त नाटक के प्रथम अङ्क में जब वसन्तसेना और चारुदत्त स्व-स्व अपराधों के निमित्त एक-दूसरे से क्षमा-याचना करते हैं तो वह कहता है कि गाड़ी को खींचने में लगे हुए दो दुर्विनीत बैलों के समान ये परस्पर एक-दूसरे को अनुनय प्रार्थना द्वारा क्लेश पहुँचा रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि व्यंग्योक्ति में भी वह पटु है। मैत्रेय को चारुदत्त का वसन्तसेना के प्रति प्रेम अच्छा नहीं लगता। वह वेश्याओं को कुटिल स्वभाव वाली बतलाता है। इस प्रकार मैत्रेय के चरित्र में आज्ञाकारिता, भक्तिभाव एवं स्वामि का हितचिन्तन विद्यमान है।

सन्तुष्ट : चरित्र-चित्रण

'अविमारक' का सहयोगी सन्तुष्ट विदूषक है। वह अविमारक का अत्यन्त हितैषी और सहयोगी है। कुरंगी के प्रेम से आहत होने के कारण जब अविमारक की दशा बिगड़ने लगती है तो सन्तुष्ट रुष्ट हो कर कहता है—'ये राजा के लाड़ले पुत्र अवस्था परिवर्तन समझते ही नहीं। इसीलिये यह अविमारक ऋषि-शाप के कारण कुभ्रंश, अंत्यज कुलप्रवास, अपना ज्ञान एवं गुरुजन सब कुछ भूल कर जब से उस हस्ति सम्भ्रम के दिन कुन्ति-भोज पुत्री कुरंगी दिखलायी पड़ी है, तभी से कुछ दूसरी ही तरह का यह हो रहा है। यह मेरे साथ भी बैठना नहीं चाहता। सदा चिन्ता में मग्न रहता है। लोग ठीक ही कहते है कि अनर्थ अकेला ही नहीं आता। इसमें क्या सम्बन्ध है, वह राज- कन्या है और आप खुद अन्यज हैं। मैं भी ब्राह्मणों की शिकायत को बचाता हुआ ब्राह्मणों के घर का चक्कर लगा कर छिप कर उसी के आवास को जाता हूँ।'[1] सन्तुष्ट के इस कथन से अविमारक के प्रति अपार स्नेह व्यक्त होता है। वह सब प्रकार से अविमारक का हित साधन करना चाहता है। जब अविमारक कुन्ति-भोज के अन्तःपुर में जाने लगता है तो वह उसे समझाता है और इस अनुचित कर्म को करने से रोकता है। छिप कर अन्तःपुर में जाने का वह अमानवीय कार्य करता है। वह अविमारक को छोड़ कर कहीं जाना नहीं चाहता। निरन्तर उसका मनोविनोद करना चाहता है। जब अविमारक कुरंगी के विरह में क्षीण होने

---

१. अविमारक, द्वितीय अङ्क, पृ० २६।२७

लगता है तो वह उसे सान्त्वना देता है। वह अविमारक से पूछता है कि तुम इतने दिनो तक कहाँ थे ? जब अँगूठी के प्रभाव से अविमारक छिप जाता है तो विदूषक कहता है—'हा हा क्व क्व तत्र भवान्। कथ न दृश्यते। आ तस्मिन् गतया चिन्तया तमिव पश्यामि। अथवा स्फुटीकरिष्यामि। भो वयस्य ! शापेन शापितोऽसि, यद्यात्मानां छादयसि।'[१] सन्तुष्ट के चरित्र मे सौन्दर्य-प्रियता भी है। वह अविमारक से नगर का सौन्दर्य देखने की इच्छा व्यक्त करता है। वह व्यग्य करता हुआ कुरगी के सम्बन्ध मे शृ गार-विषयक प्रश्न पूछता है। पञ्चम अङ्क में जब अविमारक सन्तुष्ट को महापण्डित कहता है तो वह उसे व्यग्य समझ कर उपहास न करने का अनुरोध करता है। वस्तुत अवि-मारक का सन्तुष्ट अत्यन्त ही हसमुख और वाचाल है। वह अपने मित्र अवि-मारक की हित-साधना में सदा सलग्न रहता है।

शकार : चरित्र-चित्रण

शकार 'चारुदत्त' नाटक का प्रति नायक है। यह राजा का साला है। सम्भवत इसकी बहन राजा की परिणीता या रखेली है। यह महान् मूर्ख है। इसका बातचीत करने का ढग भी मूर्खतापूर्ण ही है। पौराणिक कथाओं को यह सुन चुका है, पर है इसका ज्ञान असन्तुलित। यह वसन्तसेना को धमकी देते हुए कहता है कि मैं तुम्हारे केश पकड कर उसी प्रकार से अपमानित करूँगा, जिस प्रकार दु.शासन ने सीता को अपमानित किया। इतना ही नहीं उसे इन्द्रियो के विषय का भी ज्ञान नहीं है। वह कहता है कि "श्रृणोमि गन्ध श्रवणाभ्याम्", "अन्धकारपूरिताभ्या नासापुटाभ्या", "सुष्ठु न पश्यामि।" वसन्तसेना के साथ वह रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। पर वसन्तसेना उससे घृणा करती है। वह बल प्रयोग द्वारा उसे आत्मसात् करना चाहता है। पर इसमें भी उसे सफलता नही मिलती है। वह हठधर्मी है, पर स्थिर विचार का व्यक्ति नहीं। प्रथम अङ्क में वसन्तसेना को प्राप्त करने के लिए मैत्रेय द्वारा चारुदत्त के पास सन्देश भेजता है कि यदि तुम वसन्तसेना को मुझे समर्पित नही करोगे तो तुम्हारा प्राणान्त कर डालूँगा। उसका यह सन्देश अपूर्ण ही रह जाता है और इसकी पूर्ति के लिए वह कोई प्रयास भी नही करता। वह अपने सहयोगियो मे न विश्वास करता है न प्रेम ही।

शकार अपनी धूर्तता से वसन्तसेना की माता को बहुत-सा धन दे कर

१. अविमारक, चतुर्थ अङ्क, पृ० ११५।११६

अपनी ओर कर लेता है और वसन्तसेना के ऊपर माता का जोर डलवा कर उसे अपने अनुकूल करना चाहता है। पर वसन्तसेना उसके इस प्रस्ताव को सदैव ठुकराती है। शकार उसे बलपूर्वक अपने अधीन करना चाहता है। अतः जब भी वसन्तसेना अपने घर से कहीं बाहर जाती है तो वह उसका पीछा करता है एवं उसे एकान्त में प्राप्त कर उसके साथ अनुराग बढ़ाना चाहता है। यों वह बल-पौरुष की बातें करते हुए नहीं थकता है, पर जब रात्रि के समय चारुदत्त के घर के पास वसन्तसेना को खदेड़ता हुआ वह पहुँचता है तो मैत्रेय की डाँट सुन कर ही भाग जाता है। अतः स्पष्ट है कि शकार का चरित्र दम्भ और पाखण्डपूर्ण है। नाटककार भास ने शकार के चरित्र में नाटकीय संविधान के प्रतिकूल किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है। यह आश्चर्य की बात है कि शकार कोट्टपाल के पद पर आसीन है। नगर की समस्त व्यवस्था उसी की देख-रेख में संचालित होती है। इस प्रकार के महत्व-पूर्ण पद को वह व्यक्ति, जिसे यह ज्ञान न हो कि कानों से सुना जाता है या आँखों से, देखने का काम आँखें करती हैं या नासाछिद्र, कैसे सम्हाल सकता है? हम पौराणिक ज्ञान की कमी तो स्वीकार कर सकते हैं। पर इस प्रकार का ऊटपटाँग ज्ञान इस प्रकार के उत्तरदायी व्यक्ति में कैसे सम्भव है? अतः भास ने शकार के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक तथ्यों की अवहेलना की है।

शील का विकास अच्छे और बुरे दोनों रूपों में हो सकता है। आन्तरिक प्रेरणावश कभी-कभी संस्कारी व्यक्ति भी गलती कर बैठता है। शकार में वासना-धिक्य है और वह वसन्तसेना के अपूर्व रूप को देख कर उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। तो इतने मात्र से हम उसे दुष्ट चरित्र का व्यक्ति नहीं मान सकते। यद्यपि नाटककार भास ने शकार के चरित्र में दुष्टता की योजना करने का प्रयास किया है, पर उसमें उन्हें पूर्णतया सफलता नहीं मिल पायी है। शकार के चरित्र का पूर्णतया उद्घाटन तो शूद्रक ही कर पाये हैं, भास नहीं।

सज्जलक : चरित्र-चित्रण

सज्जलक मदनिका का प्रेमी है। यह चौर्य्य कला में भी परम प्रवीण है। यह चोरी करने के लिए उपयोगी सभी सामग्रियों से सजधज कर चारुदत्त के घर चोरी करने जाता है। यह उज्जयिनी का नागरिक नहीं है। सम्भवतः कहीं बाहर से आ कर उज्जयिनी में रहने लग गया है। यह मदनिका के प्रेम

मे इतना पागल हो जाता है कि चौर्य्य कर्म को निकृष्ट बताते हुए भी उसे करता है। सब कुछ होते हुए भी उसे इस बात का ध्यान है—"किं वा न कारयति मन्मथ।"[१] "यदिद दारुण कर्म निन्दामि च करोमि च।"[२]

सज्जलक के इस चिन्तन से अवगत होता है कि वह जितने भी निद्य कर्म करता है, उन सब के पीछे मन्मथ की प्रेरणा है। वह वसन्तसेना की दासी मदनिका से प्रेम करता है एव मदनिका भी उसे प्यार करती है। मदनिका वसन्तसेना के यहाँ दास वृत्ति को प्राप्त है। धन दे कर ही उसे इस वृत्ति से मुक्त किया जा सकता है, सज्जलक स्वय निर्धन है। अतएव वह अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए चौर्यकार्य द्वारा धन प्राप्त करना चाहता है।

एक दिन वह चारुदत्त के यहाँ चोरी करने पहुँचता है। सुरङ्ग को मापने के लिए मापक यन्त्र के अभाव मे वह शीघ्रातिशीघ्र अपने ब्रह्मसूत्र के द्वारा इस कार्य को सम्पादित करता है। वह साहसी और बुद्धिमान है। जब मदनिका चोरी से लाये सुवर्ण भाण्डो को लौटा देने का सुझाव देती है, तो वह उसका हृदय से अनुमोदन करता है।

सज्जलक मे गुण-ग्राहिता की वृत्ति भी पायी जाती है। जब वसन्तसेना मदनिका को अलकारो से सुसज्जित कर उसे परिणीता नायिका के रूप मे प्रस्तुत करती है, तब वह अपने मन मे इतने बडे उपकार का बदला चुकाने का सुअवसर ढूँढता है। असमर्थता के कारण जब कुछ नही कर पाता तो उसके हृदय से ध्वनि निकलती है कि वसन्तसेना और चारुदत्त का सब तरह से मगल हो। इस प्रकार सज्जलक के चरित्र को नाटककार भास ने पर्याप्त परिष्कृत किया है एव उसके निद्य कर्मो को लाचारी की स्थिति बतलाता है।

उपर्युक्त प्रधान पात्रो के अतिरिक्त नाटककार भास ने नारद, व्यास, परशु-राम, चण्डभार्गव, अन्धक ऋषि, वसिष्ठ और वामदेव का भी चरित्र निबद्ध किया है। नारद पुराणो के समान ही कलहकारी चित्रित किये गये हैं। परशुराम क्रोधी और अस्त्र-शस्त्रो के पारङ्गत शिक्षक के रूप मे गुम्फित हैं। परिस्थिति का सन्तुलन करने के लिए व्यास का चरित्र उपस्थित किया गया है। चण्डभार्गव क्रोधी ऋषि के रूप मे चित्रित हैं। इनके अभिशाप से ही अविमारक को एक वर्ष पर्यन्त अन्त्यज के रूप मे निवास करना पड़ता है। अन्धक ऋषि कौरव और पाण्डवो के मध्य शान्ति के हेतु अवतीर्ण होते हैं।

---

१. चारुदत्त, अङ्क—३, पृ० ८४

२ वही, अङ्क—३, पृ० ९१

राम का राज्याभिषेक सम्पन्न करने में वशिष्ठ और वामदेव सहकारी माने गये हैं। इन समस्त ऋषियों और पुरोहितों का चरित्र यथार्थ रूप में विकसित हो पाया है। इनके स्वभाव और गुण की एक किरण ही हमारे सामने प्रकाश उत्पन्न करती है।

अंग रक्षक के रूप में गात्र सेवक और हंसक के चरित्र आये हैं। हंसक महाराज उदयन के साथ विन्ध्याटवी में गज-आखेट के लिए जाता है और वहां महासेन के सैनिकों द्वारा उदयन के वन्दी वना लिये जाने पर यह भी अपने को वन्दी रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। पर सालंकायन उसे समझा-बुझा कर यौगन्धरायण के पास भेज देता है। हंसक को सालंकायन अवन्ती नहीं ले जाना चाहता है क्योंकि हंसक के वहाँ जाने से उदयन का समाचार भी वत्स देश में नहीं पहुँच पायेगा। अतः हंसक का चरित्र भास ने विश्वासपात्र सेवक के रूप में चित्रित किया है। गात्र सेवक भी अत्यन्त विश्वासपात्र है, एवं वह भी अपने स्वामी के मंगल के हेतु सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत है।

पशु-पक्षियों के चरित्र में कालीयनाग, अरिष्टवृषभ, जटायु, नलागिरि, भद्रावती हस्तिनी, गरुड़ आदि प्रधान हैं। जटायु का चरित्र वाल्मीकि के समान ही भास ने भी अङ्कित किया है। कालीयनाग विष्णु के वाहन गरुण से भयभीत हो कर यमुनाह्लद में निवास करता है। उसके विष के प्रभाव के कारण समस्त जल विषमय हो जाता है जिसके पान मात्र से गाय और गोप मृत्यु को प्राप्त करते हैं। श्रीकृष्ण ने इसका दमन कर इसे यमुनाह्लद से निर्वासित किया। नलागिरि के धोखे से ही उदयन को महासेन का वन्दी वनना पड़ा। उदयन उज्जयिनी से भद्रावती हस्तिनी पर वासवदत्ता के साथ सवार हो कर भाग आया था। इस प्रकार नाटककार भास ने पशु-पक्षियों को भी पात्रों का रूप प्रदान कर उनका चरित्र अङ्कित किया है।

भास की संवाद योजना

नाटक का अन्तर्दर्शन पात्रों के वार्त्तालाप द्वारा ही सम्भव होता है। संवाद या कथोपकथन कथावस्तु की व्याख्या करते चलते हैं। पात्रों के चरित्र का परिज्ञान संवादों के द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार पात्रों के शील की प्रतिष्ठा संवादों से होती है, उसी प्रकार कथानक का विकास और घटनाओं का संयोजन संवादों द्वारा ही होता है। अतएव यह आवश्यक है कि नाटक के उद्देश्य और वृत्ति के अनुकूल उनमें भाव एवं भाषा की संगति वनी रहे।

प्राचीन आचार्यों ने कथोपकथन के तीन भेद वताएँ हैं—(१) श्राव्य, (२)

अश्राव्य और (३) नियतश्राव्य। भास के नाटकों में इन तीनों प्रकार के संवादों का यथोचित प्रयोग हुआ है।

नाट्यशास्त्रियों ने वाचिक अभिनय का आधार संवाद को माना है। जिस नाटक के संवाद जितने सशक्त और प्रभावक होते हैं वह नाटक उतना ही कलात्मक होता है। भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में संवाद रचना के छत्तीस लक्षण बतलायें हैं। और संविधानानुसार नाटक रचना करने वाले नाटककारों के लिए इन गुणों का निर्वाह आवश्यक माना है। भास ने इन समस्त गुणों को तो नहीं अपनाया है, पर अधिकांश गुण उनकी रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। यह हम पहले ही लिख चुके है कि नाटककार भास ने भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र के संविधान का अनुसरण नहीं किया है। अतः बहुत सम्भव है कि भरतमुनि द्वारा मान्य अधिकांश लक्षण उनकी कृतियों में घटित न हो सकें।

भरतमुनि ने भूषण, अक्षरसंघात, शोभा, उदाहरण, हेतु, संशय, दृष्टान्त, प्राप्ति, अभिप्राय, निदर्शन, निरुक्ति, सिद्धि, विशेषण, गुणातिगुणपात, अतिशय, तुल्यातर्क, पदोच्चय, दृष्ट, उपदिष्ट, विचार, विपर्यय, भ्रंश, अनुनय, माला, दाक्षिण्य, गर्हण, अर्थापत्ति, प्रसिद्धि, पृच्छा, सारूप्य, मनोरथ, लेश, क्षोभ, गुणकीर्तन, सिद्धि, और प्रियवचन ये छत्तीस लक्षण संवाद रचना के माने हैं।[१]

भास के नाटकों का अध्ययन करने से उनके संवादों में निम्नांकित विशेषताएँ प्राप्त हैं—

(१) शृंखलाबद्धता
(२) संक्षिप्तता
(३) ओजस्विता एवं प्रभावकता
(४) स्वाभाविकता
(५) व्यंग्यात्मिका अभिव्यक्ति

भास के नाटकों में यत्र-तत्र स्वगत एवं पद्यात्मक संवाद भी मिलते हैं। प्रायः सभी नाटकों में स्वगतों की योजना हुई है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में यौगन्धरायण वासवदत्ता के न्यास के उपरान्त स्वगत भाषण करता हुआ कहता

१. भरतमुनि नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्करण, संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, वि० सं० १९८५, अध्याय १७, पद्य १।४२

है—'हन्त भो ! अर्धमवसितं भारस्य। यथामन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति। ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्र भवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वास-स्थानं भविष्यति।'[1] इसी प्रकार 'पञ्चरात्रम्' में भगवान् का यह स्वगत कितना मर्मस्पर्शी है। भगवान् कहता है—'आज मेरा यह जमीन पर पत्ते बिछा कर सोना, राज्य से च्युत होना, द्रौपदी का अपमान, रूपान्तर ग्रहण कर के दूसरों के आश्रय में रहना, सब प्रशंसनीय हो रहा है क्योंकि विराट उसे मेरी क्षमा मान रहे हैं।'[2] आगे चल कर इसी नाटक में वह सोचता है—'अपमानित हो कर भी विराट ने औचित्य प्राप्त सत्कार का त्याग नहीं किया है। कौरवों के पितामह गांगेय क्यों आये है, क्या मैंने अज्ञातवास रूप प्रतिज्ञा पूरी कर ली है, इसी की याद दिलाने आये है?' भगवान् का स्वगत चिन्तन इस नाटक में अधिक प्रभावक है। यह सत्य है कि स्वगतों की योजना मनोवैज्ञानिकों के परिवेश मे की गयी है। जब कुमार अभिमन्यु वन्दी के रूप में प्रविष्ट होता है और पाण्डव गुप्त वेश में रह कर उसे चिढ़ाने की दृष्टि से उसका तिरस्कार करते हैं, उस समय अभिमन्यु कहता है कि आत्मश्लाघा करना हमारे वंश में वर्जित है। युद्ध में मारे गये अथवा घायल हुए सैनिकों को देखिये, उन पर जिन बाणों का प्रहार हुआ है वे बाण दूसरे के नाम से अंकित नहीं हैं। अभिमन्यु के इस कथन को सुन कर बृहन्नला रूपधारी अर्जुन स्वगत भाषण करता है और कहता है—'रथतुरग, मदोन्मत्तहस्ती, तथा शूरों से युक्त सैन्य में कोई ऐसा नहीं रहा जिसे इस कुशल तीरन्दाज ने वेधा न हो। मैं भी घायल हो ही जाता यदि मैं अपना रथ घुमा न लेता।' इस आत्मगत कथन के पश्चात् अर्जुन का सर्वश्राव्य कथन मनोवैज्ञानिक दक्षता का सूचक है। वह कहता है—'बोलने में तो खूब दक्ष हो, फिर पैदल ही उन्होंने क्यों तुम्हें पकड़ लिया?' अभिमन्यु उत्तर देता है—'अशस्त्र हो कर मेरे सामने गये इसीलिये मैं पकड़ा गया। मैंने अपने पिता अर्जुन की अस्त्र-प्रवीणता का चिन्तन कर उस निहत्थे पर अस्त्र प्रहार नहीं किया। मैं अपने पिता के यश को कलंकित करना नहीं चाहता था। मेरे पिता किसी निहत्थे पर अस्त्र प्रहार नहीं करते हैं। भला मैं उनकी इस मर्यादा का उल्लंघन कैसे करता?'

अभिमन्यु के इस उत्तर को सुन कर भीमसेन ने जिस स्वगत भाषण

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अङ्क, पृ० ३३

२. पञ्चरात्रम्, २।१०

का प्रयोग किया है उससे उनकी मानसिक स्थिति का सहज मे परिज्ञान हो जाता है। भीमसेन स्वगत भाषण करता हुआ कहता है—'अर्जुन धन्य है, जिसने दोनो बातें पिता तथा पुत्र के युद्ध-कौशल की प्रशसा वार्ता प्रत्यक्ष सुन ली।' इस प्रकार "पञ्चरात्रम" मे स्वगत भाषणो की योजना बडे ही सुन्दर रूप मे भास ने प्रस्तुत की है :

भास के जितने भी बडे रूपक हैं, उन सभी मे स्वगतो की योजना है। 'अविमारक' नाटक मे अविमारक का स्वगत भाषण कई स्थानो पर आया है। द्वितीय अङ्क मे वह कुरगी के प्रेम से विह्वल हो कर स्वगत भाषण करता है, जिससे उसकी मानसिक पीडा अभिव्यक्त होती है। इसी प्रकार तृतीय अङ्क मे कुरगी भी अपनी हृदयवेदना को स्वगत भाषण द्वारा अभिव्यक्त करती है। तृतीय अक मे ही उन दोनो की वेदना को अनुभूत कर नलिनिका स्वगत भाषण करती हुई कहती है—"एष खलु भगवान् कामदेव ओघ इवोभयपक्ष पीडयति भर्तृदारक ! अलङ्क्रियता शयनतलम्।"[१] इस प्रकार स्वगत भाषणो के प्रयोग मे नाटककार भास अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे उपस्थित हुए हैं। यही कारण है कि भाव प्रकाशन एव हृदय की मार्मिक स्थिति की अभिव्यक्ति मे उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

भास के नाटको मे सवाद और व्यापार का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उन्होने सवादो द्वारा कार्य-व्यापारो को गतिशील बनाया है और कहीं कहो कार्य-व्यापारो से सवादो मे प्रभावोत्पादकता उत्पन्न की है। भास ने अपने पात्रो के वार्तालापो मे जिज्ञासा, रोचकता का समावेश किया है। इनके नाटको मे सवादो से तत्त्व-निरूपण और आत्म-चिन्तन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यह सत्य है कि भास के सवाद धर्म-ग्रन्थो जैसे नही है। उनमे यथेष्ट नाटकीयता पायी जाती है। दार्शनिक मीमासा या तत्व मीमासा की चर्चाएँ नाटको मे नही आयी हैं। तत्कालीन सामाजिक समस्याएँ तथा पारिवारिक समस्याएँ अवश्य प्रस्तुत की गयी हैं और उनके समाधान भी सवादो द्वारा किये गये हैं। इनके सवादो मे अलकरण के साथ यथार्थवाद और स्वाभाविकता का भी समावेश पाया जाता है। भास के संवाद सरल अधिक हैं, गम्भीर कम। जितना चमत्कार उनमें परिलक्षित होता है, उतनी स्वाभाविकता भी है। सूक्तियों का प्रयोग तो अनेक सवादो मे पाया जाता है। इनके भी पात्र एक दूसरे के सम्पूर्ण वचन को धैर्यपूर्वक अन्त तक सुनने का प्रयास करते हैं। बीच-बीच मे प्रश्न करने

---

१. अविमारक, तृतीय अङ्क, पृ० ७९

या उत्तर देने की प्रवृत्ति उनमें नहीं पायी जाती है। कुछ नाटकों के संवाद विस्तृत हैं और कुछ के संक्षिप्त। तर्कों के समाविष्ट रहने पर संवादों में नीर-सता नहीं आयी है। हम यहाँ पर नाटककार भास द्वारा गुम्फित किये गये प्रमुख संवादों की एक संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत करते हैं।

"पञ्चरात्रम्" के प्रमुख संवाद

(१) द्रोण-दुर्योधन संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	२४-२७
(२) शकुनि-द्रोण संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	२६
(३) दुर्योधन-शकुनि संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	३८-३९
(४) दुर्योधन-कर्ण संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	३८
(५) भीष्म-द्रोण संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	४४-४८
(६) भगवान्-विराट संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	६२-६६, अंक—२
(७) बृहन्नला-भीम संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	९१-९२
(८) उत्तर-राजाविराट संवाद	पञ्चरात्रम्	पृ०	१०१-१०२

तृतीय अंक में पाण्डवों को ले कर द्रोण शकुनि और दुर्योधन के बीच सभा-संवाद आरम्भ होता है, जिसमें शकुनि अपने तर्कों द्वारा पाण्डवों के अस्तित्व का निषेध करता है। जब अर्जुन का नामांकित वाण लाया जाता है तो उस नाम को पढ़ कर शकुनि तर्क देता है कि पाण्डव अर्जुन के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा व्यक्ति अर्जुन नहीं हो सकता है? अर्जुन नामधारी व्यक्तियों की कमी नहीं है। इस सन्दर्भ में द्रोण और दुर्योधन के उत्तर-प्रत्युत्तर रूप में प्रस्तुत किये गये तर्क भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह एक प्रकार से सभा-संवाद है जिसमें कई व्यक्ति सम्मिलित हो कर अपने-अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं।

"मध्यमव्यायोग" के प्रमुख संवाद

नाटक के आरम्भ में वृद्ध ब्राह्मण और उसके परिवार के सदस्यों के बीच संवाद होता है। इस संवाद को हम विशेष अवसर पर उपस्थित परिवार संवाद के अन्तर्गत रख सकते हैं। घटोत्कच को देख कर जब ब्राह्मण परिवार संत्रस्त हो जाता है तो वृद्ध ब्राह्मण उन्हें सान्त्वाना देते हुए कहता है कि भयभीत या आतङ्कित होने की आवश्यकता नहीं है। इसकी वाणी सुविचारित और विवेक-युक्ति प्रतीत होती है। स्मरण होगा कि उन आदरणीय मुनि जलविलन्न ने कहा था कि यह वन राक्षसों से विहीन नहीं है। अतः इसमें सावधानीपूर्वक गमन

करना चाहिये । जब ब्राह्मणी घबरा जाती है और किंकर्तव्यविमूढ़ हो कर आगामी भय की आशंका से चिल्लाने का अनुरोध करती है, उस समय वृद्ध ब्राह्मण धैर्य बँधाता हुआ कहता है कि इस वन मे पास मे ही कही पाण्डव आश्रम है । पाण्डव युद्ध-प्रिय, शरणागतवत्सल, दीनों पर प्रेम करने वाले एव साहसी है । मुझे विश्वास है कि उनका सरक्षण हम लोगों को प्राप्त हो जायेगा । वृद्ध पिता की इन बातों को सुन कर ज्येष्ठ पुत्र कहता है—'उनके आश्रम की ओर से आये हुए किसी ब्राह्मण ने कहा था कि वे शतकुम्भ यज्ञ मे सम्मिलित होने के हेतु महर्षि धौम्य के आश्रम मे गये हैं ।''

वृद्ध—'हाय, हम सभी लोग मारे गये ।'

ज्येष्ठ पुत्र—'पिताजी, वे सभी नही गये हैं । आश्रम की रक्षा और देख-भाल के लिए मध्यम पाण्डव को वहो छोड़ गये हैं ।'

वृद्ध—'यदि ऐसा है तो समझो कि सभी पाण्डव यहीं हैं ।'

ज्येष्ठ पुत्र—'वह भीमसेन भी इस समय व्यायाम करने कहीं दूर गये हैं, ऐसा सुना है ।'

वृद्ध—'हाय, हम सब निराश हैं । अच्छा पुत्र, तब तक हम इससे ही प्रार्थना करें ।'

ज्येष्ठ पुत्र—'बस-बस, परिश्रम व्यर्थ है ।'

वृद्ध—'पुत्र प्रार्थना मोक्ष की याचना के लिए होगी । अच्छा देखें तब तक, हे पुरुष, क्या हम लोगों की मुक्ति हो सकती है ?'

घटोत्कच—'हाँ, एक शर्त पर ही छुटकारा मिल सकता है ।'

वृद्ध—'कौन सी शर्त ?'

घटोत्कच—'मेरी आदरणीय माता हैं । उन्हीं का आदेश है कि हे पुत्र ! मेरे उपवास की पारणा के लिए इस वन-प्रदेश से किसी मनुष्य को खोज लाओ । अतः मैंने आप लोगो को पकड़ा है ।'

यदि तुम अपनी शीलवती भार्या और दो पुत्रो के सहित छुटकारे की इच्छा रखते हो तो (इन पुत्रो मे से) योग्य और अयोग्य का विचार कर के एक को दे दो ।

वृद्ध—'ओ क्रूर राक्षस ! दूर हट क्या मैं ब्राह्मण नही हूँ ।'

मैं वृद्ध शास्त्रज्ञ अपने गुणशील-सम्पन्न पुत्र को मानव-भक्षी राक्षस के लिए दे कर भला किस प्रकार (प्रसन्नता) शान्ति को प्राप्त करूंगा ?

---

१. मध्यमव्यायोग, पृ० ६-१२

घटोत्कच—'हे द्विजोत्तम ! यदि मेरे माँगे हुए एक पुत्र को तुम नहीं दोगे तो शीघ्र ही कुटुम्ब के सहित विनाश को प्राप्त होगे।'

वृद्ध—'मैंने भी यही निश्चय किया है।'

अपने पुत्र की रक्षा के लिए मैं स्वयं अपने संस्कार-युक्त पवित्र शरीर को राक्षस की क्षुधा अग्नि में आहुति करता दूंगा क्योंकि इस शरीर ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया है और अब वृद्धावस्था के कारण जर्जरित हो चुका है।'[1]

इसी वार्त्तालाप-प्रसंग में ब्राह्मणी भी अपने शरीर का बलिदान करने को कहती है। घटोत्कच वृद्धा और वृद्ध इन दोनों को छोड़ कर तीनों पुत्रों में से किसी एक पुत्र को लेना स्वीकार करता है। प्रथम पुत्र वृद्ध को प्रिय है, अतः वृद्ध उसका त्याग करना नहीं चाहता और कनिष्ठ पुत्र माँ को प्रिय है अतः माँ उसका बलिदान कर देना नहीं चाहती। इस प्रकार वार्त्तालाप के क्रम में मध्यम पुत्र ही घटोत्कच के साथ जाना स्वीकार कर लेता है। इस वार्त्तालाप को नाटककार भास ने बड़ा ही सजीव और मर्मस्पर्शी बनाया है। वृद्धा और वृद्ध के कथन में पर्याप्त करुणा का समावेश पाया जाता है। इस नाटक के अन्य वार्त्तालाप निम्नलिखित है—

(१) वृद्ध-घटोत्कच वार्त्तालाप	पृष्ठ १२-१४
(२) भीम-घटोत्कच वार्त्तालाप	पृष्ठ २२-२३—४१
(३) घटोत्कच-हिडिम्बा का संवाद	पृष्ठ ४२-४४
(४) भीम-वृद्ध सवाद	पृष्ठ ४५-४७

दूतवाक्यम् के संवाद

नाटकीय घटनाओं का आरम्भ ही संवादात्मक शैली में हुआ है। दुर्योधन और कंचुकी का संवाद सर्वप्रथम आया है। जब दुर्योधन कहता है कि क्रोध के नष्ट होने के कारण मेरा मन प्रसन्न है तथा इस एकाएक रण के उपस्थित होने पर पाण्डव सेना के मत्त गजराजों के दन्त को मूसल की भाँति उखाड़ कर उनके मुखों को दन्तहीन करने की इच्छा होती है, इसी बीच कंचुकी आ कर प्रविष्ट होता है। दुर्योधन पूछता है—'श्रेष्ठ वैकर्ण और वर्षदेव बतलाओ मेरी ग्यारह अक्षोहिणी सेना का क्या समाचार है? इसका

---

१. मध्यमव्यायोग, पृ० ६।१२

सेनापति कौन हो सकता है? क्या-क्या आप लोग कहते हैं? मन्त्रणा कर के मुझे निश्चित उत्तर दीजिये।' यह कहता हुआ दुर्योधन सभा-भवन में प्रवेश करता है। इसी समय बादरायण आ कर दुर्योधन को सूचित करता है कि पाण्डवों के शिविर से दूत रूप मे पुरुषोत्तम नारायण पधारे हैं। दुर्योधन—'बादरायण ऐसा न कहो। क्या कंस का सेवक दामोदर ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है? जरासन्ध के द्वारा जिसकी कीर्ति नष्ट कर दी गयी वही तुम्हारा पुरुषोत्तम है? क्या महाराजाओं के दरबार मे रहने वाले सेवक का यही आचरण है? यह वाणी तो बड़ी गर्वीली है। अरे नीच!

कंचुकी —'प्रसन्न हों! महाराज प्रसन्न हों! घबड़ाहट के कारण मैं शिष्ट आचरण करना भूल गया था। पैरों पर गिरता है।'

दुर्योधन—'घबड़ाहट! आह! मनुष्य के आने से इतनी घबड़ाहट? उठो-उठो।'

कंचुकी —'अनुगृहीत हुआ।'

दुर्योधन—'अब मैं प्रसन्न हूँ। कौन-सा दूत आया है?'

कंचुकी —'केशव नामक दूत आया है।'

दुर्योधन —'केशव! यही योग्य परिचय है। यही सभ्यता है? हे राजाओ! दूत रूप में आये हुए केशव के लिए कैसा वर्ताव युक्त है? क्या कहा आप लोगो ने? अर्घ्य देकर केशव की पूजा करनी चाहिये? यह मुझे नहीं पसन्द है। उसे कैद करने में ही अपना हित देखता हूँ।'[१]

इस प्रकार नाटककार भास ने घटनाओं का आरम्भ ही कंचुकी और दुर्योधन के संवाद से किया है। इस संवाद मे तर्क, संशय, अनुनय, दाक्षिण्य, गर्हण, क्षोभ, गुणकीर्तन, अभिप्राय आदि भरतमुनि द्वारा विवेचित संवाद रचना के तत्व पाये जाते हैं। इस वार्तालाप मे दुर्योधन की अहंकारी मनोवृत्ति के साथ उसके कार्य-कलापों का भी प्रकाशन हुआ है। इसे हम सभा-संवाद कह सकते हैं। दुर्योधन सभा के मध्य आसीन है और वहीं कंचुकी प्रविष्ट हो कर दूत रूप मे पुरुषोत्तम नारायण के आने की सूचना देता है। अन्य संवादों में—

(१) वासुदेव-दुर्योधन संवाद, पृ० १८-२२

(२) वासुदेव सुदर्शन संवाद, पृ० ३५-३६

---

१. दूतवाक्यम्, पृ० ८

(३) वासुदेव-धृतराष्ट्र संवाद, पृ० ४५-४७

धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के अभिमानी आचरण के कारण अन्तस् में सन्तप्त हैं। जब वे कृष्ण का अपमान कर उन्हें बन्दी बनाना चाहते हैं और कृष्ण अपने उग्र रूप का प्रदर्शन कर वहाँ से जाने लगते है तो धृतराष्ट्र कहता है—"क्व नु खलु भगवान् नारायणः। क्व न खलु भगवान् पाण्डवश्रेयस्करः। क्व नु खलु भगवान् विप्रप्रियः। क्व नु खलु भगवान् देवकीनन्दनः।"

मम् पुत्रापराधात् तु शार्ङ्गपणे ! तवाधुना।
एतन्मे त्रिदशाध्यक्ष ! पादयोः पतितं शिरः।

वासुदेव—"हा धिक् पतितोस्त्रभवान्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।"
धृतराष्ट—"अनुगृहीतोऽस्मि। भगवन् ! इदमर्घ्यं पाद्यञ्च प्रतिगृस्यताम्।"[१]

इस प्रकार धृतराष्ट्र और वासुदेव के सवाद में धृतराष्ट्र की मानसिक व्यथा अभिव्यक्त होती है। नाटककार भास ने बड़ी कुशलता से अन्योक्ति द्वारा दुर्योधन के अनौचित्य पर प्रकाश डाला है। इस संवाद में तर्क की अपेक्षा भावुकता अधिक है। धृतराष्ट्र प्रत्यक्ष रूप में अपने पुत्रों के साथ विरोध करने में अक्षम हैं।

दूतघटोत्कच के संवाद

प्राकृत नाटक का प्रारम्भ परिवार के संवाद से होता है। गान्धारी और धृतराष्ट्र पारिवारिक चर्चाओं में व्यस्त हैं। अभिमन्यु की मृत्यु के कारण धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों की रक्षा की चिन्ता है। गान्धारी धृतराष्ट्र से निवेदन करती हुई कहती है—'महाराज।[२] मुझे ऐसा लगता है कि पुत्रों का विनाशकारक दो वंशों का युद्ध होगा।'
धृतराष्ट्र—'गान्धारी मालूम है।'
गान्धारी—'महाराज कव ?'
धृतराष्ट्र—'गान्धारी। सुनो ! अभिमन्यु के वध से अत्यन्त क्रुद्ध और कुपित कृष्ण के द्वारा गृहीत वस्त्रा और चाबुक से युक्त अर्जुन अपने गाण्डीव की सहायता से समस्त ससार को नष्ट कर डालेंगे, तत्पश्चात् प्रवृत्ति अवस्था में विश्व शान्ति को प्राप्त होगा।'

---

१. दूतवाक्यम्, पृ० ४६
२. दूतघटोत्कच, पृ० ६-७

गान्धारी—'हाय पुत्र अभिमन्यु ! हम लोगो के भाग्य के दोष से तुमने बाल-चपलता के कारण इस प्रकार के कुल विग्रह और मनुष्यो के विनाश-कारक युद्ध को उपस्थित करके पौत्र ! तुम अब कहाँ चले गये ?'

दुश्शला—'जिसने इस वधू उत्तरा को विधवापन दिया है, उसने अपने पक्ष की युवतियो को भी विधवापन दिया है।'

धृतराष्ट्र—'अब इस विपत्ति रूपी सागर पर किसने पुल बांधा है ?'

जयनाद की आवाज को सुन कर महाराज धृतराष्ट्र उससे पूछते हैं। 'किसने अभिमन्यु का वध किया ? किसे अपना जीवन अप्रिय हो गया है ? पांचों पाण्डवो की पञ्चाग्नि मे किसने अपनी आत्मा की आहुति दी है ?

भट—'महाराज ! अनेक राजाओ ने मिल कर अभिमन्यु को मारा है। जयद्रथ ही उसका निमित्त है।'

धृतराष्ट्र—'शोक है, जयद्रथ निमित्त हुआ।'

भट—'महाराज ! और क्या ?'

धृतराष्ट्र—'शोक है, जयद्रथ मारा गया।'

दुश्शला को रोदन सुन कर धृतराष्ट्र उसे धैर्य बंधाता हुआ कहता है—'पुत्रि ! मत रोओ, देखो।'

, तुम्हारे पति को सौभाग्य अवश्य ही अरुचिकर है, जिसने कि स्वय अपने को अर्जुन के बाणो का लक्ष्य बनाया है।'

दुश्शला—'अतएव मुझे आप आज्ञा दें, मैं भी अपनी वधू उत्तरा के साथ जाऊँगी।'

धृतराष्ट्र—'पुत्री यह क्या कहती हो ?'

दुश्शला—'हे तात ! मैं उत्तरा से कहूँगी—आज जो वेष उसने धारण किया है, उसे कल मैं भी धारण करूँगी ?'

गान्धारी—'हे पुत्री, अमगल की बात मत करो, तुम्हारे पति जीवित हैं।'

दुश्शला—'माँ, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ है ? जिसने कृष्ण सखा अर्जुन का अपकार किया हो, वह व्यक्ति किस प्रकार जीवित रह सकेगा ?'

धृतराष्ट्र—'बेचारी दुश्शला सत्य कहती है, मत

जो अभिमन्यु कृष्ण की, आठ भुजाओ का तकिया लगा कर उनकी गोदी मे पला है, तथा स्वय मदयुक्त बलराम जिसे देख कर प्रेम से और भी मदमत्त हो जाते थे, जो पृथा के पुत्र देवताओ के समान विक्रम वाले पांचों पाण्डवो का

प्रेमपात्र था, उसे मार कर स्वयं दुष्कर्म करने वाला कौन भला इस संसार में अधिक दिन तक जीवित रह सकता है?[1]

इस प्रकार परिवार के मध्य अभिमन्यु की मृत्यु के समाचार से भय और आतंक व्याप्त हो गया है। इसी कारण धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुश्शला अपनी-अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्ति करते हैं। अतः इस संवाद में तीनों की मानसिक वेदना व्यक्त हुई है। संवाद मार्मिक होने के साथ अपने में पूर्ण है और एक राजपरिवार की विवशता को सूचित करता है। नाटककार भास सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं के साथ पारिवारिक समस्याओं को भी उपस्थित करते हैं। अतः उनके अधिकांश संवादों में परिवार की विचारधारा की अभिव्यंजना हुई है। परिस्थिति और वातावरण का इतना अच्छा स्पष्टीकरण अन्यत्र नहीं मिल सकेगा।

इस नाटक के अन्य संवादों में निम्नलिखित संवाद प्रमुख हैं—

(१) धृतराष्ट्र-दुर्योधन संवाद, पृ० १६-१७-२२

(२) धृतराष्ट्र-दुश्शासन संवाद, पृ० २१-२२

(३) घटोत्कच-दुर्योधन संवाद, पृ० २६-४२

दुर्योधन और घटोत्कच का सम्वाद प्रभावक और ओजस्वी है। इसमें दोनों ओर से अपने-अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए तर्क दिये गये हैं। दुर्योधन के सारहीन तर्कों का उत्तर घटोत्कच ओजस्वी वाणी में देता है। वह मनुष्य होने पर भी दुर्योधन को राक्षस सिद्ध करता है। प्रत्युत्तर में जब दुर्योधन घटोत्कच को ताना मारता हुआ राक्षस शब्द से सम्बोधित करता है, तब घटोत्कच उसे मुँहतोड़ उत्तर देता है। उत्तर-प्रत्युत्तर स्वाभाविक होने पर भी दर्पयुक्त है। दोनों ही क्रोधावेश में उत्तर देते हैं। घटोत्कच दूत बन कर आने पर भी दूतोचित सीमा का अतिक्रमण कर जाता है। वह दौत्यकर्म को सम्पन्न करने के हेतु अपने पक्ष की पुष्टि करता है। इस प्रकार से घटोत्कच अपनी युक्तियों द्वारा दुर्योधन को निरुत्तर कर देता है। इसे तर्क प्रधान संवाद माना जा सकता है।

कर्णभार की संवाद योजना

कर्णभार के संवादों में पर्याप्त सजीवता है। शल्य-कर्ण संवाद में कर्ण

---

१. दूतघटोत्कच, पृ० ८८

का व्यक्तित्व इतना प्रभावशील है, जिससे शल्य की उक्तियाँ या कथोपकथन कर्ण के चरित्र को उभारने में भी सहायक हैं। वह कर्ण की प्रत्येक अनुभूति से प्रभावित हो कर सहानुभूति प्रदर्शित करता है। कर्ण युद्ध-भूमि में पहुँचने पर कायरता का अनुभव करता है। वह अपने सारथी शल्य से अस्त्र प्राप्ति की कथा एवं साथ ही शाप प्राप्त होने के आख्यान का भी वर्णन करता है।

यह आख्यान वर्णन की पद्धति नाटकीय होने के कारण शल्य और कर्ण के वार्तालाप के रूप में अङ्कित हुई है। शल्य के घबड़ाने पर कर्ण धैर्य देता हुआ कहता है—

कर्ण—"शल्यराज ! अलमलं विषादेन।
हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥"

इसके पश्चात् शक्र और कर्ण का संवाद है। इस संवाद में कर्ण की उदारता स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुई है। इस संवाद के माध्यम से नाटककार ने दान की महत्ता के साथ यज्ञ और ब्राह्मण के महत्व का भी संकेत दिया है। इन्द्र को कर्ण निराश करना नहीं चाहता है। अतः उसके वार्तालाप को वह बिना तर्क किये ही स्वीकार कर लेता है। दान के उत्तर में किसी भी प्रकार का प्रतिदान नहीं चाहता है। नाटककार भास ने इस प्रकार के स्थलों पर घटनाओं का संकेत भी कर दिया है। अतएव संवाद सुगठित हो गये हैं। संक्षिप्तता गुण सर्वत्र विद्यमान है। शक्र अपने कथन में स्वयं ही तर्कों का प्रयोग करता है। उसके स्वगत भाषण से भी यह स्पष्ट है—

"किन्तु खलु मया वक्तव्यं, यदि दीर्घायुर्भवेति वक्ष्ये दीर्घायुर्भविष्यति। यदि न वक्ष्ये मूढ इति मां परिभवति। तस्मादुभयं परिहृत्य किन्नु खलु वक्ष्यामि। भवतु दृष्टम्। भो कर्ण। सूर्य इव, इन्द्र इव, हिमवान् इव, सागर इव तिष्ठतु ते यशः।"[1]

कर्ण इस आशीर्वाद को सुन कर मन में सोचता है कि दीर्घायु होने का आशीर्वाद क्यों नहीं दिया? इसके इस कथन से हृदय-मन्थन का पता लगता है।

कर्ण शक्र को अन्य वस्तु देना चाहता है, पर वह उन्हें लेने से इन्कार कर देता है। नाटककार ने संवाद को पर्याप्त सजीव बनाया है।

---

१. कर्णभार, पृ० १७-१८

प्रस्तुत रूपक में अधिक संवाद नहीं आये हैं, पर जो भी संवाद आये हैं, उनसे नाटककार की प्रतिभा स्पष्ट होती है। कर्णभार के संवादों में सजीवता और चुस्ती विद्यमान है। रूपक के अन्त में आया हुआ कर्ण-शल्य सम्वाद मार्मिक और स्वाभाविक है।

ऊरुभंगम के संवाद

एकांकी होने के कारण 'ऊरुभंगम्' में संवादों की वहुलता नहीं। यों तो इस नाटक की घटनाएँ भी तीन भटों के प्रवेश से ही घटित होती हैं और उनके पारस्परिक वार्तालाप, कथावस्तु की पृष्ठभूमि को उपस्थित करते है। प्रथम भट रणांगण का चित्रण करता हुआ कहता है कि 'यह स्थान शत्रुता की भूमि है, वल की कसौटी है, मान और प्रतिष्ठा का गृह है। युद्ध में देवांगनाओं का स्वयवर मण्डप, पुरुषों की वीरता की प्रतिष्ठा, राजाओं की मृत्यु, शयन करने योग्य वीर शय्या, आहुति देने के लिए अग्निहोत्र नामक यज्ञ तथा राजाओं के स्वर्गलोक जाने के लिए यह रणभूमि सेतु हैं।'

द्वितीय भट प्रथम भट की वातों का समर्थन करता हुआ युद्ध भूमि की वीभत्सता एवं उसके ऊबड़-खावड़ रूप का वर्णन कहता हुआ कहता है कि 'मदोन्मत्त हाथियों के मृत शरीरों के कारण यह भूमि पर्वत-क्षेत्र के समान प्रतीत हो रही है। गृद्धों ने अपना आवास वना लिया है, रथ रिक्त पड़े हैं, क्योंकि महारथी योद्धा मृत्यु की गोद में पहुँच चुके हैं।'

तृतीय भट प्रथम और द्वितीय की वातों का समर्थन करता हुआ युद्ध समाप्ति की सूचना देता है और रणभूमि को यज्ञ का रूपक दे कर उसका सर्वांगीण चित्रण करता है। 'इस यज्ञ में वड़े-वड़े हाथियों के शुण्डादण्ड यज्ञ-स्तम्भ है, जहाँ इधर-उधर विखरे पड़े हुए वाण कुश हैं। मृत हाथियों के झुण्ड ही पुष्पों के उन्नत ढेर है, कौरवों की वैर रूपी अग्नि यहाँ प्रज्ज्वलित हो रही है। युद्ध क्षेत्र में घायल हुए योद्धाओं की कराह की आवाज ही यहाँ मन्त्र है और मृत मनुष्य यहाँ पर वलि स्वरूप है।' इस प्रकार वे तीनों भट आगे भी अपने विचारों को युद्ध-भूमि के विस्तृत स्वरूपांकन में व्यक्त करते हैं। उनका यह कथोपकथन पद्यवद्ध होते हुए भी सामाजिकों को पर्याप्त रुचिकर है। युद्ध का सजीव अङ्कन इन भटों के संवाद में हुआ है। प्रसंगवश इसी सन्दर्भ मे वे दुर्योधन और भीम के वीच होने वाले गदा-युद्ध की भी सूचना देते हैं। यह भी हमें उन्हीं के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि दुर्योधन गदा-कौशल में भीम से कम विचक्षण नहीं हैं। वह भीम को आहत कर गिरा देता है। भीम श्रीकृष्ण

का संकेत पाकर छल से दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करते हैं और दुर्योधन घायल हो कर गिर पड़ता है। इस प्रकार नाटक की कथावस्तु की उपस्थापना कथोपकथन द्वारा ही हुई है। दुर्योधन के आहत होने पर दुर्योधन और बलदेव के बीच वार्तालाप आरम्भ होता है। इस वार्तालाप मे दुर्योधन की मानवता व्यक्त होती है। वह अनुभव करता है कि उसने पाण्डवो के साथ कभी भी अच्छा व्यवहार नही किया है, सदा उन्हें धोखा देने का प्रयत्न किया है। अतः वह क्रुद्ध हुए बलदेव को शान्त रहने के लिए यह कहता है। नाटक के अन्य संवाद निम्नलिखित हैं—

(१) धृतराष्ट्र-गान्धारी संवाद, पृ० ३४-४२
(२) अश्वत्थामा-दुर्योधन संवाद, पृ० ५२-५७
(३) गान्धारी-धृतराष्ट्र संवाद, पृ० २३-२८
(४) दुर्जय-दुर्योधन संवाद, पृ० ३७-४१
(५) दुर्योधन-मालवी संवाद, पृ० ४५-४६
(६) धृतराष्ट्र-अश्वत्थामा संवाद, पृ० ५६-५७

इन सम्वादो मे स्वाभाविकता के साथ तर्क और युक्तियो का भी समावेश पाया जाता है।

'बालचरितम्' के संवाद

नाटककार भास ने बालचरित नाटक का प्रारम्भ भी देवकी और वसुदेव के संवाद से किया है। पुत्र उत्पन्न होने पर उसके सुख सपनो को देख देवकी अपने अभाग्य पर रोती है। वह अपनी विवशता के कारण अत्यधिक दुखी है। क्रूर कंस की निर्दयता का स्मरण कर वह मूर्छित होने लगती है। इसी समय वसुदेव को अपनी ओर आते हुए देख कर वह कहती है कि आर्यपुत्र भी इधर ही आ रहे हैं। वसुदेव आज चमत्कारी और आश्चर्य चकित करने वाले वातावरण को देख कर कहते हैं कि 'यह विचित्रता कहाँ से आ गयी? चारो दिशाओ मे प्रकाश हो रहा है, पृथ्वी कांप रही है, तथा विभिन्न प्रकार के मनोहारी शकुन दिखलायी पड़ रहे हैं, अवश्य ही नारायण का अवतार हो गया है।' देवकी उनके पास पहुँचकर अभिवादन करती है और यह निवेदन करती है कि इस पुत्र को कहीं बाहर ले जा कर इसके पालन-पोषण की व्यवस्था करनी चाहिये। वसुदेव कहते हैं—'आधी रात है मथुरा मे सब लोग सोये हुये हैं। जब तक कोई दूसरा नहीं देखता तब तक मैं बालक को ले कर जाता हूँ।'

देवकी—'आर्यपुत्र, इसे कहाँ ले जाएँगे ?'

वसुदेव—'जहाँ भाग्य ले जायेगा।'

देवकी—'मैं इसे दृष्टि भर कर देख लेना चाहती हूँ। कृपया थोड़ी देर के लिए रुक जाइये।'

वसुदेव—'राहु के मुख में स्थित इस चन्द्रमा को क्या देखना चाहती हो? यह तो एकच्छत्र राज्याधिकारी कंस का शिकार बनेगा। दिशाएँ प्रकाशहीन हैं, चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ है, मैं इसे कहाँ ले जाऊँ? सहसा चारों ओर दीपकों का प्रकाश देख कर मन में कुछ धैर्य उत्पन्न नहीं होता है और कंस के आतंक से घबड़ा कर पुनः वसुदेव धैर्य खोने लगते हैं। साहस एकत्र कर वे यमुना पार करते हैं और गोप ग्राम के रहने वाले नन्द के यहाँ जाने का विचार करते हैं। इसी समय मृतपुत्री को लिये हुये नन्द गोप के साथ उनका वार्तालाप आरम्भ होता है। नन्दगोप मृतपुत्री के रूप गुणों का स्मरण कर रोने लगते हैं। वसुदेव के मिलने पर दोनों ओर से कुशल-समाचार पूछा जाता है। नन्द गोप मृतपुत्री को छिपाते हुए कहते हैं—'अर्द्ध रात्रि के समय हमारी गृहिणी अर्थात् आपकी दासी यशोदा ने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया। कल हमारे ग्राम में इन्द्र यज्ञ नामक महोत्सव होने वाला है। अन्य गोप इस दुख के कारण उत्सव मनाना स्थगित न कर दें, अतः मैं इसको ले कर यहाँ चला आया हूँ। यशोदा भी मूर्च्छित पड़ी है और उसे यह पता नहीं कि पुत्र उत्पन्न हुआ है या पुत्री। वसुदेव नन्दगोप को सान्त्वना दे कर अनुरोध करते हैं—'मित्र तुम जानते हो कि पापी कंस ने मेरे छः पुत्रों को मार डाला है। यह सातवाँ पुत्र है, मेरे भाग्य में पुत्र नहीं है। अतः यह तुम्हारे भाग्य से ही जीवित रह सकेगा। तुम इसे ग्रहण करो।'

नन्दगोप—स्वामिन्! मैं कंस से बहुत डरता हूँ। जब उसे यह मालूम हुआ कि आपका पुत्र मेरे यहाँ धरोहर के रूप में है तो वह मेरा सिर ही कटवा देगा।'

वसुदेव—'मैंने पहले तुम्हारे साथ कभी कोई उपकार किया है, तो यह प्रत्युपकार का समय है। अतः इसे तुम ग्रहण कर लो।'

नन्दगोप भी जोश के आ कर कहता है—'अच्छा दीजिये। जो होगा देखा जायेगा। नन्दगोप जमुना जल में जा कर स्नान करने की इच्छा व्यक्त

करता है, पर वसुदेव उसे आभीर ग्राम का निवासी होने के कारण स्वयं पवित्र बतलाते हैं। इस पर नन्दगोप मिट्टी खोद कर ही अपने को पवित्र कर लेना चाहता है। सहसा भूमि फोड कर जल की धारा प्रवाहित होने लगती है। नन्दगोप स्नान कर बालक को ग्रहण करता है। इस अवसर पर विष्णु के गरुड, चक्र, शार्ङ्ग, कौमोदकी, शख, गदा आदि अस्त्र स्तुति करते हैं। नन्द गोप और वसुदेव मे कुछ क्षण तक वार्तालाप होता रहता है। इस वार्तालाप मे विभिन्न मानसिक परिस्थितियो के साथ घरेलू वातावरण की आत्मीयता भी अभिव्यक्त हुई है। निस्सन्देह नाटककार भास ने नन्दगोप और वसुदेव के इस सवाद द्वारा कृष्णावतार की सूचना के साथ आरम्भ मे ही बालक कृष्ण की अद्भुत लीलाओ का चित्रण किया है। वार्तालाप अत्यन्त स्वाभाविक है। अन्य वार्तालापो मे ये प्रधान हैं—

(१) दामक-वृद्ध गोपालक सवाद—पृ० ५२-६०,६८

(२) दामोदर-कालीयनाग सवाद—पृ० ७८

(३) दामक सकर्षण सवाद—पृ० ५६

(४) दामोदर-गोपालक सवाद—पृ० ६०

(५) वृद्धगोपालक दामोदर सवाद—पृ० ७०

(६) सकर्षण-दामोदर सवाद—पृ० ६४-६५

(७) नारद-दामोदर सवाद—पृ० १०३

अविमारक के सम्वाद

अविमारक रूपक मे भास ने मानसिक दशाओ की अभिव्यक्ति के हेतु अनेक सवादो की योजनाएँ की हैं। आधुनिक विचारक फ्रॉयड ने काम सिद्धान्त के सम्बन्ध मे जिस मनोवैज्ञानिक प्रणाली को महत्त्व दिया है वह प्रणाली हमे भास की रचनाओं मे भी प्राप्त होती है। सवाद निम्न प्रकार हैं—

(१) राजा-महिषी सवाद, पृ० ५-८

(२) राजा कौञ्जायन सवाद, पृ० ९

(३) राजा-भूतिक सवाद, पृ० १६-१७

(४) चेटी-विदूषक संवाद, पृ० २९

(५) धात्री-अविमारक, सवाद, पृ० ४१

(६) विदूषक-अविमारक, सवाद, पृ० ४८

(७) मागधिका-कुरगी, संवाद, पृ० ५७

(८) नलिनिका-कुरंगी संवाद, पृ० ६३
(९) नलिनिका-अविमारक संवाद, पृ० ७९
(१०) सखियों के पारस्परिक वार्तालाप, पृ० ८८-८९
(११) विद्याधर-अविमारक वार्तालाप, पृ० १०५
(१२) विदूषक-अविमारक वार्तालाप, पृ० ११२-१२०, १२८
(१३) विदुषक-नलिनिका संवाद, पृ० १३६
(१४) सौवीरराज और कुन्तीभोज वार्तालाप, पृ० १६०
(१५) सुदर्शना और नारद, संवाद पृ० १६६-१६७

प्रतिमा नाटक के संवाद

प्रतिमा नाटक में निम्नलिखित संवाद समाविष्ट हैं—

(१) अवदातिका और सीता वार्तालाप, पृ० १०-१७
(२) राम और सीता वार्तालाप, पृ० १८-२८
(३) कांचुकीय और राम वार्तालाप, पृ० ३०
(४) राम और लक्ष्मण वार्तालाप, पृ० ३६
(५) राजा और सुमन्त्र वार्तालाप, पृ० ६०-६६
(६) भरत और देवकुलिक वार्तालाप, पृ० ८०-८७
(७) सुमन्त और भरत वार्तालाप, पृ० ८८, ९६-१०४
(८) भरत और कैकेयी वार्तालाप, पृ० ९१-९६
(९) राम और सीता का वार्तालाप, पृ० ११४-१३३
(१०) ब्राह्मण भेष में रावण और राम का वार्तालाप, पृ० १३३-१४८
(११) भरत और कैकेयी का पुनः वार्तालाप, पृ० १६४
(१२) तापस और नन्दिल, संवाद, पृ० १६८

प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक के संवाद

प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में ओजस्वी और मर्मस्पर्शी संवाद आये हैं। इनमें तर्कान्वेषण, मनोवृत्ति विश्लेषण, वाग्वैदग्ध्य, कल्पना, एवं राजनीतिक तत्वों का समवाय पाया जाता है। प्रमुख संवाद निम्न प्रकार हैं—

(१) सालक और यौगन्धरायण वार्तालाप, पृ० ५-११
(२) हंसक और यौगन्धरायण वार्तालाप, पृ० १२-४२
(३) राजा और देवी वार्तालाप, पृ० ५०-७१

(४) विदूषक और उन्मत्तक, सवाद, पृ० ७७
(५) श्रमणक और विदूषक वार्तालाप, पृ० ८२-८६
(६) यौगन्धरायण और विदूषक वार्तालाप, पृ० ८६-१०२
(७) गात्र सेवक और भट का पारस्परिक वार्तालाप, पृ० १०६-१११
(८) भरतरोहक और यौगन्धरायण का वार्तालाप, पृ० १२१-१३०

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के वार्तालाप

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक मे सम्वादो की महनीय योजना की गयी है। यौगन्धरायण ने वासवदत्ता, रुमण्वान आदि मन्त्रियो के साथ मिल कर राजा उदयन की अभ्युदय प्राप्ति के लिए योजना तैयार की है। इस योजना के अवसर पर परस्पर मे तर्क-वितर्कों का होना अत्यावश्यक और स्वाभाविक है। इस प्रकार के सवादो को हम राजकीय मन्त्रणा के अन्तर्गत रख सकते है। वस्तुत. सवाद से ही नाटकीय कथावस्तु का विकास होता है और सवाद ही कथावस्तु मे नये मोड़ उत्पन्न करते हैं। नाटककार भास चरित्रो के समान ही सवाद-योजना के भी कुशल शिल्पी हैं। अत 'प्रतिज्ञा यौगन्धराण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' के सवादों मे पात्रो की सूझ-बूझ एव उनकी प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इस नाटक के प्रमुख सवाद निम्न प्रकार है—

(१) वासवदत्ता और यौगन्धरायण वार्तालाप, पृ० १३
(२) ब्रह्मचारी और वासवदत्ता वार्तालाप अथवा ब्रह्मचारी और यौगन्धरायण वार्तालाप, पृ० ४३
(३) वासवदत्ता और पद्मावती, पृ० ६४-७५
(४) वासवदत्ता और धात्री वार्तालाप, पृ० ८८
(५) पद्मिनिका और मधुरिका वार्तालाप, पृ० १६०
(६) राजा और विदूषक वार्तालाप, पृ० १६८-२०३
(७) राजा और पद्मावती वार्तालाप, पृ० २२०, २४०-२४४

विदूषक और राजा के सवाद मे दोनो की मानसिक परिस्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है। नाटककार भास ने राजन्य वर्ग की समस्याओ को वार्तालापों द्वारा अभिव्यक्त किया है। राज-परिवारो मे काम, युद्ध एवं प्रभुसत्ता को वृद्धिङ्गत करने के लिए निरन्तर संघर्ष होता रहता था। इन सघर्ष मे जिन क्रिया-प्रतिक्रियाओं का प्रादुर्भाव होता था, उनकी व्याख्या सवादो मे हुई है। सवादो की ध्वनियो द्वारा चरित्रो का चारित्रिक वैशिष्ट्य अंकित किया गया है। वैयक्तिक विशेषताएँ सर्वत्र अभिव्यक्त हुई है।

चारुदत्त नाटक के संवाद

चारुदत्त नाटक में घटनाओं का विकास ही संवादों के बीच होता है। नायक और विदूषक परस्पर वार्तालाप करते हुए दरिद्रता के दोषों का उद्घाटन करते हैं। आरम्भ में नायक चारुदत्त अपनी दरिद्रतापूर्ण स्थिति का चित्रण करता हुआ कहता है कि हमारे गृह में जहाँ पहिले धन-धान्य के ढेर लगे रहते थे, अब वहाँ एक दाना भी दिखलायी नहीं पड़ता है। विदूषक चारुदत्त को सान्त्वना देता है और कहता है कि आपकी समृद्धि दान देने से समाप्त हो गयी है, पुरुषार्थ की कमी से नहीं। अतः आपको इस सम्बन्ध में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। इस पर चारुदत्त उत्तर देता है—

सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति
एतत्तु मां दहति नष्टधनश्रियो मे
यत् सौहृदानि सुजने शिथिलीभवन्ति[1]

इस नाटक के प्रमुख वार्तालाप निम्न प्रकार हैं—

(१) शकार और विट वार्तालाप, पृ० १६-२१
(२) शकार और गणिका वार्तालाप, पृ० २४-४०
(३) नायक और वसन्तसेना वार्तालाप, पृ० ४३-४८
(४) गणिका और चेटी वार्तालाप, पृ० ६०-६८
(५) नायक और विदूषक वार्तालाप, पृ० ७३, ८५-६३
(६) नायक और सज्जलक वार्तालाप, पृ० ८६-६२
(७) ब्राह्मणी और चेटी संवाद, पृ० ६५
(८) गणिका और संवाहक संवाद, पृ० ६०-६७
(६) विदूषक और सज्जलक वार्तालाप, पृ० ८६-६२
(१०) सज्जलक और गणिका वार्तालाप, पृ० १०८-११५
(११) गणिका और विदूषक वार्तालाप, पृ० ११८-११६
(१२) मदनिका और गणिका वार्तालाप, पृ० १२०

नाटककार भास ने संवादों की योजना बड़ी ही कुशलता से की है। इन संवादों के द्वारा पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश पड़ता है। इनमें जीवन की

---

१. चारुदत्तम्, ११५

सजीवता और पूर्णता दिखलायी पड़ती है। भावाभिव्यक्ति को सरलतम रूप मे प्रस्तुत करने की दृष्टि से इन सवादों का पर्याप्त महत्व है। सवादों मे विचारो की अभिव्यक्ति पूर्णयता हुई है। भास के सवादो से निम्न तथ्यो पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है—

(१) उत्थान के भीतर ही पतन का अकुर समाहित रहता है। उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति, सुख-दुख, सम्पत्ति-विपत्ति का चक्र बराबर ही चलता रहता है।

(२) विपत्ति मे भी महान् व्यक्ति महान् ही रहता है। जो विपत्ति से घबड़ाता नही उसी की महत्ता स्थिर रह सकती है। जातीय गौरव भावनाओ की रक्षा विपत्ति के अवसर पर होती है।

(३) हर ध्वस मे निर्माण और प्रलय मे सृष्टि के बीज विद्यमान रहते हैं।

(४) प्रेम चिरन्तन सत्य है। यह वासना से ऊपर की वस्तु है। प्रेमी अपने नि.स्वार्थ प्रेम द्वारा अपने प्रेम को प्राप्त करने मे समर्थ होता।

(५) दु ख की अनुभूति जिसे जितनी अधिक होती है, उतने ही परिमाण मे उसका स्नेह भी प्रादुर्भूत होता है।

(६) सत्-असत् प्रवृत्तियो का जीवन मे समन्वय है। जो असत् प्रवृत्तियो को नियन्त्रित कर सत् प्रवृत्तियो को महत्व देता है, वही जीवन मे सफलता प्राप्त करता है। अन्याय से व्यक्ति का सदा पराजय होता है और अन्तिम विजय न्याय की होती है।

(७) धर्म, पुरुषार्थ जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। वैयक्तिक और सामाजिक अभ्युदयो की प्राप्ति शान्तिमय वातावरण में ही सम्भव है।

भास की शैली और उद्देश्य

भास के नाटको मे कल्पना, भावना और कवित्व का प्राचुर्य है, जिसके कारण उनकी भाषा मे काव्यात्मकता की प्रधानता है। इनकी भाषा-शैली पात्रों के भावों और विचारो के अनुरूप है। शैली की विशेषता के कारण ही इनके सवादों में प्रभावात्मकता आ गयी है। सूक्ति वाक्यो के प्रयोगो ने इनकी भाषा-शैली को सशक्त बनाया है। शास्त्रीय दृष्टि से इनकी शैली मे माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीनों गुणो का समावेश पाया जाता है। ये मधुर और मनोरम शैली का प्रयोग वहीं करते हैं, जहां किसी व्यक्ति की कोमल भावनाओ

की अभिव्यक्ति करनी होती है अथवा रम्य प्रकृति का वर्णन करना अभीष्ट होता है। यह सत्य है कि जब कल्पना की दुरुहता और अलंकारों के बोझ से भाषा की सहज माधुरी दब जाती है, तब रसोद्रेक में क्षीणता उत्पन्न होती है। भास ने बलपूर्वक अलंकारों का उपयोग नहीं किया है।

इनकी ओजपूर्ण शैली में बड़ा बल है। इनके नाटकों में जब कभी हम किसी सेनानी की ललकार सुनते हैं, तो लगता है कि प्रलय की आँधी आ गयी है और पत्थर में अग्नि के स्फुलिंग निकल रहे हैं। श्रीरामजी मिश्र ने इनकी शैली के सम्बन्ध में लिखा है—'शैली की सारी विशेषताओं से विशिष्ट भास कवि की अभिव्यंजना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। प्रसाद और ओज के साथ-साथ माधुर्य की संयोजना, सहृदयों को मुग्ध कर देती है। पूरे के पूरे नाटक पढ़ जाइये, कहीं भी दूरारुढ़ कल्पना, समास बहुलता या प्रवाह में अवरोध नहीं मिलेगा। इसे कुछ विद्वानों ने रामायण का प्रभाव माना है। इनकी शैली अलंकारों पर नहीं, भावनाओं के निखार पर गर्व करती है, जिससे कृत्रिमता की जगह स्वाभाविकता आ गयी है। सरलता से समझ में आने वाले उन अलंकारों का प्रयोग भास ने किया है, जिनसे वस्तु-चित्र और भी स्पष्ट हो गये हैं। भावबोधन में जैसी सफलता इन्हें मिली, इनके पूर्ववर्त्ती किसी भी कवि को नहीं।'[1]

मानव के मन की विभिन्न स्थितियों का चित्रण विभिन्न परिस्थितियों में होने वाली प्रतिक्रियाओं द्वारा किया गया है। पिता की मृत्यु का कारण जान कर भरत के हार्दिक उद्गारों की मार्मिक व्यंजना एक ही श्लोक में की गयी है। यथा—

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥[2]

अर्थात्—तुम्हारी पुत्र के प्रति कितनी प्रगाढ़ ममता थी और हमारा भाई के प्रति यह ऐसा प्रेम है? कवि ने सीधी बात को बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है। भास ने प्रकृति को मानवीय भावों के प्रतिबिम्ब रूप में

---

१. भास नाटकचक्रम्, चौखम्बा संस्करण, 'दूतवाक्यम्' की प्रस्तावना, पृ० १६
२. प्रतिमा ४।१२

उपस्थित कर वर्णनो को भावमयता की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया है। साधारणीकरण की स्थिति प्रत्येक सामाजिक के समक्ष उपस्थित हो जाती है।

स्पष्ट है कि भास की भाषा प्रभावोत्पादक और मुहावरेदार है। इनकी भाषा शैली मे सर्वत्र स्वभावोक्तियों का पुट मिलता है। लम्बे-लम्बे समस्यन्त पदों का प्रयोग भास को पसन्द नहीं है। नाट्यशास्त्र के लिए भाषा की सरलता, सरसता, स्फुटता, प्रसन्नता, गम्भीरता, मधुरता और मनोरंजकता अपेक्षित है। कथोपकथन एव कवित्व की दृष्टि से भी इनके नाटक संस्कृत साहित्य के किसी भी सम्मानित कवि या नाटककार से कम नही है। निस्सन्देह भास की कृतियो मे प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीनो गुणों का यथोचित रूप मे समावेश हुआ है।

इनकी वर्णन-कला बड़ी प्रौढ़ और अपने ढङ्ग की अनोखी है। शैली के सशक्त बनाने के लिए इन्होने 'आम्' 'बाढम्' 'यदि', 'चेत्' तथा कुशल प्रश्न के लिए 'सुखमार्यस्य' आदि का प्रयोग किया है। 'अविमारक' नाटक मे वर्णित मध्याह्न मे भगवान् भास्कर के प्रखर ताप मे सन्तप्त ससार का चित्र द्रष्टव्य है—

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपा प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात् ।
विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥[१]

अर्थात् सूर्य-किरणों ने जिसका रस खींच लिया है, ऐसी यह पृथ्वी ज्वरिता की तरह तप रही है, दवाग्नि लगने से वृक्षो की छाया समाप्त हो गयी है और वे वृक्ष ऐसे लगते हैं, मानो उन्हे यक्ष्मा हो गया है। गुहारूपी मुंह फैलाये यह पर्वत बेबसी मे चिल्ला रहे हैं, यह ससार सूर्य की किरणो से दग्ध हृदय हो कर मूर्च्छित-सा हो रहा है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि नाटककार दृश्यों के चित्रण में अत्यन्त पटु है। इस प्रकार के वर्णनो के आधार पर चित्राङ्कन किया जा सकता है।

भाषा की शैली मे ऊहात्मकता पायी जाती है। इसी कारण उनके संवादो मे गम्भीरता के स्थान पर तर्क युक्त सरलता पायी जाती है। डॉ० ए० बी०

१. अविमारक ४.४

कीथ ने लिखा है—'यह भास का महान् नाटकीय गुण है कि परवर्ती काल की अधिकांश नाटक-गत कविताओं की अपेक्षा उनकी उक्तियों को समझना कहीं अधिक सरल है। वस्तुतः उनमें प्रसन्नता, जो शास्त्रतः काव्य-शैली का एक गुण है, परन्तु सामान्य काव्य-लेखक काव्य-कला के प्रत्येक पक्ष के विषय में स्वलब्ध परिज्ञान के प्रदर्शन की उत्सुकता में इस गुण की नितान्त उपेक्षा करता है।..........उनकी परिष्कृति वृद्धि और अभिरुचि ने नाटक में ऐसी कूट-युक्तियों को अपनाने से बचा लिया है, जिनको दरबारी चरित काव्य और अवकाश के समय पढ़े जाने के उद्देश्य से रचित प्रगीतों में छूट दी गयी है।'[१]

भास की शैली की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

(१) स्वच्छता और संक्षिप्तता
(२) प्रभावोत्पादकता और व्यंजकता का मणिकांचन संयोग
(३) अल्पसमास या समासहीन वाक्य संघटना
(४) सरलता और सहज बोधगम्यता
(५) औचित्य एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग
(६) लोकोक्तियों एवं सूक्तियों का प्रचुर प्रयोग
(७) घटनाओं का आकस्मिक वितरण
(८) अल्प शब्दावलि द्वारा अधिकाधिक भावों की अभिव्यंजना
(९) अकृत्रिमता और स्वाभाविकता का समावेश

भास ने शैली की संक्षिप्तता के कारण छोटे-छोटे वाक्यों में गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यंजना की है। दुरूह और दीर्घ विस्तारी समस्यन्त पदों की योजना इन्होंने नहीं की है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में पुत्री के विवाह के विषय में माँ की भावानाओं को अभिव्यक्ति बड़े ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत की है—

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ॥[२]

---

१. संस्कृत नाटक (हिन्दी संस्करण) मोती लाल बनारसीदास, सन् १९५५ ई०, पृ० ११०
२. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण २।७

अर्थात्—कन्यादान न किया जाय तो लज्जा की बात है, किया जाय तो व्यथा सहन करनी पड़ती है। धर्म और स्नेह के बीच माताएँ अत्यन्त दुःख प्राप्त करती हैं।

भास के पात्रों ने शैली की विशेषता के कारण कम-से-कम शब्दों में अधिक-से अधिक भावों की अभिव्यंजना की है। व्यर्थ का वितण्डावाद कहीं भी नहीं मिलेगा। संक्षिप्त शब्दों में मनोगत भावों को प्रकट करना भास की विशेषता है। कौन पात्र, किस परिस्थिति में किस प्रकार भावदशा के अधीन रहेगा, इसका चित्रण भास ने कुशलतापूर्वक किया है। वाग्विस्तार का परिहार इनकी प्रमुख विशेषता है। वार्तालापों के आश्रय से ही सारे दृश्य उपस्थित हो गये हैं।

भिन्न-भिन्न अवस्था में विभिन्न भावों और विषयों के सूक्ष्म वर्णन में भास सिद्धहस्त हैं।

अलंकारविहीन सरल भाषा का प्रयोग नाटककार भास ने किया है। इनकी प्रवाह युक्त सरल भाषा भावों को अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है। इनके संवादों में शैली की स्वच्छता स्पष्टतः दिखलायी पड़ती है। कथोपकथनों में पात्र अत्यन्त विदग्ध दिखलायी पड़ते हैं। उक्ति प्रत्युक्ति की मनोरमता अवगत करने के लिए प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में यौगन्धरायण तथा भरत रोहक के संवादों का अवलोकन किया जा सकता है। उदयन पर भरत रोहक द्वारा लगाये गये आक्षेपों का उत्तर यौगन्धरायण जिस चतुराई से देता है, उससे भास की नाट्य शैली की विशेषता स्वयं स्पष्ट होती है। नाटक में तर्क-वितर्क का महत्वपूर्ण स्थान है, यतः इन्हीं के द्वारा घटनाचक्र और कथानक आगे बढ़ता है। भास के नाटकों में उक्ति-प्रत्युक्तियों का सन्तुलित प्रयोग आया है। ये सीधी, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक हैं।

नाटककार भास की उक्ति-प्रत्युक्तियों में छन्दों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक हुआ है, यही कारण है कि कई स्थानों पर एक ही छन्द दो भागों में विभक्त हो गया है। पूर्वार्द्ध का प्रयोग एक पात्र करता है और उत्तरार्द्ध का अन्य पात्र। इस प्रक्रिया द्वारा पात्रों में प्रत्युत्पन्नमतित्व समाविष्ट हो गया है।

भास के रूपकों की सफलता का श्रेय जहाँ एक ओर उनके चरित्र-चित्रणों में निपुण होने को है, वहीं उन पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग भी है। पात्रों और दर्शकों को एक-सूत्र में बाँधने वाला उनका प्रसाद गुण अत्यधिक सहायक हुआ है। रूपकों का प्राण प्रसाद गुण है, यह स्वीकार करने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। क्योंकि रूपक गतिशील होता है, जिस गति से वह

चलता है, उसी गति से यदि भाषा सामाजिकों की समझ में नहीं आती तो रूपक का समस्त आनन्द ही समाप्त हो जाता है। अतः रूपक को गतिशील बनाये रखने के लिए उसमें सबसे अधिक जिस तत्व की आवश्यकता है, वह प्रसाद गुण है। इसके अभाव में किसी भी रूपककार का रूपक काव्य बन जाता है और उसका रूपकत्व नष्ट हो जाता है। भास के सभी रूपकों में प्रसाद गुण की स्थिति है, यह सामाजिकों के चित्त में उसी प्रकार व्याप्त रहता है, जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि।

भास ने प्रसाद गुण को तो स्थान दिया ही है, पर ओज और माधुर्य की कमी नहीं है। पात्र के मुख से शब्द निःसृत हुए कि उसका अर्थ सुनने वाले की समझ में आ गया। भास की शैली की एक विशेषता यह भी है कि वर्णनों को लम्बा नहीं बनाते। संक्षेप में ही अपनी बातों को कह डालते हैं। 'पञ्चरात्रम्' में दुर्योधन द्वारा किये गये यज्ञ का वर्णन केवल अठारह पद्यों में है, भास चाहते तो उसे बढ़ा-चढ़ा कर लम्बायमान कर सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया है। इसी नाटक के द्वितीय अङ्क में विराट द्वारा अर्जुन और उत्तरा के विषय में शंकायुक्त हो कर अर्जुन को वधू रूप में उत्तरा देने की बात को सुन कर अर्जुन ने केवल इतना ही कहा—

इष्टमन्तःपुरं सर्वं मातृवत् पूजितं मया।
उत्तरैषा त्वया दत्ता पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते॥[१]

भास के स्थान पर यदि कोई दूसरा कवि होता तो वह अर्जुन से और भी बातें इस सम्बन्ध में अवश्य कहलवाता। इसी प्रकार 'ऊरुभंग' में दुर्योधन ने अपनी पत्नियों को अपना संक्षिप्त और समुचित सन्देश दिया है। वे चाहते तो इस स्थल पर विस्तार दिखला सकते थे, इससे कथा की गतिविधि में रुकावट भी नहीं आती और वार्तालाप भी विस्तृत हो जाता। वस्तुतः इस संक्षिप्त वृत्ति ने उनके रूपकों को और अधिक सफलता प्रदान की है।

भास की शैली की एक विशेषता यह है कि वार्त्तालाप-सन्दर्भों में कहीं-कहीं अप्रत्याशित घटनाएँ भी घटित हो जाती हैं। यथा—'प्रतिज्ञायौगन्धरायन' में प्रद्योत अपनी पत्नी से वासवदत्ता के वर के विषय में परामर्श कर रहा है, इसी समय कंचुकी द्वारा सहसा प्रवेश कर उदयन का नाम लेता है और क्षण भर के लिए सामाजिकों को विचार करना पड़ता है कि वासवदत्ता

---

१. पञ्चरात्रम्, २।७१

के लिए उदयन ही एकमात्र उपयुक्त वर है। ऐसी आकस्मिक उक्तियाँ भास की अपनी विशेषताओ के रूप मे हैं।

वर्णन की सूक्ष्मता भी भास का शैलीगत वैशिष्ट्य है। विषय या दृश्य का वर्णन करते समय उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अश को भी वे उपस्थित कर देते हैं। दरिद्र चारुदत्त मे दरिद्रता का वर्णन स्वाभाविक होने के साथ सूक्ष्म भी है। सुख दु.ख के पश्चात् आता है, तो दु ख खटकता नही, पर सुखावस्था के बाद दु:ख का आना मरणतुल्य होता है। भास की शैली मे सक्षिप्तता के साथ स्पष्टता गुण भी निहित है। वे दृश्य वर्णन प्रसग मे इतने स्पष्ट रहते हैं, जिससे पाठक या दर्शक बिम्बग्रहण करने,में समर्थ होता है। सन्ध्या-वर्णन के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्ष
यात्यर्धनारीश्वर रूपशोभाम् ॥[1]

× × ×

खगा वासोपेता. सलिलमवगाढो मुनिजनः।
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च सक्षिप्तकिरणो
रथ व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥[2]

सन्ध्या-वर्णन, मध्य रात्रि-वर्णन, वन-वर्णन, मध्याह्न-वर्णन, तारुण्य-वर्णन आदि मे भास को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

वस्तुतः भास सरल शैली के जनक हैं। प्रसाद गुण के साथ रसपेशलता, भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति, मनोरजकता, गम्भीरता, औचित्य, ओजस्विता और माधुर्य आदि गुण भी इनकी शैली मे समाहित हैं।

वृत्तियो की दृष्टि से भास को भारती वृत्ति का महनीय आचार्य माना जा सकता है। शब्दार्थ-योजना में *अभिव्यजना का प्रश्रय आकर्षक लगता है।* भाव, रस, देश-काल एव पात्रो के प्रयोगानुसार भाषा मे रूप-परिवर्तन दिखलायी देता है।

---

१. अविमारक, २।१२
२. स्वप्नवासवदत्तम्, १।१६

इनकी शैली अद्वितीय है। भाषा गद्य और पद्य दोनों में ही समान रूप से समाज-विहीन और भावव्यंजक है। शैली में प्रवहणशीलता पूर्ण रूप से पायी जाती है। उद्दाम भावनाओं का बड़ा ही सशक्त वर्णन किया है। विपत्तियों के चित्रण में भास सिद्धहस्त हैं। भास की शैलीगत विशेषताओं के निरूपण में पण्डित श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है—"भास की शैली का गुण मौन-भाषण भी है। अल्प शब्दों के द्वारा अधिकाधिक भावों की व्यंजना के अतिरिक्त मौन से भी अर्थबोध कराया गया है। ये मौन शब्दों से कहीं अधिक प्रभावशाली हुए हैं एवं रस तथा भाव की प्रतीति में सहायक हुए हैं। इसी कारण समीक्षकों ने उन्हें 'मौन के आचार्य' विशेषण से विभूषित किया है।'[1]

भास ने बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया है, यही कारण है कि इनकी भाषा में अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी सम्मिलित हैं। ये आत्मने पद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग करते हैं और इसी प्रकार परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद का। यथा दूतघटोत्कच के आठवें पद्य में 'उपलप्स्यति' के स्थान पर 'उपलप्स्यते' होना चाहिये। 'पञ्चरात्रम्' के द्वितीय अङ्क के १५वें पद्य में 'परिहरन्ते' का प्रयोग किया है, पर इसके स्थान पर 'परिहरन्ति' होना चाहिये। इसी प्रकार इसी नाटक के द्वितीय अङ्क के ४५वें पद्य में प्रयुक्त 'रुष्यते' के स्थान पर 'रुष्यति', ४८वें पद्य में प्रयुक्त 'पृच्छसे' के स्थान पर 'पृच्छसि' होना चाहिये। इसी प्रकार 'श्लिष्यते' 'भ्रंश्यते' 'द्रक्ष्यते', 'परिम्लायते', 'गमिष्ये' प्रभृति आत्मनेपदों का प्रयोग परस्मैपद के स्थान पर आया है।

भास ने अकर्मक क्रियाओं का सकर्मक रूप में भी प्रयोग किया है। जैसे 'पञ्चरात्रम्' में द्वितीय अङ्क के बाइसवें पद्य में 'स्रवति' क्रिया का सकर्मक क्रिया के रूप में प्रयोग हुआ है—'स्रवतिधनुरुग्रा शरनदीम्।' इसी नाटक के द्वितीय अङ्क के चालीसवें पद्य में—'मत्प्रत्यक्षंलज्जते ह्यपपुत्रम्' में 'लज्जते' क्रिया का सकर्मक प्रयोग हुआ है। यहाँ 'पुत्र' कर्म है।

इसी प्रकार समास की प्रक्रिया में भी भास ने कुछ नवीन प्रयोग किये हैं, जो पाणिनि से मेल नहीं खाते। मध्यम व्यायोग के छब्बीसवें पद्य में 'व्यूढोरा' पद आया है। इसका विग्रह 'व्यूढं उरः यस्य सः' है। अतः बहुव्रीहि समास होने से यहाँ—'उरः प्रभृतिभ्यःकप्' सूत्र से 'कप्' प्रत्यय का नित्य विधान है। पर भास ने कप् प्रत्यय नहीं जोड़ा है। समासान्त प्रत्यय लगने के पश्चात् व्यूढोरस्क पद

---

१. महाकवि भास—एक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी पृ० १३१।३२

बनना था। इसी तरह 'दूतवाक्यम्' मे भास ने नवें पद्य मे—'उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज.' मे 'सर्वराज्ञ' इस समस्त पद का प्रयोग पाणिनि के प्रतिकूल है। 'सर्वराज्ञ:' मे 'राजहस्सखिभ्यष् टच्' मे टच् समासान्त लगना था, पर भास ने इसका प्रयोग नही किया है। 'पञ्चरात्रम्' के प्रथम अङ्क की शकुनि की उक्ति—'यदिदातव्ये राज्ये किस्माभि' सह मन्त्रयसे। ननु सर्वमेवप्रदीयताम।"[1] मे यदि शब्द का सति सप्तमी के साथ और 'सह' के साथ प्रयोग अपूर्व है।

पञ्चरात्रम 'नप्त. शरीरे ऋतुभिर्धरन्ते' मे 'धरन्ते' के स्थान पर ध्रियन्ते पद होना चाहिये। 'पञ्चरात्रोऽपि युज्यते' के स्थान मे 'पञ्चरात्रम्' यह होना चाहिये, यत समाहार क्लीवत्व नियम से होता है।

भास ने नये शब्द भी प्रयुक्त किये हैं। 'पञ्चरात्रम्' के तृतीय अङ्क मे 'मोक्षयामि' पद का प्रयोग किया है। यहाँ व्याकरण के नियमानुसार 'मोचयामि' होना चाहिये। दूतवाक्यम् के बारहवें पद्य के प्रथम चरण मे 'स कितव:' पद आया है, जो सन्धि के नियम के प्रतिकूल है। दूतघटोत्कच के बीसवें पद्य में 'व्यायामोप्ण गृह्य चाप करेण' में 'गृह्य' में ह्य का प्रयोग अपाणिनीय है। 'दूतवाक्यम्' के बारहवें पद्य मे 'रुदन्ती' पद में नुम् का आगम भी अशास्त्रीय है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' मे 'क: काल. त्वामन्वेष्यामि'[2] आया है। 'कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे द्वितीया' सूत्र से कालवाचक के सयोग मे द्वितीया विभक्ति होती है। अत पाणिनि के नियमानुसार 'कं कालम्' होना चाहिये। 'क: काल' नहीं।

'मा इदानीमन्यच्चिन्तयित्वा'[3] में 'अलखल्वो. प्राचाक्त्वा' सूत्र से प्रतिषेधार्थक 'अलम्' और 'खलु' के प्रयोग मे 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। अत: "अलञ्चिन्तित्वा" होना चाहिये, "चिन्तयित्वा" नही।

"एकदेशसविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामलिङ्गति"[4] मे विभाग स्वयं भाववाचक है। इससे 'तल्' प्रत्यय कर भाववाचक सज्ञा बनाने की आवश्यकता नहीं है। अत: 'एकदेशसविभागेन' होना चाहिये, 'एकदेशसविभागतया' नहीं।

'स्मराम्यवन्त्याधिपते' तथा 'विनयादपेतपुरुष.' जैसे पदो को कई

---

१. पञ्चरात्रम्, प्रथम अङ्क, पृ० ३८
२. स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अङ्क
३. वही, तृतीय अङ्क
४. वही, चतुर्थ, पचम अङ्क

वैयाकरणों ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। युधिष्ठिर मीमांसक ने भास के उक्त प्रयोगों को किसी प्राचीन व्याकरण के अनुसार साधु माना है। महाभारत में इस प्रकार के प्रयोगों का प्राचुर्य है। भास के नाटकों में कहीं-कहीं ऐसे क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनकी अर्थावगति में आज कठिनाई होती है। कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हैं, जिनका अर्थ बदला हुआ है। उदाहरणार्थ 'एकदेशसंविभागतया' पद लिया जा सकता है, इसका अर्थ 'बँटवारा' है, किन्तु इस अर्थ से कथानक की संगति नहीं बैठती, अतः संविभाग का अर्थ खाली छोड़ देना होना चाहिये। इसी अर्थ से कथानक की संगति बैठती है।

संक्षेप में भास की शैली में सरल शब्द, स्वाभाविक पद-विन्यास, और भाव-सौष्ठव पाया जाता है। रूपक, उपमा, और उत्प्रेक्षा जैसा सरल एवं स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग किया है। ये प्रकृति के अनुपम चितेरे हैं, अतः इन्होंने सर्वत्र प्रकृति के नैसर्गिक रूप सौन्दर्य का चित्रण किया है।

भास की शैली में कृत्रिमता का अभाव होने से शब्द और अर्थ का सामंजस्य सुन्दर रूप में घटित हुआ है। नाटकीयता का सन्निवेश सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है। इनका काव्यत्व नाटकत्व का पूरक है। इनके पात्रों के संवाद संक्षिप्त, उचित, अवसरानुकूल तथा कथावस्तु के परिवृंहण में सहायक हैं। नाटकीय कुतूहल सर्वत्र पाया जाता है। भाषा में अपूर्व प्रवाह और सरलता विद्यमान है। गागर में सागर भरने वाली उक्ति इनकी रचनाओं में चरितार्थ है। इनका कथन क्षण भर में गुह्यतम गुत्थियों का समाधान, मानसिक भावनाओं की मुख में परिणति तथा विचारों को संक्षिप्त रूप में रखते हुए भाव की स्पष्टता पायी जाती है।

भास की रचनाओं में नाटकीय तत्वों तथा काव्यत्व का सन्तुलन पाया जाता है। इन्होंने लोकपरम्परा का आदर्श अपनाकर नाटकों को अभिनेयता प्रदान की है। यही कारण है कि इनके नाटकों में कथावस्तु, चरित्र-निर्माण, नाटकीय संविधान और मनोवैज्ञानिक चित्रण की पूर्णता पायी जाती है।

संवाद तत्व भास के सजीव तथा चुस्त हैं, जो कि 'निष्क्रम्य प्रविश्य' के प्रयोग से त्वरता के लिए प्रसिद्ध हैं। अवसरानुकूल शीघ्रता का सुगुम्फन नाटकीय कुतूहल की वृद्धि में सहायक है। भास के नाटक सामाजिकों के हृदय पर आध्यात्मिक भावना, मृदुलता तथा रस की मंजुल अनुभूति कराने के लिए यत्र-तत्र गीतात्मक पद्यों से युक्त हैं, जिनके द्वारा नागरिकों के सुप्तभावों को उद्बुद्ध किया जा सकता है। भास की भाषा-शैली में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण

क्षमता है। अत आद्य नाटककार होने पर भी इनकी शैली पर्याप्त गम्भीर और प्रौढ है। इसका अनुकरण कालिदास, हर्ष, भवभूति आदि नाटककारो ने भी किया है।

भास की कृतियो मे समाहित उद्देश्य

प्रत्येक नाटककार किसी उद्देश्य विशेष से प्रेरित हो कर ही नाटक की रचना करता है। वह अपनी रचना द्वारा कोई विशेष सन्देश देना चाहता है। यह सन्देश जितना स्पष्ट और मुखरित होता है नाटक रचना उतनी ही सफल होती है। नाटककार भास ने भारतीय जीवन का गहन अध्ययन किया है और अपने काल की राष्ट्रीय सामाजिक, सास्कृतिक तथा नैतिक समस्याओ का समाधान प्रस्तुत किया है। भले ही उन्होने सामन्तयुगीन वातावरण का चित्रण किया हो, पर वे हैं भारतीय सस्कृति के अनुरागी। उनके नाटको का मूल उद्देश्य वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा कर राष्ट्र जागरण की प्रतिष्ठा करना है। राष्ट्र का विघातक तत्व गृह-कलह है। उन्होंने महाभारताश्रित नाटको का प्रणयन कर उस गृह-कलह मे समजस्यप्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'पञ्च-रात्रम्' मे दुर्योधन द्वारा पाण्डवो को राज्यार्द्ध दिला कर घरेलू विद्रोह को शान्त करने की चेष्टा की है। मौर्यकाल के पूर्व नन्द युग मे अन्तर विद्रोह की अग्नि भडक रही थी। वैयक्तिक छोटे-छोटे मतभेदो को स्वार्थी लोग विशेष महत्व दे रहे थे। फलत. देश की एकता क्षुण्ण होती जा रही थी। अतएव भास ने सग-ठन के लिए आवश्यक तत्व गृह-विग्रह विनाश माना है और इसके लिए "पञ्च-रात्रम्" मे कौरव पाण्डवो की एकता प्रस्तुत की है।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे भी उस युग के तीन बडे राज्य अवन्ती, मगध और वत्स मे एकता स्थापित कर परस्पर सम्बन्ध घटित किया है। वत्स नरेश उदयन का विवाह मगध और अवन्ती दोनो से करा कर तीनो बडे राज्यो को एकसूत्र मे बांधने की चेष्टा की। आरुणि के रूप मे आक्रमण करने वाले स्वदेशी या विदेशी छोटे-छोटे राज्यो को वत्स जैसे बडे राज्यो के अधीनस्थ कराया है। काशी, कोशल, मिथिला, बग, कलिग आदि को भी एकता के सूत्र मे आबद्ध करने की चेष्टा की है। इस प्रकार भास ने राष्ट्र एव सस्कृति के उन्नयन का सन्देश दिया है। इन्होने भारतीय इति-हास के उज्ज्वल पृष्ठो को ले कर राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का कार्य किया है।

पात्रो के रूप मे नाटककार भास ने अपने भावो की अभिव्यक्ति मे अपने

उद्देश्य को स्पष्ट किया है। इनके नाटकों में लोकरंजन तथा लोकरक्षण दोनों का सामंजस्य हुआ है। "स्वप्नवासवदत्तम्" में यौगन्धरायण अपने राजा के प्रति राष्ट्र उद्धार हेतु संलग्न है और कार्यों में अपना अपूर्व त्याग तथा शौर्य प्रदर्शित करता है। उसे यह विश्वास है कि गुणों को प्राप्त करने वाले व्यक्ति तो समाज में हैं, पर गुणियों के जानने वाले व्यक्ति समाज में दुर्लभ हैं। यौगन्धरायण के मुख से अपने अपराधों की स्वीकृति के साथ-साथ कंचुकी द्वारा नरेन्द्रश्री केवल उत्साह-शील व्यक्तियों द्वारा ही उपभुक्त होती है, की बात कही गयी है। इस कथन में राष्ट्र के उन्नायक राजा तथा आदर्श व्यक्तियों में उत्साह से आभरित होने का सन्देश दिया गया है। महासेन का अपनी महिषी से कन्या-विवाह के लिए परा-मर्श करना पारिवारिक अगाध स्नेह का द्योतक है। अविमारक में विवाह के सम्बन्ध में जितना सुन्दर और गाम्भीर्यपूर्ण विवेचन निबद्ध किया गया है, उतना अन्यत्र मिलना दुष्कर है। इस विवेचन में 'कुलद्वये हन्तिमदेन नारी, कुलद्वयं क्षुब्धजला नदीव'[1] अर्थात् बिना विचारे हुए यदि कन्या को दे दिया जाता है तो उन्मत्त नारी दोनों वंशों को क्षुब्ध नदी के दोनों किनारों के समान विनाश कर देती है।

'प्रतिमा' नाटक में राम अपने पिता दशरथ के विषय में समस्त गुणों का वर्णन करते हुए राज्याभिषेक के कार्य में असफलता का कारण बलवान् विधि को बतलाते हैं। 'अभिषेक' नाटक में राम मित्र की परिभाषा करते हुए विभीषण को आपत्ति के समय रक्षा करने वाला मित्र बतलाते हैं और मानवों के लिए विभिन्न परिस्थितियों में कर्त्तव्य पालन को आवश्यक धर्म कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि भास ने मित्र, स्वामी, बन्धु, पुत्र आदि के कर्त्तव्य का निर्धारण किया है। भास के नाटकों में आये हुए उद्देश्य का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने परिवार, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को स्वस्थ और समृद्ध बनाने के लिए त्याग, संयम, शील और आस्था आदि का निर्देश किया है।

भास की रचनाओं के अध्ययन से यह अनुभव होता है कि भास का युग सुख समृद्धि का युग था और सामाजिक व्यवस्था भी पूर्ण रूप से निबद्ध हो चुकी थी, जिसमें वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था का निरूपण होने पर भी चरित्र का विशेष महत्व था। भास ने अपने प्रत्येक नाटक में दान, और चरित्र का निरू-पण किया है। वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था में ब्राह्मणों और परिव्राजकों का स्थान महत्वपूर्ण था। श्रमणों का अवैदिक तथा नग्न श्रमणक कह कर हास्य किया

१. अविमारक १।३

गया है। राजाओं की दृष्टि में भी ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। जो व्यक्ति ब्राह्मण के वचनों का अतिक्रमण करता था वह समाज में निन्दनीय माना जाता था। 'कर्णभार' में वर्णाविमला नामक शक्ति केवल ब्राह्मण वचन के आधार पर कर्ण ग्रहण करता है। 'मध्यम व्यायोग' में भीम भी ब्राह्मण रक्षा के लिए प्रयत्न करता है और ब्राह्मणों को पूज्य बतलाता है। अनेक अपराध करने पर भी ब्राह्मण को अवध्य माना गया है। प्रतिमा नाटक में भरत को ब्राह्मण समझ कर क्षत्रियों की प्रतिमा को प्रणाम करने का निषेध करना क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों की उच्चता प्रकट करता है। क्षत्रियों को अपने कर्म के प्रति सदैव जागरूक रहने के लिए कहा गया है।

नाटककार भास ने अतिथि सत्कार को भी महत्ता दी है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथम अङ्क में कञ्चुकी ब्रह्मचारी से 'प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः' कह कर आगन्तुक के प्रति शिष्टाचार की भावना व्यक्त करता है। कवि विषम से विषम परिस्थितियों में चरित्र-रक्षा का सन्देश देता है। कठिन-से कठिन परिस्थिति के आने पर भी चरित्र का संरक्षण आवश्यक मानता है। 'पञ्चरात्रम्' में चरित्रहीन पुरुष के कुल के नष्ट होने की आशंका व्यक्त की गयी है। संक्षेप में भास के द्वारा अङ्कित सन्देश को निम्नांकित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

(१) भोग और योग का समन्वित रूप प्रस्तुत कर अन्तर्मुख और बहिर्मुख जीवन स्वरूपों का सुन्दर मेल कराया है।

(२) सन्तुलित भोग संयम प्राप्ति की प्रेरणा देता है।

(३) यज्ञ, दान एवं कर्मकाण्ड के प्रति आस्था रखने से ही जीवन में आनन्द लोक का दर्शन होता है। जो व्यक्ति इस आनन्दलोक का दर्शन करना चाहता है, उसे संचय वृत्ति को छोड़ त्याग वृत्ति अपनानी चाहिये।

(४) सुख और दुःख स्थायी नहीं हैं। ये क्रमानुसार परिवर्तित होते रहते हैं। अतः सुख और दुःख के प्रति एकान्तिक निष्ठा करना उचित नहीं।

(५) नियति और पुरुषार्थ इन दोनों का समन्वित रूप ही जीवन में आलोक विकीर्ण करता है। पुरुषार्थ से काष्ठ-मन्थन करने पर अग्नि प्राप्त की जाती है और खान के खोदने से माणिक्य, पन्ना एवं हीरक आदि मणियाँ प्राप्त होती हैं। जो पुरुषार्थ करता है, उसी को नियति या भाग्य का दर्शन होता है। केवल भाग्यवादी या केवल पुरुषार्थी मंगल प्राप्त नहीं कर सकता है।

(६) यह सम्पूर्ण विश्व सचेतन है, समग्र है, अखण्ड है और एक है। जब

तक भेद-बुद्धि या द्वैत-बुद्धि रहती है, तब तक शकुनि और दुर्योधन का अस्तित्व रहता है, और जब अभेद या आत्म-बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, तो वासुदेव, अर्जुन और कर्ण के दर्शन होते हैं। नाटककार भास ने मतभेदों का त्याग कर एकता का सन्देश दिया है।

(७) शृंगारिक सुख हेय नहीं है, यह सृष्टि के विकास का कारण है। संसार के विहित भोगों का उपभोग वर्जित नहीं। भोग प्रेय हैं अवश्य, पर श्रेय का मार्ग प्रेय के आंगन से हो कर निकलता है। धर्म विहित प्रेय वरेण्य है। इसी में अक्षय सुख का निवास है। धर्म बन्धन में आवद्ध काम ही अवि-मारक बनाता है और इसी से लोक कल्याण होता है।

(८) मानव जीवन का सुन्दर पुरुषार्थ सेवा और परोपकार है। सन्तप्त प्राणियों के ताप का हरण करना सज्जनों का धर्म है। हम जग की व्यावहारिक सत्ता से आँखें बन्द कर नहीं सकते। सन्त और असन्त का भेद कर के प्रथम का सत्कार और दूसरे का संहार करना होगा। यौगन्धरायण के समान राष्ट्र और राज्य हितैषी बन कर जो अपने को बन्धन में डालता है, वही उन्नत होता है और उसके बन्धन स्वयं विगलित हो जाते हैं।

(९) राज्य और राष्ट्र का दायित्व मन्त्रि-परिषद् पर होता है, जिसकी मन्त्रि-परिषद् जितनी अधिक सशक्त और निस्पृह होती है, वह राजा या राज्य विनाश को प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार भास ने राजा और मन्त्रि-परिषद्, इन दोनों में सहयोग की प्रवृत्ति स्थापित की है।

(१०) स्वच्छन्दता असावधानी एवं नीति-मार्ग का उल्लंघन, विनाश का साधन प्रस्तुत करता है। युवावस्था, अभ्युदय का मद एवं अविवेकता अवनति के हेतु हैं। कवि भास ने अविमारक के मुंह से विवेकहीन तारुण्य को धिक्कारते हुए कहलाया है—

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं,
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं,
बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥[१]

अर्थात्-तारुण्य राग बढ़ाता है, असावधानता को प्रश्रय प्रदान करता है। दोषों

---

१. अविमारक ३।१

को चिन्ता नही रखता तथा साहस ग्रहण कराता है। स्वच्छन्दता अपनाता है, नीति-मार्ग नही चाहता है और विद्वानों की कल्याणी बुद्धि को भी विवश कर देता है।

इस प्रकार नाटककार भास ने अपने उद्देश्यों की अभिव्यंजना कृतियो में की है। हमारी दृष्टि मे उद्देश्यों की दृष्टि से भी नाटककार भास सफल हैं। जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने वाले उद्देश्य सभी के लिए ग्राह्य हैं।

चतुर्थ अध्याय

भास के रूपकों में काव्यत्व और सुभाषित

भास के रूपकों में काव्यत्व और सुभाषित

कवि काव्य-सृष्टि का प्रजापति है। शुक्ल यजुर्वेद में 'कविर्मनीषी परिभू-स्वयंभू'[1] कहा गया है। कवि अपने कल्पना वैभव से नयी रंगीन सृष्टि का उद्गम करता है।[2] सौन्दर्य-पिपासा मानव की चिरन्तन प्रवृत्ति है। जीवन की नश्वरता और अपूर्णता की अनुभूति सभी करते हैं। सभी जीवन का मर्म अवगत करने के लिए इच्छुक रहते हैं। इसी कारण साहित्य अनुभूति की प्राची पर उदय लेता है। मानव के भीतर चेतना का गूढ़ और प्रबल आवेग है। अनुभूति उसी आवेग की सच्ची सजीव और साकार लहर है। इस अनुभूति के लिए व्यक्ति-धर्म, समाज और देश-काल का बन्धन अपेक्षित नहीं होता। कवि अपने विचार और हृद्गत भावनाओं की अभिव्यक्ति काव्य या नाटक के माध्यम से ही करता है। प्रेम, विरह, रूप, माधुर्य एवं हर्ष-विषाद प्रभृति जीवन-मूल्य काव्य के परिवेश में ही अभिव्यञ्जित होते हैं।

तथ्य यह है कि मन ज्ञान-इन्द्रियों के माध्यम से जिन भावनाओं और संवेदनाओं का प्रभाव ग्रहण करता है, चित्त पर उनका कोई-न-कोई चित्र अथवा संस्कार अवश्य अङ्कित हो जाता है। वातावरण, परिस्थिति संस्कार, आदि की विविधता के कारण प्रत्येक व्यक्ति पर एक ही मनोभाव के कई प्रकार के संस्कार अथवा चित्र अङ्कित होते हैं। कवि या साहित्य सृष्टा चित्त पर पड़े इन संस्कारों को प्रेषणीय क्रिया द्वारा पाठकों के चित्त में प्रविष्ट करता है। प्रविष्ट करने की यह कुशलता ही काव्य शास्त्रीय मूल्य है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि कवि की कल्पना शब्दों के सहारे ऐसे बिम्बों का निर्माण करती है जिन्हें हम चक्षु-इन्द्रिय द्वारा देख नहीं पाते। मूर्ति-विधायिनी कल्पना एक-से-एक बढ़ कर सुन्दर बिम्बों या प्रतिमाओं का सृजन करती है, जिससे सौन्दर्यानुभूतिजन्य आह्लाद की प्राप्ति होती है। कोई भी

---

१. शुक्ल यजुर्वेद, ४०।८

२. काव्य-प्रकाश, मोतीलाल बनारसी दास, १९६६ ई०, १।१

कलाकार अपनी कृति द्वारा जन-मानस मे जितना अधिक आह्लाद उत्पन्न करने की क्षमता रखता है, उस कृतिकार की कृति उतनी ही अधिक मूल्यवान् समझी जाती है।

संस्कृत के अलकार-शास्त्रियो मे काव्य के आधारभूत तत्वो के सम्बन्ध मे मतभेद दृष्टिगोचर होता है। पर इष्ट अर्थ, अलकार, गुण, दोष-शून्यता, रसात्मक अनुभूति, भावात्मकता, कल्पना वैभव आदि के अस्तित्व को प्राय: सभी अलकार-शास्त्री समान रूप से उपादेय मानते हैं। काव्य के लक्ष्य के सम्बन्ध मे शिक्षा, आनन्द और प्रसन्नता प्राप्ति का उल्लेख सर्वत्र पाया जाता है। वास्तव मे किसी भी ग्रन्थ का काव्य-शास्त्रीय मूल्य जीवन-भोग, आनन्दानुभूति, एव जीवन-संस्कृति की उदात्त प्रेरणा प्राप्त कर आनन्द सरोवर मे चित्त का समाहित हो जाना है। डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने साहित्य स्वरूप का विवेचन करते हुए लिखा है—'साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है, जिसके अर्थबोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्दानुभूति होती है।'[1] स्पष्ट है कि काव्य-शास्त्रीय मूल्याकन सम्बन्धी मीमासा के सन्दर्भ मे गुण, रस, अलकार, छन्द इत्यादि के अतिरिक्त जीवन-मूल्यो की विवेचना भी आवश्यक है। हम यहाँ भास की कृतियो के काव्यत्व-विवेचन के पूर्व भारतीय अलकार-शास्त्रियो के मतानुसार काव्य-मूल्यो या काव्यत्व पर सक्षिप्त विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

नाट्याचार्य भरतमुनि[2] ने अपने नाट्य-शास्त्र मे काव्य की परिभाषा एव उसके गुण-तत्वो का विवेचन करते हुए श्रेष्ठ काव्य में निम्नलिखित गुणों का रहना आवश्यक बताया है—

(१) कोमल और मनोरम पदावली,
(२) गूढ शब्द और अर्थ का अभाव,
(३) सर्वजन ग्राह्यता—प्रसाद गुण के कारण सामाजिकों द्वारा सहज अर्थ-प्रतीति

---

१. साहित्य विज्ञान, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ, प्रथम संस्करण, पृ० ३१
२. मृदुललितपदाढ्य गूढशब्दार्थहीन, बुधजनसुखयोग्य बुद्धिमन्नृत्तयोज्यम्। बहुरसकृतमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तं भवति जगति योग्य नाटकं प्रेक्षकाणाम्।

—नाट्यशास्त्रम्, चौखम्बा संस्करण, १७।१२३

(४) युक्ति-युक्तता—संवादों में तर्क, दृष्टान्त, निदर्शन एवं अभिप्राय विशेषों का समावेश।

(५) नृत्य में उपयोग किये जाने की योग्यता—अभिनयक्षमता।

(६) रस-युक्तता—अनुकरण प्रधान होने पर भी सामाजिकों में साधारणीकरण की प्रक्रिया द्वारा रसानुभूति की उत्पत्ति।

(७) सन्धि-सन्धान युक्तता—कथावस्तु के गठन की सतर्कता।

काव्य के उपयुक्त सात विशेषणों में प्रथम और तृतीय विशेषणों द्वारा भरत मुनि ने प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों पर प्रकाश डाला है। द्वितीय विशेषण से दोष-युक्तता का बोध कराया है। चतुर्थ विशेषण में अलंकार का ग्रहण है। षष्ठ विशेषण में रस के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। पंचम और सप्तम विशेषणों द्वारा दृश्य काव्य के लिए उपयोगी विषयों का प्रतिपादन किया गया है। भरत मुनि के उपयुक्त कथन से किसी भी नाटक के काव्यत्व के विश्लेषणार्थ गुण, रस, अलंकार और छन्द को ग्रहण किया जाना उपयुक्त है।

भामह ने शब्द, छन्द, अभिधान, अर्थ, इतिहासाश्रित कथा, लोकयुक्ति कला, इन आठ काव्योपयोगी तत्वों को अष्टविध[1] काव्य वैखरी के रूप में कहा है। जिस कृति में रस तत्वाष्टक की साधना समाहित रहती है, वह कृति काव्य-शास्त्र की दृष्टि से उपादेय मानी जाती है। इनकी मान्यता है—'रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता'[2] अर्थात् सत कवित्व के बिना वाणी में वैदग्ध्य नहीं आ सकता और बिना वैदग्ध्य के कोई भी कृति चमत्कारपूर्ण नहीं हो सकती।

भरत मुनि ने काव्यत्व के लिए दस गुणों[3] को उपादेय माना है। पर भामह की तत्वग्राहिणी-प्रतिभा ने प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीन गुणों को

---

१. शब्दश्छन्दोभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः।
लोकोयुक्तिः कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैर्ह्यमी॥
—काव्यालंकार, आ० देवेन्द्रनाथ शर्मा कृत भाष्य, वि० राष्ट्र-भाषा परिषद्, सन् १९६२, १।९

२. वही, १।४

३. श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते॥
—नाट्यशास्त्र, १७।९६

ही स्वीकृति प्रदान की है।[१] इन्होंने वक्रोक्ति को काव्य का निष्पादक तत्व बतला कर उसे काव्य के लिए अनिवार्य और व्यापक गुण बतलाया है।[२] यद्यपि वक्रोक्ति सिद्धान्त की प्रतिष्ठा कुन्तक द्वारा सम्पन्न हुई है, पर भामह ने भी उसका निर्देश किया है। भामह के मत से 'त्रिकालदर्शिनी प्रतिभा' जिसे प्राप्त है वह कवि अपने काव्य को सहज मे चमत्कार पूर्ण सम्पन्न कर लेता है। उन्होंने निर्दोषिता को भी काव्यत्व के लिए आवश्यक माना है। जिस प्रकार कुपुत्र कुल-निन्दा का कारण बनता है, उसी प्रकार सदोष काव्य-कृति निन्दा का कारण होती है।[३]

अतएव आचार्य भामह के अनुसार काव्यत्व के लिए गुण अलकार, दोष युक्तता, वक्रोक्ति आदि का विचार करना आवश्यक है।

आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श मे काव्य-वाणी के मार्ग के वैचित्र्य का स्वरूप शब्दात्मक काव्य-चमत्कार के वैचित्र्य अथवा उसके सौन्दर्यवर्द्धक तत्वों के वैचित्र्य के रूप मे परखा है। कवि सहजा और उत्पाद्या इन दोनो प्रतिभाओं से युक्त हो कर काव्य को चमत्कारपूर्ण बनाता है। सहजा नैसर्गिक प्रतिभा से सम्पन्न कवि को प्राप्त होती है और श्रुतमय तथा भावनामय ज्ञान से सम्पन्न कवियों को उत्पाद्या की उपलब्धि होती है। तथ्य यह है कि किसी भी काव्य कृति में मौलिकता का निर्माण कवि की आहार्य प्रतिभा पर निर्भर है। यह प्रतिभा काव्य-शास्त्र श्रवण, काव्य शास्त्र तत्व-चिन्तन एव काव्य-शास्त्र भावना के द्वारा सम्भाव्य है। शब्द और अर्थ के सौन्दर्य बोधक उपकरण आहार्य-प्रतिभा द्वारा सम्भव हैं। दण्डी ने काव्य-मूल्याकन सिद्धान्त मे वैदर्भी

---

१. माधुर्यमभिवाञ्छन्तः प्रसादञ्च सुमेधसः।
समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुञ्जते ॥
श्रव्य नातिसमस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते।
आविद्वदङ्गना बालप्रतीतार्थं प्रसादवत् ॥

—काव्यालकार

२. वाचां वक्रार्थ शब्दोक्तिरलङ्काराय कल्पते।

—काव्यालकार, ५।६६—उत्तरार्द्ध

३. सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दु सुतेनेव निन्द्यते ॥

—वही, १।११

और गौडीय मार्गों का निरूपण किया है। श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ-व्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि, ये दस गुण वैदर्भी के प्राण हैं। गौडीय मार्ग में प्राय: इनका विपर्यय लक्षित होता है। दण्डी ने निभ्रन्ति शब्दों में रीति में व्यक्तित्व की सत्ता स्वीकार की है। उन्होंने रीति और गुणों का सम्बन्ध स्थापित कर वैदर्भी काव्य को सत्काव्य माना है। इन्होंने शब्द और अर्थ के अलंकृत रूप को महत्व देते हुए भी रस को विशेष महत्व नहीं दिया है। रस के सम्बन्ध में इनका अभिव्यञ्जनावादी दृष्टिकोण प्रतीत नहीं होता। दण्डी ने भामह की अपेक्षा भाव को विशेष महत्व दिया है। भाव कवि के मानस-विकल्पों अथवा कल्पनाओं की एक सन्तान हैं जो प्रारम्भ से अन्त तक काव्य में अन्तर्व्याप्त रहती है।

रुद्रट् ने अपने काव्यालंकार में काव्यत्व के लिए अलंकार को आवश्यक माना है। लाटीया, पाञ्चाली, गौडीया और वैदर्भी इन चारों रीतियों का विवेचन कर वक्रोक्ति, अनुप्रास, श्लेष, यमक और चित्र इन पाँच अलंकारों की गणना की है। पश्चात् मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललिता और भद्रा इन वृत्तियों का भी विवेचन किया है। इस विवेचन से ज्ञात होता है कि आचार्य रुद्रट काव्य में चारुत्व का समावेश अलंकारों द्वारा ही निर्धारित करते हैं। रस-योजना को उतना महत्व नहीं दिया, जितना अलंकार योजना को। निर्दोष वाक्यों का प्रयोग काव्य के लिए आवश्यक है। न्यून, अधिक, अवाचक, अक्रम, अपशब्द, दुःश्रवत्व आदि दोषों से रहित रचना में ही चारुत्व उत्पन्न हो सकता है। अतः रुद्रट के मतानुसार अलंकार-योजना और दोष का परित्याग काव्य-कृति के लिए आवश्यक है।

वामन ने 'रीतिरात्माकाव्यस्य' कह कर रीति को प्रमुखता दी है। साथ ही रीति का गुण के साथ नित्य और अनिवार्य सम्बन्ध स्थापित कर इस आधार को अत्यन्त पुष्ट कर दिया है। ध्वनिकार ने लिखा है कि अलंकार और रीति काव्यालोचन में ऐसे प्रतिमान हैं, जो केवल काव्य के बहिरंग रूप का ही स्पर्श करते हैं। रस-सिद्धान्त ऐन्द्रिय आनन्द को सर्वस्व मानता हुआ भी बुद्धि और कल्पना के आनन्द के प्रति उदासीन है। एक बात यह भी है कि रस-सिद्धान्त प्रबन्ध काव्य का प्रतिमान तो ठीक है, पर स्फुट मुक्तकों में विभाव, अनुभाव, व्यभिचार, आदि का संघटन सम्यक् प्रकार से न हो सकने के कारण रस की स्थिति वहाँ घटित नहीं हो पाती। ध्वनिकार ने इन त्रुटियों का पर्यालोचन किया है और काव्यत्व के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रतिमान व्यञ्जना पर

आश्रित ध्वनि को माना।[1] ध्वनि सिद्धान्त की सम्यक् व्याख्या लोचनकार अभिनव गुप्त ने की है और इन्होंने बताया है—

(१) वाच्य से अधिक रमणीय व्यंग्य का सद्भाव
(२) व्यञ्जक शब्दों का समावेश
(३) रम्य-भावों को उद्बुद्ध करने वाली उक्तियों का समावेश
(४) वाच्यार्थ के साथ व्यंग्यार्थ में भी रमणीयता का समावेश
(५) रस के आश्रयभूत माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का समावेश
(६) दोषों का अभाव
(७) व्यंग्य रूप में रस और अलंकारों का नियोजन

कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य का सर्वस्व माना है। आचार्य मम्मट ने ध्वनि सिद्धान्त का पुनर्मूल्यांकन करते हुए शब्द-शक्तियों, रस एवं अलंकार के उचित प्रयोग को काव्यत्व कहा है। शब्द और अर्थ दोनों को दोषरहित माधुर्यादि गुणों से युक्त एवं सालंकार होना काव्य के लिए आवश्यक माना है। किन्तु रस की प्रतीति होने पर अलंकारहीन रचना भी काव्य कोटि में परिगणित की जा सकती है। रसानुभूति के तारतम्यता के आधार पर काव्य के भेद किये हैं। अत. मम्मट के अनुसार काव्यत्व के लिए वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ का प्राधान्य स्वीकार किया गया है।

आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट की मान्यता का समर्थन करते हुए रूपक द्वारा काव्य-पुरुष का विश्लेषण उपस्थित किया है और बताया है कि शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं, रसादि आत्मा, माधुर्यादि गुण शौर्यादि की भाँति श्रुतिकटुत्वादि दोष काणत्वादि की तरह, वैदर्भी आदि रीतियाँ अंग रचना के समान और उपमादि अलंकार कटक, कुण्डलादि के तुल्य होते हैं।[2] काव्य में रस का रहना अनिवार्य है, इसके बिना काव्यत्व सम्भव नहीं है।[3] 'रस्यते

---

१. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल संस्करण, १।१३

२. काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणा. शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत्, अलंकारा' कटक-कुण्डलादिवत् इति।
—साहित्य दर्पण, सम्पादक, डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९५७ ई०, प्रथम परिच्छेद, पृ० ११

३. रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य। तेन विना तस्य काव्यत्वानङ्गीकारात्। 'रस्यते इति रसः' इति व्युत्पत्तियोगाद्भाव-तादाभासादयोऽपि गृह्यन्ते। —वही, पृ० २३

इति रसः,' इस योगार्थ द्वारा जो आस्वादित हो, वह रस है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार रस, रसाभास, भाव, भावाभास, प्रभृति रस के अन्तर्भूत हैं। अतएव रसात्मक वाक्य ही काव्य का रूप धारण कर सकता है। दोषयुक्त और[1] अलंकार रहित होने पर भी रसवान् उक्ति काव्य के क्षेत्र में परिगणित है। इनके मतानुसार काव्यत्व के निर्धारणार्थ निम्नलिखित सिद्धान्त अपेक्षित है—

(१) सरस पद और वाक्यों का सन्निवेश
(२) भावमयता-भावजगत् का विश्लेषण
(३) शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का समन्वय
(४) रीति, गुण और औचित्य का समवाय
(५) रस की अनिवार्यता
(६) अलंकारों से संयोजित अप्रस्तुत विधान
(७) कल्पनामूलक सौन्दर्य की सृष्टि
(८) नियोजित काव्य तत्वों में अंगांगिभाव सम्बन्ध
(९) वर्णन चमत्कार का संयोजन
(१०) कथा-सन्दर्भों के नियोजन के साथ प्रवन्ध काव्यों में सर्गादि का यथोचित विभाजन
(११) दृश्य-वर्णन योजना के साथ विषय वर्णनानुसार विविध छन्दों का प्रयोग

उपर्युक्त अलंकार-शास्त्रियों के मतों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि नाटकों में काव्य तत्व का विश्लेषण करने के लिए रस, भाव, अलंकार, छन्द, कल्पनामूलक सौन्दर्य एवं औचित्य का विचार करना अपेक्षित है। नाटककार भास की रूपक कृतियों में काव्यत्व का यथेष्ट समावेश हुआ है। दृश्य काव्य में रस की अनिवार्यता रहती है। रस के धर्मभूत माधुर्य, ओज आदि गुण भी रस के रूप विशेष हैं। माधुर्य में हृदय की द्रुति अथवा द्रवीभावमयता सहृदय सामाजिक के हृदय का पिघल पड़ना है और यह तभी सम्भव है, जबकि सहृदय का हृदय विक्षेप से मुक्त हो कर रति आदि कोमल भावों के स्वरूप से अनुविद्ध हो जाय। इसका क्षेत्र संयोग शृंगार, करुण,

---

१. काव्यात्मभूतस्य रसस्यानपकर्षत्वे तेषां दोषत्वमपि नाङ्गीक्रियते।
—साहित्य दर्पण, सम्पादक, डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९५७ ई०, प्रथम परिच्छेद, पृ० ६।७

विप्रलम्भ शृंगार और शान्त रस में अनुगत रहता है। असमास अथवा अल्प समास वाली रचना की माधुर्य-व्यञ्जकता स्पष्ट है। ओज में सहृदय हृदय की दीप्ति अथवा प्रज्वलित-प्रायता रहती है, जिससे चित्त विस्तृत अथवा उष्ण होता है। यह ओज वीर, वीभत्स और रौद्र रस में विद्यमान रहता है। प्रसाद में सहृदय हृदय की ऐसी निर्मलता पायी जाती है, जिससे व्यासङ्ग-विक्षेप की निवृत्ति हो कर, चित्त पूर्णतया विमल हो जाता है। इस गुण का क्षेत्र सभी रसों में प्राप्त है। अतएव गुणों का विवेचन रस के अन्तर्गत ही है, यतः नाटक में रस ही साध्य होता है।

महाकवि भास की रचनाओं के काव्यत्व का विश्लेषण करने के लिए सर्वप्रथम उनकी रस-योजना पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

भास के नाटकों में रस[1]

(१) दूतवाक्य	—वीर और अद्‌भुत
(२) कर्णभार	—करुण और वीर
(३) दूतघटोत्कच	—वीर तथा करुण
(४) ऊरुभंग	—वीर, करुण, शान्त और रौद्र
(५) मध्यमव्यायोग	—वीर, भयानक, करुण, रौद्र, अद्‌भुत, हास्य और वात्सल्य
(६) पञ्चरात्र	—वीर, हास्य और वात्सल्य
(७) अभिषेक	—वीर, करुण, भयानक, अद्‌भुत और वात्सल्य
(८) बालचरित	—वीर, अद्‌भुत, हास्य, वात्सल्य करुण और भयानक
(९) अविमारक	—शृंगार, वीर, हास्य, शान्त, करुण अद्‌भुत और भयानक
(१०) प्रतिमा	—करुण, वीर, शृंगार और हास्य
(११) प्रतिज्ञायौगन्धरायण	—वीर, शृंगार, अद्‌भुत और हास्य
(१२) स्वप्नवासवदत्तम्	—शृंगार और करुण
(१३) चारुदत्त	—करुण, शृंगार और हास्य

मध्यम व्यायोग : रस विश्लेषण

मध्यमव्यायोग का प्रारम्भ घटोत्कच के रौद्र रूप के भयानक वातावरण

1. A. S. P. Ayyar, Bhasa, page 448

में होता है। वृद्ध ब्राह्मण केशवदास का परिवार घटोत्कच के भयंकर रूप को देख कर भयभीत हो उठता है। ब्राह्मण-परिवार द्वारा वर्णित घटोत्कच के रौद्र रूप में भयानक रस की स्वाभाविक अभिव्यञ्जना हुई है।

> तरुणरविकरप्रकीर्णकेशो भ्रकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः ।
> सतडिदिव घनः सकण्ठसूत्रो युगनिधने प्रतिमाकृतिहरस्य ॥[1]

यहां स्थायी भाव 'भय' है। हिंस्र स्वभाव वाला घटोत्कच आलम्बन है। विकृति रूप, भयावह चेष्टाएँ निर्जनता आदि उद्दीपन हैं। ब्राह्मण-परिवार के हाथ-पैर का कांपना, रोमांचित हो जाना, विवर्णता, कण्ठावरोध, भागना, गिड़गिड़ाना अनुभाव हैं। शंका, दैन्य, आवेग, चिन्ता, त्रास, चपलता आदि संचारी हैं।

भयभीत हो कर प्रथम कुमार पिता से पूछता है—

> भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।
> ग्रहयुगलनिभाक्षः पीनविस्तीर्णवक्षाः
> कनककपिलकेशः पीतकौशेयवासाः ।
> तिमिरनिवहवर्णः पाण्डरोद्‌वृत्तदंष्ट्रो
> नव इव जलगर्भो लीयमानेन्दुलेखः ॥[2]

दूसरे ब्राह्मण कुमार को घटोत्कच त्रिपुर दाह के समय शंकर के भयंकर क्रोध के समान प्रतीत होता है।

> कलभदशनदंष्ट्रो लाङ्गलाकारनासः
> करिवरकरबाहुर्नीलजीमूतवर्णः ।
> हुतहुतवहदीप्तो यः स्थितो भाति भीमः
> त्रिपुरपुरनिहन्तुः शङ्करस्येव रोषः ॥[3]

तीसरे ब्राह्मण कुमार को तो घटोत्कच के रूप में साक्षात् मृत्यु ही दिखलायी पड़ती है। वह कहता है—

---

१. मध्यमव्यायोग, १।४
२. वही, १।५
३. वही, १।६

वज्रपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्रिणाम् ।
मृगेन्द्रो मृगसंघानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ॥[१]

अनन्तर घटोत्कच से रक्षा प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण-परिवार पाण्डवों का स्मरण करता है। परन्तु यह ज्ञात कर कि पाण्डव शतकुम्भ यज्ञ में सम्मिलित होने महर्षि धौम्य के आश्रम में गये हैं, वे सब पुनः निराश हो जाते हैं और वृद्ध भयभीत हो कर कहता है—'हाय हम मारे गये।' भीम की अनुपस्थिति ब्राह्मण परिवार को पुनः भयभीत कर देती है

उपर्युक्त सन्दर्भ में भयानक रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। भय साक्षात् रूप में उपस्थित हो गया है और विभाव, अनुभावादि से परिपुष्ट हो कर भय स्थायी भाव ने भयानक रस के आस्वादन में सहायता प्रदान की है।

इस रूपक में रौद्र रस की अभिव्यञ्जना भी सफल हुई है। जब घटोत्कच ब्राह्मण केशवदास के छुटकारे की शर्त बतलाता है तो वृद्ध ब्राह्मण क्रोध में कांप उठता है—'हं भो राक्षसापसद! किमहमब्राह्मणः!'[२] इसी प्रकार ब्राह्मण केशवदास से घटोत्कच द्वारा रोके जाने की बात सुन कर भीम को घटोत्कच पर क्रोध आता है और वे कहते हैं 'एवं, अनेन ब्राह्मणजनस्य मार्गविघ्नः कृतः। भवतु निग्रहिष्यामि तावदेनम्। भोः पुरुषः! तिष्ठ तिष्ठ।'[३] इस पर भीम घटोत्कच के प्रति उन्मुख हो कर कहते हैं—'वृद्धस्य विप्रचन्द्रस्य भवान् राहुरिवोदितः।'[४] ब्राह्मण कुमार के स्थान पर भीम स्वयं घटोत्कच के साथ जाने के लिए तत्पर होते हैं। उन्हें घटोत्कच के परिचय से ज्ञात होता है कि वह हिडिम्बा से उत्पन्न उन्हीं का पुत्र है। वे उसे क्रुद्ध करने के लिए पूछते हैं—'यह भीम नामक व्यक्ति कौन है? ब्रह्मा, महेश, विष्णु, इन्द्र, कुमार कार्तिकेय और यमराज में से वह किसके तुल्य है? घटोत्कच-'सभी के समान है।' भीम—'यह असत्य है।' भीम का यह कथन घटोत्कच को क्रुद्ध कर देता है, वह क्रोध में भीम को मारने की चेष्टा करता है।

उपर्युक्त सभी स्थलों में क्रोध स्थायी भाव की अभिव्यञ्जना होने से रौद्र

---

१. मध्यम व्यायोग, चौखम्बा संस्करण, पृ० १७
२. वही, पृ० १२
३. वही, पृ० २६
४. वही, पद्य ३३ का उत्तरार्द्ध

रस पाया जाता है। यहाँ आलम्बन घटोत्कच अथवा भीम है। कटुवचन उद्दीपन है। गर्व, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

वीर रस की व्यञ्जना भी समुचित रूप से हुई है। प्रधानतः युद्ध-वीर ही व्यञ्जित हुआ है। दानवीर का अस्तित्व भी विद्यमान है।

बड़ा भाई घटोत्कच के साथ जाने को तत्पर होता है, पर पिता उसे स्नेह के कारण आज्ञा देने में असमर्थ रहते हैं और सबसे छोटे पुत्र को माँ की ममता अवरुद्ध कर लेती है। मध्यम ब्राह्मण कुमार अपना कर्तव्यपालन करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाता है। वह अपनी दानवीरता और उदारता का परिचय देते हुए कहता है—

धन्योऽस्मि यद् गुरुप्राणाः स्वैः प्राणैः परिरक्षिताः ।
वन्धुस्नेहाद्धि महतः कायस्नेहस्तु दुर्लभः ॥[1]

इस सन्दर्भ में दानवीर की पुष्टि होती है।

मध्यम पुत्र के चले जाने पर वृद्ध ब्राह्मण शोक व्याकुल से हो विलाप करने लगता है और उसके इस विलाप से सामाजिक भी दुःखी हो जाते हैं। यथा—

'हा हा परिमुषिताः स्मो भोः ! परिमुषिताः स्मः ।'[2]
यस्मिश्शृङ्गो मम त्वासीन्मनोज्ञो वंशपर्वतः ।
स मध्यशृङ्गभङ्गेन मनस्तपति मे भृशम् ॥[3]
'हा पुत्रक ! कथं गत एव'

इस स्थल में करुण रस है। यहाँ वृद्ध के लिए मध्यम कुमार आलम्बन हैं और मृत्यु के मुख में उसका जाना उद्दीपन है। विलाप, मुर्च्छा, रुदन आदि अनुभाव हैं। निर्वेद, विषाद, भय, जड़ता आदि संचारी हैं। इन विभाव, अनुभावों से परिपुष्ट हो शोक स्थायी भाव की अभिव्यक्ति हो रही है।

अन्त में अद्भुत रस की व्यञ्जना हर्षोद्रेक के साथ हुई। भीम को पहचान कर हिडिम्बा घटोत्कच से कहती है—'यह तो तुम्हारे पिता हैं।' घटोत्कच को भी आश्चर्य होता है, साथ ही प्रसन्नता भी। वृद्ध ब्राह्मण को भी आश्चर्य मिश्रित हर्ष होता है।

---

१. मध्यमव्यायोग, चौखम्बा संस्करण, पद्य २०

२. वही, पृ० १९

३. वही, पद्य २३

इस प्रकार नाटक के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इसमें एक रस की प्रधानता नही है। भयानक, वीर, अद्भुत, करुण और रौद्र रसो की अभिव्यक्ति समान रूप से हुई है।

दूतवाक्यम् : रस-विश्लेषण

प्रस्तुत नाटक का मुख्य रस रौद्र है। इसका स्थायी भाव उत्साह न हो कर क्षोभ है। दुर्योधन अपने शत्रु पाण्डवों के दूत बन कर आये भगवान् कृष्ण के प्रति मात्सर्य भाव से युक्त है। पाण्डवो का सन्देश सुन कर वह क्रुद्ध हो जाता है, क्षोभ से उन्मत्त जैसा हो जाता है। दुर्योधन की जली कटी और अन्यायपूर्ण बातें सुन कर भगवान कृष्ण भी क्रुद्ध हो उठते हैं और क्रोध मे सुदर्शन का आह्वान करते हैं। यह उनके क्रोध की चरम सीमा है। यह स्थिति आदि से अन्त तक चलती है, अत रूपक का प्रधान रस रौद्र ही है। वीर रस की व्यञ्जना अङ्ग रूप मे हुई है।

कञ्चुकी सभा-भवन मे प्रवेश कर कृष्ण के आने की सूचना देता है—'महाराज की जय हो ! पाण्डवो के शिविर से दूत रूप मे पुरुषोत्तम नारायण पधारे हैं।'[1] कृष्ण के प्रति ऐसे आदरसूचक शब्दो का प्रयोग ही दुर्योधन को क्रुद्ध कर देता है। वह कहता है—'क्या कस का सेवक दामोदर ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? जरासन्ध के द्वारा जिसकी कीर्ति नष्ट कर दी गयी है, वही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? क्या महाराजाओ के दरबार मे रहने वाले सेवक का यही आचरण है ? यह वाणी तो बड़ी गर्वीली है, अरे नीच।'[2]

इस गद्यांश से ही रौद्र रस का सचार हुआ है।

द्रौपदी चीर हरण के चित्र मे चित्रित भीम, नकुल और सहदेव के वर्णन में पुन. रौद्र रस दीप्त होता है। यथा—

'इसकी आँखें क्रोध से विस्फारित हो गई हैं। अधरोष्ठ भी फड़क रहे हैं। यह उस शत्रु समूह को तृण के समान मान कर समस्त भूपाल मण्डल को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए ही मानो अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को कान तक खींच रहा है।'[3]

---

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० ७

२. वही, पृ० ८

३ वही, १।९

'ये दोनों नकुल और सहदेव हैं, अपने ढाल-तलवार ले कर तैयार हो गये हैं, क्रोध के कारण मुख का रंग कठोर हो गया है तथा दाँतों से ओंठ दबाये हुए मरण-भय की चिन्ता से रहित मृगशावक मेरे सिंह के समान पराक्रमी भाई दुःशासन पर आक्रमण किया है।'[१]

भीम की आँखों का विस्फारित होना, अधरोष्ठ का फड़कना, नकुल-सहदेव के मुखों का आरक्त होना, दाँतों से ओठों का दबाना, ये सब क्रोध के परिणाम हैं। अतएव रौद्र रस का समावेश हुआ है।

दुर्योधन जब पाण्डवों की बात नहीं मानता तब कृष्ण उसे समझाने की चेष्टा करते हैं। पुण्य के संचय से प्राप्त राज्यश्री को ग्रहण करके, जो अपने बन्धु-बान्धवों को ठगता है, उसका समस्त परिश्रम व्यर्थ जाता है। अतः दुर्योधन को अपने बान्धव पाण्डवो का हिस्सा दे देना चाहिये। पर कृष्ण की इस उचित सलाह का दुर्योधन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और वह पाण्डवों को छोड़ कृष्ण को ही अपमानपूर्ण शब्द कहने लगता है—

सर्वथा वञ्चितस्त्वया कंसः। अलमात्मस्तवेन। न शौर्यमेतत्।[२] पश्य–
जामातृनाशव्यसनाभितपो रोषाभिभूते मगधेश्वरेऽथ।
पलायमानस्य भयातुरस्य शौर्यं तदेतत् क्व गतं तवासीत्॥[३]

जब कृष्ण दुर्योधन से कहते हैं—'मेरे कहने से तुम राज्यार्द्ध दे दो, अन्यथा सागरपर्यन्त पृथ्वी को पाण्डव प्राप्त कर लेंगे।'[४] इस पर दुर्योधन अत्यन्त क्षुब्ध हो कर कहता है—'कैसे पाण्डव हरण कर लेंगे ?'[५]

'यदि युद्ध में भीम-रूप से वायु भी प्रहार करने आ जाय अथवा अर्जुन के रूप में साक्षात् इन्द्र युद्ध करने आ जाय तो भी कठोर वाणी के प्रयोग में पटु, तुम्हारे कहने से पिता के पराक्रम से रक्षित और शासित अपने राज्य का तृण भी नहीं दे सकता।'[६]

---

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्करण, १।१०
२. वही, पृ० २६
३. वही, १।२८
४. वही, १।३४
५. वही, पृ० ३०
६. वही, १।३५

वासुदेव—'हे कुरुवंश के कलंकभूत दुर्योधन ! अपयश का लोभ करने वाले ! अब हम तुम्हारे साथ तृण मध्य मे रख कर भाषण करेंगे ।'[१]

दुर्योधन—'हे गोपालक ! आप तृण को बीच मे रख कर ही बोलने योग्य हैं ।'[२]

जिसे मारा नही जाता ऐसी अबला को मार कर, घोडे और बैल का संहार कर के तथा मल्ल-मुष्टिकादि का वध कर अब सज्जनो से वार्तालाप करना चाहते हैं ।[३]

दुर्योधन कृष्ण का अपमान करता हुआ अत्यन्त कटूक्तियो का प्रयोग करता है, जिससे भगवान कृष्ण क्रुद्ध हो कर अत्यन्त कठोर वचनों का प्रयोग करते हैं—

शठ ! वाग्ध्वनि.स्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ।
त्वदर्थात् कुरुवंशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति ॥[४]

इतना कह कर कृष्ण जाने के लिए तत्पर होते हैं, तो क्रोध एव ईर्ष्या मे वशीभूत दुर्योधन उन्हें बन्दी बनाने के लिए तत्पर हो जाता है—

'हाथी, घोडे और बैल तथा कंस को मारने वाले, ग्वालो के साथ रहने के कारण यह दूत का शिष्टाचार भी नही जानता है तथा भुजदण्डो मे बल-पराक्रम न होने के कारण कटु वचनो के द्वारा इन्होंने राजाओ के समक्ष मेरा अपमान किया है, अत इन्हें बाँध लो ।[५]

भगवान् कृष्ण द्वारा विश्वरूप दिखलाने पर भी दुर्योधन की आँखें नही खुलतीं । वह कृष्ण को ललकारता है । कृष्ण के समक्ष उसकी एक भी नही चलती, पर अपना पराजय वह स्वीकार नही करता है । वह कहता है—

मत्कार्मुकोदरविनि सृतबाणजालै—
विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम् ।
पश्यन्तु पाण्डुतनया. शिविरोपनीत
त्वां बाष्परुद्धनयना. परिनि.श्वसन्तः ॥[६]

१. दूतवाक्यम्, पृ० ३०
२ वही, पृ० ३१
३. वही, १।३६
४. वही, १।३८
५. वही, १।३९

अर्थात्—मेरे धनुष से छोड़े गये तीखे वाणों से विद्ध और रक्त स्राव से रञ्जित शिविर में आये हुए, तुम्हारे शरीर को पाण्डवगण आँखों में आँसू भर कर दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए देखेंगे।

उपर्युक्त सम्पूर्ण सन्दर्भ में क्षोभ, क्रोध और ईर्ष्या का वातावरण समाहित रहने से रौद्र रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

भगवान् कृष्ण सुदर्शन चक्र का आह्वान करते हुए दुर्योधन से कहते हैं 'अब तुम यदि क्षीर समुद्र में या पर्वत की कन्दराओं में अथवा ग्रह-नक्षत्रों से युक्त अन्तरिक्ष में वायु मार्ग से जाओ, तुम्हारे लिए मेरी बाहु शक्ति से संचालित अत्यन्त गतिमान सुदर्शन-चक्र काल-चक्र ही सिद्ध होगा।'[१]

इस स्थल में भी रौद्र रस का ही संचार हो रहा है। यतः क्रोध स्थायी भाव की सम्पुष्टि विद्यमान है।

रौद्र रस के सहायक के रूप में इस रूपक के कई सन्दर्भों में वीर रस भी व्यञ्जित हुआ है। भगवान् कृष्ण पाण्डवों के दूत बन कर दुर्योधन की सभा में कंचुकी के साथ जाने के लिए तत्पर होते हैं। इसी समय वे भीम और अर्जुन के पराक्रम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

'द्रौपदी के अपमान से शत्रु सैन्य के गजराजों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने वाली उग्र गदा को धारण करने वाले भीम की प्रवृद्ध क्रोधाग्नि ने रण क्षेत्र में अर्जुन के वाण रूपी वायु से और भी उद्दीप्त हो कर कौरव वन का विनाश किया है, ऐसा मैं देखता हूँ।'[२]

दुर्योधन को समझाना व्यर्थ जान कर शक्ति प्रदर्शन के भय से उसे रास्ते पर लाने का प्रयत्न करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन के पराक्रम की प्रशंसा करते हैं। इस सन्दर्भ में भी वीर रस का परिपाक हुआ है।

'किरातवेषधारी भगवान् शंकर से युद्ध कर के उन्हें सन्तुष्ट कर दिया, खाण्डव वन में अग्नि लगने पर वाणों की वर्षा कर के उसे ढँक दिया तथा इन्द्र को कष्ट देने वाले निवात-कवच को क्रीड़ा करते हुए मार डाला और उसी अकेले अर्जुन से विराटनगर में भीष्म पितामह आदि भी पराजित हुए।'[३]

---

१. दूतवाक्यम्, १।४५
२. वही, १।१४
३. वही, १।३२

गो-हरण की यात्रा मे जब तुम्हे चित्रसेन आकाश मार्ग से ले जा रहा था, तो रोते हुए तुमको अर्जुन ने ही छुड़ाया था।[१]

उपर्युक्त स्थल वीर रस के सुन्दर उदाहरण हैं। जब कृष्ण सुदर्शन चक्र को बुलाते हैं और वह आकर अपनी शक्ति का वर्णन करता है, उस सन्दर्भ मे भी वीर रस की सफल व्यञ्जना हुई है।

> किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि
>
> सङ्क्षोभयामि सकलं मकरालयं वा।
>
> नक्षत्रवंशमखिलं भुवि पातयामि
>
> नाशक्यमस्ति मम देव! तव प्रसादात्॥[२]

भगवान् कृष्ण द्वारा शारंगधनुष, कौमोदकी, पाञ्चजन्य, नन्दक तलवार और गरुड की अवतारणा में अद्भुत रस का संचार हुआ है।

कर्णभारम् : रस विश्लेषण

यह उत्सृष्टिकाङ्क है। अतः इसमे करुण रस की पुष्टि दानवीर रस के द्वारा हुई है। कर्ण वीर और समस्त शास्त्रो के संचालन में प्रवीण हैं, परन्तु शाप के कारण वह अत्यन्त असमर्थ है। अपनी इस स्थिति मे वह स्वयं दु:खी हैं। शल्य भी उसकी करुण कथा सुन कर दु:खी हो जाता है। कर्ण दु:खी होने पर भी असन्तुष्ट नहीं है। वह कहता है—'संग्राम में मारे जाने पर स्वर्ग प्राप्त होता है और जीतने पर यश मिलता है, यतः लोक मे दोनो ही अधिक माननीय माने जाते हैं, इससे युद्ध करने मे निष्फलता नही है।'[३]

कर्ण की करुण स्थिति मे इन्द्र उसके पास कवच और कुण्डलो की याचना करने आता है। कर्ण यह जानते हुए भी कि बिना कवच और कुण्डलों के उसका जीवन अत्यन्त अरक्षित हो जायगा, उनके दान करने मे आनाकानी नही करता।

> अङ्गैं सहैव जनितं ममदेहरक्षा
>
> देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्त्रैः।

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्करण, १।२३

२. दूतवाक्यम् १।४४

३. कर्णभारम, चौखम्बा संस्करण, १।१२

देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात् ।[१]

कवच-कुण्डल की बात सुनते ही इन्द्र प्रसन्नचित्त हो कर उन्हें ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त करता है, इससे कर्ण के मन में कुछ आशंका होती, पर उसकी दानवीर प्रवृत्ति उसे प्रेरणा और बल प्रदान करती है। वह शल्य द्वारा इन दोनों वस्तुओं के दान में रुकावट डालने पर भी रुकता नहीं और कवच-कुण्डल के रूप में अपने जीवन का ही दान शक्र को कर देता है। कर्ण का यह कार्य एक ओर जहाँ उसकी दानवीरता के प्रति सामाजिकों के हृदय में उत्साह उत्पन्न करता है, वहाँ इस परिस्थिति से उत्पन्न करुणा की स्थिति के कारण सामाजिकों के नेत्रों से आँसुओं की धारा भी गिराता है। इस प्रकार रूपककार भास ने एक साथ करुण और वीर रस का संयोजन किया है।

वीर रस की व्यञ्जना भी कतिपय स्थलों पर हुई है। कर्ण को ग्रीष्म-कालीन सूर्य से उपमित करते हुए शल्य कहता है—

'अत्यन्त प्रखर पराक्रम से युक्त युद्ध-स्थल में सर्वप्रमुख बलशाली कर्ण बुद्धिमान हो कर भी इस शोक से परितप्त हो रहे हैं। ग्रीष्म ऋतु में स्वाभाविक प्रखर किरणों वाला सूर्य जिस प्रकार मेघ से आच्छादित हो जाता है, उसी प्रकार इस समय कर्ण भी शोक मग्न दिखलायी पड़ते हैं।'[२]

कर्ण स्वयं भी धनञ्जय को युद्ध-क्षेत्र में ढूढ़ता हुआ कहता है—

मा तावन्मम शरमार्गलक्षभूताः
सम्प्राप्ताः क्षितिपतयः सजीवशेषाः।
कर्तव्यं रणशिरसि प्रियं कुरूणां
द्रष्टव्यो यदि स भवेद्धनञ्जयो मे।[३]

× × ×

अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्र—
योधाश्ववारणरथेषु महाहवेषु।
क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि,
वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले॥[४]

---

१. कर्णभारम्, चौखम्बा संस्करण, १।२१
२. वही, १।१४
३. वही, १।५
४. वही, १।६

इन दोनों सन्दर्भों में युद्धवीर की अभिव्यञ्जना हुई है। इस प्रकार कर्ण-भार में करुण और वीररस का अस्तित्व प्राप्त होता है। रूपककार भास ने विभाव, अनुभावादि का भी यथास्थान अङ्कन किया है।

दूतघटोत्कच : रस विश्लेषण

प्रकृत एकाकी का मुख्य रस करुण है। रूपक का प्रारम्भ शोक एवं विषाद से बोझिल वातावरण में होता है, यह वातावरण अन्त तक बना रहता है। करुण रस की व्यञ्जना अभिमन्यु के वध की सूचना प्राप्त धृतराष्ट्र, गान्धारी और पुत्री दुश्शला के वार्तालाप से होती है। जब भट के द्वारा धृतराष्ट्र को अभिमन्यु की हत्या का समाचार प्राप्त होता है, तो वे एकाएक स्तब्ध रह जाते हैं। वे शोकाभिभूत हो कर सोचने लगते हैं कि अभिमन्यु का वध कुल-नाशक है, अब कौरवों का जीवित रहना शक्य नहीं। सूचना ज्ञात कर धृतराष्ट्र कहता है—

'किसने मेरे कर्ण-पथ को दूषित किया ? कौन मेरा प्रिय समझ कर अप्रिय बोल रहा है ? कौन ऐसा निर्भीक है, जो हम लोगों के शिशु—अभिमन्यु के पाप से कलंकित वंश के विनाश की घोषणा कर रहा है ?'[1]

गान्धारी को एक ओर तो अभिमन्यु के वध से दुःख हो रहा है, और दूसरी ओर इस वध के परिणाम स्वरूप जो भयंकर युद्ध होगा, जिससे दोनों कुलों का नाश सम्भव है, विचार कर वह व्याकुल हो जाती है। नाटककार भास ने इस स्थल पर गान्धारी के शोकाभिभूत हृदय का चित्रण कर करुण रस को मूर्तिमत्ता प्रदान की है। वह कहती है—

'हा वत्स अभिमन्यो ! ईदृशेऽपि नाम पुरुषक्षयकारके कुलविग्रहे वर्तमाने बालभावनिमज्जनमस्माकं भाग्यक्रमेण कुर्वन् कुत्रेदानीं पौत्रक ! गतोऽसि ।'[2]
अर्थात्—हाय पुत्र अभिमन्यु ! हम लोगों के भाग्य-दोष से तुमने बालचपलता के कारण इस प्रकार के कुल विग्रह और मनुष्य के विनाशकारक युद्ध को उप-स्थित कर के पौत्र ! तुम अब कहाँ चले गये ?

दुश्शला भी अभिमन्यु के वध से दुःखी हो कर कहती है—'जिसने इस समय वधू उत्तरा को विधवापन दिया है, उसने अपने पक्ष की युवतियों को भी विधवा बना दिया है।'[3]

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा संस्करण, १।४
२. वही, पृ० ६
३. वही, पृ० ६-७

जब अभिमन्यु के वध का निमित्त जयद्रथ ज्ञात होता है, तब तो वह आगामी विधवापन को निश्चित जान कर धृतराष्ट्र से कहती है—'तात। मैं वधू उत्तरा के पास जा कर कहूँगी कि आज जो वेप तुमने धारण किया है, कल मैं भी उसी वेप को धारण करूँगी।'[१]

गान्धारी के द्वारा धैर्य दिये जाने पर भी दुश्शला को अपने सौभाग्य पर विश्वास नहीं होता और वह स्पष्ट कहती है कि कृष्ण सखा अर्जुन का अपकार करने वाला अब अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता है। अतः मैं तो आज ही अपने को विधवा समझ रही हूँ।

धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुश्शला के वार्तालाप में शोक स्थायी भाव की अभिव्यक्ति हुई है। अतः इस सन्दर्भ में करुण रस है।

दुश्शला की करुण स्थिति का नाटककार भास ने बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। धृतराष्ट्र उसे सान्त्वना देना चाहते हैं पर वे स्वयं अधीर हो कर कहते हैं—'हन्त जयद्रथो निहतः।'[२] पिता धृतराष्ट्र की इस बात को सुनकर दुश्शला का शोक आँसुओं में बदल जाता है। उसका रुदन सुन कर धृतराष्ट्र उसे समझाते हुए कहते हैं—'पुत्री मत रोओ। तुम्हारे पति को सौभाग्य अवश्य ही अरुचिकर है, जिसने की स्वयं अपने को अर्जुन के बाणों का लक्ष्य बनाया।'[३] धृतराष्ट्र के इस कथन को सुन कर दुश्शला के हृदय का शोक भली प्रकार व्यक्त हुआ और वह अत्यन्त दुःखी हो कर कहने लगी—'अतएव मुझे आप आज्ञा दें। मैं भी अपनी वधू उत्तरा के साथ जौहर दिखलाने के लिए जाऊँ।'[४] इस वार्तालाप से स्पष्ट है कि दुश्शला का कथन पिता धृतराष्ट्र के हृदय को कितना पीड़ित कर रहा है, यह अनुमानगम्य है। दुःख का अत्यन्त मार्मिक रूप यहाँ प्रकट हुआ है। पुत्री के दुःख को सुन कर स्तब्ध पिता और भी स्तब्ध रह जाते हैं। दुःखी दुश्शला के वचन उसके हृदय की पीड़ा का सही अनुभव करा रहे हैं। यहाँ करुण रस की अभिव्यञ्जना इतनी अधिक स्पष्ट है कि पिता, पुत्री और माता, तीनों ही दुःख विभोर हैं।

पुत्रों के प्रति निराश एवं असमर्थ धृतराष्ट्र का निम्नांकित कथन दुःखी

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा संस्करण, पृ० ६

२. वही, पृ० ८

३. वही, १।७

४. वही, पृ० ६४

पिता के हृदय के भावों की भली प्रकार अभिव्यक्ति कर रहा है। धृतराष्ट्र गान्धारी से कहते हैं—'आज ही हम अपने अपराध से मृत्यु को प्राप्त होने वाले तुम्हारे पुत्रों को जलाञ्जलि दे दें। हम इस जलाञ्जलि दान के द्वारा राजाओं के शिविर को युद्ध करने से रोक नहीं सकते हैं।'[1]

दुर्योधन, दु:शासन और शकुनि ये तीनों धृतराष्ट्र को आ कर प्रणाम करते हैं। परन्तु दु:खी धृतराष्ट्र उन्हें आशीर्वाद देने में असमर्थ हैं। उन्हें चुप देख कर सब एक साथ कहते हैं—'आप क्यों आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं? धृतराष्ट्र—'पुत्र कैसे आशीर्वाद दूँ? अर्जुन और कृष्ण के हृदय रूप सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का वध होने पर आप लोग जीवन से पराङ्मुख हो गये हैं। अतः कैसे आशीर्वाद दूँ?' पिता की बात सुन कर दुर्योधन कहता है—'तात, यह भ्रम कैसे उत्पन्न हुआ?' पुत्र का यह कथन धृतराष्ट्र के दु:ख को और अधिक तीव्र कर देता है और उन्हें अपनी पुत्री का वैधव्य साकार होने लगता है। उनके मुख से अचानक निकलता है—'अनेक पुत्रों वाले इस कुल में सौ पुत्रों से भी अधिक प्यारी एक कन्या है और वह तुम भाइयों की कृपा से निन्दनीय वैधव्य को प्राप्त करेगी।'[2] जब धृतराष्ट्र को ज्ञात होता है कि अकेले जयद्रथ ने नहीं बल्कि अनेक राजाओं ने मिल कर अभिमन्यु को मारा है तब तो उन्हें और अधिक दु:ख होता है। और इसी दु:ख के आवेग में वे पुत्रों की भर्त्सना करते हुए कहते हैं—भो:! कष्टम्।

> बहूनां समवेतानामेकस्मिन्निर्घृणात्मनाम्।
> बाले पुत्रे प्रहरतां कथं न पतिता भुजा:॥[3]

कृष्ण का सन्देश ले कर आये हुए घटोत्कच को देख कर धृतराष्ट्र का दु:ख उमड़ पड़ता है, 'पितामह! सुनिये हाय पुत्र अभिमन्यु! हाय पुत्र कुरुकुल के दीपक! हाय पुत्र यदुकुल के अंकुर तुम अपनी माँ और मामा, मुझे भी छोड़ कर पितामह को विपत्ति अनुभव करने के लिए छोड़ कर स्वर्ग में चले गये। एक पुत्र के विनाश से अर्जुन की यह अवस्था हुई है, फिर तुम्हारी अवस्था क्या होगी पितामह। तो शीघ्र ही अपने पक्ष की सम्पूर्ण सेना को लौटा लो, जिससे अपने पुत्र शोक से उठी हुई अग्नि में हवि की भाँति तुम्हारे ही शरीर

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा संस्करण, १।१०
२. वही, १।१६
३. वही, १।१७, पृ० १७

एवं प्राण न जल जाएँ।[1] धृतराष्ट ने भी कहा—'भाई की मृत्यु से तुम्हारी अन्तरात्मा में जितना दुःख है, मैं भी उतना ही दुःखी हूँ, जितना पाण्डव वंश'। स्पष्ट है कि धृतराष्ट और घटोत्कच के उक्त कथन में करुण रस का पूर्ण समावेश हुआ है और शोक स्थायी भाव की अभिव्यञ्जना हुई है।

इस रूपक में वीर रस की व्यञ्जना भी अभिमन्यु और अर्जुन के पराक्रम के वर्णन में घटित हुई है। अभिमन्यु के वध की सूचना धृतराष्ट्र को देते समय भट उसके पराक्रम का सुन्दर चित्रण करता है और कहता है—'युद्ध-क्षेत्रों में राजाओं को हाथी, रथ, घोड़े आदि की सेना को वध से व्याकुल कर अभिमन्यु ने कौतुकमात्र से अपने पिता अर्जुन के समान पराक्रम प्रदर्शित किया। सुभद्रा का पुत्र वह अभिमन्यु रण में अत्यन्त शूर होने के कारण स्वर्ग में सब दिशाओं से शीघ्रतापूर्वक सैकड़ों राजकुमारों के आने पर भी अपने पितामह इन्द्र की गोद में बैठाया गया।'[2] आगे पुनः अभिमन्यु के पराक्रम का वर्णन करते हुए बताया है कि वह युद्ध करते समय अपने हाथ में धनुष लिए हुए था जिसके परिश्रम के कारण वह गर्म हो गया था। उसने अपने बाणों से राजाओं को वैसे ही व्याप्त कर दिया था जैसे अपनी किरणों से सूर्य घिरा होता है।[3] इस स्थल में वीर रस का संचार हुआ है। अभिमन्यु के पराक्रम का सजीव वर्णन है। इसी प्रकार इस रूपक के बाइसवें पद्य में अर्जुन के पराक्रम का वर्णन आया है और वहाँ भी वीर रस की अभिव्यञ्जना हुई है।

घटोत्कच के साथ हुए शकुनि, दुर्योधन और दुश्शासन के वार्तालाप में रौद्र का परिपाक हुआ है। क्रोध ने सभी को वशीभूत कर रखा है। घटोत्कच कहता है कि अर्जुन क्षण भर में ही समस्त क्षत्रियों को नष्ट कर देगा। घटोत्कच की इस बात का शकुनि मजाक उड़ाता है, फलस्वरूप पहले से ही क्रुद्ध घटोत्कच और भी अधिक क्रुद्ध हो जाता है। वह शकुनि को ललकारते हुए कहता है—

'जुए के पाशों को छोड़ दो और अपने क्रीड़ा-फलक को शराघात के अनुरूप युद्ध करने योग्य बना दो। यहाँ कहीं स्त्री का अपहरण या राज्य का धोखे

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा संस्करण, पृ० ३२

२. वही, १।३

३. वही, १।२०

से अपहरण करना नहीं है, यहाँ तो अति तीखे बाण और प्राण ही क्रीडा-पात्र हैं।'[१]

दुर्योधन घटोत्कच की इस वाणी को सुन कर क्रुद्ध होता है और कहता है—'शान्त हो जाओ।'

दूत के नियमों का उल्लंघन कर के परुष वचन बोलते हो और हम सब की निन्दा करते हो। तुम दीर्घबाहु, बकवास करते समय कुछ भी नहीं गिनते। यदि तुम्हें अपनी माता के द्वारा प्राप्त विकराल रूप पर गर्व है तो हम सब भी राक्षसों के समान विकट स्वभाव वाले हैं।'[२]

घटोत्कच दुर्योधन के उक्त वार्तालाप को सुन कर क्रोधाविष्ट हो जाता है और कहता है—शान्त-शान्त पाप ! आप लोग तो राक्षसों से भी अधिक कठोर स्वभाव के हैं, यत —

'निशाचर भी लाक्षागृह में सोये हुए भाइयों को नहीं जलायेंगे। वे अपनी भावज की लज्जा का अपनयन आप लोगों के समान नहीं करेंगे। निशाचरों ने कभी भी युद्ध-भूमि में अपने पुत्र का वध नहीं किया है। यद्यपि राक्षसों का रूप विकराल होता है, उनके स्वभाव में परुषता होती है, फिर भी वे कौरवों के समान निर्दय और क्रूर नहीं होते। आप लोगों के समक्ष तो राक्षसों के कृत्य भी तुच्छ हैं।'[३]

घटोत्कच, दुर्योधन और दुश्शासन के उक्त वार्तालाप में रौद्र रस का परिपाक हुआ है। यत. क्रोध स्थायी भाव की अभिव्यञ्जना पायी जाती है।

दुर्योधन घटोत्कच से कहता है—'यह दूत है, अत अपना सन्देश दे कर चला जाय। दूत को हम लोग मारने वाले नहीं हैं। दुर्योधन का यह कथन घटोत्कच की क्रोधाग्नि को और अधिक भड़का देता है, वह दूत होने से इन-कार कर देता है और युद्ध करने के लिए तत्पर हो जाता है।

इस सन्दर्भ में भी रौद्र रस की योजना पायी जाती है।

पञ्चरात्रम् : रस विश्लेषण

यह तीन अङ्कों का सफल नाटक है। इसका प्रमुख रस वीर है। वीर रस का अनेक रूपों में—दानवीर, युद्ध-वीर, कर्म-वीर—के रूप में परिपाक हुआ

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा सस्करण, १।४५
२. वही, १।४६
३. वही, १।४७

है। वीर रस के अतिरिक्त इसमें हास्य और श्रृंगार रसों की झलक भी विद्यमान है। द्वितीय अङ्क में जब अभिमन्यु को भीम बन्दी बना कर ले जाते हैं, तब बृहन्नला, भीम और अभिमन्यु के संवाद में हास्य रस पाया जाता है।

विराट को जब भगवान् रसोइये और बृहन्नला के वास्तविक रूप का परिचय मिलता है, तब वे प्रसन्न होते हैं। वे चाहते हैं कि अभिमन्यु उनका दामाद हो परन्तु उन्हें बृहन्नला के रूप में अन्तःपुर में निवास किये हुए अर्जुन पर सन्देह होता है। वह सोचता है—'उत्तरासन्निकर्षस्तु मां बाधते। किमिदानीं करिष्ये।'[1] इसी कारण वे उत्तरा को अर्जुन को युद्ध में विजय प्राप्ति के उपलक्ष्य में देने की इच्छा प्रकट करते हैं। इस स्थल पर श्रृंगार रस है।

द्वितीय अङ्क में प्रवेशक में दुर्योधन आदि के गो-समूह पर किये गये आक्रमण के द्वारा भय का वातावरण उपस्थित हुआ है। इससे चारों ओर भगदड़ मच जाती है। ठहरो, मारो, भागो और पकड़ो की ही ध्वनि सुनाई पड़ती है। अतः यहाँ पर भी भयानक रस की व्यञ्जना हुई है।

सम्पूर्ण नाटक म उत्साह की स्थिति है, चाहे वह धार्मिक कार्य हो, चाहे युद्ध अथवा दान, प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य को पूरे उत्साह के साथ सम्पन्न करता है। प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में दुर्योधन द्वारा किये गये महान् यज्ञ का तीन ब्राह्मणों द्वारा वर्णन दुर्योधन की धर्म वीरता का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है—

> द्विजोच्छिष्टैरन्नैः प्रकुसुमितकाशा इव दिशो
> हविर्धूमैः सर्वे हृतकुसुमगन्धास्तरुगणाः।
> मृगैस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभृतसिंहाश्च गिरयो,
> नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव ॥[2]

इसी प्रकार चतुर्थ और पञ्चम पद्य में भी धर्मवीर की अभिव्यञ्जना हो रही है। तृतीय अङ्क में अभिमन्यु के विराट की सेना द्वारा पकड़े जाने की सूचना प्राप्त करने के पश्चात् दुर्योधन सूत से पूछता है—

'सूत बतलाओ, किसने अभिमन्यु का अपहरण किया है, मैं ही उसे छुड़ाऊँगा, यतः मेरी उसके पिता के साथ शत्रुता है। अतः उसके पकड़े जाने पर लोग मुझे ही दोषी कहेंगे। इसके पश्चात् एक बात यह भी है कि पहले वह

---

१. पञ्चरात्रम्, द्वितीय अङ्क, पृ० १०७
२. वही, १।३

मेरा लड़का है, बाद मे पाण्डवो का। कौलिक विरोध होने पर भी बालकों का अपराध नहीं माना जाता।'[१]

स्पष्ट है कि पाण्डवो के साथ बैर होने पर भी दुर्योधन अपने कर्त्तव्य का स्मरण कर उसके अनुकूल आचरण करते हुए भी अपनी धर्मप्रियता और कर्त्तव्यनिष्ठा का त्याग नही करता है। अतएव उक्त स्थल मे धर्मवीरता विद्यमान है।

प्रथम अङ्क मे द्रोणाचार्य दक्षिणा के रूप मे पाण्डवो के लिए आधा राज्य दुर्योधन से माँगते हैं। शकुनि क्रोधित हो कर कहता है—'यह सम्भव नहीं। गुरु-दक्षिणा के बहाने अनुचित कार्य कराना शिष्य को धर्म वचना के नाम पर ठगना है।'[२] इस पर द्रोणाचार्य कहते हैं—'भाइयो को उनका पैतृक धन लौटा दो, यह कहना धर्म प्रवचना कैसे हैं? और माँगने से राज्य देना अच्छा है या बलपूर्वक छीन लिया जाय?'[३] आचार्य की बात सुन कर दुर्योधन उनसे पूछता है—'यदि पाण्डव बलपूर्वक राज्य लेने मे समर्थ हैं तो फिर द्यूत सभा में द्रोपदी का अपमान होता देख कर भी वे क्यो चुप रहे? दुर्योधन के इस प्रश्न का उत्तर द्रोण ने दिया, वह युधिष्ठिर की धर्मवीरता का ठोस एवं महान् उदाहरण है—

'अत्रेदानीं धर्मच्छलेन वञ्चितो द्यूताश्रयवृत्तिर्युधिष्ठिर. प्रष्टव्य'[४]—

येन भीम समास्तम्भ तोलयन्नेव वारित.।
यद्येकस्मिन् विमुक्त स्यान्नास्माञ्छकुनिराक्षिपेत्॥[५]

द्वितीय अङ्क में दुर्योधन की सेना का सामना करने के लिए विराट अपनी सेना को तैयार करवाते हैं। इस सैन्य-सज्जा को देख कर भगवान् के छद्मवेष में रहने वाले युधिष्ठिर विराट से पूछते हैं—

'यह युद्ध का उद्योग क्यो किया जाता है, क्या लक्ष्मी से सन्तोष नहीं

१. पञ्चरात्रम्, ३।४
२ वही, १।३२
३. वही, १।३३
४. वही, पृ० ३१
५. वही, १।३८

हुआ है ? क्या किसी अहंकारी दम्भी को पीड़ित कीजियेगा या किसी पीड़ित को मुक्ति दिलाइयेगा ?'[१]

इस सन्दर्भ से युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठता का सहज में परिज्ञान होता है। इतना ही नहीं उनकी धर्मनिष्ठता विराट के साथ वार्तालाप से भी प्राप्त होती है। दो स्थानों पर दयावीर की अभिव्यञ्जना हुई है, जिसके आश्रय हैं युधिष्ठिर। द्वितीय अङ्क में ही युधिष्ठिर को धृतराष्ट्रों द्वारा विराट की गायों के हरण की सूचना मिलती है, तो युधिष्ठिर को कौरवों पर दया आती है। इनके इस भाव की अभिव्यंजना निम्नांकित वाक्य से होती है—

'न खलु किञ्चित्। तेपामुत्सुकः।'[२]

युधिष्ठिर के इस कथन के उत्तर में विराट का कथन पुनः युधिष्ठिर की दयावीरता को प्रमाणित करता है—'अद्य प्रभृति निभृताभविष्यति। यदि शक्तोऽपि युधिष्ठिरो मर्षयति, अहं न मर्षयामि।'[३]

प्रथम अङ्क में आया है कि दुर्योधन अपने गुरु द्रोण को अपना समस्त धन अर्पण करते हुए कहता है—

'मैं आपका प्राण-प्रिय हूँ, आपने मुझे शिक्षा दी है, वीरों में मैं प्रथम गिना जाता हूँ। युद्ध में मैंने साहस किया है, आप स्वेच्छया आज्ञा दीजिये कि कि मैं आपको क्या दूँ? केवल गदा मेरे हाथ में रहे, शेष सारा धन आपका है।'[४]

दुर्योधन की इस दानवीरता का परिचय उस समय मिलता है, जब उसके मामा शकुनि और मित्र कर्ण के विरोध करने पर भी वह कहता है—

'मैंने गुरुदेव के हाथ में जल छोड़ दिया है, वह दान का प्रमाण है, ऐसा कुल-वृन्दों ने शास्त्रों से जाना है तथा मैंने उनसे सुना है, इसलिये, हे राजन्! चाहे यह अनीति हो या ठगी हो मैं इस दान-जल को सच्चा करना ही चाहता हूँ।'

इस सन्दर्भ में दानवीरता के साथ कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना भी प्राप्त होती है। नाटक के अन्त में तृतीक अङ्क की समाप्ति के समय दुर्योधन द्वारा

---

१. पञ्चरात्रम्, २।८
२. वही, द्वितीय अङ्क, पृ० ६४
३. वही, द्वितीय अङ्क, पृ० ६५
४. वही, १।३१

अपनी प्रतिज्ञानुसार आधा राज्य पाण्डवों को दे देने से दुर्योधन की दानवीरता सिद्ध होती है।

युद्धवीर का सन्दर्भ प्रथम अङ्क मे आया है। जब दुर्योधन के यज्ञ मे सम्मिलित न होने के कारण को बतलाने के लिए महाराज विराट का दूत आता है और कीचको के वध की बात कहता है तो भीष्म पितामह भीम के पराक्रम का वर्णन करते हुए कहते हैं—

भीमसेनस्य लीलेयं सुव्यक्तं बाहुशालिन.।
योऽस्मिन् भ्रातृशते रोष. स तस्मिन् फलित. शते ॥[१]

युद्ध वीर रस की अभिव्यञ्जना अनेक स्थलो पर हुई है। प्रथम अङ्क के अन्त मे विराट के गोहरण के लिए जो युद्ध की तैयारी का वर्णन है, उसमे युद्ध वीर की अभिव्यञ्जना हुई है।

दुर्योधन के आक्रमण का उत्तर देने के लिए विराट भी युद्ध की तैयारी करता है—

धनुरुपनय शीघ्रं कल्प्यतां स्यन्दनो मे
मम गतिमनुयातुच्छन्दतो यस्यभक्तिः ।
रणशिरसि गवार्थे नास्ति व्योघ प्रयत्नो
निधनमपि यश. स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्म. ।[२]

द्वितीय अङ्क के तेरहवें पद्य मे पुन विराट ने युद्ध के प्रति अत्यन्त उत्साह दिखला कर वीर रस का आस्वाद कराया है। इसी अङ्क मे अर्जुन की वीरता का वर्णन करते हुए छद्मवेषधारी युधिष्ठिर कहते हैं—

'यदि रथचक्र से उड़ाई गयी धूल से आकाश में मेघ-मण्डल की सृष्टि करने वाले रथ पर बैठ कर बृहन्नला गयी है, तो निश्चय समझिये, रथनेमि शब्द से ही कुछ ही क्षणो मे शत्रुओ को परास्त करके रथ लौट आयेगा, कुमार को बाण चलाने की आवश्यकता नही होगी।'[३]

युद्ध का समाचार देने वाले भट के द्वारा कुमार के रूप मे अर्जुन को

---

१. पञ्चरात्रम्, १।५२
२. वही, २।५
३. वही, २।१८

वीरता के वर्णन में पुनः रस की व्यञ्जना हुई है। युद्ध में अभिमन्यु के पराक्रम से अर्जुन भी प्रभावित होते हैं और उसके पराक्रम का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में करते हैं :

'सैकड़ों वाणों के प्रहार से काले हाथियों को लाल बना डाला है। ऐसा कोई भी घोड़ा या योद्धा नहीं है, जो वाणों से घायल न हुआ हो। शरों से घिरे हुए रथ स्तब्ध खड़े हैं, धनुष भयंकर शरधारा प्रवाहित कर रहा है।'[१]

'यह उसी धनुष की टंकार है, ऐसा समझ कर द्रोणाचार्य ने युद्ध करना छोड़ दिया है, भीम ने ध्वजा में लगे वाण को देख कर—लड़ना व्यर्थ है, समझ कर प्रहार करना छोड़ दिया है। वाणों के प्रहार से कर्ण पराभूत हो रहे हैं। दूसरे राजा-लोग यह क्या हो गया, ऐसा सोच कर चकरा रहे हैं। भय के कारण सामने आने पर भी केवल अभिमन्यु निर्भय भाव से लड़ता जा रहा है।'[२]

'परशुराम के वाणों से जिनका कवच नहीं छिदा ऐसे भीष्म पितामह को और मन्त्रायुद्ध द्रोण को, एवं कर्ण तथा जयद्रथ को और अन्यान्य नृपतियों को विमुख करने वाला कुमार क्या अभिमन्यु को अपने वाणों से पराभूत नहीं कर देगा? हो सकता है कि अभिमन्यु के पिता अर्जुन के ख्याल से कुमार अभिमन्यु के साथ मैत्री कर ले, यह भी आयु एवं वंश के विचार से ठीक ही होगा।'[३]

भीम के पराक्रम वर्णन में भी वीर रस का परिपाक हुआ है। द्वितीय अङ्क में अभिमन्यु अपने पिता भीम की शक्ति का वर्णन करता हुआ कहता है—

योक्त्रयित्वा जरासन्धं कण्ठश्लिष्टेन बाहुना।
असह्यं कर्म तत् कृत्वा नीतः कृष्णोऽतदर्हताम् ॥[४]

जिसने अपनी भुजाओं से जरासन्ध के कण्ठ को बाँध कर वह असाध्य कार्य कर कृष्ण की तद्विषयक असमर्थता सिद्ध कर दी।

---

१. पञ्चरात्रम्, २।२२
२. वही, २।२४
३. वही, २।२६
४. वही, २।५७

तृतीय अङ्क में भीष्म पितामह ने भीम के पराक्रम का वर्णन ग्यारहवें और चौदहवें पद्य में किया है, इस सन्दर्भ में भी वीर रस की अभिव्यंजना हुई है।

संक्षेप में 'पञ्चरात्रम्' के प्रारम्भ में द्रोण और दुर्योधन का वार्तालाप करुण रस की छाया को प्रतिबिम्बित करता है, जिसमें द्रोण पाण्डवों को आधा राज्य दिलाने के लिए शिष्य का दोष गुरु पर लेते हुए चित्रित किये गये हैं। नाटक में वीर रस का प्राधान्य है, कौरवों का विराट पर आक्रमण करना और विराट की ओर से पाण्डवों का गुप्त रूप में सहायता करना वीर कार्य के अन्तर्गत है। अतः समस्त नाटकों में वीर रस व्याप्त है।

ऊरुभंगम् : रस विश्लेषण

प्रकृत रूपक का प्रधान रस करुण है। युद्ध में सभी भाइयों को वीर-गति प्राप्त कर चुकने के बाद दुर्योधन का भीम के साथ गदा-युद्ध होता है। भीम कृष्ण की सहायता से दुर्योधन की जांघ पर प्रहार कर उसे भग्न कर देता है। जांघ के टूट जाने के कारण घायल दुर्योधन चलने में असमर्थ पृथ्वी पर किसी तरह घसीटते हुए चलता है। एक वीर योद्धा की यह दुरवस्था सामाजिकों के हृदय को झकझोर देती है और उनके हृदय करुणा से द्रवित हो जाते हैं। इस अवस्था में बलराम जी के चरण स्पर्श करते हुए दुर्योधन का निम्न कथन आंखों की धारा प्रवाहित कर देता है। यह करुण रस को सजीवता है—

> स्वत्पादयोर्निपतितं पतितस्य भूमा—
> वेतच्छिरः प्रथममद्य विमुञ्च रोषम्।
> जीवन्तु ते कुरुकुलस्य निवापमेघा
> वैरं च विग्रहकथाश्च वयं च नष्टाः ॥[1]

भूमि पर गिरा हुआ मेरा यह सिर आपके युगल चरणों पर पड़ा है। आप सर्वप्रथम अपने रोष को त्याग दें, जिससे कुरुवंश को जलाञ्जलि प्रदान करने वाले पाण्डव रूपी मेघ जीवित रहें, क्योंकि समस्त शत्रुता, विग्रह सम्बन्धी कथाएं और हम लोग स्वयं विनष्ट हो चुके हैं।

पुत्र दुर्जय, धृतराष्ट्र, गान्धारी एवं दुर्योधन की पत्नियां उसे ढूंढते हुए

---

१. ऊरुभंगम्, चौखम्बा प्रकरण, १।३१

रणभूमि में आती हैं। दुर्योधन अपनी असमर्थता के कारण चल-फिर नहीं सकता और न वह अपने माता-पिता की चरणरज ही ले सकता है। इस लाचार स्थिति में करुणा का साकार रूप उपस्थित हुआ है। दुर्योधन माता और पत्नियों के रुदन को सुन कर अत्यधिक दुःखी होता है। पत्नियों का रुदन तो उसके हृदय को विदीर्ण कर देता है—वह कहता है—

'भोः ! कष्टम्, यन्ममापि स्त्रियो रुदन्ति।'[1]
पूर्वं जानामि गदाभिघातरुजामिदानीं तु समर्थयामि :
यन्मे प्रकाशीकृतमूर्धजानि रणं प्रविष्टान्यवरोधनानि।[2]

आश्चर्य की बात है कि मेरी रानियां भी रोती हैं। पहले तो गदा-प्रहार की पीड़ा को जाना भी नहीं था, परन्तु अब उसका अनुभव कर रहा हूं, यतः बन्धन से मुक्त हुई के सामने मेरे अन्तःपुर की रानियां रण-क्षेत्र में चली आयी हैं।

दुर्योधन की उक्त आलोचना में करुण रस पूर्णतया व्याप्त है। वह करुणा से द्रवीभूत हो कर ही इस प्रकार की असमर्थता व्यक्त करता है।

इस प्रकार धृतराष्ट्र आदि के द्वारा दुर्योधन को खोजना और उसे प्राप्त करने तक करुण रस तीव्रतर होता जाता है।

माता-पिता की पुकार सुन कर दुर्योधन उन्हें प्रणाम करने के लिए उठने का प्रयत्न करता है, पर टूटी जांघ के कारण विवश हो जाने से वह गिर जाता है। अतः बार-बार प्रयास करने पर भी अपने माता-पिता को प्रणाम करने में अपने को असमर्थ पाता है। उसका हृदय रुदन कर उठता है, सामाजिक का हृदय भी द्रवित हो जाता है।

'हा धिक् अयं मे द्वितीयः प्रकारः। कष्टं भोः।'[3]
हृतं मे भीमसेनेन गदापातकचग्रहे।
सममूरुद्वयेनाद्य गुरोः पादाभिवन्दनम्॥[4]

गान्धारी का दुर्योधन की पत्नियों को पति की तलाश करने की आज्ञा

---

१. ऊरुभंगम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० ३४
२. वही, १।३८
३. वही, पृ० ३७
४. वही, १।४१

देना एवं धृतराष्ट्र का दुर्जय को पिता की गोद में आराम करने के लिए कहना और उनका जाना, अत्यन्त करुणा की अवतारणा करते हैं। अपने पुत्र को देख कर दुर्योधन का दुःख और बढ़ जाता है और जब वह गोद में बैठने को तत्पर हो जाता है, तब तो दुःख की सीमाएँ टूट जाती हैं और करुणा प्रवाहित होने लगती है। वह अपने पुत्र को दूर हटाते हुए कहता है—

हृदयप्रीतिजननो यो मे नेत्रोत्सवः स्वयम्।
सोऽयं कालविपर्यासाच्चन्द्रो वह्नित्वमागतः॥[१]

जो दुर्जय मेरे हृदय को आनन्दित कर देता था और इन आँखों के लिए जो स्वयं उत्सव स्वरूप था, वही यह चन्द्रमा आज समय के फेर से आग की तरह प्रतीत हो रहा है।

दुर्जय आगे भी दुर्योधन से उसकी गोद में बैठने का आग्रह करता है। दुर्योधन उसे समझाता है। वह बाल स्वभाववश उससे अनेक प्रश्न करता है। इन प्रश्नों में जब कुमार दुर्जय द्वारा पूछे जाने पर कि आप कहाँ जायेंगे तो वह अपने सौ भाइयों का अनुसरण करने की बात कहता है। कुमार भी उसके साथ चलने का आग्रह करता है, इस पर दुर्योधन उत्तर देता है—

'गच्छ पुत्र ! एवं वृकोदरं ब्रूहि।'[२]

दुर्योधन के इस वाक्य में करुणा सजीव हो उठी है। उसके हृदय का शोक अभिव्यक्त हुआ है। नाटककार ने व्यंग्यात्मक शैली में करुण रस की उपस्थापना की है।

दुर्जय की पुकार सुन कर धृतराष्ट्र आदि दुर्योधन के समीप पहुँचते हैं। धृतराष्ट्र अपने पुत्र की इस अवस्था को देख कर स्तब्ध रह जाते हैं। दुर्योधन उन्हें धैर्य-धारण करने को कहता है, पर वह व्यक्ति जिसका सब कुछ नष्ट हो गया हो, कैसे धैर्य-धारण कर सकता है ?

—"पुत्र कथमविक्लवो भविष्यामि।"[३]
यस्य वीर्यबलोत्सिक्तमंयुगाध्वरदीक्षितम्।

---

१. ऊरुभंगम्, चौखम्बा संस्करण, १।४३
२. वही, पृ० ४०
३. वही, पृ० ४२

पूर्वं भ्रातृशतं नष्टं त्वय्येकस्मिन्हतेऽहतम् ॥[१]

पुत्र ! मैं अपने शोक को कैसे दूर करूँ ?

वीर्य तथा पराक्रम से उद्धत और संग्राम रूपी यज्ञ में दीक्षित जिसके सौ भाई पहले मृत्यु के मुख में डाल दिये गये हैं, किन्तु इस समय एक तुम्हारी ही मृत्यु से मेरा सब कुछ खो गया है।

धृतराष्ट्र दुःख और शोक के वेग को सहन नहीं कर पाते और वे गिर पड़ते हैं।

दुर्योधन पिता को समझाने का प्रयास करता है, पर सब व्यर्थ जाता है। पुत्रों के तीव्र शोक ने उन्हें अत्यन्त निर्बल बना दिया है। उनकी विचारधारा में करुणा का मूर्त्त रूप प्राप्त होता है—

'मैं वृद्ध हो गया हूँ, जिसमें जीवन की लालसा से हाथ धो बैठा हूँ और प्रकृति ने जिसे जन्म से अन्धा बना रखा है, किन्तु अपने पुत्रों के प्रति तीव्र शोक हृदय में उत्पन्न हो गया है, जो मेरी वीरता को विनष्ट कर के चारों ओर से आक्रमण कर रहा है।'[२]

धृतराष्ट्र के दुःख के आवेग को अनुभव कर बलदेव कहते हैं—कितने दुःख की बात है। दुर्योधन के जीवन से निराश और जन्म से अन्धे पूज्य धृतराष्ट्र को मैं सान्त्वना भी नहीं दे पाता हूँ।

इस सन्दर्भ में करुण रस की अवतारणा है और इसकी चरम परिणति दुर्योधन की मृत्यु के समय होती है।

करुण रस के अतिरिक्त वीभत्स, रौद्र, वीर और भयंकर रसों की भी स्वाभाविक रूप में व्यञ्जना हुई है। युद्ध-स्थल के चित्रण में वीर रस का सहायक वीभत्स रस आया है।

उपलविषमा नागेन्द्राणां शरीरधराधरा
दिशि दिशि कृता गृध्रावासा हतातिरथा रथाः।
अवनिपतयः स्वर्गं प्राप्ताः क्रियामरणे रणे
प्रतिमुखमिमे तत्तत्कृत्वा चिरं निहताहताः ॥[३]

---

१. ऊरुभङ्गम्, चौखम्बा संस्करण, १।४६

२. वही, १।४८

३. वही, १।५

मदोन्मत्त हाथियो के मृत देह ऊबड़-खाबड़ पत्थर वाले पर्वतो के समान लग रहे हैं। हर एक दिशा मे गिद्धो ने अपना आवास बना लिया है। रथ खाली पड़े हुए हैं, क्योकि महारथी योद्धा मार डाले गये हैं। राजा लोग स्वर्ग लोक मे चले गये और ये वीर योद्धा एक-दूसरे के साथ चिरकाल तक शस्त्रो का वार करते हुए स्वय चोट खा कर काल के गाल मे चले गये हैं।

पक्षिसमूह अपनी मांस से भीगी हुई चोच द्वारा राजाओ के शरीर से अलकारो को खींच रहा है, जो एक-दूसरे के बाणों के प्रहार से मृत्यु के घाट उतार दिये गये हैं। और जिनकी लाशें इस रण-क्षेत्र के प्रागण मे पड़ी हुई हैं।[१]

रण-स्थल की बीभत्सता का चित्रण होने से बीभत्स रस है। नाटककार ने आगे वाले पद्यो मे भी रण भूमि की बीभत्सता का सजीव चित्रण किया है। वह कहता है—'कही रथ से मृत रथी को शृगालियाँ खीच रही हैं। यह भूमि मृत हाथी, घोड़े और मनुष्यो के रुधिर से भरी पड़ी है। कवच, ढाल, छत्र, चामर, माला, बाण, कुन्त और मनुष्यो के धड से यह भूमि भर गयी है और उसके ऊपर शक्ति, प्रास्त, परशु, भिण्डिपाल, शूल, मुसल, मुग्दर, वराहकर्ण, कणप, कर्पण, शकु और भयकर गदा आदि बिखरे हुए हैं।[२]

'मृत हाथियो के शरीर रूपी पुल के द्वारा खून की नदियां पार की जा रही हैं, सारथी और राजा से रहित रथ को घोड़े खीच रहे हैं, शिर के बिना कबन्ध अपने पुराने अभ्यास के कारण दौड़ रहे हैं, महावतो के बिना मदमाते हाथी भी इधर-उधर भटक रहे हैं।'[३]

'ये महुए की कलियो की तरह बड़ी और पीली आंखो वाले, दैत्यराज बलि के हाथी के मुड़े हुए अंकुश की भांति तीखे चोच वाले, फैले हुए, लम्बे और डोलते हुए पख वाले गिद्ध आकाश मे मांस के टुकड़े ले कर उड़ते हुए ऐसे लग रहे हैं, जैसे प्रवाल के बने ताड़ के पखे हो।'[४]

'मृत अश्व, गज, नृपति और वीर योद्धाओ से भरी हुई एव सूर्य की प्रखर किरणो से स्पष्ट दिखलायी पड़ने वाली यह युद्ध-भूमि, जहाँ पर नाराच,

---

१ ऊरुभंगम्, चौखम्बा सस्करण, १।७
२ वही, पृ० १०
३. वही, १।१०
४. वही, १।११

कुन्त, शर, तोमर और खड्ग बिखरे पड़े हैं, ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो यह आकाश से गिरते हुए ताराओं के समूह को धारण कर रही है।'

उपर्युक्त सन्दर्भों में वीभत्स रस की योजना की है। यहां जुगुप्सा स्थायी भाव है और आलम्बन रुधिर, मांस एवं दुर्गन्धित वस्तुएँ हैं। उद्दीपन रूप में युद्ध-भूमि का वीभत्स दृश्य है, मुंह फेरना, नाक सिकोड़ना, कम्प आदि अनुभाव हैं तथा भय, आवेग, ह्रास आदि संचारी हैं। नाटककार ने युद्धस्थली की वीभत्सता का सजीव चित्रण किया है। दृश्य आँखों के समक्ष साकार हो जाता है।

भीम और दुर्योधन के गदा युद्ध के वर्णन में रौद्र रस की व्यञ्जना हुई है। इन दोनों योद्धाओं के परस्पर गदा-आघात से उत्पन्न शब्द दिशाओं में व्याप्त हो रहा है।

'रमणीय सुवर्ण की शिला की भाँति विशाल भीम के वक्षस्थल के ऊपर प्रहार होने से इन्द्र के ऐरावत हाथी के सूंड के समान कठोर दुर्योधन के कन्धे पर आघात करने के कारण और एक-दूसरे की भुजाओं के बीच गदा के प्रहार से उत्पन्न शब्द दिशाओं में व्याप्त हो रहा है।'[१]

'यह महाराज दुर्योधन, जिनका मुकुट सिर के काँपने से डोल रहा है, जिनकी आँखों में क्रोध भरी अग्नि की ज्वाला है, इस प्रकार के रक्त मुख-मण्डल से युक्त हैं। यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर छलांग भरते हुए अपने शरीर को समेट लेते हैं। प्रतिक्षण अपने हाथ को ऊँचा कर शत्रु के खून से लथपथ दाहिने हाथ में गदा लिये हुए कैलास पर्वत के अग्रभाग से रचित इन्द्र के प्रज्वलित वज्र की भाँति इनकी भुजाएँ शोभित हो रही हैं।'[२]

इस स्थल में क्रुद्ध दुर्योधन का चित्रण होने से रौद्र रस है। उन्नीसवें पद्य में भी क्रुद्ध दुर्योधन की आकृति का चित्रण किया गया है, जिसमें उसके लाल नेत्र, क्रोध के कारण फड़कते ओष्ठ एवं काँपते हुए शरीर का चित्रण हुआ है। दुर्योधन की यह आकृति स्वयं ही रौद्र रूप है। अतएव इस सन्दर्भ में क्रोध स्थायी भाव की समयक् व्यञ्जना हुई है।

युद्ध के नियमों के विरुद्ध जांघ पर प्रहार करने के कारण बलराम जी

---

१. ऊरुभंगम्, चौखम्बा संस्करण, १।१६
२. वही, १।१७

अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं, उनके आरक्त नेत्रों के कारण आकृति भयभीत प्रतीत होती है। वे दुर्योधन के साथ हुए अन्याय का प्रतिकार करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। इस सन्दर्भ के उनके वचनों से रौद्र रस की अभिव्यञ्जना होती है। वे कहते हैं—

'शत्रुओं की सैन्यशक्ति का विनाश करने वाले काल रूप मेरी हलकी अवहेलना कर के और युद्ध में तटस्थ रहने वाले मेरी कुछ भी परवाह न कर अभिमान के कारण भीम ने लड़ाई में दुर्योधन की जांघ पर गदा का प्रहार कर के कुल की विनय-समृद्धि के साथ ही दुर्योधन को धूल में मिला दिया।'[1]

'दुर्योधन! क्षण भर के लिए प्राणों को सम्भाल रखो—

सौभ नगर के द्वार को छिन्न-भिन्न करने वाले, महासुर के नगर की चहारदिवारी को अंकुश की भांति विदीर्ण करने वाले, यमुना जी के जल की धारा को मोड़ने वाले, शत्रुओं के प्राणों के उपहार से सम्मानित हल को भीम की रक्त तथा पसीने से पंकिल विशाल छाती पर प्रहार कर आज क्यारियाँ बना कर व्यग्र कर डालूंगा।'[2]

बलदेव जी के क्रोध को शान्त करने के लिए दुर्योधन उनको समझाता है तथा अपनी यथार्थ परिस्थिति का परिज्ञान कराता है। इस पर भी वे अपना निश्चय नहीं बदलना चाहते हैं और सर्वथा अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हैं। अतएव इस स्थल में रौद्र रस का सफल परिपाक हुआ है। नाटककार ने क्रोध स्थायी भाव की पुष्टि पूर्णतया की है।

वीर रस की अभिव्यञ्जना भी इस रूपक के कई स्थलों में हुई है। युद्ध भूमि में योद्धा इतस्ततः परिभ्रमण करते हुए अपनी दर्पोक्तियों का प्रयोग करते हैं, इन दर्पोक्तियों से वीर रस व्यञ्जित होता है।

भट अर्जुन की वीरता का कथन करता हुआ कहता है—

'अर्जुन एकमात्र ऐसा वीर है, जो आज खाण्डव वन के धुएँ से मटमैली डोरी वाले, संशप्तकों का विनाश करने वाले, स्वर्ग के देवताओं की व्यथा को शान्त करने वाले निवात कवच नामक राक्षसों के प्राणों का हरण करने वाले, गाण्डीव धनुष को हाथ में ले कर अस्त्रबल द्वारा किरात-वेषधारी भगवान्

---

१ ऊरुभंगम्, चौखम्बा संस्करण, १।२७

२. वही, १।२८

शंकर के साथ हुए युद्ध से अवशिष्ट वाणों द्वारा गर्व और मद से भरे हुए राजाओं को इस युद्ध में सौंप रहा है।'[१]

भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध को देख उससे उत्साहित हो कर हलधर अपने हल को घुमाने लगते हैं—

शिष्य प्रीततया हलं भ्रमयते रामो रणप्रेक्षकः।[२]

रूपक के बाइसवें पद्य और इक्यावनवें पद्य में दुर्योधन की वीरता का वर्णन वीर रस का संचार करता है। अश्वत्थामा के पराक्रम का वर्णन भी वीर रस के अन्तर्गत है। वह कहता है—

छलबलदलितोरुः कौरवेन्द्रो न चाहं
शिथिलविफलशस्त्रः सूतपुत्रो न चाहम्।
इह तु विजयभूमौ द्रष्टुमद्योद्यतास्त्रः
सरभसमहमेको द्रोणपुत्रः स्थितोऽस्मि॥[३]

जिसकी जांघ छल से तोड़ दी गयी है, ऐसा मैं दुर्योधन नहीं हूँ, शिथिल और निष्फल शस्त्रवाला मैं सूत्रपुत्र—कर्ण नहीं हूँ बल्कि इस विजय-भूमि पर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित मैं द्रोणपुत्र अश्वत्थामा हूँ, जो किसी लड़ाकू योद्धा की अहेर में आज अकेले खड़ा हूँ।

अश्वत्थामा की उक्त दर्पोक्ति से वीर रस की अभिव्यञ्जना होती है। उत्साह स्थायी भाव का प्रस्तुतीकरण बहुत ही उचित रूप में हुआ है।

इस रूपक में भयानक रस की व्यञ्जना एक ही स्थल पर आयी है। भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध के प्रारम्भ होने पर जो भयंकर आवाज होती है, उससे त्रास और भय व्याप्त हो जाता है। अतः इस स्थल पर भयानक रस है।

अभिषेक : रस विश्लेषण

इस रूपक का आरम्भ ही वीर रस से होता है। राम सुग्रीव को आश्वासन देते हुए अपने पराक्रम का वर्णन करते हैं। इस स्थल पर उत्साह स्थायी भाव की व्यञ्जना हुई है। नाटककार ने राम के मुँख से कहलाया है—

---

१. ऊरुभंगम्, चौखम्बा संकरण, १।१४
२. वही, १।२१
३. वही, १।५७

मत्सायकान्निहतभिन्नविकीर्णदेहं
शत्रुं तवाद्य सहसा भुवि पातयामि ।
राजन् ! भयं त्यज ममापि समीपवर्ती
दृष्टस्त्वया च समरे निहतः स वाली ॥[1]

अर्थात् अपने बाणो द्वारा तुम्हारे शत्रु वाली की देह को छिन्न-भिन्न कर के मैं अभी उसे धराशायी बना रहा हूँ। राजन् ! आप मेरे पास रहिये, भय करने की कोई बात नहीं है, अभी आप बाली को युद्ध मे मरा हुआ देखेंगे।

सुग्रीव और राम का यह वार्तालाप वीर रस से परिपूर्ण है। जब सुग्रीव बालि को युद्ध को के लिए ललकारता है, तो इस अवसर पर बालि की उक्तियाँ भी वीर रस-युक्त हैं। तारा बालि को युद्ध भूमि मे जाने से रोकती है। बालि अपनी वीरता का कथन करता हुआ कहता है—'पूर्वकाल मे अमृत मन्थन के समय मैं गया, देवदानव गणों का उपहास कर के मै वासुकी नाग स्वरूप रस्सी को खींचने लगा, जिससे वासुकी नाग की आँखें निकल आईं और उनका स्वरूप भयंकर हो गया। सभी मेरी इस वीरता पर आश्चर्य करने लगे।'[2]

'मैं अभी सुग्रीव की गरदन तोड़ता हूँ, उसके रक्षक चाहे इन्द्र हों अथवा भगवान विष्णु। आज वह मेरे सामने से जीवित नहीं लौट सकता है।[3]

इस प्रकार बालि की दर्पपूर्ण उक्तियों मे वीर रस व्यञ्जित होता है।

सीता-हरण के पश्चात रावण सीता को लंका ले जाता है और वहाँ अपने पराक्रम और प्रभुता का महत्व बतला कर उन्हे अपने प्रति अनुरक्त करना चाहता है। सीता उसके पराक्रम को तुच्छ समझती है, पर रावण अपने पराक्रम का वर्णन करना नहीं छोड़ता है। इस सन्दर्भ मे रावण की समस्त उक्तियाँ वीर रसपूर्ण हैं। वह कहता है—

'दिव्य अस्त्रों द्वारा देव दानव सैन्य को खदेड़ने वाले, तथा कुपित ऐरावत के वज्रोपम दन्तक्षत वक्ष स्थल मुझ रावण पर यह भोली सीता अनुराग नहीं कर के अभागे क्षत्रिय तपस्वी पर अनुराग रखती है, निश्चय ही यह विधन भाग्य करा रहा है।'[4]

---

१ अभिषेक, चौखम्बा संस्करण, १।४
२. वही, १।११
३. वही, १।१२

तृतीय अङ्क में शंकुकर्ण हनुमान की वीरता का वर्णन करता है और कहता है कि वानर अत्यन्त वीर है, उसने वाटिका को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। 'महाराज ! वानर बड़ा बलवान है, इसने कमल की तरह साल-वृक्षों को उखाड़ डाला है, दारु पर्वत मुष्टि प्रहार से तोड़ दिया है, लता-गृहों को हाथ से मसल दिया है, गर्जन से ही वन के रक्षकों को बेहोश कर दिया है।'

'वानर वृक्ष से प्रहार करता है, उसने हमारे ही वृक्षों से प्रहार कर के हमारी सेना को बड़ी शीघ्रता से मार डाला है।'[१]

'कुमार अक्ष ने बड़े वेग से रथ चला कर वाणों की भयंकर वर्षा की उस वानर ने कुमार के वाणों को काट कर सहसा उनके रथ पर धावा बोल दिया और कुमार का गला दबा दिया। पश्चात् उसने प्रसन्न मुख हो कर मुष्ठि प्रहार द्वारा कुमार को मार दिया। जो सेनापति उसके साथ गये थे, उन्हें भी उसने बड़ी चतुराई से स्वर्णमय परिघ के प्रहार द्वारा मार डाला।'[२]

इस सन्दर्भ में हनुमान को वीरता और युद्ध प्रवीणता का सजीव चित्रण किया गया है। युद्धवीर का सांगोपांग कथन आया है। इस स्थल पर हनुमान के साहसिक कार्यों का चित्रण आलम्बन के रूप में किया है। उनकी चेष्टाएँ, ललकार, युद्ध करने की प्रक्रिया उद्दीपन है। कुमार अक्ष की आँखों का लाल-लाल होना, उनके अंगों का संचालन, सेना को प्रेरित करना, वेगपूर्वक रथ का संचालन करना आदि अनुभव हैं। पूरे सन्दर्भ में युयुत्सा वृत्ति का उद्घाटन किया गया है। उग्रता, गर्व, धैर्य आदि सचारी भाव भी विद्यमान हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभावादि से परिपुष्ट हो कर उत्साह स्थायी भाव की व्यञ्जना होने से वीर रस का परिपाक हुआ है।

हनुमान ने राम के सन्देश में उनकी वीरता और पराक्रमशीलता का निरूपण कर युद्धवीर के रूप में राम को उपस्थित किया है। इस स्थल पर भी वीर रस की छाया प्राप्त होती है। हनुमान राम के पराक्रम का वर्णन करते हैं और रावण स्वयं अपनी आत्मश्लाघा करता हुआ अपनी महत्ता बतलाता है।

राम-रावण के युद्ध प्रसंग में वीर-रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। समस्त षष्ठ अङ्क में वीर-रस है। राक्षस-सेना और वानर-सेना के युद्ध प्रसंग में

---

१. अभिषेक, तृतीय अङ्क, पृ० ४८

२. वही, ३।७

भी वीरता साकार हो गयी है। दोनो ओर से योद्धाओ के कार्य-कलाप, खड्गों की झकार, अस्त्र-शस्त्रों की चमक अपनी आभा से वीरता का अवतार कर रही है। राम-रावण के भयकर युद्ध का वर्णन करते हुए बताया है—

'पुरुषोत्तम राम एव रावण के इस युद्ध मे एक का बाण दूसरे के बाण का सहार कर रहा है। इस भयकर युद्ध को देख कर वानर सैन्य तथा राक्षस-गण नाना प्रकार के अस्त्र प्रहार से विरत हो कर केवल देखते हुए खडे हैं।'[१]

'अहा! ये दोनो क्रमश. घूमते हुए रथो पर अवस्थित हैं, बाण वर्षा कर रहे हैं, अपनी प्रभा से पृथ्वी को दग्ध कर रहे हैं, मानो आकाश में घूमते हुए दो सूर्य हों।'[२]

'आप रावण को भी देखें, जो भीम वेग-बाणो द्वारा अश्वो का सहार करता हुआ बलपूर्वक ध्वजा का नाश कर बाणो की वर्षा से हँसते हुए राम को मायान्वित करने का प्रयास कर रहा।'[३]

'स्थान पकड़ कर शरीर को वामन बना कर थोडा स्थिर हो रक्तनयन हो कर बाण की ओर देख कर मध्याह्नसूर्य सदृश मातलि द्वारा स्थान के दिये जाने पर क्रुद्ध हो कर राम ने पितामह सम्बन्धी भीषण शर को धनुष पर आरोपित किया है।'[४]

'राम के भुजवेग से प्रेरित हो कर अग्नि-सूर्ययुक्त तीक्ष्णधार अस्त्र-युद्ध मे रावण को मार कर पुनः शीघ्रतापूर्वक राम के पास आ रहा है।'[५]

'हाय रावण गिर पडा'[६]

'रावण को गिरते देख कर ऊपर से पुष्पवृष्टि हो रही है और स्वर्ग मे गम्भीर भाव से देवाद्य बज रहे हैं।'[७]

उपर्युक्त सन्दर्भ मे उत्साह स्थायी भाव है। यह उत्साह युद्ध के लिए है, अत. युद्ध वीर रस है। राम के लिए रावण और रावण के लिए राम शत्रु होने से दोनो ही आलम्बन है। अस्त्र-शस्त्रो का प्रहार, रथो का तेजी से घूमना

---

१. अभिषेक ६।१३

२. वही, ६।१४

३. वही, ६।१५

४. वही, ६।१६

५. वही, ६।१७

६ वही, ६ पृ० ११२

७. वही, ६।१८

और युद्ध-भूमि में आगे बढ़ना उद्दीपन है। उत्साह का आश्रय राम है। मुख पर लालिमा और शस्त्र उठाने के लिए भुजाओं का फड़क उठना अनुभाव है। क्रोध, रोमाञ्च, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

वीर-रस सहायक के रूप मे रौद्र-रस और भयानक-रस भी आये हैं। प्रथम अङ्क में वाली की क्रोधाभिभूत मुद्रा का चित्रण आया है। इससे बाली के रौद्र रूप का आभास होता है। राम कहते हैं—

'यह वाली ओठ चबा रहा है, इसकी आँखें लाल तथा भयंकर हैं, मुक्का बांध कर आँख निकाल रहा है, भयंकर शब्द कर के गरजता हुआ यह वाली युद्ध में ऐसा लगता है, मानों संसार को दग्ध करने की इच्छा रखने वाला प्रलयाग्नि ही हो।'[१]

लक्ष्मण भी वाली के रौद्र रूप का चित्रण करते हुए कहते हैं—

रुधिरकलितगात्रः स्रस्तसंरक्तनेत्रः
कठिनविपुलबाहुः काललोकं विविक्षुः ॥[२]

इस प्रकार क्रोध स्थायी भाव की अभिव्यक्ति होने से उक्त सन्दर्भों में रौद्र रस है।

समुद्र की भयंकरता का चित्रण करते हुए नाटककार ने चारों ओर भय और आतंक का वातावरण उपस्थित किया है। राम समुद्र की ओर संकेत करते हुए कहते हैं—

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥[३]

करुणा रस की उद्भावना वालि की मृत्यु के उपरान्त सुग्रीव की विह्वलता और अंगद के विलाप में हुई है। अंगद विलाप करता हुआ कहता है—

'आप अत्यन्त बलपूर्वक आराम से सोने वाले हरीश्वर थे, इस समय आपके

---

१. अभिषेक, १।१३
२. वही, १।१६
३. वही, ४।१७

अगो में चेष्टा नही रह गयी है, आप पृथ्वी पर पड़े हुए हैं, क्या आप अपनी इस बाणविद्ध देह को छोड़ कर स्वर्ग जाना चाहते हैं ?'[1]

अंगद का यह विषाद करुणा से आप्लावित है, अत: इस स्थल मे करुणा रस है।

करुण रस का पूर्णपरिपाक पञ्चम अङ्क में इन्द्रजित की मृत्यु के उपरान्त रावण की विपन्नावस्था के चित्रण में हुआ है। रावण अपने इस पराक्रमी पुत्र की मृत्यु से विचलित हो जाता है और कहता है—

देवा• सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।
इन्द्रजिन् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥[2]

रावण—'हा वत्स ! मेघनाद, कह कर मूच्छित हो जाता है। राक्षस उसे धैर्य देते हैं, पर उसका शोक बाँध टूट जाता है। वह विलाप करता हुआ इन्द्रजीत के गुणो का स्मरण करता है। रावण के इस विलाप मे करुण रस की अभिव्यञ्जना हुई है। वह मेघनाद का स्मरण करता हुआ कहता है—

'हा बेटा ! हा जगत्सन्तापकर, हा शस्त्रविद्याज्ञाता, हा वत्स, हा इन्द्रजित, हा, शत्रुसंहारक, हा वीर, हा गुरुवत्सल, हा युद्धशूर, हाय बेटा ! तुम मुझे छोड़ कर कहाँ गये ?'[3]

इस प्रकार त्रैलोक्य विजयी रावण अपने भाग्य को दोष देता है और परिस्थिति से आहत हो कर पुन मूच्छित हो जाता है।

अभिषेक नाटक मे अद्भुत रस को अवतारणा भी प्राप्त होती है। समुद्र आश्चर्य रूप में दो भागो मे विभक्त हो कर स्थल मार्ग दे देता है। इस स्थल पर वरुणदेव का उपस्थित होना और विचित्र रूप मे मार्ग देना हमारे विस्मय को जागृत कर देता है। आँखें फाड़ कर हम समुद्र की इस विचित्रता को देखते रह जाते हैं। बताया है—

'साम्प्रत द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधि. ।'

राम द्वारा सीता की अग्नि-परीक्षा और अग्नि-शुद्धि शान्त रस के अन्तर्गत है। अग्निदेव का निम्नलिखित कथन शान्त रस का उदाहरण है—

---

१ अभिषेक, ११२५
२. वही, ५।१२
३, वही, ५।१३

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वं लोकनमस्कृताम् ।
अपापामक्षतां शुद्धां जानकीं पुरुषोत्तम ! ॥[1]

× × ×

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषी तनुमास्थिता ॥[2]

राम—अनुगृहीतोऽस्मि—

जानतापि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन !
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥[3]

अतएव स्पष्ट है कि अभिषेक नाटक वीर-रस प्रधान है। नाटक के आरम्भ में ही परस्परोपकृतभावना को दर्शा कर सुग्रीव और राम की मित्रता बतलायी गयी है। अतः इस सन्दर्भ में वालि-वध, हनुमान के लंका में शौर्य-कार्यों का उल्लेख, राम-रावण का युद्ध और राम की विजय वीर-रस के अन्तर्गत है। लंका में सीता की करुणरसाप्लावित कथा, इन्द्रजित की मृत्यु के पश्चात रावण का विलाप एवं बाली की मृत्यु के अनन्तर अंगद का विलाप करुण रस के अभिव्यञ्जक हैं। भयानक, अद्भुत, रौद्र एवं शान्त रसों के उदाहरण भी आये हैं।

प्रतिमा नाटक : रस-विश्लेषण

करुण रस के मनोज्ञ चित्रण होने पर भी यह वीर रस प्रधान है। नाटक के प्रारम्भ में राज्याभिषेक के समय वल्कल वस्त्र धारण करने का प्रसंग आता है। इस प्रसंग में हास्य रस की अभिव्यञ्जना हुई है। अवदातिका रेवा से वल्कल ले आती है और सीता उसे हँसी-हँसी में धारण कर लेती हैं। सीता पूछती है—

'हला किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते।'[4]

---

१. अभिषेक, ६।२७
२. वही, ६।२८
३. वही, ६।२९
४. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा संस्करण, प्रथम अङ्क, पृ० १२

अवदातिका—'भट्टिनि ! सर्वंशोभनीय सुरूप नाम । अलकारोतु भट्टिनी ।'[1]

सीता वल्कल पहन लेती हैं और अवदातिका उनकी सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है—

'तव खलु शोभते नाम । सौवर्णिकमिव वल्कल सवृत्तम् ।'[2]

सीता द्वारा धारण किये गये वल्कलो को देख कर राम भी हास्य वातावरण में वल्कलो को धारण कर लेते हैं ।

इस प्रकार विनोद प्रसग में वल्कलो के धारण करने से हास्य रस की अवतारणा घटित होती है ।

करुण रस के वातावरण मे नाटक का प्रारम्भ होता है । द्वितीय अङ्क मे पुत्र-विरह के शोक से दग्ध महाराज दशरथ पागलो के समान प्रलाप कर समुद्र-गृह में लेटे हुए हैं—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोष व्रजन्निव महोदधिरप्रमेय ।
सूर्य पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्य
शोकाद् भृशशिथिलदेहमतिर्नरेन्द्र ॥[3]

राम विरह मे दु खी केवल मनुष्य ही नहीं है, अपितु पशु पक्षी भी शोक विह्वल हैं । कचुकी अयोध्या की करुणापूर्ण दशा का चित्रण करता हुआ कहता है कि गजराजो ने चारा खाना बन्द कर दिया, है, साश्रुनयन घोड़ो ने हिनहिनाना बन्द कर दिया है, नगरवासी वृद्ध, स्त्रियाँ, बच्चे, युवक सभी ने भोजन की बात भुला दी है और जोर से रोने से उनका चेहरा उतर गया है । राम, सीता और लक्ष्मण जिधर गये हैं, सबकी आँखें एक टक उसी ओर लगी हैं । शोक कारण महाराज दशरथ की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी है ।

'पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन्मुहुः ।
दिश पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥'[4]

---

१. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा सस्करण, प्रथम अङ्क, १२
२. वही, १३
३. वही, २।१
४. वही, २।३

इस सन्दर्भ में दशरथ का विलाप करुण रस का मूर्तिमान रूप है। दशरथ विलाप करते हुए कहते हैं—

'ओह ! यह कैसा आश्चर्य है कि लक्ष्मण ने भ्रातृ-स्नेह के आगे पितृ-स्नेह को तिलाञ्जलि दे दी, फिर भी उसे देखने के लिए मेरा हृदय लालायित हो रहा है। हे सीते ! राम ने तुझे तज दिया, लक्ष्मण ने भी तिरष्कृत कर दिया, संसार में मैं अयशोभागी बना, तो क्या तुमने भी मेरा त्याग कर दिया ?'[1]

'बेटा राम ! वत्स लक्ष्मण, वहू वैदेहि, मेरे प्यारे पुत्रों, वचनों का उत्तर तो दो। अरे, यहाँ तो सुनसान है, मेरे वचनों का कोई उत्तर नहीं देता। कौसल्यानन्दन तुम कहाँ हो ?' [2]

'हे सत्य प्रतिज्ञ, हे जितक्रोध, हे मात्सर्यशून्य, हे जगत्प्रिय हे गुरुभक्त मुझे प्रतिवचन दे कर सन्तुष्ट करो।'[3]

हाय, कहाँ है वह सर्वप्रिय राम ? जो सबकी आँखों का सितारा था, कहाँ है वह मुझमें भक्ति ? कहाँ है वह शोक-पीड़ितों पर दया दिखलाने वाला ? कहाँ है वह राज्याधिकार को तिनका समझने वाला ? बेटा राम, मुझ वृद्ध पिता को छोड़ कर इस धर्मनिष्ठा को तुमने क्यों अपनाया ? हा धिक् ! कैसा करुण दुःख है ?'[4]

'सूर्य की भाँति राम चला गया, सूर्य के पीछे दिन की तरह लक्ष्मण भी चला गया। सूर्य और दिन के चले जाने पर छाया के समान सीता भी नहीं दीख पड़ती।'[5]

इस प्रकार महाराज दशरथ का यह विलाप करुण रस के अन्तर्गत है। शोक स्थायी भाव की अभिव्यञ्जना पूर्णतया हो रही है। पद्य में तो करुण रस की पराकाष्ठा दिखलायी पड़ती है। महाराज दशरथ के शोक विह्वल हृदय की यथार्थ स्थिति लक्षित हो रही है—

अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा ।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥[6]

---

१. प्रतिमा नाटक, २।४
२. वही, २।५
३. वही, २।६
४. वही, पृ० ५१
५. वही, २।७
६. वही, २।१८

तृतीय अङ्क मे भरत की शोकापन्न अवस्था का चित्रण आया है। भरत दशरथ की प्रतिमा देख कर मूच्छित हो जाते हैं और चेतना के वापस लौटने पर कहते हैं—

'हृदय, अब तुम्हारी कामना पूर्ण हुई, जिसकी तुम्हे आशंका थी, वह पितृमरण का वृत्तान्त सुनो और धीरज बाँधो। किन्तु हाय ! यदि स्त्री-शुल्क मे याचित राज्य का उद्देश्य मैं बनाया गया हूं, तो तब देह की शुद्धि करनी होगी अर्थात कड़ी परीक्षा दे कर अपना निर्दोषत्व सिद्ध करना पड़ेगा।'[१]

भरत अपने हृदय के शोकोच्छ्वास को व्यक्त करते हुए पुन. कहते हैं—

अयोध्यामटवीभूता पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥[२]

हाय पिता और आर्य राम से शून्य इस वन के समान अयोध्या मे जा रहा हूं, जिस प्रकार कोई प्यासा व्यक्ति सूखी नदी की ओर दौड़ता जा रहा हो।

भरत विलाप करते हुए मूच्छित हो जाते हैं। इसी समय वहाँ माताएँ आती हैं और वे भरत की मूर्च्छा को दूर कर उन्हें होश मे लाती है। भरत माता कैकेयी को उपालम्भ देते हुए कहते हैं—

'मुझे अपयश की गठरी से कलंकित कर दिया, आर्य राम को वल्कल-धारी बना दिया, महाराज को मरने के लिए बाधित किया, सारी अयोध्या को रुलाया, लक्ष्मण को मृगसहवासी बना दिया, पुत्र प्रणयिनी माताओ को शोक-सागर में डुबो दिया, पुत्र-वधू सीता को जगलो मे भटकने और यातना भोगने के लिए भेज दिया और अपने को भी धिक्कार का पात्र बनाया।'[३]

भरत के उपर्युक्त विलाप मे शोक समाहित रहने के कारण करुण रस है। वास्तव मे नाटककार ने भरत को करुणा की प्रतिमा ही निरूपित किया है।

वीर-रस का समावेश भी इस नाटक मे हुआ है। इसमे राम-रावण के युद्ध का वर्णन नहीं आया है। तापस द्वारा वर्णन प्रसग उपस्थित कर वीर रस का सचार किया है।

---

१. प्रतिमा नाटक, ३।९
२. वही, ३।१०
३. वही, ३।१७

प्रथम अङ्क में लक्ष्मण के कथन में वीर-रस अभिव्यक्त हुआ है। लक्ष्मण कैकेयी द्वारा भरत का राज्याभिषेक और राम का वनवास स्त्री-शुल्क के रूप में माँगे जाने पर दशरथ के मूर्च्छित होने पर कहते हैं कि यदि राजा की मूर्च्छित अवस्था असह्य है तो धनुष धारण कीजिये, दया का समय नहीं है। वे राम को ललकारते हैं और अस्त्र ग्रहण करने को कहते हैं—

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते।
अथ न रुचितं मुंच त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥[1]

अर्थात् महाराज की मूर्छित अवस्था सह्य न हो तो धनुष सम्भालो। यह दया का अवसर नहीं है। स्वजन के लिए शान्तिप्रवीण जनों का इसी भाँति अनादर हुआ करता है। यदि स्वजनों के ऊपर धनुष उठाने का आपका विचार न हो तो मुझे छोड़ दें। एक युवती स्वामी को मुट्ठी में करके हम सभी को छल से परास्त कर दे, अतः मैंने सम्पूर्ण विश्व को युवती-शून्य कर देने का निश्चय कर लिया है।

राम के द्वारा समझाये जाने पर भी लक्ष्मण का क्रोध शान्त नहीं होता और उनके मुख से वीरतासूचक वाक्य निकल पड़ते हैं—

क्रम प्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ॥[2]

यहाँ 'किं क्षमा निर्मनस्विता' पद विचारणीय है। लक्ष्मण के इस कथन में कि आत्मगौरवहीन व्यक्ति की क्षमा व्यर्थ है, वीर रस की सफल अभिव्यञ्जना प्रकट करती है।

जटायु द्वारा किये गये युद्ध-प्रसंग में भी वीर रस की झलक प्राप्त होती है। जटायु ने रावण के साथ वीरतापूर्वक युद्ध किया और अपने पंखों से उसके ऊपर प्रहार कर उसे क्षतविक्षत कर दिया। उसने अपने तीक्ष्ण चंचुयुगल

---

१. प्रतिमा नाटक, १।१८

से उसे काट लिया तथा विस्तृत घाव इस प्रकार उत्पन्न कर दिये जैसे वज्राग्र द्वारा कठोर शिला फोड दी जाती है।[1]

इस प्रकार इस नाटक मे वीर रस प्रधान रहने पर भी करुण रस की सफल अभिव्यञ्जना हुई है। राम के द्वारा मायामृग का अनुसरण करने के पश्चात जब रावण अपने विकराल राक्षसी रूप को सीता के समक्ष प्रस्तुत करता है, उस समय भयानक रस की अभिव्यञ्जना हुई है। प्रतिमा नाटक का यह दृश्य अत्यन्त मार्मिक है और भय का सचार करने मे पूर्ण सशक्त है।

बालचरित : रस-विश्लेषण

यह वीर रस प्रधान है। इसमे अद्भुत, हास्य और भयानक रसो का भी समावेश हुआ है। नाटक के प्रथम अङ्क मे ही अद्भुत रस का प्रारम्भ होता है। कृष्ण के जन्म होने के पश्चात देवकी उन्हें वसुदेव को समर्पित कर देती हैं। वसुदेव कृष्ण को ले कर मथुरा से बाहर जाने लगते हैं। नगर का दरवाजा स्वय खुल जाता है और मथुरा के सभी लोग सो जाते हैं। मध्यरात्रि का घना अंधकार सर्वत्र व्याप्त हो रहा है पर बालकृष्ण के प्रभाव से दीपको का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। वसुदेव यमुना के तट पर पहुंचते हैं। बरसात के कारण यमुना का जल उत्ताल तरगें ले रहा है। वसुदेव यमुना पार करने के लिए चिन्तित होते हैं पर कृष्ण के चरण स्पर्श कर यमुना का जल दो भागो मे विभक्त हो जाता है और वसुदेव को स्थल मार्ग प्राप्त हो जाता है।

इस पूरे सन्दर्भ मे बालक कृष्ण के कारण आश्चर्य युक्त घटनाएँ हो रही हैं और विस्मय स्थायी भाव की पुष्टि हो रही है। अतएव यहाँ अद्भुत रस है। नाटककार ने स्वय लिखा है—

इद नगरद्वारम्। यावत् प्रविशामि। अये प्रसुप्तो मथुराया सर्वोजनः।[2]

× × ×

नाहं गन्तु समर्था अये दीपिकालोक किन्तु खलु दुरात्मा कसो ममापक्रमणं ज्ञात्वा दीपिकाभि परिवृतो मा ग्रहीतुमागतो भवेत्। भवत्वहमस्य दर्पशमनं करोमि।[3]

× × ×

---

१. प्रतिमा नाटक, ६।३

२. बालचरित, प्रथम अङ्क, पृ० ११

एष मार्गः। यावदपक्रमामि। अये इयं भगवती यमुना कालवर्षसम्पूर्णा स्थिता। अहो व्यर्थो मे परिश्रमः। किमिदानीं करिष्यते। हन्त द्विधा छिन्नं जलम्, इतः स्थितम्, इतः प्रधावति। दत्तो में भगवत्या मार्गः।[1]

अद्भुत रस की धारा इस अङ्क के अन्त तक प्रवाहित होती है। नन्दगोप का अकस्मात् मिलना और उनके घर कन्या का जन्म होना तथा इसकी जानकारी यशोदा को न रहना आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जिनमें विस्मय का समावेश हुआ है।

नन्दगोप मृतकन्या के स्पर्श के कारण अपने को अपवित्र समझता है और यमुना जल में स्नान करने की इच्छा व्यक्त करता है। वसुदेव उसे समझाते हुए कहते है कि आभीर ग्राम में रहने से आप स्वयं ही पवित्र हैं। इस पर नन्दगोप पुनः कहता कहता है—'तो मैं अपनी बस्ती के योग्य मिट्टी से ही अपने को पवित्र कर लूं।' वसुदेव उत्तर देते हैं—इसमें क्या दोष, पवित्र हो जाइये।[2]

नन्दगोप—जैसी आपकी आज्ञा। आश्चर्य है स्वामी, आश्चर्य है। धूल खोजते ही पृथ्वी को फोड़ कर पानी की मोटी धारा प्रवाहित होने लगी।[2] इस सन्दर्भ में अनायास जल की धारा फूट पड़ने से अद्भुत रस का समावेश हुआ है। इसी प्रकार गरुड़, चक्र, शारंग, कौमोदकी, शंख, नन्दक आदि अस्त्रों का का उपस्थित होना और स्वीकार करने के लिए बालकृष्ण से निवेदन करना भी आश्चर्य की सीमा के अन्तर्गत है।

नन्दगोप ने वसुदेव को अपनी मृत-पुत्री अर्पित कर दर दी और स्वयं कृष्ण को ले कर वे आभीर ग्राम चले आये। सहसा वसुदेव रुदन की आवाज सुनते हैं। वे आश्चर्यचकित हो कर चारों ओर देखते हैं और जब यह ज्ञात होता है कि मृत बच्ची में पुनः प्राण-संचारण हो गया है। इस स्थल पर अद्भुत रस का समावेश किया है। कंस जब शिलापट्ट पर उस कन्या को पटकता है और उस कन्या के दो भाग हो कर एक भूमि पर पड़ता है और दूसरा भाग आकाश में व्याप्त हो जाता है। आकाश वाले भाग का नाम कात्यायनी देवी होता है। और यह कंस का संहार करने के लिए कालिका के समान उपस्थित होती है।

---

१. बालचरित्र, पृ० १४
२. वही, पृ० २१

तृतीय अङ्क मे भी अद्भुत-रस आया है। वृद्ध गोपालक बाल-कृष्ण के आश्चर्यचकित करने वाले कार्यों का निर्देश करते है। कुमार जब दस दिन का ही था तो विष से पूर्ण स्तनो वाली पूतना नामक राक्षसी, यशोदा का वेश धारण कर आई। उसने कुमार को ले कर उसके मुख मे स्तन डाल दिया। कृष्ण ने उसे सोयी हुई जान कर पटक दिया और वह दानवी वही पर मर गयी। जब कृष्ण एक वर्ष के थे तो शकट नामक दानव, शकट का वेश धारण कर आया। कृष्ण ने उसे पाद-प्रहार से ही चूर कर दिया। एक महीने की अवस्था के पश्चात् ही कृष्ण किसी के घर जा कर दूध पीते, किसी के यहाँ दही खाते और किसी के यहाँ मक्खन खाते। वे गोप युवतियो को नाना प्रकार से तंग करते हैं। उनके इस कार्य से रुष्ट हो कर यशोदा ने रस्सी के एक छोर से उनकी कमर को बाँध कर शेष रस्सी को ओखली मे बाँध दिया। कृष्ण ओखली घसीटते हुए दौडे और उन्होंने उसे फेंक कर यमल और अर्जुन नामक राक्षसों का वध किया।

इस सन्दर्भ मे अद्भुत-रस का पूर्ण समावेश हुआ है। दस दिन, एक महीने या दो-चार महीने का बालक इस प्रकार के कौतुकपूर्ण कठोर कार्यों को जिस आश्चर्य के साथ सम्पादित करता है, वह आश्चर्य अद्भुत रस का सचार करने मे पूर्ण समर्थ है। नाटककार भास ने इस रूपक मे अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना वीरता, साहस और धैर्य के वातावरण मे की है।

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम अङ्को मे वीर रस का परिपाक हुआ है। द्वितीय अङ्क मे कस अपने पराक्रम का वर्णन करता हुआ कहता है—

> क्रोधेन नश्यति सदा मम शत्रुपक्ष.
>
> सूर्य शशी हुतवहश्चवशे स्थिता मे।
>
> योऽहं यमस्यच यमो भयदो भयस्य
>
> तमापवादवचनै. परिधर्षयन्ति ॥[1]

यहाँ युद्ध-वीर की अभिव्यक्ति हुई है।

तृतीय अङ्क में अरिष्ट वृषभ और दामोदर के वार्तालाप तथा युद्ध मे वीर रस की व्यञ्जना हुई है। दामोदर अरिष्ट वृषभ को तर्जित करते हुए कहते हैं—

'पर्वत के अधो भाग के समान कठिन दोनो कन्धो वाले ही मेरे भुज अस्त्र

---

१. बालचरितम्, चौखम्भा संस्करण, २।३

हैं, पर तुम जैसे दुर्बलों के लिए दूसरा शस्त्र है। यदि मेरी भुजा से चूर्णित हो कर तू शीघ्र ही भूमि पर नहीं गिरेगा तो मेरा नाम दामोदर नहीं।'[१]

'रे अरिष्ट वृषभ, वर्षाकाल में उमड़ते हुए बादलों के समान मेरी भुजाओं में पड़ा हुआ कैसा गर्जन करता है। आओ तुम्हें मैं पृथ्वी पर गिरा कर वज्र से आहत कज्जल पर्वत की भाँति खण्ड-खण्ड कर डालूं।'[२]

उपर्युक्त सन्दर्भ में वीर रस के विभाव, अनुभावादि की स्थिति भी है, इनसे परिपुष्ट हो कर उत्साह वीर रस की अभिव्यक्ति कर रहा है। बालकृष्ण की वीरता का सजीव चित्रण है।

चतुर्थ अङ्क में कालिय और श्रीकृष्ण की उक्ति-प्रत्युक्तियों में वीर रस का परिपाक हुआ है। कालिय नाग क्रोधाविष्ट हो कहता है—'जैसे लोकालोक पर्वतों ने सारे भुवनो को घेरे रखा है तथा जिस प्रकार समुद्र-मन्थन के समय समुद्र में शंकर के धनुष के प्रत्यञ्चाभूत शेषनाग ने मन्दराचल पर्वत को लपेट लिया था, उसी प्रकार से आज मैं महान ऐरावत की सूंड की भाँति कठिन अपने फण से तुम्हें लपेट कर क्षण-भर में ही यम के घर भेज दूंगा।'[३]

वृद्ध गोपालक दामोदर को समझाते हैं, कि आप कोमल शरीर हैं, अतः इसका सामना करने के लिए आपका जाना उचित नहीं। दामोदर कहते हैं—

'मछली और मकर विनाशित, यमुना नद के भीतर से बड़े गर्व से फुंकार और तेज उच्छ्वास छोड़ने वाले अपने चौड़े फण को फैलाने वाले दुष्ट कालिय नाग को मैं हठपूर्वक शीघ्र ही पृथ्वी पर निकाल फेकूंगा।'[४]

कालिय—अरे ?

सात पर्वतों से युक्त, चार समुद्रों तक फैली हुई इस सम्पूर्ण पृथ्वी को जला सकता हूँ तो फिर क्या तुम्हारी एक भुजा को नहीं जला सकता ?[५]

ठहर तो जरा, तुझे भस्म करता हूँ। विषाग्नि छोड़ता है—

दामोदर—'ओह, तुम्हारे पराक्रम को देख लिया, इसी पराक्रम पर तुमको इतना गर्व है ?'[६]

---

१. बालचरितम्, चौखम्बा संस्करण, ३।११
२. वही, ३।१४
३. वही, ४।७
४. बालचरितम्, ४।
५. वही, ४।१०
६. वही, पृ० ७९

पंचम अङ्क के आरम्भ में कंस कहता है—'वज्र में अतुल पराक्रमशाली एवं शौर्यवान दामोदर को बलराम के साथ आता हुआ सुन कर उन्हें धनुष के बहाने से यहाँ बुला कर मल्लशाला में पहलवानों को आदेश दे कर मैं कृष्ण को मरवा देता हूँ।'[१] कंस चाणूर को दामोदर से और मुष्टिक को बलराम से मल्लयुद्ध करने के हेतु तैयार करता है। चाणूर अपनी वीरता का वर्णन करता हुआ कहता है—

'यह मैं मदमस्त हाथी के समान गर्व से भरा हुआ युद्ध करने के लिए तैयार हूँ। आज मैं बालक दामोदर को मल्लशाला में चूर-चूर कर दूँगा।'[२]

मुष्टिक—

'लोहे की भाँति कठिन मुक्कों वाला अत्यन्त क्रुद्ध मैं मुष्टिक नामक योद्धा बलराम को वैसे ही गिरा दूँगा, जैसे महान् पर्वतों की चोटी को वज्र गिरा देता है।'[३]

दामोदर कहते हैं—

मर्त्येषु जन्म विफलं मम तानि घोरे
कर्माणि चाद्य नगरे धृतये न तावत्।
यावन्न कंसहतकं युधि पातयित्वा
जन्मान्तरासुरमहं परिकर्षयामि ॥[४]

बलराम कहते हैं—

प्रविश्य रङ्गं कृतलोहमुष्टिं च मुष्टिना मुष्टिकमद्य रुष्टम्।
हत्वा चरिष्याम्यनिलप्रचण्डः प्रलम्बमम्भोदमिवान्तरिक्षे ॥[५]

इस प्रसंग में वीर रस की सफल अवतारणा हुई है। चाणूर, मुष्टिक दामोदर और बलराम चारों में ही अपूर्व उत्साह दिखलायी पड़ रहा है। विभावादि भी स्थायी भाव को पुष्ट कर रहे हैं।

---

१. बालचरितम् ५।१
२. वही, ५।४
३. वही, ५।५
४. वही, ५।६
५. वही, ५।७

वीर-रस के सहायक के रूप में भयानक, रौद्र और वीभत्स रस भी आये हैं। अरिष्ट वृषभ ने आभीर ग्राम में आ कर अपना आतंक स्थापित कर रखा है। उसकी घनघोर गर्जना को सुन कर वहाँ की नारियों के गर्भ स्रवित हो जाते हैं। सर्वत्र भय व्याप्त हो गया है। पृथ्वी काँपने लगी है। इस परिस्थिति का निरूपण करते हुए बताया है—

हुङ्कारशब्देन ममेह घोषे स्रवन्ति गर्भा वनिताजनस्य
खुराग्रपातैर्लिखितार्धचन्द्रा प्रकम्पते सद्रुम कानना भूः।[१]

चतुर्थ अङ्क में कालिय नाग के रौद्र रूप का चित्रण कर रौद्र-रस की व्यञ्जना की गयी है। यहाँ क्रोध स्थायी भाव अनुभाव, विभाव और संचारियों से पुष्ट हो कर रौद्र-रस की अनुभूति कराता है—

विषदहनशिखाभिर्यन्मुखात् प्रोद्गताभिः
कपिशितमशिवाभिश्चक्रवालं दिशानाम्।
सरभसमभियान्तं कृष्णमालक्ष्य शङ्की
नमयति शिरसान्तर्मण्डलं चण्डनागः॥[२]

वीभत्स रस का परिपाक पञ्चम अङ्क में हुआ है। दामोदर कंस को पटक कर गिरा देते हैं, वह अपना प्रतिरोध भी नहीं कर पाता है। गिरा देने से उसका शरीर पूर्णतया क्षत-विक्षत हो जाता है। रक्त की धारा चारों ओर प्रवाहित होने लगती है, समस्त हड्डियाँ चूर-चूर हो कर घृणा उत्पन्न करती है। नाटककार भास ने इस दृश्य का चित्रण करते हुए लिखा है—

विस्तीर्णलोहितमुखः परिवृत्तनेत्रो
भग्नांसकण्ठकटिजानुकरोरुजङ्घः।
विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रो
वज्रप्रभग्नशिखरः पतितो यथाद्रिः॥[३]

इस प्रकार रस परिपाक की दृष्टि से प्रकृत नाटक सफल है।

---

१. वालचरितम् ३।६
२. वही, ४।३
३. वही, ५।११

अविमारक : रस-विश्लेषण

प्रकृत रूपक में शृङ्गार रस का प्राधान्य है। उन्मत्त गज से कुरंगी की रक्षा करने पर अविमारक की उसके प्रति आसक्ति दृष्टिगोचर होने लगती है। मध्य में नायक और नायिका दोनों विप्रलम्भ शृङ्गार रस व्यथित अङ्कित किये गये हैं। इस नाटक के शृङ्गार को काम-शृङ्गार माना जायेगा।

करुण रस की व्यञ्जना कुरंगी और अविमारक के वियोग सन्दर्भ में हुई है। विप्रलम्भ शृङ्गार का आरम्भ अविमारक के विप्रलाप से होता है। अविमारक कुरंगी की स्वाभाविक सुन्दरता का ध्यान करता हुआ आनन्दानुभूति प्राप्त करता है। वह सोचता है कि भय की स्थिति में उसका रूप देखते ही बनता होगा। नाना प्रकार की कल्पनाएँ करता हुआ अविमारक विप्रलम्भ में शृङ्गार का आनन्द ले रहा है—

उर स्तनतटालस जघनभारखिन्ना तनुः
मुख नयनवल्लभ प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम्।
भयोऽपि यदि तादृश नयनापात्रपेय वपु
कथन्नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत्॥[१]

जब धात्री अविमारक से पूछती है कि आप एकान्त में बैठ कर किसकी चिन्ता कर रहे हैं, तो कुमार अविमारक उत्तर देता है—'मैं योगशास्त्र की चिन्ता कर रहा हूँ।

धात्री उत्तर देती है—हम दोनों योग की ही इच्छा ले कर आयी हैं, पर इस योग की साधना एकान्त राजकुल में सम्पन्न की जाय।

अविमारक आधी रात के समय राजभवन में प्रवेश करता है। यहाँ कुरंगी को भी कामवेदना में पीडित देखता है। मागधिका, विलासिनी और कुरंगी के वार्तालाप में यह प्रकट हो जाता है कि कुरंगी हस्तिसम्भ्रम की घटना के पश्चात् कुमार अविमारक को अपना सर्वस्व समर्पित कर चुकी है। कुरंगी के निम्नलिखित चिन्तन से उसकी मनोव्यथा का परिचय प्राप्त होता है—

"को नु खल्वभूतपूर्वो रोगश्चिन्त्यमानो मामुन्मादयति। सुमनोवणक नेच्छति। न तुष्यति गोष्ठ्या। इदमत्र दारुणं मनोहरञ्च। नलिनिके! किमेतत्।"[२]

---

१. अविमारक, चौखम्बा संस्करण, २।६

२ वही, ३।१

अविमारक प्रवेश कर यौवन को कष्टकर बतलाता है। उसके इस कथन से प्रियाविरहजन्य वेदना का अनुमान किया जा सकता है। वह कहता है—

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमाद
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं
बुद्धिं शुभां सुविदुषमवशीकरोति ॥[1]

राग बढ़ता है, असावधानता को प्रश्रय प्रदान करता है, दोषों की चिन्ता नहीं रखता तथा साहस ग्रहण कराता है। स्वच्छन्दता अपनाता है, नीति-मार्ग नहीं चाहता। यह तारुण्य विद्वानों की कल्याणिनी बुद्धि को भी विवश कर देता है।

कुरंगी अविमारक के वियोग से सन्तप्त है। उसका मोहराग बढ़ता चला जा रहा है। जब उसकी अवस्था अर्धमूर्च्छित हो जाती है और वियोग असह्य हो जाता है, तो वह अपनी सखी नलिनिका को आलिङ्गन करने के लिए कहती है। इसी समय अविमारक वहाँ पहुँच जाता है और राजकुमारी कुरंगी का आलिङ्गन कर उसे शान्ति प्रदान करता है।

अन्तःपुर से कुमार अविमारक के चले जाने पर वह कुरंगी की विह्वल दशा का स्मरण करता हुआ वियोगजन्य व्यथा का चित्रण करता है। वह सोचता है—

ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादैर्भीता च राज्ञा दृढ़ सन्निरुद्धा।
बाष्पाविला मामनवेक्षमाणा मोहं व्रजेद् रात्रिपुकिं करिष्ये ॥[2]

वियोग के कारण अविमारक की अवस्था बिगड़ने वाली है। वह सोचता है—'निश्छल परिचय में प्रेम बढ़ाने वाली सुरूपा, नवयौवना तथा प्रियतमा कुरंगी से दूर रह कर मैं क्षण भर भी यदि जीवित हूँ, तो इससे बड़ी और कौन-सी कृतघ्नता हो सकती है?'[3]

इस समय काम से जलते हुए मेरे शरीर पर भगवान् सूर्य क्षार का कार्य कर रहे हैं। हे प्रिय, हा सुन्दरि, मुझे उत्तर दो, मैं तुम्हारे वियोग में जल रहा हूँ, मेरा शरीर भस्म हो रहा है।

१. अविमारक, तृतीय अङ्क, पृ० ८१
२. वही, ४।२
३. वही, ४।३

इस प्रकार जी कर भी मृतक की तरह रहने से क्या लाभ ? मैं जान दे दूंगा, क्या करूँगा ? अच्छा उपाय तो सूझ गया, इसी वन के सरोवर में आत्म-हत्या करूँगा, मेरे मरने का मार्ग अधर्मपूर्ण है। अभिमान के मोह मे मैंने प्रशस्त मार्ग भुला दिया, दूसरा प्रयास करूँगा। अच्छा देख लिया, समीप मे ही तो दावाग्नि दीख रही है। इसी मे प्राणो का हवन कर दूंगा।[१]

भगवान् अग्निदेव, यदि हृदय से स्नेह करने वालो का हित आप करते हैं, तो हमारी प्रिया जन्मान्तर मे भी प्राप्त हो।

'आग की चिनगारियो से जल कर वृक्ष गिर रहे है और मेरे लिए आग की ज्वाला चन्दन के लेप के समान शीतल प्रतीत हो रही है। ये अग्निदेव मुझे कामातुर के प्रति दया दिखला रहे हैं, जिस प्रकार पिता प्रसन्न हो कर पुत्र का आलिङ्गन करता है, उसी प्रकार ये अग्निदेव हमारा आलिङ्गन कर रहे हैं।'[२]

अविमारक पर्वत से कूद कर अपने प्राणो का त्याग करना चाहता है। यहीं उसकी विद्याधर दम्पत्ति से भेंट होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त सन्दर्भ मे प्रिया का समागम न होने से रतिभाव तीव्र-तर होता जा रहा है, मिलन के पश्चात् विछोह का यह अवसर अविमारक की मानसिक स्थिति का उद्घाटन कर रहा है। पूर्वराग और प्रवास की विभिन्न दशाओ का जीवन्त चित्रण किया गया है। यहाँ अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप, व्याधि, जडता और मरणोन्मुखता इन दस अवस्थाओ का सफल चित्रण होने से वियोग शृंगार पुष्ट हुआ है। नाटककार ने मान की स्थिति को उत्पन्न करने के लिए नगर की मानिनी नायिका का चित्र उपस्थित कर वियोग शृंगार की पूर्णता प्रदर्शित की है। अविमारक नगर को देख कर—

'अरे ! यह कौन अपनी मानिनी स्त्री को मना रहा है ? मालूम पड़ता है, उसने बहुत बड़ा अपराध किया है, जिससे यह स्त्री इस समय भी नहीं मान रही है। अथवा यह कुपित नहीं रह गयी है, केवल प्रसन्नता व्यक्त करने के के लिए बहाना ढूंढ रही है। यतः उसका कण्ठ बाष्प से अवरुद्ध, जड तथा गद्गद हो रहा है, वह मैं तुम्हारी कौन होती हूँ, ऐसा कह रही है, सद्भावना

१. अविमारक, पृ० ६५
२. वही, ४।८

के कारण वह प्रियतम के समीप आ कर भी स्त्री स्वभाव के प्रतिकूल ही बोल रही है।'[१]

नाटक में विदूषक और चेटी, विदूषक और अविमारक एवं कुरंगी-नलिनिका- विदूषक वार्तालाप में हास्य रस की अवतारणा हुई है।

चेटी—'इस अवस्था-परिभ्रष्ट राजकुल में काम कम है, इसीलिये नगर देखने निकल पड़ी हूँ। अजी, यह तो आर्य सन्तुष्ट ही जा रहे हैं। अच्छा, इनके साथ हँस-खेल कर जरा दिल बहला लूं। सखी कौमुदिके, क्या ब्राह्मण मिल गये? क्या कहा? नहीं मिले?

विदूषक—'चन्द्रिके, यह क्या?'

चेटी—'आर्य, किसी ब्राह्मण का अन्वेपण कर रही हूँ।'

विदूपक—'ब्राह्मण से क्या अर्थ है?'

चेटी—'और क्या? भोजन के लिए निमन्त्रण देना है।'

विदूपक—'अरी, मैं कौन हूँ, संन्यासी?'

चेटी—'तुम अवैदिक हो।'

विदूपक—'कैसे मैं अवैदिक हूं? सुनो, रामायण नाम का नाट्यशास्त्र है।' मैंने एक वर्ष में उसके पाँच श्लोक पढ़ लिये हैं।'

चेटी—'जानती हूँ, आपकी यह बौद्धिक प्रखरता कुल-परम्परा से प्राप्त है।'

विदूपक—'केवल श्लोक ही नहीं, मैंने उसका अर्थ भी पढ़ लिया है और मुझ में यह विशेपता है, कि मैं शब्द और अर्थ दोनों का ज्ञाता हूँ। ऐसा ब्राह्मण मिलना दुर्लभ है।

चेटी—'अच्छा, बतलाओ यह कौन अक्षर है?'

विदूपक—'यह अक्षर मेरी पुस्तक में नहीं है।'

चेटी—'यदि ज्ञान नहीं है, तो विना दक्षिणा के भोजन करो।'

विदूपक—'अच्छा-अच्छा।'

चेटी—'जरा आपकी अँगूठी देखूँ?'

विदूपक—देखो, देखो मेरी अँगूठी देखने के लायक है।'

चेटी—(अँगूठी ले कर) 'राजकुमार इधर ही आ रहे हैं।'

विदूपक—'कहाँ हैं राजकुमार?'

---

१. अविमारक, ३।१

चेटी—'ठग लिया बेवकूफ, ब्राह्मण को, वह निकल कर चली जाती है ?'[१]

विदूषक—'(चारो ओर देख कर)—चन्द्रिके, कहाँ है चन्द्रिका, हाय ठगा गया। मैं इस कलमुँही दासी का स्वभाव जानता था, पर भोजन मिलने की आशा में ठगा गया। भोजन का निमन्त्रण भी झूठा हो सकता है।'

इस प्रकार उपर्युक्त सन्दर्भ में हास्य रस की सफल योजना हुई है। चेटी की उक्तियों से विदूषक को मूढ सिद्ध किया गया है।

विदूषक और अविमारक के विवाद मे भी हास्य रस की व्यञ्जना हुई है। अविमारक विदूषक की मूर्खता को हँसी उडाता हुआ कहता है—

'अजी महापण्डित, यह क्या है ?'

विदूषक—'अजी, अतिपरिचय के कारण तुम मेरा उपहास करते हो, नया आदमी जो मेरी बुद्धि को नहीं जानता है, वह मेरी बहुत प्रशसा करता है, इसीलिये मैं भी इस नगर मे किसी के साथ अधिक आत्मीयता नहीं कर रहा हूँ।

अविमारक—'उदास होने की बात नही है। बहुत लोग थे, अत. मुझे प्रियतमा को समझाने का अवसर नही मिला। इस समय वह प्रासाद पर गयी है, वही उसे तुम्हारे विषय में समझा दूँगा।

विदूषक—ठीक कहते हो, चलो प्रासाद पर चलें।

अविमारक—मित्र, इस तरह प्रयास कर के चढो, जिससे सीढी पर आवाज न हो।[२]

इस वार्तालाप मे भी हास स्थायी भाव की व्यञ्जना होने से हास्य-रस है। विदूषक की मूर्खता, चपलता, भुक्खडपन आदि की अभिव्यक्ति हुई है।

नलिनिका, विदूषक और कुरगी के वार्तालाप मे भी हास्य-विनोद का पुट पाया जाता है। विदूषक को इन प्रसगो मे कुरगी ने—'हास्य' खल्वय ब्राह्मणः।'[३] कहा है। वास्तव में वह ऊट-पटाग बातें बोल कर सभी को हँसाने का प्रयास करता है।

करुण-रस की योजना षष्ठ अङ्क में अविमारक के न मिलने से सौवीर राज के शोकोद्गार में हुई है। सौवीरराज कहता है—

---

१. अविमारक, द्वितीय अङ्क, पृ० २७-३०

२. वही, पृ० १२४-१२५

३. वही, १३६

यो मे पुत्रगतः शोको हृदयस्थो विजृम्भते ।
सोऽद्य लब्ध्वा सहायं त्वां बाष्परूपेण निर्गतः ॥[1]

कुन्ति-भोज—कथं पुत्रगतः शोक इति ।

भूतिकः—विदितमस्तु स्वामिना ! न दृश्यते किलास्मिन् संवत्सरे कुमारः

सौवीरराजः—बलवान् पुत्र स्नेहो नाम । पश्चतु भवान्—[2]

अनुपमबलवीर्यरूपवन्तं
सुतमविमारकमद्य चिन्तयामि ।
तव चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशो
यदि स भवेदिह को नु मद्विशिष्टः ॥[3]

इस प्रकार पुत्र के तिरोहित होने से सौवीरराज का शोक विकसित हुआ है और करुण-रस की निष्पत्ति हुई है।

रौद्र-रस की व्यञ्जना सौवीरराज द्वारा निरूपित चण्डभार्गव के क्रोध की अभिव्यक्ति में हुई है। वह ऋषि के रौद्र रूप का चित्रण करता हुआ कहता है—

न भापसे वृत्तमुपोषि रोषं
निष्कारणं प्रक्षिपसि प्रकामम् ।
अभाजनं त्वां तपसां प्रकोपाद्
ब्रह्मर्षिरूपेण भवाञ्छ्वपाक ।[4]

ततस्तच्छ्रुत्वैवाज्यधारावसिक्तो भगवान् हुताशन इव प्रज्वलितनेत्रो बहुशः शिरः कम्पयन् 'कथं-कथं' इत्युक्त्वा मां शप्तुमारब्धवान् ।[5]

इस रूपक में नारद ऋषि और कुन्ति-भोज के आशीर्वाद शान्त रस के अन्तर्गत है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण : रस-विश्लेषण

प्रस्तुत रूपक में प्रारम्भ से ही वीर रस प्राप्त होने लगता है। हंसक उदयन

---

१. अविमारक, चौखम्बा संस्करण, पृ० ६।३
२. वही, पृ० १४८-१४९
३. वही, ६।४
४. वही, ६।५
५. वही, पृ० १५२

का समाचार ले कर यौगन्धरायण के समीप आता है। कथा के अनुकूल ही रसावेश के लिए हसक उदयन के आहत होने के वृत्तान्त को अपूर्व शैली मे वर्णित करता है। इस प्रसग मे वीर रस का परिपाक बहुत ही सुन्दर रूप मे हुआ है। वत्सराज उदयन निर्भय हो कर शत्रु-सेना मे प्रविष्ट हो जाता है। हसक उनकी वीरता का वर्णन करता हुआ कहता है—

'तत. क्रीडन्निवात्मच्छन्दानुवर्तिना सुन्दरपाटलेनाश्वेनात्माभिप्रायादप्यधिक प्रहरन् अतिबहुकतया परबलस्यातिप्रयुज्यमानव्यायामो विपण्णनष्टसर्वपरिजनो मयैकाकिना, नहि-नहि भर्त्रैव रक्ष्यमाणोऽनुबिद्धदिवसयुद्धपरिश्रान्तो बहुप्रहार-निपतिततुरगस्ताभ्यत्सूर्यदारुणाया वेलाया मोहं गतो भर्ता।''

तब अपनी रुचि के अनुसार चलने वाले सुन्दर पाटल नामक अश्व से खेलते हुए तथा अपने अभिप्राय से भी अधिक शत्रु-सैनिको को मारते हुए अत्यन्त परिश्रम करने के कारण और शत्रु सेना की अधिकता से एकाकी मुझ से नहीं, नहीं अपने भाग्य से रक्षित निरन्तर दिन भर युद्ध करने से थक कर और अत्यन्त चोट खाने के कारण अश्व के मर जाने से सन्ध्याकाल की भयावह वेला में स्वामी मूर्च्छित हो गये।

स्वामी ने युद्ध इतनी शूर-वीरता से किया था कि उनकी मूर्च्छा दूर होते ही शत्रु-सैनिकों ने उन्हें घेर लिया और वे कहने लगे—'इसने मेरे भाई को मारा है, इसने मेरे पिता का वध किया है, इसने पुत्र का वध किया है, इसने मेरे सुहृदय का विनाश किया है, इस प्रकार से सभी शत्रु-सैनिक स्वामी के पराक्रम की प्रशसा करने लगे।'

इस सन्दर्भ में वीररस का परिपाक सफलतापूर्वक हुआ है। उदयन का उत्साह उसकी वीरता एवं उसके साहस का सजीव वर्णन आया है।

चतुर्थ अङ्क मे यौगन्धरायण की वीरता चित्रित है। जब उदयन वासव-दत्ता को ले कर उज्जयिनी से चला जाता है और महासेन की सेना उसका पीछा करती है। यौगन्धरायण उन्मत्तक वेष का त्याग कर अकेला ही सेना को घेर लेता है और वीरतापूर्वक युद्ध करता है। नाटककार ने यौगन्धरायण की युद्ध-वीरता का जीवन्त वर्णन किया है—

'तेज और चमचमाती हुई तलवार लिए हुए उन्मत्तो का वेप त्याग कर स्वर्ण सज्जित ढाल में बायाँ हाथ डाले हुए नानाविधवस्त्रो को धारण किये हुए सफेद पगड़ी बाँधे हुए विद्युत्युक्त मेघ के समान, जिसमे कुछ-कुछ चन्द्रमा

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चौखम्बा संस्करण, सन् १९५८ ई०, पृ० २२-२३

दिखलायी पड़ रहा है, घमासान युद्ध कर रहा है। उसने सवारों सहित हाथियों को, अश्वों के साथ वीरों को मार कर और बलपूर्वक मुहूर्त्त भर में अपनी शक्ति से अक्षौहिणी सेना को छिन्न-भिन्न कर मूसल के समान हाथी के दाँत से चोट खा कर हाथ के टूट जाने पर और आयुध के गिर जाने से शत्रु के सम्मुख उपस्थित हो वीरता प्रदर्शित की है।'[1]

इस सन्दर्भ में यौगन्धरायण की निर्भीकता, रणकुशला एवं वीरता व्यञ्जित है, समर सन्दर्भ में योद्धाओं के गर्जन-तर्जन एवं दर्पोक्तियाँ सुनायी पड़ती हैं। यौगन्धरायण की चमकती हुई तलवार कायरों के हृदय में भी वीरता का संचार करती है। प्रद्योत की सेना की साज-सज्जा, हुकार, गमन एवं प्रतिपक्षियों के सम्बन्ध में व्यंग्य-वाण वीरता का उद्‌घोष करते हैं।

नाटककार ने राग और द्वेष के विभिन्नि रूपों को वेगयुक्त जटिल मनोवृत्तियों के रूप में चित्रित किया है। यौगन्धरायण व्यर्थ की धमकियों को महत्व नहीं देता। उसे अपने ऊपर अपूर्व विश्वास है।

नाटक के मध्य में महासेन अपनी कन्या वासवदत्ता के विवाह के लिए चिन्तित है। रानी विवाहोपरान्त कन्या-वियोग के दुःख का वर्णन करती है, जिसमें करुण रस की व्यञ्जना होनी है। वह कहती है—

'अभिप्रेतं मे प्रदानम्। वियोगो मां सन्तापयति।'[2]

वासवदत्ता का अपहरण किये जाने पर महारानी अंगारवती शोकाभिभूत हो जाती है और वह भवन से कूद कर अपने प्राणों का त्याग करना चाहती है। इस स्थल पर भी करुणरस की अभिव्यक्ति हुई है—

'एषा तत्र भवत्यङ्गारवती शोकाभिभूतिहृदया प्रासादाच्छरीरं विमोक्तुकामा।'[3]

हँसक ने उदयन की करुण दशा का चित्रण कर करुण-रस की व्यञ्जना की है। वह कहता है—

'आर्य ! अस्ति, प्रदक्षिणीकुर्वन भर्तारमन्तर्जलावगाढया दृष्ट्या वहुकं सन्देष्टुकामेनेवास्ति भर्त्रोक्तः—गच्छ यौगन्ध—'[4]

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चौखम्बा संस्करण, सन् १९५८ ई०, ४।३, ४।४
२ वही, द्वितीय अङ्क, पृ० ५४
३. वही, चतुर्थ अङ्क पृ० १२९,
४. वही, प्रथम अङ्क, पृ० ३४

हास्य रस की योजना तृतीय अङ्क मे सम्पन्न हुई है। विदूषक और उन्मत्तक के वार्तालाप मे हास्य पाया जाता है। श्रमणक प्रवेश कर रहा कहता है—

डरो मत। अयि ब्राह्मण भक्त, डरो मत! कौन-कौन और किस लिए विलाप कर रहे हैं?

विदूषक—श्रमणक तो चौकीदार की वृत्ति का अनुभव कर रहा है। भगवन्! यह उन्मत्तक मेरे बहुमूल्य मोदक को देता नहीं।

श्रमणक—मोदक तो देखूं।

उन्मत्तक—आप देखिये।

श्रमणक—थू-थू।

विदूषक—हाय बड़े दुःख की बात है, मुझ भाग्यहीन के मोदक जो उन्मत्तक के हाथ में रखे हुए थे, श्रमणक ने थू-थू करके अशुद्ध कर दिया। इससे वे अब केवल दर्शनीय ही रह गये हैं, भक्ष्य नहीं।

श्रमणक—हे उन्मत्तकोपासक, उन्मत्तक के भक्त निकालो। मोदक पाला और फेन की तरह श्वेत हैं और अनेक पिसी हुई वस्तुओं से निर्मित हैं और सिखरन युक्त सुरा के समान मधुर हैं। खाने पर ये कहीं तुम्हें क्षयरोग न पैदा कर दें।[१]

इस प्रकार मोदकों को ले कर विदूषक, श्रमणक और उन्मत्तक में हास-परिहास होता है। इस सन्दर्भ मे नाटककार ने हास्य की सफल व्यञ्जना की है।

शृङ्गार रस की दृष्टि मे भी नाटक सफल है। वासवदत्ता कालाष्टमी को शिविका पर आरूढ हो कर यक्षिणी की पूजा के लिए जाती है। सयोग-वश उसकी शिविका कारागृह के द्वार पर पहुँचती है। शिविका के पर्दे हटा दिये जाते हैं और वत्सराज उदयन की दृष्टि वासवदत्ता पर पड़ती है। वह उसके रूप-लावण्य को देख कर मुग्ध हो जाता है। इस प्रकार प्रेम का अकुर हृदय मे जम जाता है और वह वासवदत्ता के बिना अपना जीवन शून्य समझता है। वह कारागृह से वासवदत्ता को ले कर ही निकलना चाहता है। उसका अनुराग वृद्धिगत होने लगता है।

नाटककार ने वियोग शृङ्गार का प्रारम्भ कर मालती, चन्दन, चाँदनी,

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चौखम्बा संस्करण, सन् १९५८ ई०, द्वितीय अङ्क, पृ० ८२-८४

कमल, घनसार और उशीर आदि का निरूपण न कर 'बन्धनमिदानीं प्रमदवनं सम्भाव्य प्रवृत्तो रागलीलां कर्त्तुम्' से ही विरहाग्नि की सूचना दे दी है। अतएव इस नाटक में कथावस्तु के अनुरूप रस की योजना की गयी है।

स्वप्नवासवदत्तम् : रस-विश्लेषण

प्रकृत नाटक का प्रमुख रस-शृङ्गार है। प्रथम अङ्क में ही वासवदत्ता के दग्ध होने का समाचार प्रसारित कर विप्रलम्भ शृङ्गार की पुष्टि की गयी है। जब लावाणक ग्राम से आ कर ब्रह्मचारी राजा की वियोगजन्य अवस्था का चित्रण करता है, तो करुणा के साथ विप्रलम्भ शृङ्गार की अनुभूति होती है। वत्सराज उदयन वासवदत्ता के विरह से उत्पन्न दुःख के कारण आग में कूद कर अपने प्राण देना चाहता है। मंत्री बहुत परिश्रम से राजा की रक्षा करते हैं। वह वासवदत्ता के पहने हुए और जल कर बचे-खुचे आवरणों को छाती से लगा कर मूर्छित हो जाता है। राजा की इस विरह-व्यथा का चित्रण नाटककार ने अत्यन्त कुशलता से किया है।

ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये !

इति किमपि बहुप्रलापितवान्। किं बहुना—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥[1]

स्पष्ट है कि इस सन्दर्भ में विप्रलम्भ शृंगार का परिपाक हुआ है। नाटककार ने वियोग की सभी अवस्थाओं का अङ्कन किया है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप, व्याधि, जड़ता एवं मरण ये सभी अवस्थाएँ स्पष्ट रूप में अङ्कित हैं। यहाँ वासवदत्ता अवलम्बन है, उसका हंसना, वीणावादन करना एवं अन्य केलि-क्रीड़ाओं का करना उद्दीपन है। वत्सराज उदयन वासवदत्ता के वियोग में आंसू बहाता है, दुर्बल होता है, विवर्ण होता है और चक्रवाक पक्षी के समान तड़पता है। यह अनुभव की स्थिति है। विषाद्, उत्कण्ठा, कृशता, व्याधि आदि संचारी भाव हैं और रति स्थायी भाव है। अतः विप्रलम्भ शृंगार मरण-दशा का संकेत करता है। सम्भवतः इस प्रकार के उदाहरण अन्यत्र कम ही मिल सकेंगे।

नाटककार ने मध्य में, पद्मावती-विवाह के समय शृंगार के द्वितीय भाग,

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० ४८-४९, श्लोक सं० १।१२

संयोग, की परिणति अत्यन्त सजीव रूप में की है। ऐसा प्रतीत होता है कि रसौचित्य की दृष्टि से विप्रलम्भ के पश्चात् संयोग का आना आवश्यक है।

चतुर्थ अङ्क में पुनः विप्रलम्भ की स्थापना होती है। राजा उदयन वासवदत्ता के प्रति इतना आसक्त है कि जन्मान्तर में भी उसे स्मरण रखने की चर्चा करता है। राजा का निम्नलिखित कथन वियोग शृंगार की जीवन्त स्मृति कराने में समर्थ है—

राजा—हा ! प्रिये ! हा ! प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम्।

वासवदत्ता—आलपामि भर्त्र ! आलपामि।

राजा—किं कुपितासि ?

वासवदत्ता—नहि-नहि, दुःखितास्मि।

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इत. परं किम् ?

राजा—किं विरचिका स्मरसि ?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अपेहि, इहापि विरचिका ?

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि। (हस्तौ प्रसारयति।)[१]

स्पष्ट है कि वत्सराज उदयन वासवदत्ता का निरन्तर स्मरण रखता है। वह जन्मान्तर में भी उसे नहीं भूल सकता है। राजा के निम्नलिखित कथन से विप्रलम्भ शृंगार पूर्णतया परिपुष्ट होता है और उसके सच्चे प्रेम का परिज्ञान होता है—

> महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।
> कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥[२]

पंचम अङ्क में वीर-रस की अभिव्यञ्जना हुई है। कञ्चुकी आ कर सूचित करता है कि मन्त्री रुमण्वान् सेना ले कर आरुणी से युद्ध करने के लिए आ पहुँचा है और दर्शक महाराज की सेना भी सहायता कर रही है।

आपके शत्रुओं में फूट कर दी गयी है। आपके गुणों में संलग्न नागरिकों को धैर्य दिया गया है। आक्रमण करते समय आपकी सेना के पृष्ठ भाग के संरक्षण हेतु अच्छी व्यवस्था कर दी गयी है। शत्रुओं का नाश करने के लिए जो जो कार्य करने चाहिये थे, वे सब ठीक कर दिये गये हैं। सेना ने गंगा नदी

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० १८९-१९१
२. वही, ६।११

भी पार कर ली है। अतः इस समय वत्सदेश को स्वतन्त्र करने के लिए सभी प्रकार की व्यवस्थाएँ कर ली गयी हैं। कंचुकी की इस सूचना को सुन कर उदयन कहता है—

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥[1]

इस प्रकार इस नाटक में शृंगार के साथ वीर-रस का भी संयोजन हुआ है। चतुरंगिणी का तैयार होना सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा के हेतु व्यवस्था करना एवं अस्त्र-शस्त्रों का चमकना, वीरता के संचार का हेतु है। जिन स्थलों में विप्रलम्भ शृंगार है उन स्थलों में करुणरस भी समाहित है। वत्सराज उदयन के शोकोद्‌गार को करुणा के अन्तर्गत लिया जा सकता है। अतः रस योजना की दृष्टि से यह नाटक सफल है।

चारुदत्त : रस-विश्लेषण

प्रकृत रूपक में परिव्राजक की हाथी से रक्षा करने वाले व्यक्ति को प्रावारक देने की उदारता से वसन्तसेना का हृदय चारुदत्त की ओर आकृष्ट हो जाता है, जो कि शृंगार रस के पोषण के लिए आवश्यक है। नाटक के मध्य में दरिद्रता का नग्नचित्रण करुण-रस की अनुभूति कराता है।

हास्य रस की अवतारणा सूत्रधार और नटी के वार्तालाप में हुई है। सूत्रधार नटी से घर के भीतर भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में चर्चा करता है। वह दारिद्र्यवश व्यंग्य में कहती है कि आज मेरा उपवास है। सूत्रधार पूछता है—

'आर्या के उपवास का नाम क्या है?' नटी—'अभिरूप पति।'

'क्या अन्य जन्म में भी है।' 'हाँ'—

सूत्रधार दरिद्रब्राह्मण की तलाश में जाता है और मैत्रेय को प्राप्त कर भोजनार्थ निमन्त्रण देता है। वह अपने घर की भोज्यवस्तु घृत, गुड़, दधि और चावल की बात कहता है, साथ ही दक्षिणा के निमित्त माषक मुद्रा देने को भी। सूत्रधार कहता है—

घृतगुडदधिसुस्मृद्धं धूपितसूपोपदंशसम्भिन्नम् ।
सत्कारदत्तमिष्टं भुज्यतां भक्तमार्येण ॥[2]

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, ५।१३
. चारुदत्त, १।१

मैत्रेय विदूषक ऊपर से निमन्त्रण का निषेध करता है, पर हृदय से उसका अनुमोदन करता है। वह व्यंग्यात्मक रूप में चारुदत्त के यहाँ किये गये भोजन का स्मरण करता है और कहता है—

'ममोदरमवस्थाविशेषं जानाति। अल्पेनापि तुष्यति। बहुकमप्योदनभरं भरिष्यति दीयमानम्, न याचते अदीयमानं, न प्रत्याचष्टे।'[1]

इस प्रकार हास्य रस की योजना की गयी है।

भयानक रस की योजना करते हुए लिखा है—

सुलभशरणमाश्रयो भयानां वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो जनयति यश्च भयानि यच्च भीतं ॥[2]

इस रस का अस्तित्व उन्मत्त गज के आने पर भी पाया जाता है।[3]

दानवीर का चित्रण द्वितीय अङ्क में आया है। संवाहक चारुदत्त की दान-वीरता का सफल चित्रण करता है।[4]

संयोग शृंगार की व्यञ्जना निम्नलिखित सन्दर्भ में हुई है।

'एहीममलंकारं गृहीत्वार्यचारुदत्तमभिसरिष्याव.।'[5]

इस प्रकार प्रकृत रूपक में करुण, हास्य और शृंगार की योजना कर लोकरंजन और लोकरक्षण की भावना पुष्ट की गयी है।

भास की कृतियों में अलंकार योजना

नाटककार भास ने अलंकारों की योजना बलपूर्वक नहीं की है। स्वाभाविक या सहज रूप में। इनकी कृतियों में रस पोषण के हेतु अलंकारों की योजना सम्पन्न हुई है। इनका विश्वास है कि जिस प्रकार हारादि अलंकार नैसर्गिक सौन्दर्य की वृद्धि में उपकारक होते हैं, उसी प्रकार उपमादि अलंकार काव्य की रसात्मकता के उत्कर्षक हैं।

यूनानी काव्य शास्त्र के अनुसार 'अलंकार उन विधाओं का नाम है जिनके

---

१ चारुदत्त, पृ० ११
२. वही, १।२०
३ वही, द्वितीय अङ्क, पृ० ६८-६९
४. वही, पृ० ६१
५. वही, चतुर्थ अङ्क, पृ० १२४

प्रयोग द्वारा श्रोताओं के मन में वक्ता अपनी इच्छा के अनुकूल भावना जगा कर उनको समर्थक बना सकता है।'[1] भारतीय चिन्तक भी वैदिक युग से अलंकार का महत्व स्वीकार करते आ रहे हैं। स्पष्टता और प्रभावोत्पादन के हेतु वाणी में अनायास ही अलंकार आ जाते हैं। विकास की दृष्टि से अलंकार क्षेत्र की तीन स्थितियाँ मानी जा सकती हैं—(१) आदिम स्थिति, (२) विकसित और (३) प्रतिष्ठित। आदिम स्थिति में अध्येताओं को काव्य के प्रभावक धर्म का एक ही रूप ज्ञात था, जिसको वे अलंकार कहते थे। विकसित स्थिति में अलंकार शब्द में अर्थ विस्तार हुआ और सौन्दर्यमात्र को अलंकार कहा जाने लगा। प्रतिष्ठित स्थिति में प्रभावक धर्म की दूसरी विधाओं को स्वतन्त्रता मिली और वे भी अलंकार के साथ शास्त्रीय अध्ययन का विषय बन गयीं।

निश्चयतः अलंकार वाणी के ऐसे आभूषण हैं, जिनके कारण अभिव्यक्ति में स्पष्टता और भावों में प्रभावोत्पादकता का समावेश होता है।

अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकार को महत्व देने पर भी रसानुभूति को अधिक व्यापक आधार माना गया है। यह कल्पना कविनिष्ठ है, सहृदयनिष्ठ नहीं। कवि प्रतिभा और कवि कौशल काव्यगत अनिवार्य तत्व हैं। अतः संगीत धर्म और चित्रमत्ता के नियोजनार्थ अलंकारमूलक वक्रोक्ति सिद्धान्त प्रतिपादित है। भास की कृतियों के अध्ययन से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि इन्होंने रसोत्कर्ष के रूप में ही अलंकारों का समावेश किया है। इनके मत से मम्मट के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। मम्मट ने लिखा है—

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥[2]

यद्यपि भास ने कोई अलंकार ग्रन्थ नहीं लिखा है, पर इनकी नाट्य कृतियों से अलंकार सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। शब्दालंकार भाषा के संगीत धर्म के अन्तर्गत हैं और अर्थालंकार चित्रधर्म के। इन दोनों के द्वारा ही सौन्दर्य का सृजन होता है। इसी कारण भास ने अपने भावों और चरित्रों को प्रेषणीयता प्रदान करने के लिए अलंकार योजना द्वारा चारुता उत्पन्न की

---

१. हिन्दी साहित्य कोष, ज्ञान मण्डल, काशी, विक्रम सं० २०१५, पृ० ६०।
२. काव्य प्रकाश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन संस्करण, अष्टम उल्लास, सूत्र ८८ पद्य ६७, पृ० २२१।

है। अलकार प्रक्रिया द्वारा एक व्यक्ति के हृदय की अनिर्वचनीय रसानुभूति को दूसरे व्यक्ति के हृदय मे सक्रमित कर देने की क्षमता निष्पन्न होती है। हमारे जीवन की रसानुभूतियाँ केवल सूक्ष्म, सुकुमार एव अनन्त वैचित्र्यशील ही नही होती, किन्तु हृदय के गहन अन्तराल मे अनिर्वचनीय आह्लाद का सचार करती हैं। इस अनिर्वचनीय को वचनीय करने की चेष्टा असाधारण भाषा द्वारा की जाती है। अतः अभिव्यक्ति का साधन भाषा ही है। कवि या नाटककार भाषा द्वारा जिस अन्तर्लोक का परिचय देना चाहता है, वह परिचय साधारण भाषा द्वारा नही दिया जा सकता। इसके लिए हृदय को स्पन्दित करने वाली विशेष भाषा का नाम ही 'सालकार' भाषा है। काव्यानुभूति स्वानुरूपचित्र, स्वानुरूपवर्ण, स्वानुरूप झकार, ले कर ही आत्माभिव्यक्ति करती है। जब तक कवि अपनी काव्यानुभूति को विशेष भाषा मे मूर्त नही कर पाता तब तक मर्मस्पर्शी सन्दर्भों का प्रणयन सम्भव नही है। रस समाहित हृदय के स्पन्दन को अभिव्यक्ति करने के लिए असाधारण भाषा अपेक्षित है। इस असाधारण भाषा का नाम ही अलकार समन्वित उक्ति है।

तात्पर्य यह है कि कला का प्रधान कार्य व्यक्ति-विशेष के भावो को सार्वजनीन बनाना है। यह सार्वजनीन या साधारणीकरण की प्रक्रिया तथ्य निरूपण मात्र से नही हो सकती। इसके लिए अलकृत भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। अलकार के अभाव में रस की स्थिति तो सम्भव है, पर मनोज्ञता का आना कठिन है। अत. वह रचना सहृदय सवेदय बन सकती है या नहीं इसमे आशंका है। यह सत्य है कि अलंकार काव्य का कलापक्षी धर्म है, पर वाणी मे सौन्दर्य और चारुता अलकार द्वारा ही उत्पन्न होती है।

जो कलाकार कल्पना के सद्भाव का महत्त्व जितना अधिक गम्भीर रूप मे समझता है वह कलाकार काव्य या नाटक सृजन मे अलकार को भी स्थान देता है। जिस प्रकार वेदान्त दर्शन मे ब्रह्म माया के माध्यम से विश्व की सृष्टिकरता है, उसी प्रकार प्रतिभा सम्पन्न कलाकार कल्पना के सहारे सौन्दर्य की सृष्टि करता है। कल्पना अलकार का ही रूपान्तर है। यह चार प्रकार की होती है—(१) स्वस्थ्य, (२) अतिरजित, (३) मानवीकरण प्रेरित, (४) और आदर्श। स्वस्थ्य कल्पना कारण और कार्य की शृखला से स्वाभाविकता की सृष्टि करती है। इसके द्वारा स्वानुभूति की परिधि अत्यन्त विस्तृत हो कर ससारगत व्यापार मात्र को समेट लेती है। इस प्रकार की कल्पना अलकार प्रयोग के बिना सम्भव नही है। अतिरंजित कल्पना अलकारमूलक ही है। इसके प्रयोग द्वारा असम्भावित परिस्थितियों को प्रत्यक्ष जगत में अवतरित कर अन्विति उत्पन्न की

जाती है। जीवन के रागात्मक सम्बन्धों की वास्तविकता एवं उनकी समष्टिगत परिव्याप्ति अलंकृत भाषा के बिना सम्भव नहीं है। विविध परिस्थितियों में अलंकार कल्पनागत चमत्कार की सृष्टि करते हैं। अलंकृत भाषा और कल्पना वैविध्य जीवनगत सौन्दर्य के उद्धारक हैं। अलंकारों का प्रयोग जीवन के कार्य व्यापारों को आकर्षक बनाने में है, इनमें भाषा और भावों की नग्नता दूर हो कर उनमें सुषमा और सौन्दर्य की वृद्धि होती है। अतएव भास की कला का पूर्णतया मूल्यांकन करने के लिए अलंकार योजना पर विचार करना आवश्यक है। भास ऐसे कवि और नाटककार हैं जिनकी कृतियाँ काव्य मूल्यों की दृष्टि से खरी उतरती हैं। पूर्व में हम उनकी रसानुभूति का विश्लेषण कर चुके हैं। यहाँ उनकी अलंकार योजना का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर उनके कलागत विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

साधर्म्य, अतिशत, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार इन छः आधारों पर भास ने अलंकारों का संयोजन किया है जिससे उनके पात्रों की विभिन्न मानसिक परिस्थितियों का सफल और सटीक विश्लेषण हुआ है।

दूतवाक्य : अलंकार योजना

भास के रूपकों में विकास क्रम की दृष्टि से 'दूतवाक्यम्' आरम्भिक रचना है। इस रूपक में अलंकारों का बाहुल्य नहीं है। नाट्यकार भास ने सहज रूप में, सहोक्ति, रूपक और उपमा के प्रयोग किये हैं। यों तो उत्प्रेक्षा, प्रतीप व्याजोक्ति और छेकानुप्रास भी उपलब्ध हैं। नाटककार ने प्रथम पद्य में ही छेकानुप्रास की स्वाभाविक योजना की है—

पादः पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः स वः।
व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे॥

यहाँ 'सर्वलोकोत्सवः स वः' पद में छेकानुप्रास है।[1]

उपमा

प्रस्तुत रूपक में उपमा का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। कवि ने विभिन्न प्रकार के उपमानों की योजना द्वारा रसोत्कर्ष प्रदर्शित किया है। नाटककार कंचुकी से दुर्योधन के रूप सौन्दर्य का वर्णन कराता है। कंचुकी कहता है—

---

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्करण, १।१

श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः[१]
सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गरागः ।
श्रीमान् विभूषणमणिद्युति रञ्जिताङ्गो
नक्षत्रमध्य इव पर्वगतः शशाङ्कः ॥

इस पद्य मे 'नक्षत्रमध्य इव पर्वगत शशाङ्क ' में पूर्णोपमा है। यहाँ दुर्योधन उपमेय है, पूर्ण चन्द्र उपमान है, शोभित होना सामान्य धर्म है और 'इव' उपमा वाचक शब्द है। अतएव इस पद्य मे पूर्णोपमा के सभी लक्षण घटित होते हैं।

उपमा की योजना चतुर्थ पद्य में भी की गयी है। इस पद्य मे 'रोशमिव' पद उपमान है तथा 'उत्कृत्तदन्तमुसलानि' द्वारा दुर्योधन पाण्डव सेना के मत्त गजराजो के दन्त को मूसल के समान उखाड कर उनके मुखो को दन्तहीन करने की इच्छा व्यक्त करता है।

नाटककार भास को राहु के मुख मे पडे चन्द्र का उपमान बहुत ही प्रिय है। अत. वे दु शासन द्वारा केश खींचे गये द्रौपदी के रूप का चित्रण करते हुए कहते हैं—

दु शासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना ।
राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते ॥[२]

युधिष्ठिर द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए प्रस्तुत अर्जुन को रोकते हैं। नकुल और सहदेव ढाल-तलवार ले कर दुश्शासन पर उस प्रकार आक्रमण करना चाहते हैं जिस प्रकार सिंह मृग शावक पर।

इस पद्य में—

विगतमरणशङ्कौ सत्वरं भ्रातरं मे
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ ॥[३]

इसी रूपक में आगे दुर्योधन अपने मित्र कर्ण से श्रीकृष्ण और पाण्डवों की आलोचना करता हुआ कहता है—

---

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्करण, १।३
२. वही, १।७

प्राप्तः किलाद्य वचनादिह पाण्डवानां
दौत्येन भृत्य इव कृष्णमतिः स कृष्णः ।
श्रोतुं सखे ! त्वमपिसञ्जय कर्ण ! कर्णौ
नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य ॥[१]

प्रकृत पद्य में 'भृत्य इव' के साथ 'नारीमृदूनि' में 'नारी इव मृदूनि' वचनानि समास करने पर भी उपमालंकार घटित होता है। इसी प्रकार पन्द्रहवें और ४९वें पद्य में उपमालंकार की योजना की गयी है। ४९वें पद्य में पाञ्चजन्य का सौन्दर्य मालोपमालंकार द्वारा निरूपित है।

उत्प्रेक्षा

भास ने उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग इस नाटक में दो ही स्थानों पर किया है। वे इसके द्वारा अनुपस्थित वस्तु की मानस-प्रतिमा प्रस्तुत कर देते हैं। उन्होंने अर्जुन की रौद्र मूर्ति का चित्रण करते हुए लिखा है—

रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ-
स्तृणायमत्वा रिपुमण्डलं तत् ।
उत्सादयिष्यन्निवसर्वराज्ञः
शनैः समाकर्षति गाण्डिवज्याम् ॥[२]

अर्जुन के नेत्र क्रोध से विस्फारित हो रहे हैं, अधरोष्ठ भी फड़क रहे हैं। यह उस शत्रु-समूह को तृण के समान मान कर समस्त भूपाल-मण्डल को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए ही तो अपने धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींच रहा है।

यहाँ 'तृणायमत्वा गाण्डिवज्यां समाकर्षति' पद में उत्प्रेक्षा है। इसी प्रकार १२वें पद्य में भी कवि ने 'लिखत' पद द्वारा उत्प्रेक्षा की योजना की है।

प्रतीप

प्रतीप अलंकार में उपमान को उपमेय बना कर वास्तविक उपमेय को उपेक्षित तथा अयोग्य घोषित किया जाता है। भास ने निम्नलिखित पद्य में

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्करण, १।१२
२. वही, १।९

तलवार की ज्योति से सूर्य की तीक्ष्ण किरणों मे उपहास की बात कही है।
यहाँ तलवार ज्योति उपमेय को ही उपमान बना दिया गया है।

सोऽयं खड्ग. खरांशोरपहसिततनु स्वै करैर्नन्दकाख्य'
सोऽयं कौमोदकी या सुरारिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा।
सैषा शार्ङ्गाभिधाना प्रलयघनरवज्यारवा चापरेखा
सोऽयं गम्भीर घोषः शशिकरविशद. शङ्खराट्पाञ्चजन्यः ॥[1]

रूपक

साङ्ग रूपक की योजना करते हुए नाटककार भास ने लिखा है—'द्रौपदी के अपमान से शत्रु-सैन्य के गजराजो के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने वाली उग्र गदा को धारण करने वाले भीम की प्रवृद्ध क्रोधाग्नि ने रण-क्षेत्र में अर्जुन के बाण-रूपी वायु से और भी उद्दीप्त हो कर कौरव वन का विनाश किया है। यहाँ 'कोप शिखिना' पद मे 'कोप एव शिखीतेन' में रूपक है। इसी प्रकार[2] 'पार्थपत्रिचण्डानिलैश्च' और कुरुवंशवन' मे रूपक की योजना है।

व्याजोक्ति

व्याजोक्ति अलकार की योजना कर कवि ने अपने भावो को सशक्त बनाया है। सुदर्शन चक्र अपने प्रभुत्व का वर्णन करता हुआ कहता है—'कस्याद्य मूर्धनि मया प्रविजृम्भितव्यम्''[3] में व्याजोक्ति द्वारा शक्ति प्रकट करने से वध करने की व्यञ्जना होती है। अतः नाटककार ने इस स्थल मे व्याजोक्ति की योजना की है।

सहोक्ति

सह अर्थ बोधक पदों के सामर्थ्य से एक ही पद के अनेक अर्थ उपस्थित कर सहोक्ति की योजना की गयी है। यह सादृश्यगर्भगम्यौपम्याश्रय वर्ग का प्रधान भेद है। गुण, क्रिया और द्रव्य के सहभाव कथन को सहोक्ति माना गया है। नाटककार भास ने 'सेना, पटह, शख आदि के बजने से घोर झञ्झा-

१. दूतवाक्यम, चौखम्बा सस्करण, १।५१
२. वही, १।१४
३. वही, १।४२

वत में समुद्र के गर्जन-सी आवाज होगी और उसी समय मन्त्र-पूत जल के अभिषेक के साथ भीष्म पितामह के ऊपर अनेक राजा-महाराजाओं के हृदय भी[1] गिरे, में सार्धं पद द्वारा सहोक्ति की योजना की है।

इस प्रकार अलंकार योजना की दृष्टि से 'दूतवाक्यम्' सफल रूपक है।

कर्णभार : अलङ्कार योजना

प्रस्तुत रूपक में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अनुप्रास की योजना की गयी है। शब्दालंकारों में केवल अनुप्रास ही दिखलायी पड़ता है। इसमें अनुप्रास के साथ उपमा या सादृश्यमूलक अन्य अलंकार भी उपलब्ध होते हैं। कर्ण अपने गुरु, परशुराम की वेष-भूषा और आकृति का चित्रण करता हुआ कहता है—'विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलापम्'[2] में अनुप्रास की छटा सौन्दर्य विकीर्ण करती है। इसी प्रकार 'सकलनृपतिमान्यंमान्यकाम्बोजजातम्'[3] में भी अनुप्रास योजना है।

उपमा

'कर्णभारम्' में उपमालंकार की योजना कई स्थानों पर आयी है। अत्युक्ति-गर्भित उपमा का उदाहरण निम्न प्रकार है—

> श्रीमानेष न केवलं द्विजवरो यस्मात्प्रभावो महा-
> नाकर्ण्य स्वरमस्य धीरनिनदं चित्रार्पिताङ्गा इव।
> उत्कर्णस्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्राननाः-
> स्तिष्ठन्त्यस्ववशांगयष्टि सहसा यान्तो ममैते हयाः ॥[4]

यहाँ 'आगन्तुकस्यास्य याचकस्य वाचः प्रभावादेव इमे मे तुरगाः चित्रे निवेशिता इव' व्याख्या करनी होगी।

इसी प्रकार 'भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः' में 'भुजङ्गानां जिह्वा इव चपलाः' व्याख्या होने से उपमा है।

---

१. दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्करण, ११५
२. कर्णभार, ११६
३. वही, ११६
४. वही, ११५

उत्प्रेक्षा

'कर्णभारम्' में उत्प्रेक्षा की योजना भी अप्रस्तुत का महत्व प्रदर्शित करने के हेतु की गयी है। 'इमे कि दैन्येन निमीलितेक्षणा मुहु. स्खलन्तो विवशा-स्तुरङ्गमाः'[1] मे दीनता से ही मानो अश्व अपनी आँखो को बन्द कर ठोकरें खा रहे हैं, मे उत्प्रेक्षा है।

दृष्टान्तालकार की १।१४ मे, अर्थान्तरन्यास की १।४ मे और रूपक की १।१६ मे योजना की है।

दूतघटोत्कच : अलङ्कार योजना

प्रस्तुत नाटक में उपमा, सहोक्ति, उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यलिङ्ग, अनुमान, अतिशयोक्ति, भाविक, दीपक, स्वभावोक्ति एव उत्प्रेक्षा-रूपक तथा रूपक-सहोक्ति अलकार पाये जाते हैं। नाटककार भास उपमा के तो आचार्य हैं। इन्होंने प्रकृत रूपक मे उपमा की योजना करते हुए अभिमन्यु को अर्जुन के समान पराक्रमशाली बतला कर उसका महत्व प्रदर्शित किया है। दु'शासन अपनी सफाई व्यक्त करते हुए धृतराष्ट्र से कहता है—

सर्वेषा न पश्यता युध्यता च
व्यायामोष्ण गृह्य चाप करेण।
सूर्येणेवाभ्यागतैरशुजालै:
सर्वे बाणैरङ्किता भूमिपाला. ॥[2]

यहाँ उपमालकार है। इसमे अभिमन्यु को बालक होते हुए भी तरुण के तुल्य पराक्रमी बताया गया है। उसने अपने बाणो से राजाओ को वैसे ही व्याप्त कर दिया था, जैसे सूर्य अपनी किरणो से व्याप्त रहता है।

घटोत्कच दुर्योधन की सभा मे प्रविष्ट होता है और वह सन्देश देता हुआ कहता है—

"प्रयामि सौभद्रविनाशचोदित' दिदृक्षुरद्यारिमनार्यचेतसम्।
विचिन्त्यचक्रधरस्य शासन यथा गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो बलिम् ॥[3]

---

१. कर्णभार, १।११

२. दूतघटोत्कच, चौखम्बा सस्करण, १।२०

३. वही, १।२३

यहाँ 'यथा गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो वलिम्' में उपमालंकार है।

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा की योजना कई स्थानों पर हुई है। दुर्योधन कहता है—

भूमिकम्पः सशब्दोऽयङ्कुतो नु सहसोत्थितः।
उल्काभिश्च पतन्तीभिः प्रज्वालितमिवाम्बरम् ॥[१]

यह सहसा भूकम्प के साथ शब्द कहाँ से उठा ? आकाश से ऐसा उल्कापात हो रहा है मानो जल ही वरस रहा हो। २७वें पद्य में दुर्योधन ने अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुन कर आनन्दातिरेक से सिंहनाद किया, जिससे पृथ्वी महान् पर्वतों के समान राजाओं से व्याप्त इस प्रकार कम्पित हुई मानो सम्भ्रमवश कोई युवती ही काँप रही है।

३५वें पद्य में घटोत्कच धृतराष्ट्र का वर्णन करता हुआ उनके अन्धत्व के सम्बन्ध में उत्प्रेक्षा करता है।

रूपक

इस नाटक में रूपक का प्रयोग तीन स्थलों पर आया है। दुश्शासन जयद्रथ की सेना द्वारा रोके जाने पर अभिमन्यु की मृत्यु का संकेत देता हुआ बाणों को 'शोकशरा'[२] कहता है। यहाँ 'शोकशरा' में रूपक-योजना है। धृतराष्ट्र दुर्योधनादि पुत्रों को समझाते हुए कहते हैं कि अभिमन्यु अर्जुन का प्रथम अंकुर था। यहाँ अंकुर में अभिमन्यु का आरोप किया गया है। अतः रूपकालंकार है।

स्वच्छन्दमृत्युर्निरतो हि भीष्मः स्वेनोपदेशेन कृतात्मतुष्टिः।
अयं तु वालः कुरुवंशनाथश्छिन्नोऽर्जुनस्य प्रथमः प्रवालः ॥[३]

काव्यलिंग

जहाँ वर्णनीय विषय के हेतु रूप में किसी वाक्यार्थ या पदार्थ का प्रतीयमान प्रतिपादन दिया जाय वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है। प्रस्तुत

---

१. दूतघटोत्कच : चौखम्वा संस्करण, १।२५
२. वही, १।१२
३. वही, १।१६

रूपक मे काव्यलिंग की योजना दो स्थानो पर मिलती है। धृतराष्ट्र[1] कहते हैं कि अब विनाशकारी युद्ध होगा। अभिमन्यु के वध से अत्यन्त क्रुद्ध और कुपित कृष्ण के द्वारा गृहीत वल्गा और चाबुक से युक्त अर्जुन अपने कठिन गाण्डीव की सहायता से सारे ससार को नष्ट कर डालेंगे। पश्चात् प्रकृत अवस्था मे विश्व शान्ति को प्राप्त होगा। यहाँ शान्ति प्राप्ति का कारण गाण्डीव की सहायता से ससार को नष्ट करने वाला युद्ध बताया है। अत. यहाँ काव्यलिंग है।

दुर्योधन दुश्शासन से कहता है कि अभिमन्यु के वध से हमारा विरोध और दृढ हो गया। शत्रुओ की विजय डगमगा गयी। कृष्ण का गर्व भी नष्ट हो गया तथा हमे पूर्ण रूप से विजय-प्राप्ति के साथ साथ यश भी प्राप्त हुआ।

यातोऽभिमन्युनिधनात् स्थिरता विरोध.
प्राप्तो जय प्रचलिता रिपवो निरस्ताः।
उन्मूलितोऽस्य च मदो मधुसूदनस्य
लब्धो मयाऽद्य सममभ्युदयेन शब्द ॥[2]

अनुमान अलंकार

कवि कल्पित साधन के द्वारा साध्य का चमत्कारपूवक वर्णन किया जाना अनुमान अलकार है। धृतराष्ट्र अपनी पुत्री दु शला को धैर्य देते हुए कहते हैं—

भर्तुस्ते नूनमत्यन्तमवैधव्य न रोचते।
येन गाण्डीविबाणानामात्मा लक्षीकृतः स्वयम् ॥[3]

यहाँ अर्जुन के बाणरूपी साधनो द्वारा दुश्शला के सौभाग्यरूपी साध्य को अरुचिकर कहा गया है।

भाविक अलकार

भूत अथवा भविष्यत् भावो या पदार्थों की रक्षा वर्त्तमान वर्णन के द्वारा की जाय वहाँ भाविक अलकार होता है। यह गूढार्थ प्रतीतिमूलक अलकार है।

---

१. दूतघटोत्कच, चौखम्बा सस्करण, १।५
२. वही, १।११
३ वही, १।७

धृतराष्ट्र अर्जुन के संकल्प का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह निश्चय भविष्यत् के समस्त राजाओं को नष्ट करने वाला है—

सक्रोधव्यवसायेन कृष्णेनैतदुदाहृतम् ।
पश्यामीव हि गाण्डीवि सर्वक्षत्रवधे धृतः ॥[1]

दीपक

जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का सम्बन्ध एक ही साधारण धर्म से प्रतिपादित किया जाय वहाँ दीपक अलंकार होता है। घटोत्कच दुश्शासन को समझाता हुआ कहता है कि तुम्हारे लिए कृष्ण राजा नहीं हैं। आश्चर्य है कि तुम उन्हें राजा नहीं मानते हो। वे तो राजाओं के राजा हैं। यहाँ प्रस्तुत दोनों का सम्बन्ध कृष्ण के वीरतारूपी साधारण धर्म के साथ प्रतिपादित किया गया है—

मुक्तायेन यदा पुरा नृपतयः प्रभ्रष्टमानोच्छ्रया
येनार्घ्यं नृपमण्डलस्य मिषतो भीष्माग्रहस्ताद्धृतम् ।
श्रीर्यस्याभिरता नियोगसुमुखी श्रीवक्षशय्यागृहे
श्लाघ्यः पार्थिव पार्थिवस्तव कथं राजा न चक्रायुधः ॥[2]

इस रूपक में १।२३ में सम्भव, १।११, १।३० और १।५२ में सहोक्ति, १।५० में स्वाभावोक्ति, १।२६ में उत्प्रेक्षा-रूपक, १।५२ में रूपक-सहोक्ति अलंकार समाविष्ट हैं।

मध्यम व्यायोग : अलंकार योजना

इस रूपक में उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, स्मरण, काव्यलिंग, परिकर रूपक, सन्देह और अनुमान अर्थालंकारों के साथ अनुप्रास और यमक शब्दालंकार भी समाहित हैं।

अनुप्रास

वर्ण अथवा समूह की चमत्कारपूर्ण आवृत्ति से प्रस्फुटित ध्वनि-वैचित्र्य

---

१. दूतघटोत्कच : चौखम्बा संस्करण, १।३७
२. वही, १।४१

अनुप्रास अलकार है। नाटककार भास ने इस कृति मे अनुप्रास की योजना करते हुए लिखा है—

विनिमाय गुरुप्राणन् स्वै प्राणैर्गुरुवत्सल· ।
अकृतात्मदुरावाप ब्रह्मलोकमवाप्नुहि ॥[१]

यहां 'गुरुप्राणान्' और 'प्राणैर्गुरुवत्सल' मे अनुप्रास की छटा है।

उपमा

प्रस्तुत रूपक मे उपमा की योजना सात स्थलो पर आयी है। सूत्रधार कहता है कि राक्षस से भयभीत ब्राह्मण-परिवार सिंह से पीड़ा की गयी सवत्स गो के समान प्रतीत हो रहा है। यहां उपमा अलकार द्वारा ब्राह्मण-परिवार की आतकपूर्ण स्थिति का चित्रण किया गया है। इसी प्रकार चतुर्थ पद्य मे घटोत्कच् की वेष-भूषा और आकृति के चित्रण मे 'सतडितिवघन·' जैसे पदो द्वारा भयकरता प्रदर्शित की गयी है। उपमा को प्रयोग १।३, १।४, १।५, १।८, १।४२, १।४७ और १।४८ मे किया है। इन सभी स्थलो मे प्रयुक्त उपमानों से उपमेय का यथार्थ रूप प्रस्तुत होता है।

रूपक

इस नाटक मे माला रूपक, साङ्ग रूपक और सामान्य रूपक इन तीनों भेदो का प्रयोग पाया जाता है। माला रूपक का व्यवहार निम्नाकित पद्य मे हुआ है—

वज्रापातोऽचलेन्द्राणा श्येन· सर्वपतत्रिणाम् ।
मृगेन्द्रो मृगसघाना मृत्यु· पुरुषविग्रहः ॥[२]

यहां राक्षस को पर्वत-समूहों के लिए वज्रपात, पक्षियो के लिए बाज, मृग-समूहों के लिए सिंह और मानवों के लिए मृत्यु कहा है। अत· अनेक उपमानो का मालाकार आरोप होने से माला रूपक है।

साङ्ग रूपक की योजना प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का निषेध रहित सावयव आरोप कर की गयी है। वृद्ध कहता है—

---

१. मध्यम०, १।२१
२. मध्यम व्यायोग, चौखम्बा सस्करण, १।७

यस्मिन्नशृङ्गो मम त्वासीन्मनोज्ञो वंशपर्वतः ।
स मध्यशृङ्गभङ्गेन मनस्तपति मे भृशम् ॥[1]

अर्थात्—मेरे पर्वत-रूपी वंश के परम रमणीय जो तीव्र शिखर थे उसके मध्य शृङ्ग के टूट जाने से मुझे बड़ा सन्ताप हो रहा है। यहाँ वंश पर्वत में साङ्ग रूपक है। 'वंश एव पर्वतः' इस प्रकार का विग्रह करने से रूपक की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

सामान्य रूपक की योजना में नाटककार भास ने 'राक्षसाग्नौ' पद में 'राक्षस एव अग्निः तस्मिन् राक्षसाग्नौ' व्याख्या कर अलंकार की योजना की है।

यथा—

कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम् ।
राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी होष्यामि विधिसंस्कृतम् ॥[2]

अर्थान्तरन्यास

नाटककार ने साधर्म्य अथवा वैधर्म्य द्वारा सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का समर्थन कर इस अलंकार की योजना की है। मध्यम कुमार अपने प्राणों के बलिदान से गुरुजनों के प्राणों की रक्षा करता है। कवि ने यहाँ उसके इस कथन का समर्थन परिवार का प्रेम शरीर के प्रेम की अपेक्षा दुर्लभ है—

धन्योऽस्मि यद्गुरुप्राणाः स्वैः प्राणैः परिरक्षिताः ।
बन्धुस्नेहाद्धि महतः कायस्नेहस्तु दुर्लभः ॥[3]

इसी अलंकार की योजना १।४७वें पद्य में भी हुई है।

स्मरण

किसी वस्तु-विशेष के दर्शन कर तत् सदृश पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण हो आना स्मरणालंकार है। नाटककार भास ने इस अलंकार की योजना बहुत

---

१. मध्यम व्यायोग, चौखम्बा संस्करण, १।२३
२ वही, १।१५
१ वही, १।२०

ही सुन्दर रूप मे की है। भीम घटोत्कच को देखते हैं। उन्हें वहाँ घटोत्कच का स्वर सुनाई पड़ता है। इससे उन्हे अर्जुन के स्वर का स्मरण हो जाता है—

खगशतविरुते विरौति तार
द्रुमगहने द्रुहसकटे वनेऽस्मिन् ।
जनयति च मनोज्वर स्वरोऽय
बहुसदृशो हि धनञ्जयस्वरस्य ॥[1]

भीम घटोत्कच को देख कर अभिमन्यु की स्मृति करते हैं। घटोत्कच का बल, पौरुष और पराक्रम देखते ही भीम को अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु के बाल-शौर्य का स्मरण हो आता है। भास ने लिखा है—

भ्रातॄणा मम सर्वेषा कोऽय भो ! गुणतस्करः ।
दृष्ट्वैतद्बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम् ॥[2]

परिकर अलंकार

जहाँ साभिप्राय विशेषणो का प्रयोग किया जाय, वहाँ परिकर अलकार होता है। प्रस्तुत रूपक मे इस अलकार का दो बार प्रयोग हुआ है। यथा—

युद्धप्रियाश्च शरणागतवत्सलाश्च
दीनेषु पक्षपतिता.' कृतसाहसाश्च ।
एवविधप्रतिभयाकृतिचेष्टिताना
दण्ड यथार्हमिहधारयितु समर्था ॥[3]

यहाँ युद्धप्रिय, शरणागतवत्सल, कृतसाहस आदि सभी विशेषण विशेष अभिप्राय से प्रयुक्त हैं। अतएव परिकर अलकार है।

इस अलकार की योजना १३वें पद्य मे भी हुई है। यहाँ वृद्ध ब्राह्मण अपने को श्रुतवान्, शीलगुणान्वित आदि विशेषणो से युक्त बतलाते हैं। ये सभी

---

१ मध्यम व्यायोग, चौखम्बा सस्करण, १।२५
२ वही, १।३५
३ वही, १।११

विशेषण ब्रह्मत्व रूप अभिप्राय विशेष की सिद्धि के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अतएव परिकर अलंकार है। यथा—

ब्राह्मणः श्रुतवान्वृद्धः पुत्रं शीलगुणान्वितम् ।
पुरुपादस्य दत्त्वाहं कथं निर्वृतिमाप्नुयाम् ॥[1]

इस रूपक में एक ही पद्य में एकाधिक अलंकारों की भी योजना की गयी है। भीम घटोत्कच को देख कर उसके सम्बन्ध में चिन्तन करते हैं। इस सन्दर्भ में यहाँ परिकर, उपमा, काव्यलिंग और अनुमान ये चार अलंकार नियोजित हैं। यथा—

सिंहस्यः सिंहदंष्ट्रो मधुनिभनयनः स्निग्धगम्भीरकण्ठो
बभ्रुभ्रूः श्येननासो द्विरदपतिहनुर्दीप्त विश्लिष्टकेशः ।
व्यूढोरा वज्रमध्यो गजवृषभगतिर्लम्बपीनांसबाहुः
सुव्यक्तं राक्षसीजो विपुलबलयुतो लोकवीरस्य पुत्रः ॥[2]

यमक, सन्देह और उत्प्रेक्षा की एकत्र योजना निम्नलिखित पद्य में पायी जाती है। इस पद्य में 'सिंहाकृति' पद में 'सिंहस्य आकृति इव आकृतिर्यस्य स' विग्रह करने पर उपमा अलंकार है। इसी प्रकार 'विकसिताम्बुजपत्रनेत्रः' में भी उपमा है। 'पक्ष-विलिप्तपक्षः' में यमक है। अन्तिम दोनों चरणों में सन्देह है तथा बन्धुरिव पद में उत्प्रेक्षा है—

सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहु-
र्मध्येतनुर्गरुडपक्षविलिप्तपक्षः ।
विष्णुर्भवेद्विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो
नेत्रे ममाहरति बन्धुरिवागतोऽयम् ॥[3]

१।३० में उत्प्रेक्षा, १।६ में उपमा-उत्प्रेक्षा, १।२४ में उपमा-यमक, और १।३८ में रूपक-उपमा का समावेश पाया जाता है।

पञ्चरात्रम् : अलङ्कार योजना

अलंकारों के वैविध्य की दृष्टि से 'पञ्चरात्र' समृद्ध रूपक है। इसमें उपमा,

---

१. मध्यम व्यायोग : चौखम्बा संस्करण, १।१३
२. वही, १।२६
३. वही, १।२७

उत्प्रेक्षा, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, रूपक, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, अप्रस्तुत प्रशंसा, तद्गुण, प्रत्यनीक, सहोक्ति, परिसंख्या, सन्देह, अपह्नुति, विभावना, अतिशयोक्ति, अनुमान एवं दीपक अलंकार उपलब्ध होते हैं। उपमा की दृष्टि से तो यह रूपक बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रारम्भ के पद्य में मुद्रालंकार का प्रयोग आया है। इस अलंकार द्वारा नाटक के प्रमुख पात्रों के नामोल्लेख के साथ प्रमुख उद्देश्य की भी सूचना दी गयी है। 'सूच्यार्थसूचनमुद्रा प्रकृतार्थ-परै पदै:' रूप लक्षण पूर्णतया घटित है। उपमालंकार में कवि ने विभिन्न प्रकार के उपमानों का प्रयोग किया है। वृद्ध और पूजनीय ब्राह्मणों को वृद्धगजों के उपमान द्वारा, यज्ञधूम के प्रवेश को नलिन वन में प्रविष्ट होने वाले गज के उपमान द्वारा एवं मृतपुत्रा की व्यथा को स्वल्पावशिष्टघृत के कारण शकटी के दग्ध होने के उपमान द्वारा अभिव्यञ्जित किया है।

यथा—

राज्ञा वेष्टनपट्टघृष्टचरणाः श्लाघ्यप्रभूतश्रवा
वार्द्धक्येऽप्यभिवर्धमाननियमा स्वाध्यायशूरैर्मुखैः।
विप्रा यान्ति वयःप्रकर्षशिथिला यष्टिन्निपादक्रमाः
शिष्यस्कन्धनिवेशिताञ्चितकरा जीर्णा गजेन्द्रा इव ॥[1]

× × ×

अग्निरग्निभयादेष भीतैर्निर्वास्यते द्विजैः।
कुले व्युत्क्रान्तचारित्रे ज्ञातिर्ज्ञातिभयादिव ॥[2]

× × ×

शकटीव घृतापूर्णा सिच्यमानापि वारिणा।
नारीवोपरतापत्या बालस्नेहेन दह्यते ॥[3]

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त १।६, १।६, १।१०, १।१२, १।१३, १।१४, १।१६, १।१७, १।१८, १।४०, ३।६ और ३।१६ में भी उपमालंकार का प्रयोग हुआ है।

उत्प्रेक्षा

नाटककार भास ने 'पञ्चरात्रम्' में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग छः स्थानों

---

१. पञ्चरात्रम्, १।५
२. वही, १।७
३. वही, १।८

पर किया है और सर्वत्र उन्होंने अनुपस्थितियों को मूर्तरूप दिया है। कवि ब्राह्मणोच्छिष्ट अन्नों के बिखरे होने से ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त दिशाओं में काश विकसित हैं। होम के धूम से तरुगण के फलों की गन्ध समाप्त हो गयी है। व्याघ्र और हरिण एक से प्रतीत हो रहे हैं और पर्वत की गुफाओं में रहने वाले सिंह हिंसा से निवृत हैं। अत: ऐसा प्रतीत हो रहा है कि महाराज दुर्योधन के साथ सारा संसार ही यज्ञदीक्षित हो रहा है। यहाँ हेतूत्प्रेक्षा का प्रयोग है—

द्विजोच्छिष्टैरन्नैः प्रकुसुमितकाशा इव दिशो
हविर्धूमैः सर्वे हृतकुसुमगन्धास्तरुगणाः ।
मृगैस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभृतसिंहाश्च गिरयो
नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव ॥[१]

भास ने वायु-प्रेरित यज्ञाग्नि से जलने वाले वृक्षों के कोटर से पक्षियों के उड़ने का चित्र प्रस्तुत किया है। वे अपने इस चित्र को कल्पना से अधिक सजीव बनाते हुए उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं और बतलाते हैं कि पक्षियों का यह उड़ना वैसा ही प्रतीत होता है जैसा मनुष्य के शरीर से निकलने वाले प्राणों के साथ इन्द्रियों का निकल जाना।[२] भास ने अग्निदेव की भस्म करने की शक्ति का निरूपण करते समय हेतूत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग किया है। बताया है कि यह अग्निदेववृत्त, झाड़ी, कुश के सहारे नदी में उतर रहा है। मानो भोजनोपरान्त आचमन करने ही जा रहा है। यहाँ उत्प्रेक्षा के साथ अग्निदेव में मानवीकरण भी है। कवि का यह सन्दर्भ उत्प्रेक्षालंकार की दृष्टि से प्रभावक है—

वनं सवृक्षक्षुपगुल्ममेतत् प्रकाममाहारमिवोपभुज्य ।
कुशानुसारेण हुताशनोऽसौ नदीमुपस्प्रष्टुमिवावतीर्णः ॥[३]

उपयुक्त उदाहरणों के अतिरिक्त १।१६, २।२७ और ३।१६ में भी उत्प्रेक्षा की योजना हुई है।

---

१. पञ्चरात्रम् १।३
२. वही, १।११
३. वही, १।१५

काव्यलिंग

तृतीय अङ्क मे काव्यलिंग के अनेक उदाहरण आये हैं। अभिमन्यु के युद्ध मे पकडे जाने पर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के परस्पर वार्तालाप मे काव्य-लिंग प्रयुक्त है। दुर्योधन अभिमन्यु के अपहरण के पश्चात् कहता है कि मेरा उसके पिता मे विरोध है अत लोग मुझे ही दोषी समझेंगे। यहाँ वह पाण्डवों का पुत्र बाद को है पहले वह मेरा पुत्र है। वशगत विरोध होने पर भी मेरा अभिमन्यु से किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है। यथा—

> मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेद-
> स्तदिह मयितु दोषो वक्तृभि पातनीय
> अथ च मम स पुत्र पाण्डवाना तु पश्चात्
> सति च कुल विरोध नापराध्यन्ति बाला: ।[1]

इसी अङ्क के पञ्चम, षष्ठ और सप्तम पद्य मे भी काव्यलिंग है।

अर्थान्तरन्यास

सामान्य द्वारा विशेप का समर्थन कर भास ने निम्नलिखित पद्य मे अर्थान्तरन्यास की योजना की है। भले ही भगवान दुर्योधन का दोप न कहें किन्तु जिसे कार्य है वह प्रार्थना करने से थकेगा नही, पूछेगा ही।

> काम दुर्योधनस्यैप न दोपमभिधास्यति
> अर्थित्वादपरिश्रान्त पृच्छत्येव हि कार्यवान् ॥[2]

अर्थान्तरन्यास की योजना २।३७ और ३।४ मे भी मिलती है।

स्वभावोक्ति

नाटककार भास ने मनुष्य, पशु, और प्रकृति के यथार्थ स्वभाव का चित्रण कर स्वभावोक्ति अलकार का समावेश किया है। कौरव सेना विराट के गो-धन का अपहरण करना चाहती है। गाय, बछडे और वृषभ स्वाभाविक रूप मे भागते हुए दिखलाई पडते हैं। कौरवों के उपद्रव के कारण गायो का स्वाभाविक वर्णन कवि ने किया है। कवि कहता है—

---

१ पञ्चरात्रम् ३।४

२. वही, २।६

द्रुतैश्चवत्सैर्व्यथितैश्च गोगणैर्निरीक्षणत्रस्तमुखैश्च गोवृषैः ।
कृतार्तनादकुलितं समन्ततो गवां कुलं शोच्यमिहाकुलाकुलम् ॥[1]

स्वभावोक्ति की योजना प्रथम अङ्क के चतुर्थ पद्य में भी हुई है। यहाँ पक्षियों के स्वभाव का चित्रण किया गया है। इस रूपक मे ३।३ और ३।१७ में रूपक अलंकार; २।३२ और ३।२५ में विरोधाभास; १।५३ और ३।३ में अप्रस्तुत प्रशंसा; २।४ में तद्गुण; २।२ में प्रत्यनीक; १।२ में सहोक्ति; ३।५ में परिसंख्या; ३।६ में सन्देह; ३।७ में अपह्नुति; ३।८ में विभावना; ३।१० में अतिशयोक्ति; ३।११ में अनुभाव; ३।१४ में दीपक और ३।३५ में छेकानुप्रास की योजना सम्पन्न हुई है।

ऊरुभङ्ग : अलङ्कार योजना

इस नाटक में रूपक, स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, सहोक्ति, उपमा, पुनरुक्त-पदाभास, और छेकानुप्रास आदि अलंकार प्राप्त हैं। रूपक के सांग और निरंग दोनों भेदों के उदाहरण मिलते हैं। नाटककार भास ने स्वभावोक्ति का इस नाटक में अत्यन्त सजीव नियोजन किया है। चर, अचर के स्वभाव प्रस्तुतीकरण में नाटककार को पूरी सफलता मिली है। प्रयुक्त अलंकारों का विवरण निम्न प्रकार है—

सांगरूपक—१।१, १।६, १।१३
रूपक—१।२, १।२७, १।२९, १।१३, १।४३, १।४६, १।५१
स्वभावोक्ति—१।७, १।८, १।१७, १।१९, १।२३, १।२४, १।२५
उत्प्रेक्षा—१।३, १।९, १।१२
सहोक्ति—१।२७, १।६२
उपमा—१।५९
पुनरुक्तवदाभास—१।५
छेकानुप्रास—१।१५, १।२२, १।३६
मालोपमा—उत्प्रेक्षा—१।४
उत्प्रेक्षा-स्वभावोक्ति-अनुप्रास—१।११
उपमा-स्वभावोक्ति—१।२६

१. पञ्चरात्रम, २।१

अभिषेक नाटक - अलङ्कार योजना

प्रकृत नाटक मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, उल्लेख, स्वभावोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, आदि अलङ्कारो का सुन्दर प्रयोग किया है। उपमा की योजना करते हुआ लिखा है—

कुतो नु खल्वेष समुत्थितो ध्वनि,
प्रवर्तते श्रोत्रविदारणो महान्।
प्रचण्डवातोद्धतभीमगामिना,
बलाहकानामिव खेऽभिगर्जताम् ॥[1]

नाटककार ने पूर्णोपमा द्वारा युद्ध-भूमि का दृश्य समुद्र के समान अंकित किया है।

""अहा ! यह युद्ध-भूमि भय के साथ देखने योग्य है। यहाँ राक्षसो के शरीर-स्वरूप जल से व्याप्त वानर-स्वरूप तरंगशालिनी तलवार रूपी ग्राहो से भरी तथा रामबाण से वेगवती यह युद्धभूमि समुद्र के समान प्रतीत हो रही है। नाटककार ने युद्धस्थली का सांगोपांग दृश्य अंकित करने के लिए उसे "उदधिरिव" कहा है। यथा—

रजनिचरशरीरनीरकीर्णा कपिवरवीचियुता वरासिनक्रा।
उदधिरिव विभाति युद्धभूमी रघुवरचन्द्रशरासुवृद्धवेगा ॥[2]

सागर में जल होता है और यहाँ रणभूमि मे राक्षसो का शरीर ही जल है समुद्र मे लहरें होती हैं, यहाँ रणभूमि मे वानर योद्धा-रूपी लहरें हैं। समुद्र में मगरमच्छ आदि रहते हैं। यहाँ तलवार ही मगरमच्छ है। समुद्र चन्द्रकिरणो से वृद्धिगत होता है और यह रणभूमि राम के बाणो से संवर्द्धित है। इस प्रकार पूर्णोपमा की योजना प्रस्तुत हुई है।

युद्धभूमि मे राक्षस-समूह वानरों द्वारा मारा जा रहा है। इस तथ्य का निरूपण 'शैला वज्राहता इव'[3] द्वारा किया गया है।

---

१. अभिषेकनाटकम्-चौखम्बा संस्करण ६।२
२. वही, ६।२
३. वही, ६।३

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा का प्रयोग भावों को चमत्कृत करने के लिए कवि ने किया है। कवि वाली के धराशायी होने पर सुग्रीव के दुःखित होने का चित्रण करता है। कवि कहता है—

करिकरसदृशौ गजेन्द्रगामिंस्तव रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ च।
अवनितलगतौ समीक्ष्य बाहू, हरिवर! हा पततीव मेऽद्य चित्तम्।[१]

हे गजेन्द्र की तरह चलने वाले हाथी के शुण्डादण्ड के समान आपके बाहुओं को शत्रु के बाणों द्वारा क्षत-विक्षत हो कर पृथ्वी पर लोटते देख कर मेरा हृदय बैठा जा रहा है।

यहाँ 'पततीव' में क्रिया के साथ 'इव' का प्रयोग होने से उत्प्रेक्षा की योजना की गयी है।

रूपकालंकार

रूपक की योजना कई पद्यों में मिलती है। नाटककार भास ने परम्परित रूपक का उदाहरण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है—

मम शरवरवातपातभग्ना कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता।
उदधिजलगतेव नौ विपिन्ना निपतति रावणकर्णधारदोषात्॥[२]

जिस प्रकार नौका वायु के द्वारा गिर कर तरंगों से प्रताड़ित हो कर जल के मध्य डूब जाने पर कर्णधार के दोष से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार यह लंका नगरी मेरे बाणों से भग्न हो कर वानर-सेना द्वारा समुद्र में डुबा दिये जाने पर रावण के दोष से नष्ट हो जायगी। यहाँ पर परम्परित रूपक है।

उपमा और रूपक की योजना निम्नलिखित पद्य में हुई है। इन दोनों अलंकारों के प्रयोग से यहाँ वरुण का सौन्दर्य अभिव्यक्त हुआ है। कवि ने लिखा है—

सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो
विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः।

---

१. अभिषेक नाटकम् १।२२
२. वही, ४।१८

समधिगलनदीसहस्रबाहु—
'र्हरिरिव भाति सरित्पतिः शयानः ॥[1]

यहाँ 'हरिरिव' में उपमालंकार है और 'समधिगतनदीसहस्रबाहु' में रूपक है। अतः उपमा और रूपक की योजना विद्यमान है।

अप्रस्तुत प्रशंसा

अप्रस्तुत प्रशंसा के वर्णन से प्रस्तुत की प्रतीति कराना अप्रस्तुत प्रशंसा है। नाटककार भास ने निम्नलिखित पद्य में उक्त अलंकार का समावेश किया है—

प्रसीद राजन् ! वचनं हितं मे प्रदीयतां राघवधर्मपत्नी।
इदं कुलं राक्षसपुङ्गवेन त्वया हि नेच्छामि विपद्यमानम् ॥[2]

उल्लेख

विषय भेद से जहाँ एक वस्तु का अनेक रूप से वर्णन किया जाय, वहाँ उल्लेखालंकार होता है। अंगद बाली के समीप जा कर उसका अनेक प्रकार से कथन करता है—

अतिबलसुखशायी पूर्वमासीर्हरीन्द्र' क्षिततलपरिवर्ती क्षीणसर्वाङ्गचेष्टः।
शरवरपरिवीतं व्यक्तमुत्सृज्य देहं, किमभिलपसि वीर स्वर्गमद्याभिगन्तुम् ॥[3]

बालचरित

बालचरित नाटक में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि प्रमुख अलंकारों का प्रयोग हुआ है। सामान्यतः इस रूपक में उपमा का ही बाहुल्य है। यहाँ हम उपमा अलंकार के एक-दो उदाहरण प्रस्तुत कर कवि की उपमान-योजना का महत्व प्रस्तुत करेंगे—

अप्रकाशा इव दिशो घनीभूता इव द्रुमाः।
सुनिविष्टस्य लोकस्य कुतो रूपविपर्ययः ॥[3]

---

१. अभिषेक नाटकम्, ४।२
२. वही, ३।१६
३. वही, १।२५

दिशाएँ प्रकाशविहीन-सी, वृक्ष सम्पुञ्जित-से दिखलायी पड़ते हैं। इस अन्धकार ने संसार के रूप को ही बदल दिया है। यहाँ पर 'अप्रकाशा इव' 'घनीभूता इव' में उपमा है।

दुद्धिणविणट्ठजोह्वा लत्ती वट्टइ णिमीलिआकाला।
पम्पाउदप्पसुत्ता णीलणिवसणा जहा गोवी ॥[1]

यहाँ मेघ से आच्छन्न होने के कारण चन्द्र प्रकाश से विहीन ज्योत्स्ना सब आकारों को छिपाने वाली यह रात्रि, नीले वस्त्र से अंगों को ढँके हुए किसी सोती हुई गोपी के समान मालूम पड़ रही है।

जब शाप कंस के घर में प्रविष्ट होने लगता है तो राजा उससे पूछता है—कौन चला आ रहा है ? इस अवसर पर कंस के मुख से शाप का निरूपण विभिन्न उपमानों द्वारा किया गया है—

कोऽयं विनिष्पतति गर्भगृहं विगाह्य,
उल्कां प्रगृह्य सहसाञ्जनराशिवर्णः।
भीमोग्रदंष्ट्रवदनो ह्यहिपिङ्गलाक्षः,
क्रोधो महेश्वरमुखादिव गां प्रपन्नः।[2]

इस प्रकार उपमा के अन्य प्रयोग २।२, ३।२, ३।१४ और ५।११ में भी प्राप्त हैं।

तुल्ययोगिता

नाटककार भास ने अनेक प्रस्तुतों अथवा अनेक अप्रस्तुतों का सम्बन्ध एक ही साधारण धर्म से बतला कर तुल्ययोगिता की योजना की है। यथा—

सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जं
मेरुं न कम्पयति वायसपक्षवातः।
हास्योऽसि भोः! समकरक्षुभितोर्मिमालं,
पातुं य इच्छसि कराञ्जलिना समुद्रम् ॥[3]

---

१. बालचरितम्, चौखम्बा संस्करण, १।१९
२. वही, २।४
३. वही, २।६

कनकमय अत्यन्त सुन्दर गुफाओं से, शिखरों से और लतागृहों से युक्त सुमेरु पर्वत को कौए के पंख की हवा नहीं हिला सकती। अरे मकर से मथित तरंग समूहों वाले जलनिधि को तो तुम हाथ की अंजलि से पीना चाहते हो, अतः हास्यास्पद हो।

उदाहरण

जहाँ एक बात कह कर उसके स्पष्टीकरण के लिए वैसी ही दूसरी बात कही जाये वहाँ उदाहरणालंकार होता है। यथा—

> अहं हि नील कलहस्य कर्ता सङ्ग्रामशूरो नपराङ्मुखश्च।
> निहन्मि कंसं युधि दुर्विनीतं क्रौञ्चं यथा शक्तिधरः प्रकृष्टः॥[१]

अर्थात्, मैं नील नामक योद्धा, कलह उपस्थित करने वाला, संग्राम में शूर और कभी युद्धभूमि से पलायन करने वाला नहीं हूँ। मैं दुराचारी कंस को युद्ध में मारूंगा, जैसे कुमार कार्तिकेय ने क्रौंच नामक पर्वत को विदीर्ण किया था।

- इस रूपक में १।१५ में उत्प्रेक्षा, और १।१८ में रूपक की योजना की गयी है।

अविमारक - अलंकार योजना

अविमारक में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि प्रसिद्ध अलंकारों का समावेश प्राप्त होता है। उपमा की योजना करते हुए लिखा है—

> जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा
> पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात्।
> कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
> कुलद्वयं क्षुब्धजला नदीव॥[२]

जमाता की सम्पत्ति का विचार बिना किये, यदि अपनी रुचि से कन्या किसी को दी गयी तो वह कन्या अपने दोष से श्वसुरकुल और पितृकुल इन दोनों कुलों का नाश कर डालती है, जिस प्रकार बाढ़ वाली नदी अपने दोनों तटों को गिरा देती है।

---

१. बालचरितम्, २।२३
२. अविमारकम्, चौखम्बा संस्करण, १।३

अविमारक कुरंगी को स्वप्न में देखता है और जागने पर उसे उसका उसी प्रकार स्मरण होता है, जिस प्रकार किसी को पूर्व जन्म का जाति स्मरण होता है। कवि ने इसी उपमा का निवन्धन निम्न प्रकार किया है—

> अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गी
> वालां भयाकुलविलोलविषादनेत्राम्।
> स्वप्नेषु नित्यमुपलभ्य पुनर्विवोधे
> जातिस्मरः प्रथमजातिमिव स्मरामि॥[१]

सूर्यास्त का वर्णन करते हुए नाटककार भास ने उपमा का बड़ा ही सटीक प्रयोग किया है—

> पूर्वं तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता।
> सन्ध्यारुणा भातिच पश्चिमाशा।
> द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्ष
> यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम्॥[२]

इसी प्रकार उपमा का प्रयोग २।१३, ४।११, ५।१ में भी पाया जाता है।

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा की योजना कर कवि ने कल्पना का मूर्त रूप प्रस्तुत किया है। इस अलंकार के समस्त उदाहरणों को उपस्थित करना तो शक्य नही, पर दो उदाहरण उपस्थित करने का लोभ सवरण नही किया जा सकता। कालरात्रि के चित्रण में कवि ने कल्पना की है कि मार्ग स्थित नदियों में अंधकार प्रवाहित हो रहा और भवन नदी तट प्रतीत हो रहे हैं। इस गहन अंधकार को उसी प्रकार पार किया जा सकता है जिस प्रकार नौका के सहारे नदी। यहाँ उपमामूलक उत्प्रेक्षा विद्यमान है। तिमिर की जलस्थान पर उत्प्रेक्षा की गयी है और भवनों की नदी तट के स्थान पर। भास का यह चित्रण महाकाव्य से कम नहीं है।

> तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
> पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः।

---

१. अविमारकम्, चौखम्वा संस्करण, २।१
२. वही, २।१२

तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥[१]

उत्प्रेक्षा की एक अन्य योजना कवि ने चतुर्थ अक मे की है। विद्याधर अविमारक को तलवार देता है। अविमारक इस खड्ग का उत्प्रेक्षा द्वारा चित्राकन करता है। इस सन्दर्भ मे कवि ने उत्प्रेक्षा का चमत्कार अकित किया है। कवि कहता है कि यह छिपा हुआ वज्र है या बिजली ही किसी तरह खड्ग के रूप में परिवर्तित हो गयी है अथवा सूर्य के प्रभाव को मन्द करती हुई दावाग्नि वन मे व्याप्त हो गयी है? इस स्थल पर खड्ग का वज्रवत प्रतीत होना अथवा तड़ित रूप को प्राप्त होना उत्प्रेक्षा है। इसी प्रकार खड्ग की कान्ति का विस्तार हो कर दावाग्निवत् प्रतिभासित होना भी उत्प्रेक्षा है। कवि ने लिखा है—

प्रच्छन्नरूपस्त्वशनिः कथञ्चित्
खड्गीकृतः स्यात्तु तडित्कलापः।
निर्भर्त्संयन् सूर्यकृता प्रदीप्ति
वनं दवाग्निः सहसाभ्युपैति ॥[२]

उदात्त

जहाँ किसी लोकोत्तर वैभव अथवा महान् चरित्र की समृद्धि वर्ण्य वस्तु के अङ्ग रूप मे आती है, वहाँ उदात्त अलकार होता है। नाटककार भास ने कुन्ति भोज के भवन का वर्णन समृद्ध रूप मे किया है। यह भवन स्वर्ण, रजत एव मुक्ता-मणियो से निर्मित है। इसके मणिरत्नमय शिला-खण्डो पर हंस सो रहे हैं। यहाँ की बालुका वैदूर्य तथा मुक्ताओं से निर्मित है। मूगे के खम्भे बने हैं और मणि-दीप प्रज्ज्वलित होने के कारण साधारण दीपो का प्रकाश फीका पड़ गया है। इस प्रकार नाटककार ने लोकोत्तर समृद्धि का चित्रण किया है।

हसा स्वपन्ति मणिरत्नशिलातलेषु
वैदूर्यमौक्तिककृताः सिकताप्रतानाः

---

१. अविमारकम्, ३।४
२. वही, ४।१५

स्तम्भाः प्रवालविहिताः किमिह प्रलापै-
मन्दीभवन्ति मणिदीपहताः प्रदीपाः ॥[१]

दृष्टान्त

नाटककार भास ने उपमेय उपमान एवं उनके साधारण धर्मों को परस्पर विम्ब-प्रतिविम्ब भाव में गुम्फित कर दृष्टान्त की योजना की है।

अविमारक कुन्तिभोज के राजभवन में प्रवेश करता है। वहाँ का उसे मार्ग ज्ञात नहीं है। फिर भी वह उस प्रासाद पर चढ़ना चाहता है। उसके इसी संकल्प का दृष्टान्तालंकार के रूप में चित्रण हुआ है। बताया है कि प्रियतमा के यहाँ आकर प्रासाद पर चढ़ने में मुझे क्या शंका है? नाल में संलग्न कण्टकों के भय से कौन व्यक्ति नलिनी का त्याग करता है? कवि कहता है—

कान्तासमीपमुपगम्य मनोभिलाषा-
द्धर्म्याधिरोहणमतेर्मम का विशङ्का
संसक्तदिलगतकण्टकभीतचेता—
स्तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति ॥[२]

भास ने इस रूपक में पाँचवें अङ्क के छठे पद्य में माला रूपक की भी सुन्दर योजना की है।

प्रतिमा नाटक : अलङ्कार योजना

अलंकार समृद्धि की दृष्टि से यह नाटक अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें मुद्रा, पूर्णोपमा, स्वाभावोक्ति, परिकरांकुर, काव्यलिंग, उत्प्रेक्षा, अनुज्ञा, विरोधाभास, रूपक, परिकर, व्यतिरेक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, पर्यायोक्ति, श्लेष, भाविक, निदर्शना, अप्रस्तुत प्रशंसा, यथासंख्य, उदात्त, सहोक्ति और तद्गुण अलंकार प्राप्त हैं।

मुद्रालंकार का प्रयोग तो मंगलाचरण के रूप में सर्वत्र पाया जाता है। उपमा की योजना बीस स्थलों पर हुई है। इन सभी स्थलों के उदाहरणों को प्रस्तुत करना तो सम्भव नहीं है। पर, कतिपय उपमाओं के उदाहरण उप-

---

१. अविमारक, ३।१६
२. वही, ३।१५

स्थल कर नाटककार भास के काव्य-चमत्कार का अङ्कन किया जायगा। प्रथम अङ्क में पूर्णोपमा की योजना करते हुए कहा है—

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव।[1]

यहाँ हसी उपमेय प्रतिहार रक्षी उपमान है। काशाशुक वसन बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने से साधर्म्य है। और 'इव' उपमावाचक शब्द है। अतएव यहाँ पूर्णोपमा है।

लक्ष्मण के उग्रक्रोध का चित्रण करते हुए कवि ने उपमा की योजना की है। कवि कहता है—

त्रैलोक्य दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता॥[2]

यहाँ लक्ष्मण की भ्रुकुटि उपमेय है और नियति उपमान है। इव उपमावाचक शब्द है। नियति और मस्तक तक चढ़ी हुई भृकुटि इन दोनों में स्थिरत्व साधारण धर्म है। यहाँ उपमा द्वारा नाटककार ने रोष की तीव्रता और दुःसहता अभिव्यञ्जित की है।

भास ने उपमा का निम्नलिखित पद्य मे संयोजन किया है।

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता[3]॥

सूर्य के समान राम चले गये। सूर्य के पीछे जिस प्रकार प्रकाश चलता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी चले गये। सूर्य और दिवस के अवसान पर जिस प्रकार छाया भी दिखलाई नहीं पड़ती, उसी प्रकार सीता भी उन्हीं के साथ चली गयी। यहाँ सूर्य के समान कहने से राम की तेजस्विता प्रकट होती है।

नाटककार भास ने उपमा की योजना भरत वाक्य द्वारा निम्न प्रकार की है—

अयोध्यामटवीभूता पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव॥[4]

---

१. प्रतिमा नाटक, चौखम्बा संस्करण, १।२

२. वही, १।२१

३. वही, २।१०

४. वही, ३।५

भरत कहते हैं—पिता और भाई से शून्य अयोध्या जंगल के समान है। मैं अयोध्या की ओर उस प्रकार जा रहा हूँ जिस प्रकार प्यासा सूखी नदी की ओर भागता है।

इस प्रकार १।२१, २।१६, ३।१६, ४।११, ५।७, ५।१५, ६।२, ६।४, ६।१२, ७।४, ७।६, ७।६ और ७।१० में उपमालंकार प्राप्त होता है।

उत्प्रेक्षा

साम्यमूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। नाटककार भास ने इस अलंकार की योजना अनेक स्थलों पर की है। यहाँ हम उनकी उत्प्रेक्षा के दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कवि ने प्रथम अङ्क में बताया है कि रघुवंश के मूलभूत दशरथ पर दैवी प्रहार होने के समूल रघुवंश पर दैवी प्रहार हुआ है, ऐसा मानता हूँ। यहाँ 'मन्ये' का ग्रहण होने से उत्प्रेक्षा है।

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥[1]

चतुर्थ अङ्क में जब ससैन्य भरत राम से मिलने के लिए प्रस्थान करते हैं तो राम उस परिचित ध्वनि को सुन कर आत्मीयता का अनुभव करते हैं। लक्ष्मण भी बन्धुभाव की अनुभूति करते हैं। इस अवसर पर कवि ने स्वर संयोग के कारण अभय प्रदान की सम्भावना किये जाने से उत्प्रेक्षा का गुम्फन किया है। नाटककार कहता है—

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे वृक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः
यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः।[2]

काव्यलिंग

काव्यलिंग की योजना वर्णनीय-विषय के हेतु रूप में किसी वाक्यार्थ या पदार्थ का प्रतीयमान प्रतिपादित कर की जाती है। यहाँ काकु वक्रोक्ति और

---

१. प्रतिमा नाटकम्, १।११
२. वही, ४।७

काव्यलिंग का संयुक्त उदाहरण आया है। क्वचित् कदाचित् ये दोनों अलंकार एक साथ आते हैं।

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भोः ! विस्मयः ।[1]

यहाँ विस्मयाभाव रूप हेतु का उपन्यास है। विस्मयः यहाँ विस्मयाभाव रूप हेतु के लिए उपन्यस्त है। अतः काव्यलिंग है। विस्मयः के उत्तर में किसी भी स्थल में विस्मय रूप काकुवक्रोक्ति सम्भव है।

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते ।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥[2]

भ्रातृ राज्य अपहारी रूप लोभ हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार है। साथ ही काकुवक्रोक्ति भी है।

इसी प्रकार २।१२ में छन्द हेतु द्वारा समर्थन होने से काव्यलिंग है। २।१८, ४।३, ४।२०, ५।१७ में भी काव्यलिंग पाया जाता है।

परिकरांकुर

साभिप्राय विशेष्य की योजना कर परिकरांकुर अलंकार निबद्ध किया जाता है। यथा—

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्या कृताः प्रजाः ।
रामाभिधानं मेदिन्या शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥[3]

यहाँ 'भूमिपालेन' साभिप्राय है। अतः परिकरांकुर है। राम में चन्द्र का आरोप होने से रूपक अलंकार है। प्रजा के कृतकृत्य करने में उत्तर वाक्यार्थ के हेतु होने से काव्यलिंग है।

परिकर

विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग करके भास ने परिकर अलंकार की योजना अनेक स्थलों में की है। यथा—

---

१. प्रतिमा नाटकम्, १।५
२. वही, १।१५
३. वही, १।४

तातं धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।
दोषेषु वाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥[१]

इस पद्य में प्रयुक्त सभी विशेषण साभिप्राय हैं।

कंचुकी राम से निवेदन करता है कि महाराज बहुत दुःखी हो रहे हैं, अतः आप वन मत जाइये—

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम्
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥[२]

यहाँ 'वधूसहाय' और 'सौभ्रात्र' ये दोनों विशेषण साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। इनसे गमन की अभिव्यक्ति होती है।

परिकर की योजना करते हुए भास ने लिखा है—

हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं वत मे तनूजाः ॥[३]

राम, लक्ष्मण और सीता के वन जाने से दशरथ विलाप करते हुए उक्त मनोवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं। यहाँ विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकरालंकार है।

परिकर की योजना २।२, २।६, २।१३, ४।२, ४।५, ४।८, ४०।१० और ४।२१ में भी पायी जाती है।

व्यतिरेक

उपमान की अपेक्षा उपमेय का गुणोत्कर्ष दिखला कर भास ने व्यतिरेक का प्रयोग किया है। यथा—

---

१. प्रतिमा नाटकम्, १।२२
२. वही, १।३०
३. वही, २।४

मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय ।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम् ॥[१]

यहाँ मित्राज्ञापालन रूप यह अन्य किसी को आचरण करने के लिए प्राप्त नहीं हुआ है, मुझे प्राप्त है। अतएव इतर की अपेक्षा स्वोत्कर्ष सूचित होने से व्यतिरेकालंकार है।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य न समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥[२]

हर्म्यं तु प्रतिषिद्धैः प्रतिहारिकाकारितप्रवेशैः प्रणामपूर्वकं चोपास्यते, इति तस्माद् व्यतिरेकः।

राम भरत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि मैंने बहुत समय लगा कर कुछ ही यश प्राप्त किया, पर भरत ने थोड़े से समय में बहुत यश संचित कर लिया है—

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम् ।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥[३]

राम की अपेक्षा भरत के यश का आधिक्य वर्णित है, अतः व्यतिरेक अलंकार है।

पर्यायोक्ति

अभीष्ट अर्थ का कथन सीधे रूप में न कर प्रकारान्तर से करने पर पर्यायोक्ति अलंकार होता है। यथा—

अनपत्या वयं राम पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किन्न कृतं त्रयम् ॥[४]

राम का वियोग अत्यन्त कठिन और दुस्सह है, इस अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन वचन भंगी द्वारा किया गया है।

लक्ष्मण वल्कलवस्त्र की याचना करते हुए राम से कहते हैं—

---

१. प्रतिमा नाटकम्, १।२४
२. वही, ३।१३
३. वही, ४।२६
४. वही, २।८

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्घं प्रदाय मे ।
चीरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वासि मत्सरी ॥[१]

यहाँ लक्ष्मण का वन जाना और इसकी स्वीकृति राम से प्राप्त करना अभीष्ट अर्थ है, इस अर्थ की अभिव्यञ्जना वल्कल याचना द्वारा होने से पर्यायोक्ति अलंकार निष्पन्न हुआ है।

लक्ष्मण सीता से अनुरोध करते हुए कहते हैं—

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्त्तुमिच्छसि ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सेव्यो भविष्यति ॥[२]

वन जाने की अनुज्ञा लेना अभीष्ट है। इस अर्थ की अभिव्यक्ति लक्ष्मण सीता से अनुरोध करते हुए निम्न प्रकार करते हैं—

आर्य की चरण-सेवा करने का आपका अधिक अधिकार है, पर मेरा भी कुछ अधिकार है। आप अपने अधिकार का प्रयोग कर दक्षिण-चरण की सेवा कीजिये और मैं बायें चरण की सेवा करूँगा। अन्य अलंकार निम्न प्रकार हैं—

स्वभावोक्ति	१।३, २।३, ३।२, ५।२, ७।३
अनुज्ञा	१।१६
समुच्चय	१।४, १।१६
रूपक-उत्प्रेक्षा-विरोधाभास	१।१७
दृष्टान्त-अर्थान्तरन्यास	१।२५
परम्परित रूपक	१।२८
दीपक-अर्थान्तरन्यास	१।२९
मालोपमा-उत्प्रेक्षा	२।१
श्लेष	२।११
भाविक	३।३
काव्यलिंग-निदर्शना	३।१२
अप्रस्तुत प्रशंसा	३।१८
अनुमान	३।२२
वाक्योपमा	३।२३
रूपक	४।१

१. प्रतिमा नाटकम्, १।२६
२. वही, १।२७

यथासंख्य	४।४
उदात्त	४।१७
दृष्टान्त	५।१८
सहोक्ति	६।१६
उपमा-परिकर	७।१२
श्लेषानुप्राणितोपमा	७।१४
तद्गुण	पृ० १२, सोवण्ण विअ वक्कलसवुत......... ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण - अलंकार योजना

प्रस्तुत रूपक रूप मे अर्थान्तरन्यास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यलिंग, अनुमान, सार, पर्याय, दृष्टान्त, विषम प्रभृति अलकारों का प्रयोग पाया जाता है। नाटककार भास ने अपनी इस अलकार योजना द्वारा भावों का उत्कर्ष दिखलाया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि की आधार शिला साम्य भावना है। भास ने विभिन्न क्षेत्रो से उपमानों का ग्रहण कर भावों को सशक्त और प्रेषणीय बनाया है। उपमा की योजना निम्न उदाहरण में की गयी है—

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव ।
यदि ता न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ॥[१]

यहां 'सुभद्रामिव गाण्डीवी' और 'नाग. पद्मलतामिव' उपमानों से राजा द्वारा वासवदत्ता के अपहरण की व्यञ्जना की गयी है।

अन्य उदाहरण

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव ।
मोचयामि न राजान नास्मि यौगन्धरायणः ॥[२]

राहुग्रस्त चन्द्रमा उपमान द्वारा शत्रुग्रस्त राजा उपमेय का वर्णन किया गया है, अतः उपमा अलङ्कार है।

अर्थान्तरन्यास

सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का समर्थन कर अर्थान्तरन्यास

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धराण, चौखम्बा संस्करण, ३।८
२. वही, १।१६

की योजना की गयी है। यौगन्धरायण महासेन की सेना की असमर्थता व्यक्त करता हुआ कहता है—

व्यक्तं बलं बहु च तस्य न चैककार्यं
संख्यातवीरपुरुषं च न चानुरक्तम् ।
व्याजं ततः समभिनन्दति युद्धकाले
सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् ॥

यहाँ सेना की असमर्थता रूप विशेष का 'प्रेम के बिना सब सेना कलत्र रूप' सामान्य से समर्थन किया है। अतः अर्थान्तरन्यास है।

काव्यलिंग और परिकर पर आधृत अप्रस्तुत प्रशंसा

यौगन्धारायण कहता है कि शत्रु सेना से पीड़ा न पायी हुई और धर्म-संकर से रहित यह वत्सराज की वसुन्धरा विपत्ति में पड़े हुए की रक्षा कर रही है। यथा—

परचक्रैरनाक्रान्ता धर्मसङ्करवर्जिता ।
भूमिर्भर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति ॥[1]

अर्थान्तरन्यास और अप्रस्तुत प्रशंसा

ये दोनों अलंकार निम्नलिखित पद्य में समाहित हैं—

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥[2]

काव्यलिंग और पर्यायोक्ति २।३, अप्रस्तुत प्रशंसा २।४, काव्यलिंग २।७, १।५, ३।३, अनुमान २।१, २।६, ४।१०, ४।११, सार २।११, पर्याय १।८, १।१४, २।१४, ४।६, ४।२२, दृष्टान्त १।१२, ४।१२, ४।२०, ४।२१, विषम ३।४, ४।६, ४।२३ में प्राप्त हैं।

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १।६
२. वही, १।१८

स्वप्नवासवदत्तम् : अलंकार योजना

इस नाटक में स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, स्मरण, अपह्नुति आदि प्रमुख अलंकारों की योजना पायी जाती है।

प्रकृत (उपमेय) का निषेध कर अप्रकृत – उपमान का आरोप किये जाने को अपह्नुति अलंकार कहते हैं। निम्नलिखित पद्य में इस अलंकार का प्रयोग हुआ है—

ऋज्वायता हि मुखतोरणलोलमाला
भ्रष्टा क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥[1]

स्मरण

किसी वस्तु के दर्शन आदि के तत्सदृश पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण होना स्मरण अलंकार है।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥[2]

उज्जयिनी से मेरे साथ चलते समय आत्मीय लोगों अर्थात् माता-पिता आदि की याद करने वाली, निकल कर भी आँखों के कोने में रुके हुए आँसुओं को प्रेम से मेरी ही छाती पर गिरानेवाली उज्जयिनी के राजा की कन्या, वासवदत्ता का स्मरण मुझे हो रहा है।

विषम

दो बेमेल पदार्थों के सम्बन्ध का निरूपण अथवा कार्य एवं कारण की गुण क्रियाओं का परस्पर वैपरीत्य प्रतिपादन किया जाय अथवा कार्यानुकूल फल प्राप्ति के स्थान पर तद्विपरीत परिणाम का कथन किया जाय तो विषम अलंकार होता है।

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥[3]

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, ५।३

२. वही, ५।५

३. वही, ५।६

अनुमान

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया ।
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥[१]

यहाँ अनुमान द्वारा तपोवन का निश्चय किया गया है। इस अनुमान का रूप निम्न प्रकार होगा—'इदं तपोवनं, निःशंकहरिणसंचारणाशालित्वादि-धर्मवत्वात्, यत्र तादृशधर्मवत्वं तत्र तपोवनं यन्नैवं तन्नैवमिति। इदमनुमानं वर्णनवैचित्र्याच्चमत्कारमाविष्कारोतीत्यत्रानुमानालङ्कारः।'

अनुमान अलङ्कार का अन्य उदाहरण—

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा,
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता,
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥[२]

शय्या ज्यों की त्यों बिछी हुई है, कुछ भी दबी नहीं, न उस पर की चादर सिकुड़ी है। सिर दर्द की ओषधियों से सिरहाने की तकिया जो कि बिलकुल साफ थी, कुछ भी मैली नहीं हुई है। यहाँ पर रोग की दशा में आँखों को लुभाने के लिए कोई सजावट भी नहीं बनाई गयी है और एक बात यह भी है कि रोगी आदमी बिछौने पर आकर फिर शीघ्र ही उसे स्वयं नहीं छोड़ता।

यहाँ उक्त हेतुओं द्वारा पद्मावती के आगमन का अभाव सिद्ध किया गया है।

काव्यलिंग

जहाँ वर्णनीय विषय के हेतु रूप में किसी वाक्यार्थ या पदार्थ का प्रतीय-मान प्रतिपादन किया जाय, वहाँ काव्यलिंग अलङ्कार होता है।

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, १।१२

२. वही, ५।४

परिहरतु भवान् नृपापवादं न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् वियोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥[1]

अर्थात्—तुम राजा की निन्दा को दूर करो, आश्रमवासियों से इस प्रकार रूक्ष वर्त्ताव करना उचित नहीं, क्योंकि ये स्वाभिमानी नगर की आपत्तियों को त्यागने के हेतु वन में रहते हैं।

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥[2]

द्वेष या आदर-भाव मन की भावना से होता है। यह स्वामी की स्त्री होगी, इस भावना से, इस पर मुझे बड़ी आत्मीयता हो रही है।

इस प्रकार १।७, १।६, ५।२, ५।७ में भी काव्यलिंग है।
स्वभावोक्ति और विरोधाभास १।१३
उपमा, विशेषोक्ति और विभावना ५।१
विषम और अर्थान्तरन्यास ४।६
उपमा और अर्थान्तरन्यास १।४
अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा ४।१
अर्थान्तरन्यास और अप्रस्तुतप्रशंसा ६।७
उपमा, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति ४।२

चारुदत्त : अलङ्कार योजना

चारुदत्त नाटक में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, आक्षेप, परिकर, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास, समुच्चय और अनुमान आदि अलङ्कारों की रसोत्कर्ष के हेतु योजना की गयी है। प्रमुख अलङ्कार निम्न प्रकार हैं—

उपमा १।६, १।११, १।२६, १।२७, ३।५, ४।१
अर्थान्तरन्यास ३।१५, ४।६
उल्लेख ३।११
आक्षेप ३।२
परिकर ३।१४, ४।४

१. स्वप्नवासवदत्तम्, १।५
२. वही, १।७

अनुमान ३।१३, १।१८
पर्याय १।२
उपमा और रूपक १।२६, ३।३
उपमा, रूपक और अतिशयोक्ति ३।१
उपमा और विरोधाभास १।३
उपमा और काव्यलिंग १।१०
उपमा और उत्प्रेक्षा ३।४
काव्यलिंग और उत्प्रेक्षा १।२१
उपमा और कारकदीपक १।६

अतएव स्पष्ट है कि तथ्य, अनुभूति, घटना और चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का प्रयोग भास ने किया है। प्रायः भास के सभी रूपकों में अलंकारों की इन्द्रधनुषी आभा विद्यमान है जो रंगों की छाया के समान आभासित होती है। नाटकों में सौन्दर्य और विशेषताओं को प्रकट करने के लिए भास द्वारा अलंकारों की योजना की गयी है।

प्रकृति वर्णन द्वारा सौन्दर्य का समावेश

संवेदनशील प्रतिभा होने के कारण कवि या नाटककार अपने परिवेश के विश्व को अन्य सामाजिकों से अधिक सूक्ष्मता से समझता है। विश्व-इतिहास की परम्परा में अपने जीवन की सीमित अवधि तथा विशाल ब्रह्माण्ड के बीच अपने व्यक्तित्व के सामर्थ्य को समझने वाला व्यक्ति ही मानव-अनुभूतियों के व्यापक और प्रामाणिक चित्र दे सकता है।

समाज-शास्त्र के क्षेत्र में मानव-अस्तित्व का तात्पर्य मानव तथा मानवेतर शेष विश्व का पारस्परिक सम्बन्ध माना गया है। ये सम्बन्ध ही युग-क्रम से विविध रूपों में परिवर्त्तित होते हुए मानव जाति के स्वभाव, व्यवहार, नीति-आचार, अनुभूति और संवेदनाओं के आदि रूप में अभिव्यक्त होते रहते हैं। अतः स्पष्ट है कि श्रेष्ठ कलाकार को मानव के साथ प्रकृति का भी यथार्थ ज्ञान होना आवश्यक है। प्रकृति स्वयं एक सजीव प्रणी की तरह काम करती है। कभी तो यह सहायक मित्र के समान संयोग में उद्दीपन का कार्य करती है और कभी नायक-नायिका की सुख-श्री का संवर्द्धन करती है। कभी यह सपत्नी या ईर्ष्यालु व्यक्ति के समान वियोग में हृदय को और भी अधिक संतप्त करती है। इस प्रकार प्रकृति में जीवन को समस्त गतिशीलता समाविष्ट है। प्रकृति के दृश्यों की

सख्या भावनाओ की भाँति ही अपरिचित है। इसमें विविध प्रकार की ऋतुएँ सम्मिलित हैं। ये ऋतुएँ मानव-मन का सम्पोषण या दहन करती हैं।

प्रकृति के प्रत्येक रूप परिवर्तन पर मन में जो भावनाओ का आरोह होता है, वह काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति ग्रहण करता है। वसन्त मे पुष्पो का विकास और उनकी सुगन्धित, शीतल मन्द-समीर और चारो ओर तरु-लताओ की नवीनता, ग्रीष्म मे पृथ्वी और आकाश मे ज्वाला, पशु-पक्षियों तक को छाँह की खोज, वर्षा मे घटाओ की छटा और मूसलाधार वर्षा, शरद मे शीतलता और खजन के दर्शन, हेमन्त मे तुषार और शीतल पवन एव शिशिर मे दिनमान की न्यूनता, चकवाक-चक्रवाकी की व्यथा और गीत की अधिकता, प्रेमकथा की अनुरजित इतिवृत्तात्मकता मे विशेष हृदयग्राहिणी हो गयी है। इस प्रकार मानव-जीवन के साथ प्रकृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। अनुभव की प्रत्येक परिस्थिति मे प्रकृति सहचरी प्रतीत होती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्रकृति का राशि-राशि सौन्दर्य विभिन्न रूपो मे कवि की काव्यानुभूति मे योग देता है—रूपात्मक सौन्दर्य के आलम्बन और पार्श्वभूमि के रूप में तथा कभी भावात्मक सौन्दर्य के उद्दीपन के रूप मे। प्रकृति में विशाल व्यापक सौन्दय है और काव्य सौन्दर्य का क्षेत्र है। प्रकृति के सौन्दर्य को ग्रहण करने के लिए कलाकार की दृष्टि चाहिये।

प्रकृति अनेक रूप-रगो मे बिखरी है, उसमे अनेक आकार-प्रकार के स्तर हैं, उसमे असख्य ध्वनियो का आरोह-अवरोह है और अनन्त गति और चेतना का विस्तार है। इन विविध रूपो को इन्द्रियानुभूति के रूप मे ग्रहण कर सुख-दु ख प्राप्त किये जाते हैं। कवि या कलाकार कल्पना की गम्भीरता से इस सौन्दर्य के धरातल को उन्नत बनाता है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन परोक्ष है, पर अनुभूति प्रत्यक्ष होती है। प्रकृति के इस सौन्दर्य-साहचर्य मे कवि की सजगता और चेतनता उल्लसित हो उठती है।

नाटककार भास ने प्रकृति की अनुभूति के साथ अपने मानवीय जीवन का प्रतिबिम्ब भी समन्वित किया है। इस अभिव्यक्ति में प्रकृति मानवीय जीवन के समानान्तर प्रतीत होती है। भास की प्रकृति मानसिक प्रतिबिम्ब के रूप में भावो का आलम्बन है और आश्रय की भावस्थिति का आरोप इस पर किया गया है। इन्होंने प्रकृति के गतिशील और प्रवाहित रूपों को सजीव एवं सप्राण बना दिया है। विभिन्न रूपो और व्यापारो मे व्यापक चेतना के साथ व्यक्तिगत जीवन का भी आरोप किया है। प्रकृति के क्रियाकलापो मे मानवीय जीवन-

व्यापार की झलक प्राप्त की है। भास द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रकृति-चित्रण को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

१ आलम्बन रूप में,
२. उद्दीपन रूप में,
३. प्रकृति की पार्श्वभूमि के रूप में,
४. भावों की पार्श्वभूमि के रूप में,
५. उपमान योजना या अप्रस्तुत योजना के रूप में,

आलम्बन के रूप में भास ने जहाँ प्रकृति-चित्रण किया है वहाँ उनकी दृष्टि सौन्दर्यपरक है। इस सौन्दर्यानुभूति ने ही कवि के काव्य को परम्परा के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया है। अपने पूर्व संस्कारों के कारण कवि प्रकृति के सामने अनुभूतिशील हो उठा है, और अपनी कल्पना से वह कलागत सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना करता है। कवि की प्रकृति जड़ नहीं, चेतन है। यही कारण है कि उन्होंने रसानुभूति को मनःस्थित-भाव संयोगों के आधार पर साधारणीकरण व्यापार द्वारा उद्घाटित किया है। हम यथास्थान इस प्रकार के उदाहरणों को उपस्थित करेंगे।

काव्य का विस्तार मानवीय भावों में हैं, जो मानवीय सम्बन्धों में स्थित है। आलम्बन रूप में जहाँ कलाकार का व्यक्तित्व प्रधान रहता है, वहाँ उद्दीपन रूप में वह पात्रों को प्रधानता देता है। प्रकृति की उद्दीपन शक्ति उसके सौन्दर्य और साहचर्य के साथ परिस्थिति के संयोग पर निर्भर है। भास ने अपने नाटकों में प्रकृति को कथानक की परिस्थिति और घटना स्थिति के रूप में चित्रित कर मनःस्थिति के उपयुक्त वातावरण उपस्थित किया है। विभिन्न मानवीय व्यापारों और कार्य-कलापों का संयोजन भी इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण द्वारा होता गया है। अंधकार, प्रकाश, सन्ध्या और ऊषा, रजनी आदि का जहाँ भी कवि ने उद्दीपन के रूप में चित्रण किया है वहाँ उसने परिस्थिति विशेष में मनःस्थिति का पूर्णतया स्पष्टीकरण कर दिया है। प्रकारान्तर से इसे प्रतीक या बिम्ब रूप में भी इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण को माना जा सकता है। पौराणिक कल्पनाओं का आरोप और उक्ति वैचित्र्य का प्रयोग भी इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में पाया जाता है। पार्श्वभूमि के रूप में भास ने विभिन्न प्रकार की भावात्मक स्थितियों का अंकन किया है, इस प्रकृति-चित्रण को उद्दीपन के एक भाग के रूप में ग्रहण कर सकते हैं पर सुविधा की दृष्टि से इसे पृथक् स्थान दिया जा रहा है।

जब आश्रय के मन में भावों की स्थिति अदृश्य आलम्बन को ले कर होती है, उस समय प्रकृति उन भावों के समानान्तर मालूम पड़ती है। इस रूप में केवल भावों की उमस का वर्णन होता है। यहाँ प्रकृति में प्रतिबिम्बित चेतना सन्निहित रहती है। भेद इतना ही है कि इसमें सम्पूर्ण जीवन की व्यापक अभिव्यक्ति प्रकृति पर छायी रहती है और इस रूप में मन स्थिति को भावना का संकेत मिलता है। यह उद्दीपन की प्रेरणा कभी अव्यक्त भाव को ऊपर ला कर अधिक स्पष्टता प्रदान करती है और कभी व्यक्त भाव को अधिक तीव्र बनाती है। भाव-स्थिति का यह व्यापार साम्य तथा विरोध के आधार पर चलता है। इसके साथ भावों की अभिव्यक्ति से ममता भी उपस्थित होती है। कभी भाव अप्रत्यक्ष आलम्बन के स्थान पर प्रत्यक्ष आधार ले कर व्यक्त होते हैं और कभी-कभी भावों की व्यञ्जना प्रकृति के आरोप के सहारे अधिक तीव्र होती है।

कथानक की साधारण परिस्थितियों और घटना-स्थितियों को प्रभावक बनाने के हेतु उद्दीपन रूप में जिस प्रकृति का चित्रण किया जाता है वह भावों की पार्श्वभूमि के रूप में माना जाता है। जब कोई कलाकार वर्णनों में आगे घटित होने वाली घटना या भाव के संकेत को उपस्थित करता है, उस समय प्रकृति भावों को ग्रहण करने वाले की मन स्थिति को प्रभावित करती है। जब कभी प्रकृति-वर्णन में व्यञ्जना से भावों की अभिव्यक्ति अंकित की जाती है उस समय भावात्मक वातावरण सामाजिकों के हृदय को प्रभावित करता है। भावों की पार्श्वभूमि में प्रकृति मानव-सहचरी के रूप में अपनी सहानुभूति से भावों को प्रभावित करती है और कभी प्रकृति विरोध उपस्थित कर भावों को उत्तेजित करती है। भास ने प्रमदवनों के चित्रण में माधवी मण्डप, मणिशिलानिर्मित चौकी, लताएँ, मेघ प्रतिच्छन्द भवन आदि के स्वरूपांकन में भावों की उत्तेजना हेतु पार्श्वभूमि के रूप में प्रकृति का ग्रथन किया है।

उपमान योजना के रूप में संस्कृत वाङ्मय के समस्त कवियों ने प्रकृति का उपयोग किया है। अतः वर्णनात्मक व्यञ्जना का एक रूप अलंकार भी है। साम्य और विरोध के संयोग उपस्थित कर अधिकांश उपमामूलक अलंकार एक प्रकार से रूप या भाव की व्यञ्जना करते हैं। अतः अलंकारों में रूप तथा भाव की व्यञ्जना के हेतु नाटककार भास ने प्रकृति से अनेक उपभोगों का चयन किया है। उनके ये उपमान या अप्रस्तुत विभिन्न स्थितियों की चित्रमयी योजना करने में समर्थ हैं। प्रकृति के प्रत्येक रूप और स्थिति में हमारे अन्तः-करण के समानान्तर भाव स्थित रहते हैं। इन भावों की अभिव्यक्ति उपमानों

द्वारा कवि करता है, जो कलाकार प्रकृति का जितना मार्मिक पारखी होता है वह कलाकार उतने ही सार्थक और सबल उपमानों का अपनी कृति में उपयोग करता है। नाटककार भास ने सादृश्य और अनुकरण के आधार पर प्रकृति से उपमानों को ग्रहण किया है। साधारणतः भास की प्रकृति अधिक अलंकृत और ऊहात्मक न होने पर भी संवेदना और सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने में सशक्त है। स्वभावोक्ति अलंकार की योजना भी प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत ही है। भास ने प्रकृति में व्याप्त सौन्दर्य को नाना उपमान के रूपों में ग्रहण कर सशक्त अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है।

भास द्वारा किया गया प्रकृति-चित्रण

भास के प्रकृति-चित्रण रोचक, यथार्थ और व्यापक हैं। जिस दृश्य या बिम्ब को उन्होंने ग्रहण किया है उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है। नाटककार के रूप में प्रकृति-चित्रण की जितनी आवश्यकता होती है, उसी के अनुसार भास ने सीमित परिधि के अन्तर्गत प्रसंगोपात्त दृश्यों का सूक्ष्मता और मनोहारिता के साथ वर्णन किया है। यह वर्णन इतना सजीव और सटीक हुआ है जिससे चित्तवृत्ति उन दृश्यों का अवगाहन करने लगती है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वन-प्रान्त की सन्ध्या का अत्यन्त रमणीय चित्रण किया गया है। राजगृह के वन-प्रदेश का तपस्वी आश्रम है। इस आश्रम में यौगन्धरायण और वासवदत्ता योजना को पूर्ण करने के लिए उपस्थित हैं। वासवदत्ता तापसियों को प्रणाम निवेदित करती है।तापसियाँ वासवदत्ता को शीघ्र ही पति-प्राप्ति का आशीर्वाद देती हैं। इसी समय सन्ध्या हो जाती है, इस सन्ध्या का कवि भास ने जीवन्त चित्रण किया है। कवि अनुमान अलंकार की योजना द्वारा अन्धकार के आगमन की तो सूचना देता है पर वह वासवदत्ता और यौगन्धरायण को अपनी आगे आनेवाली योजना को चरितार्थ करने के लिये भी प्रेरित करता है।

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥[1]

चिड़ियाँ घोसलों में जा रही हैं। मुनि लोग स्नान करने के लिए सरोवरों

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, १।१६

में प्रविष्ट हो रहे हैं। हवन की अग्नि प्रदीप्त हो गयी है। तपोवन में धूम्र व्याप्त हो रहा है, और सूर्य बहुत ऊँचे में गिरते हुए अपनी किरणों को समेट कर रथ लौटा कर धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर जा रहे हैं।

यहाँ सायंकाल का बड़ा ही नैसर्गिक चित्रण किया है।

भास ने तपोवन का जीवन्त-चित्रण करते हुए बताया है कि यहाँ सभी प्रकार की शान्ति और निश्चिन्तता वर्त्तमान है। पशु-पक्षी सभी निर्भय हो कर विचरण करते हैं। जो भी व्यक्ति इस शान्त वातावरण में प्रविष्ट होता है वह परम सुख और आह्लाद का अनुभव करता है। लावाणक ग्राम से आया हुआ ब्रह्मचारी आश्रम के चिह्नों को देख कर तपोवन का निर्णय करता है और शान्ति प्राप्त करने के लिए वहाँ प्रविष्ट होता है। यहाँ भी उद्दीपन के रूप में प्रकृति को प्रस्तुत किया गया है। इससे भावों की अभिव्यञ्जना तीव्रता को प्राप्त हुई है।

> विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
> वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
> भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
> निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः॥[१]

विश्वास हो जाने के कारण हरिण निश्चिन्त हो कर विचरण कर रहे हैं। चौंकते तक नहीं। लाड-प्यार से पाले गये सभी पेड़-पौधे पुष्प और फलों से युक्त हैं। स्वतन्त्रतापूर्वक कपिला गायों के समूह-के-समूह विचरण कर रहे हैं। चारों ओर परती भूमि पड़ी है, जहाँ-तहाँ से धूआँ उठ रहा है। अतः यह निश्चित ही तपोवन है।

भास को प्रकृति इतनी अधिक प्रिय है कि उन्होंने अपनी उपमाओं के लिए भी प्रकृति से उपादान संचित किये हैं। शरत्कालीन सारस-पंक्ति का कवि वर्णन करता हुआ कहता है—

> ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
> सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्त्तनेषु
> निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
> सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम्॥[२]

---

१. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, १।१२
२. वही, ४।२

पतली, दूर तक फैली, कहीं नीची कहीं ऊँची मुड़ने के समय सप्तऋषि मंडल के समान टेढ़ी और केंचुल के समान निर्मल तथा नभोमडल को बाँटने वाली सीमा के समान यह सारस-पंक्ति दिखलायी पड़ रही है।

कवि ने यहाँ शरदकालीन सारस पंक्ति का चित्रण उपमान योजना के रूप में किया है। कवि को इस बात का पूर्ण परिज्ञान है कि नाटकीय घटनाओं के विकास में प्रकृति किस प्रकार योगदान करती है। हम यहाँ विस्तार-भय के कारण अधिक उदाहरण प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं।

अभिषेक नाटक में भास ने सूर्यास्त का चित्रण करते हुए प्रकृति का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव नियोजित किया है। यथा—

अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरञ्जितवपुः प्रतिभाति सूर्यः।
रक्तोज्ज्वलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥[१]

अस्ताचल के शिखर पर पहुँचे हुए एवं क्षीण किरण तथा सन्ध्या राग-रंजित भगवान् सूर्य ऐसे दिखलायी पड़ रहे हैं जैसे लाल उजले वस्त्र से आवृत्त गजकुम्भ पर सुवर्ण रचित गोलाकार तिलक ही हो।

अप्रस्तुत योजना के रूप में यह सूर्य-अस्त का चित्रण किया गया है। राम और विभीषण द्वारा सम्पादित हुए वार्तालाप की भी अभिव्यञ्जना करता है और इस बात का सूचक है कि राम-रावण की सेना के मध्य होने वाले युद्ध में राक्षसों की अत्यधिक क्षति होगी। आगामी राक्षस-संहार की सूचना भी इसी से प्राप्त होती है।

अभिषेक नाटक में समुद्र का वर्णन भी भास ने सूक्ष्म दृष्टि से किया है। इस वर्णन के पढ़ते समय दृश्य का चित्रांकन नेत्रों के समक्ष हो जाता है।

क्वाचित् फेनोद्गारी क्वाचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वाचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।
क्वचिद्वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥[२]

---

१. अभिषेक नाटकम्, ४।२३
२. वही, ४।१७

राम कहते हैं—सागर कितना विचित्र लग रहा है ? कहीं फेन निकलता है, कहीं मत्स्यगण पानी को मथ रहे हैं, कहीं शंख भरे पड़े हैं, कहीं का जल नीला है, कहीं पर तरंगे उठ रही हैं, कहीं भयंकर नक्र उलट रहे हैं, कहीं भीषण भँवरें पड़ रही हैं और कहीं का जल स्थिर है।

राम समुद्र तट का वर्णन करते हुए पर्वत, नदी और वन का चित्रण वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए करते हैं। यहाँ प्रकृति उद्दीपन रूप के साथ भावावलि को भी व्यञ्जित करती है।

आक्रान्ता पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमाः पर्वताः
सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यश्च तीर्णा मया ।
क्रान्तं पुष्पफलाढ्यपादपयुतं चित्रं महत् काननं
सम्प्राप्तोऽस्मि कपीन्द्रसैन्यसहितो वेलातटं साम्प्रतम् ॥[1]

मैंने बड़े शिखरों पर वर्तमान कुंजों से भीषण मेघ सदृश पर्वत लाँघे, जिनके जल को बाघ, सिंह एवं गजराज पिया करते हैं, ऐसी नदियाँ पार कीं, और फल-पुष्पों से युक्त वृक्षों से भरे वन पार किये। इस समय वानरराज की सेना के साथ समुद्र के तट पर उपस्थित हूँ।

उपमान चयन के रूप में प्रकृति का चित्रण करते हुए भास ने लिखा है—

अमलकमलसन्निभोग्रनेत्रः
कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः
त्वरितमभिपतत्यसौ सदोषो
युगपरिणामसमुद्यतो यथार्कः ॥[2]

यहाँ स्वच्छ कमल, स्वर्णदीप और प्रलयकालिक रवि—ये तीनों उपमान प्रकृति के खजाने से ग्रहण कर लंकाधिपति रावण की तेजस्विता और भयंकरता का अंकन किया गया है।

भरत के ससैन्य पधारने से शान्त, निर्जन तपोवन भी नगर का रूप ग्रहण कर लेता है। वातावरण के सृजनार्थ कवि ने प्रकृति का सजीव अंकन किया है।

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः
साम्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः

१. अभिषेक नाटकम्, ४।२
२. वही, ३।२

शंखध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः
सम्मूर्च्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥[१]

लोध्र पुष्प सदृश धवल धूलि उड़ती आ रही है, जो वायु वेग से सकल दिशाओं को आच्छादित करती आ रही है। यह शंखध्वनि, बाजे तथा वीरों के गर्जन से उपावृहित होकर इस शान्त तपोवन को नगर का रूप दे रही है।
उपमान योजना के रूप में प्रकृति-चित्रण—

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः
सूर्य दिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥[२]

रथ की तेज गति के कारण वृक्ष दौड़ते हुए से प्रतीत हो रहे हैं तथा रथ की स्थिति स्वयं कैसी लग रही है, इसका स्वाभाविक चित्रण किया है—

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥[३]

रथ की तेज चाल से वृक्ष छोटे-से दिखाई दे रहे हैं और दौड़ते-से मालूम पड़ते हैं। उछलते हुए जलवाली नदी के समान पृथ्वी पहिये की धुरी में गिर-सी रही है और पता ही नहीं चलता। रथ का पहिया ऐसा मालूम पड़ रहा है कि मानो वह चल नहीं रहा है। घोड़ों के खुरों से उठ-उठकर धूलि आगे गिर रही है, पीछे नहीं।

अविमारक में सन्ध्या और रात्र्यागमन का मनोरम वर्णन आया है।

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥[४]

---

१. प्रतिमा नाटकम्, ७।४
२. प्रतिमा नाटकम्, २।७
३. वही, ३।२
३. अविमारक नाटकम, २।१२

पूर्व दिशा अन्धकार से पूर्ण तथा पश्चिम दिशा सन्ध्यारुण हो रही है। दो रूपों में बटा हुआ आकाश अर्धनारीश्वर का सादृश्य धारण कर रहा है।

> गर्भस्था इव मोहमभ्युपगता सर्वा प्रजा निद्रया
> प्रासादा सुखसुप्तनीरवजना ध्यान प्रविष्टा इव।
> प्रग्रस्ता इव सञ्चितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगा
> अन्तर्धानमिवोपयाति सकल प्रच्छन्नरूपं जगत ॥[१]

अर्ध-रात्रि का समय कितना भयंकर है? इस समय सारी जनता गर्भस्थ शिशु की तरह निद्रा से मुग्ध हो रही है, प्रासाद पर सभी लोग सुखपूर्वक सो रहे हैं मानो प्रासाद ध्यानमग्न है। अन्धकार में डूबे हुए वृक्षों का ज्ञान स्पर्श हेतुक अनुमान मात्र से होता है, इस जगत् का रूप छिप गया है, मानो वह अन्तर्धान हो रहा है।

मध्यरात्रि के अन्धकार का चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

> तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्य
> पुलिननिभ प्रतिभान्ति हर्म्यमाला।
> तमसि दश दिशो निमग्नरूपा,
> प्लवतरणीय इवायमन्धकार ॥[२]

मार्ग-स्थित नदियों में अन्धकार प्रवाहित हो रहा है, भवन नदी के तट के समान प्रतीत हो रहे हैं, दश दिशाएँ अन्धकार में लीन हो रही हैं और अन्धकार इतना गाढ़ा है जैसे इसे नाव से पार करना पड़ेगा।

चारुदत्त नाटक में भी अन्धकार का चित्रण आया है। यथा—

> सुलभशरणमाश्रयो भयाना वनगहन तिमिर च तुल्यमेव।
> उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो जनयति यश्च भयानि यश्च भीत ॥[३]

गहन वन तथा घनान्धकार दोनों समान रूप से भयभीत जन के लिए सुलभ शरण एवं आश्रय हैं।

चन्द्रोदय का वर्णन भी प्रभावक रूप में किया है।

---

१ अविमारक नाटकम्, ३।३

२. वही, ३।४

३. [illegible]

उदयति हि शशांकः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
र्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः ।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥[1]

आर्द्र खजूर की तरह शुभ्र युवतिजन के सहायक राजमार्ग का प्रदीप चन्द्रमा उदय हो रहा है, जिसकी शुभ्र रश्मियाँ घने अन्धकार में जलशून्य पंक में दूध की धारा की तरह गिर रही हैं—अर्थात्; गाढ़ान्धकार में चन्द्रमा की शुभ्र किरणें काले रंग के पंक में दुग्धारा के समान प्रतीत हो रही हैं।

'पञ्चरात्रम्' में यज्ञशाला में अग्नि के लग जाने से उसकी भयंकरता का चित्रण कई पद्यों में किया है। यथा—

वनं सवृक्षक्षुपगुल्ममेतत् प्रकाममाहारमिवोपभुज्य ।
कुशानुसारेण हुतशनोऽसौ नदीमुपस्प्रष्टुमिवावतीर्णः ॥[2]

गतो वृक्षाद् वृक्षं विततकुशचीरेण दहनः
कदल्या विप्लुष्टं पतित परिणामादिव फलम् ।
असौ चाग्रे तालो मधुपटलचक्रेण महता
चिरं मूले दग्धः परशुरिव रुद्रस्य पतति ॥[3]

स्रुग्भाण्डभरणीं दर्भानुपभुङ्क्ते हुताशनः
व्यसनिरवान्नरः क्षीणः परिच्छदमिवात्मनः ॥[4]

वालचरित में अन्धकार का चित्रण करते हुए लिखा है—

अप्रकाश इव दिशो घनीभूत इव द्रुमाः ।
सुनिविष्टस्य लोकस्य कृतो रूपविपर्ययः ॥[5]

अविमारक में वर्षा और ग्रीष्म ऋतु का वर्णन सुन्दर रूप में आया है।

ऊरुभंग नाटक में युद्ध-भूमि की यज्ञ से तुलना की गयी है। भास ने युद्ध-भूमि का चित्रांकन करते हुए लिखा है—

---

१. चारुदत्त नाटकम्, १।२९
२. पञ्चरात्रम्, नाटकम्, १।१५
३. वही, १।१६
४. वही, १।१८
५. वालचरित, १।१६

करिवरकरयूपो बाणविन्यस्तदर्भो
हतगजचयनोच्चो वैरवह्निप्रदीप्तः ।
ध्वजवितत्तवितान सिंहनादोच्चमन्त्रः
पतितपशुमनुष्यः संस्थितो युद्धयज्ञ ॥[१]

युद्ध रूपी यज्ञ समाप्त हो गया—जिसमे बड़े-बड़े हाथियो के शुण्डा-दण्ड यज्ञ-स्तम्भ हैं, जहाँ पर इधर-उधर बिखरे हुए बाण कुश हैं, मृत हाथियो के झुण्ड ही मानो पुष्पो के ढेर हैं, जहाँ वैर रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है, पताकाएँ जिसमे फैले हुए वितान हैं, जहाँ पर योद्धाओ की ज़ोर-ज़ोर की आवाज ही मन्त्र हैं और मृत मनुष्य ही जहाँ पर बलिस्वरूप हैं।

युद्ध-स्थली का आगे भी चित्रण किया गया है। अभिषेक नाटक मे लका की सुन्दरता का अच्छा चित्रण आया है—

कनकरचितचित्रतोरणाढ्या
मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा
विमलविकृतसञ्चितैर्विमानै
वियति महेन्द्रपुरीव भाति लङ्का ॥[२]

भास ने पशु-पक्षियो की प्रकृति के साथ मानव-प्रकृति का भी चित्रण किया है। कवि प्रकृति के नाना दृश्यो को सावधानी और सहृदयता के साथ चित्रित करता हुआ प्रसगोपात्त सन्दर्भ को रसमय बनाता है।

छन्द-योजना

मानव-मन की रागात्मक वृत्तियो की अभिव्यञ्जना का सशक्त, वरिष्ठ और व्यापक रगमच नाटक है। काव्य या नाटक विशद एव पूर्ण अभिव्यञ्जना के लिए अथवा अपनी अभिव्यक्ति को दूसरे के हृदय मे प्रविष्ठित करने के लिए जिन अनेक चित्र-सगीतमय इगितायासो का आश्रय ग्रहण किया जाता है, उनमे नाद सौन्दर्य की दृष्टि से सबमे अधिक महत्वपूर्ण छन्द है। प्रबोधचन्द्रसेन का इस सम्बन्ध मे अभिमत है—'कविता का छन्द' एक ध्वनि सम्बन्धी कला है, किन्तु इस ध्वनि का सम्बन्ध यन्त्र से नहीं मनुष्य के कण्ठ मे है।......जब हम

१. ऊरुभग नाटकम्, १।६
२. अभिषेक नाटकम्, २।२

कुछ कहते हैं या कुछ पढ़ते हैं तब हमारी कण्ठ-ध्वनि अविराम प्रवाह के रूप में वहती रहती है। वल्कि नाना चित्र भंगियों के बीच-बीच में विरत होती रहती है। केवल बात-चीत या गद्य पढ़ने ही के समय में, कविता के छन्द पढ़ते समय भी ध्वनि की गति के समान ही यति भी अत्यन्त आवश्यक है। काव्य के छन्दो निर्माण क समय ध्वनि की इस यति को नाना विचित्र कौशलों से लगाना पड़ता है। इसलिये हमारी उच्चरित ध्वनि की कला, व्याप्त प्रखर और यति तीनों ही बातें छन्दः शास्त्र की प्रथम और प्रधान बातें हैं।[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छन्दो योजना की वैज्ञानिक मीमांसा करते हुए लिखा है—'छन्द वास्तव में वँधी हुई लय के भिन्न-भिन्न ढाँचों का योग है, जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है : लय-स्वर के चढ़ाव-उतार, स्वर के छोटे-छोटे ढाँचें ही हैं, जो किसी छन्द के चरण के भीतर व्याप्त रहते हैं।'[२]

मात्रा, वर्ण, रचना, विराम और यति सम्वन्धी नियम जिस वाक्यरचना में पाये जायें, वह वाक्य-रचना छन्द है। अतएव स्पष्ट है कि छन्द में प्रसाद या उसकी अनुरंजनकारिणी स्फूर्ति वर्त्तमान रहती है। काव्य में प्रसादगुण का संचार कराने वाला उपादान छन्द है।

छन्द शब्द का एक अर्थ वन्धन एवं छादन भी है। वह लय की गति और उसके अविराम स्वर प्रवाह को समय की सुनिश्चित इकाइयों में वँधकर भावों को अधिक प्रेपणीय वनाता है। अतः छन्द-वन्धन लयात्मक सुन्दरता की रक्षा के हेतु स्वीकार किया गया है।

'छन्द यति', 'आह्लादित", 'असून' अर्थात् जिससे हृदय का अह्लादन या प्रसादन हो, वही छन्द है। अतएव छन्द में प्रासादिकता या अनुरंजनकारिणी स्फूर्ति का रहना परमावश्यक है। छन्दोयोजना से काव्य में एक विशेप प्रकार की लयात्मकता उत्पन्न होती है, जिससे वह पाठक श्रोताओं या दर्शकों तक सहज रूपों में, भावों में प्रेषणीयता उत्पन्न करता है। काव्य में प्रेपणीयता का सवसे वड़ा माध्यम छन्द है।

इस प्रकार भास के तेरह रूपकों में १०९२ पद्य आये हैं और इनमें इन्होंने चौवीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, ये चौवीस छन्द निम्नलिखित हैं—

(१) अनुष्टुप्, (२) इन्द्रवज्रा, (३) उपेन्द्रवज्रा, (४) उपजाति, (५) शालिनी

---

१. साहित्य साधना की पृष्ठभूमि, वुद्धनाथ झा कैरव, सन् १९५३, पृ० ५३

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काव्य में रहस्यवाद, प्रथम संस्करण, १९८६, पृ० १३५

(६) द्रुतविलम्बित, (७) पुष्पिताग्रा, (८) भुजगप्रयात, (९) वंशस्थ, (१०) वैश्वदेवी, (११) प्रहर्षिणी (१२) वसततिलका, (१३) मालिनी, (१४) पृथ्वी, (१५) शिखरिणी, (१६) हारिणी, (१७) शार्दूल विक्रीडित (१८) स्रग्धरा, (१९) मेघमाला (२०) दण्डक (२१) वैतालीय, (२२) आर्या, (२३) सुवदना और (२४) उपगीति।

स्वप्नवासवदत्तम् : छन्द विश्लेषण

इस नाटक मे कुल ५७ पद्य हैं, जिनमे अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति शालिनी, पुष्पिताग्रा, वैश्वदेवी, वसततिलका, हारिणी, शिखरिणी, शार्दूल विक्रीडित और आर्या—इन ग्यारह प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है।

आर्या—१।१, ४।३, ४।४,
अनुष्टुप्—१।२, १।७, १।१०, १।१५, ४।५, ४।७, ४।८, ४।९, ५।६, ५।७, ५।८, ५।९, ५।१०, ५।११, ६।३, ६।६, ६।७, ६।९, ६।११, ६।१२, ६।१३, ६।१४, ६।१६, ६।१७, ६।१८, ६।१९,
शार्दूल विक्रीडित—१।३, १।८, ४।१, ५।४, ५।१२, १।१२,
वसततिलका—१।४, १।६, १।११, ४।२, ५।१, ५।२, ५।३, ६।२, ६।४, ६।५, ६।१५,
पुष्पिताग्रा—१।५, ६।१,
वैश्वदेवी—१।९,
शालिनी—१।१३, ५।६, ६।१०,
शिखरिणी—१।१४, १।१६,
हारिणी—६।८,

प्रतिज्ञायौगन्धरायण : छन्द विश्लेषण

इस रूपक मे कुल ६६ पद्य हैं. जिनमें अनुष्टुप्, उपजाति, वसततिलका, शालिनी, पुष्पिताग्रा, वंशस्थ, मालिनी, शार्दूल विक्रीडित, वैश्वदेवी, वैतालीय, आर्या और शिखरिणी का प्रयोग हुआ है।

अनुष्टुप्—१।१, १।२, १।७, १।९, १।१०, १।१५, १।१६, १।१७, २।५, २।६, २।७, २।१०, २।११, २।१३, ३।३, ३।७, ३।८, ३।९, ४।८, ४।१०, ४।१४, ४।१५, ४।१७, ४।१९, ४।२०, ४।२१, ४।२३, ४।२४, ४।२५

वंशपत्रपतितम्-(?) वंशस्थदेवी— १।३, २।८

वसन्ततिलका—१।४, २।२, २।६, ३।४, ४।४, ४।६, ४।७

उपजाति—१।५, १।१२, २।१, ४।१

शार्दूलविक्रीडित—१।८, ३।५, ३।६, ४।१२, ४।१६

मालिनी—१।११, १।१४, २।३, ४।३, ४।१३

शिखरिणी—२।४

पुष्पिताग्रा—२।१२, ४।५, ४।६

वैतालीय—३।१

वंशस्थ—३।२, ४।८, ४।२२

प्रतिमा : छन्दो विश्लेषण

इस नाटक में कुल १५७ पद्य हैं। इनमें सबसे अधिक अनुष्टुप् छन्द है। इनकी संख्या ७५ है। वसन्ततिलका का प्रयोग २२ बार, मालिनी का १० बार, उपजाति और शार्दूलविक्रीडित का ६-६ बार, शिखरिणी का ५ बार, पुष्पिताग्रा, वंशस्थ और हारिणी का चार-चार बार, सुवदना और आर्या का दो-दो बार एवं स्रग्धरा और मेघमाला का एक-एक बार प्रयोग आया है।

अनुष्टुप्—१।४, १।६, १।६, १।१०, १।११, १।१२, १।१३, १।१५, १।१६, १।१७, १।१६, १।२०, १।२१, १।२३, १।२४, १।२६, १।२७, १।२८, १।३१, २।३, २।५, २।६, २।६, २।१०, २।११, २।१२, २।१५, २।१६, २।१७, २।१८, २।२०, ३।४, ३।५, ३।६, ३।८, ३।१०, ३।१२, ३।१४, ३।१६, ३।१६, ३।२०, ३।२३, ३।२४, ४।३, ४।४, ४।५, ४।११, ४।१२, ४।१४, ४।१५, ४।१६, ४।२६, ४।२८, ५।६, ५।८, ५।६, ५।१२, ५।१३, ५।१४, ५।१५, ५।२०, ५।२१, ५।२२, ६।५, ६।६ ६।११, ६।१३, ६।१४, ६।१५, ७।५, ७।८, ७।१३, ७।१५

उपजाति—१।१, १।२६, ३।३, ४।६, ४।१३, ५।३, ५।४, ६।१६, ७।३

हंसी—१।२

शार्दूलविक्रीडित—१।३, १।५, २।२, २।१६, ४।२३, ४।२७, ५।१, ५।१६, ६।३

वसन्ततिलका—१।७, १।८, १।२२, १।२५, २।१, २।४, ४।१, ४।२, ४।१६, ४।२२, ५।१०, ५।११, ६।४, ६।६, ६।७, ६।१२, ७।२, ७।४, ७।६, ७।८, ७।१०, ७।११

मालिनी—१।१४, ३।६, ३।२१, ४।१०, ४।२१, ५।७, ७।१, ७।१२
हारिणी—१।१८, ३।१७, ४।८, ५।२
प्रहर्षिणी—१।३०, ४।६, ५।१८
आर्या—२।७
शालिनी—२।१३, ३।१८, ५।१७
शिखरिणी—२।१४, ३।१, ३।२, ३।२२, ४।७
पुष्पिताग्रा—२।२१, ४।१८, ६।८
सुवदना—३।६, ३।११
वंशस्थ—३।१३, ४।२०, ६।१, ६।२
स्रग्धरा - ४।१७
इन्द्रवज्रा—४।२५, ७।३४

पञ्चरात्रम् : छन्दो विश्लेषण

इस रूपक में पद्यों की संख्या १५२ है। टी० गणपतिशास्त्री ने १५७ प
संख्या मानी है।

अनुष्टुप्—१।२, १।७, १।१२, १।८, १।११, १।१३, १।१४, १।१
१।१८, १।२६, १।२८, १।३४, १।३५, १।३७, १।३८, १।४
१।४४, १।५०, १।५१, १।५२, १।५३, १।५४, १।५५, १।५
२।६, २।१२, २।१३, २।१४, २।६६, २।६७
इन्द्रवज्रा—१।१, १।२५, १।३३, १।४६, २।११, ३।३
शिखरिणी—१।३, १।१६, १।२३
शार्दूलविक्रीडित—१।४, १।५, १।६, १।५७, २।२६, २।२६, २।३६, ३।
सुवदना—१।६
उपेन्द्रवज्रा—१।१५
पुष्पिताग्रा—१।६, १।३२, २।३५
वसन्ततिलका—१।२०, १।३१, १।३६, १।४१
उपजाति—१।२१, १।२६, १।४८, २।६, २।३०, ३।१२
वंशस्थ—१।२२, १।२७, २।१८, २।३२, २।३३, २।४३, ३।१, ३।२
शालिनी—१।२४, १।३०, २।२, २।१०
मालिनी—१।४०, १।४७, २।५, ३।२, ३।४
प्रहर्षिणी—२।३, २।१४, ३।५
शिखरिणी— ...

मध्यमव्यायोग : छन्दो विश्लेषण

इसमें कुल ५२ पद्य हैं। गणपति शास्त्री ने ५१ पद्यों का ही प्रकाशन किया है।

अनुष्टुप्—१।२, १।७, १।१२, १।१३, १।१४, १।१७, १।१८, १।१९, १।२०, १।२१, १।२२, १।२३, १।२८, १।२९, १।३०, १।३१, १।३३, १।३१, १।३४, १।३५, १।३६ १।३७ १।३८, १।४०, १।४१, १।४२, १।४३, १।४४, १।४५, १।४७, १।४९, १।५०, १।५१

वसन्ततिलका—१।१, १।३, १।८, १।११, १।२७, १।४८

पुष्पिताग्रा—१।४, १।२४, १।२५

मालिनी—१।५, १।६, १।३१, १।४६

उपजाति—१।९, १।४१

वंशस्थ—१।१०

शार्दूलविक्रीडित—१।२६

उपेन्द्रवज्रा—१।५२

दूतवाक्यम् : छन्दो विश्लेषण

इसमें कुल ५६ पद्य हैं।

अनुष्टुप्—१।१, १।२, १।७, १।८, १।१७, १।२०, १।२५, १।२६, १।२७, १।२९, १।३०, १।३१, १।३३, १।३४, १।३६, १।३८, १।४३, १।४६, १।५०, १।५५, १।५६

वसंततिलका—१।३, १।४, १।११, १।१२, १।१३, १।१४, १।२३, १।४१, १।४२, १।४७, १।४९, १।५४

पुष्पिताग्रा—१।६, १।३७

उपेन्द्रवज्रा—१।९,

मालिनी—१।१०, १।३५, १।३९, १।४०, १।४५, १।४७, १।४८

सुवदना—१।१६

उपजाति—१।१८, १।१९, १।२२, १।२८, १।५३

वंशस्थ—१।२१

शार्दूलविक्रीडित—१।२४, १।३२

स्रग्धरा—१।५१

दूतघटोत्कच ' छन्दो विश्लेषण

इसमे कुल ५२ पद्य हैं।

अनुष्टुप्—१।६, १।७, १।१५, १।१७, १।१८, १।२१, १।२४, १।२५,
१।२६, १।२८, १।२९, १।३१, १।३२, १।३७, १।३८, १।३९,
१।४०, १।४२, १।४८, १।४९, १।५०,

उपजाति—१।१, १।१६ १।३६

इन्द्रवज्रा—१।१०, १।३०

वंशस्थ—१।१३, १।३३

शालिनी—१।२०

मालिनी—१।४३, १।४६

कर्णभारम् : छन्दो विश्लेषण

इस एकाकी मे २५ पद्य हैं।

मालिनी—१।१, १।३, १।१४, १।१८, १।१९, १।२०

अनुष्टुप्—१।२, १।७, १।१२, १।२५

वसन्ततिलका—१।४, १।६, १।९, १।१६, १।२१

प्रहर्षिणी—१।५

वंशस्थ—१।८, १।११, १।२२, १।२३, १।२४

शार्दूलविक्रीडित—१।१०, १।१५

उपजाति—१।१३, १।१७

ऊरुभंगम् : छन्दो विश्लेषण

इस एकाकी में ६६ पद्य हैं।

वसन्ततिलका—१।२, १।३, १।७, १।९, १।११, १।१२, १।१९, १।२२,
१।३१, १।३२, १।३६, १।३७, १।५४, १।५९, १।६०

अनुष्टुप्—१।३३, १।३७, १।४१, १।४२, १।४३, १।४४, १।४६, १।४९,
१।५०, १।६२, १।६४, १।६५

मालिनी—१।६, १।२२, १।२६, १।२७, १।३९, १।५६, १।५७

उपजाति—१।३०, १।३८, १।४५, १।४७, १।४८, १।५५

हारिणी—१।५, १।१०

वंशस्थ—१।८

शिखरिणी—१।६२

शार्दूलविक्रीडित—१।२१

अविमारक : छन्दो विश्लेषण

इस रूपक में ९७ पद्य हैं। इनमें २७ पद्य वसन्ततिलका में लिखे गये हैं। उपजाति १७ पद्यों में, १५ पद्यों में अनुष्टुप्, ११ पद्यों में पुष्पिताग्रा, ५ पद्यों में इन्द्रवज्रा और ५ ही पद्यों में शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग हुआ है। स्रग्धरा, शिखरिणी और मालिनी का तीन-तीन वार प्रयोग आया है। प्रहर्षिणी और शालिनी दो-दो बार प्रयुक्त हैं। दण्डक, पृथ्वी, वंशस्थ और उपेन्द्रवज्रा एक-एक वार प्रयुक्त हैं।

'चारुदत्त' में कुल५५ पद्य हैं। इनमें १७ पद्यों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग, १२ पद्यों में वसन्ततिलका का प्रयोग, ६ पद्यों में उपजाति का प्रयोग, ५ पद्यों में शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग और चार-चार पद्यों में मालिनी एवं वंशस्थ का प्रयोग पाया जाता है। आर्या और पुष्पिताग्रा दो-दो वार एवं प्रहर्षिणी, शालिनी और उपेन्द्रवज्रा एक-एक वार प्रयुक्त हैं।

अभिषेक नाटक में ११४ पद्य हैं। ६२ पद्यों में अनुष्टुप् प्रयुक्त हैं। पुष्पिताग्रा का २२ वार प्रयोग, वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित का पन्द्रह-पन्द्रह वार प्रयोग, मालिनी का ११ वार प्रयोग और उपजाति का ६ वार प्रयोग आये हैं। उपेन्द्रवज्रा और प्रहर्षिणी छन्द चार-चार पद्यों में, वैश्वदेवी और स्रग्धरा-दो-दो पद्यों में प्रयुक्त हैं। शालिनी, द्रुतविलम्वित, भुजंग-प्रयात, वंशस्थ और शिखरिणी छन्दों का एक-एक वार प्रयोग हुआ है।

'वालचरित' में कुल पद्यों की संख्या १०३ है। इसमें कवि ने अनुष्टुप् छन्द को प्रधानता दी है। इस छन्द की योजना ३७ पद्यों में की गयी है। वसन्ततिलका का प्रयोग २६ पद्यों में, उपजाति का प्रयोग १७ पद्यों में, मालिनी का ६ पद्यों में, शार्दूलविक्रीडित का चार पद्यों में, वैतालीय का ३ पद्यों में, एवं इन्द्रवज्रा, पुष्पिताग्रा और प्रहर्षिणी का दो-दो पद्यों में प्रयोग हुआ है शालिनी, वंशस्थ, स्रग्धरा और उपगीतिका एक-एक वार ही प्रयुक्त हैं।

भास के छन्दो विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी इन छन्दों का प्रयोग सभी रूपकों में हुआ है। सवसे अधिक प्रयोग तो अनुष्टुप् का है। १०९२ पद्यों में से ४३७ पद्यों में अनुष्टुप् आया है। वसन्ततिलका १७९ वार, शार्दूलविक्रीडित ९२ वार, उपजाति ९१ वार, मालिनी ७२ वार आया है। शेष छन्दों में पुष्पिताग्रा का ५५ वार, वंशस्थ

का ३५ बार, शालिनी का २२ बार, इन्द्रवज्रा का २१ बार, शिखरिणी का १९ बार, प्रहर्षिणी का १७ बार, आर्या का ११ बार, उपेन्द्रवज्रा का ९ बार, हारिणी और स्रग्धरा का आठ-आठ बार, वैश्वदेवी का ५ बार, सुवदना का चार बार एवं भुजगप्रयात, पृथ्वी, मेघमाला दण्डक, वैतालीय और उपजाति का एक-एक बार ही प्रयोग हुआ है।

भास की छन्दोयोजना की प्रमुख विशेषता यह है कि अधिक पद्यो का प्रयोग होने पर भी नाटक की गति मे अवरोध उत्पन्न नही हुआ है। और न नाटक शिथिल ही हो पाये हैं। दृश्य और पाठ्य इन दोनो दृष्टियो से छन्दो-योजना ने किसी भी प्रकार की अवरोधता उत्पन्न नही की है। भास ने सन्दर्भ और वातावरण के उपयुक्त छन्दो का प्रयोग कर नाटकीय गतिमत्ता को भी तीव्रता प्रदान की है। और रसानुभूति भी स्वाभाविक रूप मे सम्पन्न हुयी है। भावो के प्रकाशन मे छन्दो ने अवरोध उत्पन्न नही किया है। शब्दाडम्बर या दुरूहता नही आने पायी है। समस्यन्त पदो का अल्प प्रयोग होने से प्रसादगुण वर्तमान है अतएव कथोपकथनो मे सरलता, सरसता और गतिशीलता वृद्धिगत हुई है। अनुष्टुप् और आर्या के प्रयोग मे तो भास सिद्धहस्त हैं। वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित जैसे बडे पद्य भी अभिनय की सफलता के साथ स्वाभाविकता का भी संरक्षण करते हैं। अतः भास की छन्दो योजना को हम सभी प्रकार से सफल और सार्थक मानते हैं।

भास के सुभाषित या सूक्तिवाक्य

नाटककार भास ने अपने पात्रो के कथनोपकथनो को सरस और ग्राह्य बनाने के लिए उपदेश, प्रेम एवं नीति सम्बन्धी सुभाषितो का प्रयोग किया है। लोकवृत्ति अथवा नैतिक शिक्षा का निरूपण काव्य की अनुरंजनकारिणी भाषा में सम्पन्न होने से समस्त सन्दर्भ को रसमय बनाने की क्षमता सूक्तिवाक्यो मे समाहित रहती है। शर्करा-मिश्रित औषध के समान काव्य-चमत्कार उत्पन्न करते हुए सदुपदेश देना या किसी विशेष भाव को उत्पन्न करना सुभाषितों का लक्ष्य होता है। सत्य, त्याग, उदारता, अहिंसा, क्षमा, मार्दव, प्रभृति का चमत्कारी उपदेश काव्य की भाषा मे अंकित रहता है। इस प्रकार सूक्तिवाक्य सदाचार सम्बन्धी सार्वजनीन सिद्धान्तो का काव्य सन्दर्भों में समावेश करते हैं। यही कारण है कि नाटककार भास ने अपनी कृतियो मे सूक्तिवाक्यो का समावेश कर सन्दर्भों में सहृदयजन संवेद्यता-उत्पन्न की है।

सूक्तिवाक्य लोक की स्वार्थमयी प्रवृत्ति से ऊपर उठाकर सामाजिकों के

कर्त्तव्य को जागरूक करते हैं। नाटककार या कवि अपने जीवन सन्देश को सूक्तियों के माध्यम से ही प्रस्तुत करता है। काम या प्रेमपरक सूक्तियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के विषय में मौलिक तथ्यों का प्रस्फोटन करते हुए रसोत्कर्ष उत्पन्न किया जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि सूक्तियों में रस की समस्त विशेषताएँ और चमत्कृति के सारे उपकरण उपलब्ध रहते हैं। शब्द-चमत्कार और अर्थ-चमत्कार का जो समवाय सूक्तियों में प्राप्त है, वह अतिशोभन, मोक्षप्रापण, आनन्दानुभव और कौतूहल-शमन एक साथ सम्पन्न करता है। कथा-प्रसंग या सन्दर्भों को रस पूर्ण बनाने के साधनों में अलंकार, प्रसाद-माधुर्य गुण, चमत्कृति के साथ सूक्तियों को भी माना गया है। उक्ति-वैचित्र्य के अन्तर्गत सूक्तियों को स्थान दिया जा सकता है। आधुनिक विचारक मॉरिस जिन्सबर्ग ने लिखा है—"जो तत्त्व मनुष्य जाति को पशुओं से पृथक् करता है वह है उसकी भाषा-शक्ति, जो सामाजिक मूल्यों का निर्धारण और व्यवहार में उसका प्रयोग करती है। सामाजिक मूल्यों से सम्बन्ध रखने वाले नियम केवल प्रथा पर आधृत हैं और प्रथा काम करने का अभ्यास मात्र नहीं है एक प्रकार का शासन है। यह वह क्रिया नहीं है जिसको कोई व्यक्ति सामान्यतः करता है अपितु वह कर्त्तव्य है जिसकी अपेक्षा दूसरे लोग उससे करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भ से ही सर्वमान्यता और निष्पक्षता का तत्त्व रहता आया है। सूक्तियाँ सामाजिक प्रथाओं और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं की उपज होती हैं जो मानव आचार में तीव्रता लाती है।"[1]

स्पष्ट है कि सूक्तिवाक्यों का मानव-जीवन की आवश्यकताओं के साथ सापेक्ष सम्बन्ध है और मानव-मूल्यों के प्रति आस्था का जागृत करना भी इन्हीं सूक्तियों का कार्य है। ये न तो शुद्ध रूप में धार्मिक सिद्धान्त हैं और न ऐसे अनुशासन वाक्य ही हैं जो किसी कर्त्तव्य, कर्म के लिए बाध्य करते हैं ये ऐसे मानव-मूल्य हैं जो समाज, परिवार, राज्य एवं व्यक्ति के दायित्व के प्रति जागृत करते हैं। यह अनुभव किया जाता है कि सारी क्रियाएँ—नैतिक और अनैतिक—मानव चित्त से उद्भूत होती हैं। अतः कार्य और अकार्य की नैतिकता और अनैतिकता का मूल आधार भी वही है। जब तक मनुष्य अपने भौतिक वेगों से अभिभूत अथवा बाहरी प्रमाणों से प्रेरित और आविष्ट रहता है तब तक उसके नैतिक दायित्व का प्रश्न नहीं उठता। जब वह अपने कर्म-स्वातन्त्र्य का अनुभव करता है तभी उसके नैतिक दायित्व का उदय होता है।

---

१. मॉरल्स इन इवोल्यूशन : एल० टी० हावहाउस, भूमिका भाग

नाटककार या कवि, सन्दर्भ-विशेषों मे सूक्तियों का नियोजन कर जीवन-मूल्यो की व्याख्या के प्रति रसात्मकता का प्रदर्शन करता है । मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है। मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन का क्रमश' संस्कार और विकास होता है। समाज और परिस्थितियाँ वैयक्तिक जीवन मे सहायक बनती हैं। यही कारण है कि नाटककार भास ने अपनी रचनाओ मे सूक्तिवाक्यों का प्रधान रूप से उपयोग कर रसोद्रेक मे सजगता प्रदर्शित की है। हम यहाँ नाटककार भास के कतिपय सूक्ति वाक्यों को प्रस्तुत करते हैं ।

स्वप्नवासवदत्तम् में प्रयुक्त सुभाषित वाक्य

कालक्रमेण जगत. परिवर्तमाना ।
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति' ॥[१]

× × ×

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।[२]

× × ×

दु ख न्यासस्य रक्षणम् ।[३]

× × ×

न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधि सुपरीक्षितानि ।[४]

× × ×

तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीन नराधिप. ।[५]

× × ×

कामधीरस्वभावेय स्त्रीस्वभावस्तुकातर ।[६]

× × ×

प्रायेण हि नरेन्द्रश्री सोत्साहैरेव भुज्यते ।[७]

× ×

---

१. स्वप्नवासवदत्तम, चौखम्बा संस्करण, १।४
२. वही, १।७
३. वही, १।१०
४. वही, १।११
५ वही, १।१५
६ वही, ४।८
७. वही, ६।७

'काले-काले छिद्यते रुह्यते च ।[1]

× + ×

परस्परगतालोके दृश्यते तुल्यरूपता ।[2]

× × ×

अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः ।[3]

× × ×

साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः ।[4]

× ×

अनतिक्रमणीयो हि विधिः ।[5]

× ×

सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।[6]

× ×

अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्तनं श्रोतुम् ।[7]

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में प्रयुक्त सुभाषित वाक्य

परचक्रैरनाक्रान्ता धर्मसङ्करवर्जिता ।
भूमिभर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षिता ॥[8]

सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां, मार्गारब्धाः सर्वयत्ना फलन्ति ।[9]

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ॥[10]

व्यवहारेष्वसाध्यानां लोके वा प्रतिरज्यताम् ।

---

१. वही, ६।१०
२. वही, ६।१४
३. वही, अङ्क ३, पृ० ८७
४. स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्करण, अङ्क ६, पृ० २५१
५. वही, पृ० १४८
६. वही, अङ्क १, पृ० २८
७. वही, अङ्क ३, पृ० ९०
८. प्रतिज्ञायौगन्धरायण १।६
९. वही, १।१८
१०. वही, २।७

प्रभाते दृष्टदोषाणां वैरिणा रजनी भयम् ॥[1]
स्नेहदुर्बलं मातृहृदयं रक्ष्यम् ।[2]
प्रभाते दृष्टदोषाणा वैरिणा रजनी भयम् ॥[3]
कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः ।[4]
प्रणिपतति निरुद्धः सत्कृतो धर्षितो वा ।[5]

प्रतिमा नाटक में प्रयुक्त सुभाषित वाक्य

सुलभापराधः परिजनो नाम ।[6]
शरीरेऽरि प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।[7]
नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः ।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥[8]
अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा,
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं,
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥[9]
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।[10]
बहुदोषाण्यरण्यानि ।[11]
गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥[12]

---

१. वही, अङ्क १, पृ० ३।३
२. वही, अङ्क १, पृ० ३२
३. वही, ३।३
४. वही, ४।२२
५. वही, १।११
६. प्रतिमा नाटक, मोतीलाल बनारसीदास, अङ्क १, पृ० १३
७. वही, १।२१
८. वही, १।११
९. वही, १।२५
१०. वही, १।२६
११. वही, २।१५
१२. वही, ३।२३

अलं गुरुजनापवादमभिधातुम् ।[१]

अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।[२]

कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ।[३]

तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।[४]

अपरिहरणीयोमहर्षिशापः ।[५]

सुपुरुषाणां मातृदोषो न दोषो ।[६]

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।[७]

पञ्चरात्रम् में प्रयुक्त सुभाषित वाक्य

एतदग्नेर्बलं नष्टमिन्धनानां परिक्षयात् ।
दानशक्तेरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात् ॥[८]

शकटी च घृतापूर्णा सिच्यमानापि वारिणा ।
नारीवोपरतापत्या बालस्नेहेन दह्यते ॥[९]

शुष्केणैकेन वृक्षेण वनं पुष्पितपादपम् ।
कुलं चारित्रहीनेन पुरुषेणेव दह्यते ॥[१०]

भाग्यानीव मनुष्याणामुन्नमन्ति नमन्ति च ।[११]

निविष्टो दुष्कुले साधुः स्त्रीदोषेणेव दह्यते ।[१२]

बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुः न मातुः ।[१३]

---

१. वही, अङ्क ४, पृ० १२०
२. वही, अङ्क ४, पृ० १३७
३. वही, अङ्क ६, पृ० १७६ ५।३
४. प्रतिमा नाटक, मोतीलाल बनारसीदास, अङ्क ६, पृ० १७१
५. वही, अङ्क ६, पृ० १८७
६. वही, ४।२१
७. वही, ६।६
८. पञ्चरात्रम् १।१
९. वही, १।८
१०. वही, १।१२
११. वही, १।१३
१२. वही, १।१४
१३. वही, १।२१

वाणाधीनाः क्षत्रियाणां समृद्धिः पुत्रापेक्षी वञ्चयते सन्निधाता ।
विप्रोत्सङ्गे वित्तमावर्ज्य सर्वं राज्ञा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः ।[१]

शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते ।[२]

सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम् ।[३]

न ममैव कुलस्यापि मे भवान् प्रभुः ।[४]

भेदाः परस्परगताः हि महाकुलानां,
धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्ति ।।[५]

रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो,
निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः ।।[६]

एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि ।[७]

अकारणं रूपमकारणं कुलं, महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते ।[८]

मिथ्या प्रशंसा खलु नाम कष्टा ।[९]

पूज्यतमस्य क्रियतां पूजा ।[१०]

सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः ।[११]

मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ।[१२]

अविमारक : सुभाषित वाक्य

कन्या पितुर्हि सततं बहुचिन्तनीयम् ।[१३]

---

१. पञ्चरात्रम्, १।२४
२. वही, १।२५
३. वही, अङ्क १, पृ० ३५
४ वही, अङ्क १, पृ० ३५
५. वही, १।४१
६ वही, २।५
७. वही, २।६
८. वही, २।२२
९. वही, २।६०
१० वही, अङ्क २, पृ० १०१
११. वही, ३।४
१२. वही, ३।२५
१३. अविमारक, १।२

विपादा नाम वहुशः परीक्ष्य कर्त्तव्या भवन्ति ।[१]

कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी, कुलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ।[२]

कन्यापितृत्वं वहु वन्दनीयम् ।[३]

महद्भारोराज्यं नाम ।[४]

हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति ।[५]

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ।[६]

दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ।[७]

कर्णभारम् : सुभाषित वाक्य

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः ।
उभे वहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥[८]

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यः ।[९]

हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ।[१०]

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्,
सुवद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥[११]

दूतघटोत्कचम् : सुभाषित वाक्य

को हि सन्निहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं समर्थः ।[१२]

---

१. वही, १।३
२. वही, १।३
३. वही, १।६
४. वही, १।१२ के पहले
५. वही, पृ० ४७
६, वही, ३।१२
७. वही, ३।१२
८. कर्णभारम्, १।१२
९. वही, १।७१
१०. वही, १।१७
११. कर्णभारम्, १।२२
१२. दूतघटोत्कचम्, चौखम्वा संस्करण, पृ० ११

पुत्र व्यसनसन्तप्त ।[१]
राक्षसोग्रस्वभावा ।[२]
धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षाम् ।[३]

मध्यमव्यायोगम् - सुभाषित वाक्य

द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् ।[४]
वनं निवासाभिमत मनस्विनाम् ।[५]
ज्येष्ठो भ्राता पितृसम ।[६]
माला किल मनुष्याणा देवताना च दैवतम् ।[७]
आपद हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठा पुत्रेण तार्यते ।[८]

ऊरुभंगम् : सुभाषित वाक्य

मालशरीरा राजान ।[९]
सज्जनधनानि तपोवनानि ।[१०]

चारुदत्त : सुभाषित वाक्य

सुख हि दुःखान्यनुभूय शोभते ।
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति दशा दरिद्रता
स्थितः शरीरेण मृत स जीवति ।[११]
जनयति खलु रोष प्रश्रयो भिद्यमानः ।[१२]

१. दूतघटोत्कचम्, चौखम्बा संस्करण, १।२१
२. वही, १।४६
३. वही, १।५१
४. मध्यमव्यायोग, १।६
५. वही, १।१०
६. वही, १।१८
७. वही, १।३७
८. वही, १।१६
९. ऊरुभंगम्, चौखम्बा संस्करण, पृ० ५५
१०. वही, १।६६
११. चारुदत्त, १।१३
१२. वही, १।१४

व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव ।[1]
भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति ।[2]
असत्पुरुषसेवा निष्फलतां गता ।[3]
जरा मनुष्यवीर्यं परिभूय वर्धते ।[4]
कर्मसु कौशलम् ।[5]
धिगस्तुखलुदारिद्र्यम् ।[6]
निष्प्रभावा दरिद्रता ।[7]
स्वदोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ।[8]

अभिषेक : सुभाषित वाक्य

विमुच्य रोषं परिगृह्य धर्मम् ।[9]
भ्रातृदाराभिमर्शनम् दण्डयम् ।[10]
सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगी व परितप्यते ।[11]
त्यक्त्वा रोषं च कामं च, यथा कार्यं तथा कुरु ।[12]
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ।[13]

बालचरित : सुभाषित वाक्य

नारदः कलहप्रियः ।[14]

---

१. चारुदत्त, १।१६
२. वही, १।१५
३. वही, १।१६
४. वही, ३।४
५. वही, ३।१०
६. वही, ३।१४
७. वही, ३।१५
८. वही, ४।६
९. अभिषेक, चौखम्बा संस्करण, १।२६
१०. वही, १।२०
११. वही, २।१३
१२. वही, ३।२६
१३. वही, ४।७
१४. बालचरित, १।२

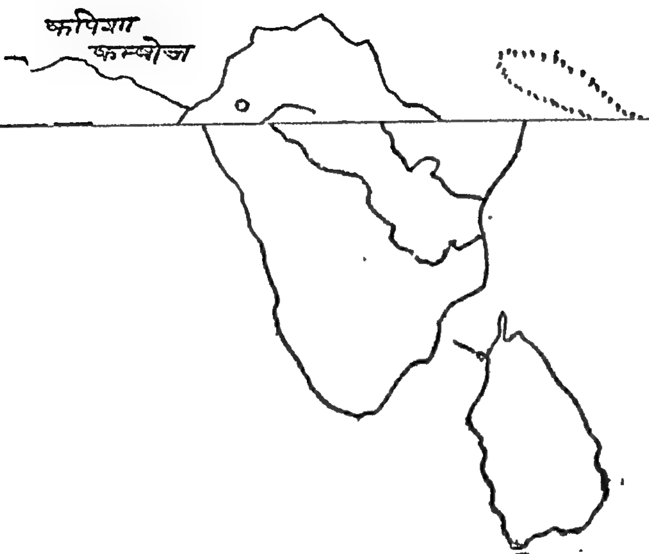
किं जन्मप्रयोजनम् ।[1]
विनाशकाले सम्प्राप्ते कालरात्रिरिवोत्थिता ।[2]

इस प्रकार सुभाषित या सूक्तिवाक्यों का प्रयोग कर भास ने अपने रूपकों को रमणीय बनाया है।

---

१. बालचरित, १।१०
२. वही, २।१६

भास द्वारा वर्णित भारत



पञ्चम अध्याय

भास की कृतियों का सांस्कृतिक विवेचन

भास की कृतियों का सांस्कृतिक विवेचन

प्रास्ताविक

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि भास द्वारा वर्णित समाज मौर्यकालीन है। उनकी कृतियों में व्याप्त सांस्कृतिक परिस्थिति का अध्ययन करने से भी मौर्यकालीन अस्तित्व की सिद्ध होती है। मौर्य युग का उदय अन्धकार से प्रकाश का उदय है। इस युग की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ और सामाजिक गठन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस युग में भारत जहाँ एक ओर राजनीतिक एकता सूत्र में समान शासन-प्रणाली में आवद्ध हुआ, वहीं भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध भी विभिन्न संस्कृतियों के साथ स्थापित हुआ। श्री बी० एन० लूनिया ने लिखा है—'मौर्य सम्राटों ने विश्व के अन्य सुसंस्कृत शासकों जैसे, सीरिया के सिल्यूकस, मिस्र के टालमी, मेसिडोनिया के अस्टोगोनस, लंका के रिसा और नेपाल के राजाओं से अपने राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्वन्ध स्थापित किये थे। इस सम्पर्क से भारतीय और पश्चिमी संस्कृति का परस्पर हेल-मेल बढ़ा। मौर्यकाल में ही भारत पृथ्वी के दूरस्थ प्रदेशों में अपनी सभ्यता, संस्कृति और धर्म प्रसार के हेतु प्रचारक भेज कर विश्व का अग्रगामी सांस्कृतिक दूत बन गया। अशोक के धार्मिक उत्साह ने धर्म के अनेक दूतों को प्रेरणा दी कि वे भारत की सीमा के पार जा कर मनुष्य मात्र के कष्ट निवारण कर वास्तविक मानव-सेवा का कार्य करें।.................इस प्रकार मौर्यों की छत्रच्छाया में भारतवर्ष ने शान्ति, बन्धुत्व और सांस्कृतिक एकता के आधार पर एक नवीन विश्व के निर्माण का प्रयास किया।'[१]

भास के नाटकों में मौर्यकालीन प्रथाएँ, सामाजिक उत्सव, रहन-सहन, भोजन-पान, वस्त्राभूषण आदि की उपलब्धि होती है। यों तो भास ने वैदिक युग से ले कर अर्थशास्त्र युग अर्थात् कौटिल्य काल तक विभिन्न युगों की सामाजिक परिस्थितियों का सामान्य अङ्कन किया है, पर विशेषरूप से भास

१. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृ० १५४

की रचनाओं मे मौर्यकाल की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं शासन-सम्बन्धी दशाएँ प्राप्त होती है। मौर्य साम्राज्य एक अत्यन्त विशाल साम्राज्य था, इसकी राजधानी पाटलिपुत्र मे थी और सम्पूर्ण साम्राज्य पाँच भागो मे विभक्त था—

(१) उत्तरापथ, (२) पश्चिमचक्र, (३) दक्षिणापथ, (४) कलिंग और (५) मध्यप्रदेश। इन प्रदेशो की राजधानियाँ क्रमश तक्षशिला, उज्जयिनी, सुवर्णगिरि, तोशाली और पाटलिपुत्र थी। ये पाँचो भाग या चक्र अनेक मण्डलो मे, मण्डल जनपदो मे और जनपद ग्रामो में विभक्त थे। मौर्यकाल के पूर्व की राज्यव्यवस्था परिवर्तित हो कर एक बडे साम्राज्य के रूप मे मान्य हो गयी थी। साम्राज्य की छोटी-छोटी इकाइयाँ इसी बडे साम्राज्य मे समाहित हो गयी थी। हम भास द्वारा निरूपित शासन-प्रबन्ध सामाजिक स्थिति, कला, उद्योग-वाणिज्य आदि के विवेचन के पूर्व भौगोलिक तथ्यो का निरूपण आवश्यक समझते हैं। भास ने अपनी कृतियो मे भारत के भौगोलिक ज्ञान का विस्तारपूर्वक निरूपण किया है।

भौगोलिक तथ्य

भास ने अग, अवन्ती, उत्तरकुरु, कम्बोज, काशी, कुन्तिभोज, कुरु, कुरुजागल, कोशल, गान्धार, जनस्थान, दक्षिणापथ, मगध, मत्स्य, मद्र, मिथिला, लका, वग, वत्स्य, विदेह, शूरसेन, सौराष्ट्र और सौवीर का निरूपण किया है। हम सर्वप्रथम इन देशो के अस्तित्व और भासकालीन इनकी स्थिति पर विचार करते हैं।

अंगदेश-कर्णभार चौखम्बा संस्करण, पृ० ४

भागलपुर से मुगेर तक फैले हुए भू-भाग का नाम अग देश है। इस देश की राजधानी चम्पापुरी थी, जो भागलपुर से दो मील पर पश्चिम मे स्थित है। कनिघम ने भागलपुर से चौबीस मील दूर पत्थर घाटा पहाडी के पास चम्पानगर या चम्पापुर की स्थिति मानी है। प्रचीन भारत में चम्पा एक अत्यन्त सुन्दर और समृद्ध नगर था। यह व्यापार का केन्द्र था और यहाँ वणिक बहुत दूर से सामान खरीदने के लिए आते थे।[1] बुद्ध पूर्वकाल मे राजसत्ता के लिए मगध और अंग मे संघर्ष होता रहा था।[2] महाभारत मे अग देश को कर्ण की राजधानी और रामायण मे रोमपाद की राजधानी बताया गया है। महाकाव्यो के

---

१. औपपातिक सूत्र १

२. जातक पालि टैक्स्ट सोसायटी, जिल्द चौथी, पृ० ४५४, जिल्द पाँचवीं, पृ० ३१६, जिल्द छठी, पृ० २७१

अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि अंग, वंग और कलिंग ये तीनों ऐसे प्रदेश थे, जहाँ के निवासी सामाजिक दृष्टि से पतित या हीन माने जाते थे। यह सत्य है कि बुद्ध के पूर्व अंग एक शक्तिशाली राज्य था। बौद्ध और जैन साहित्य में श्रेणिक बिम्बसार को अंग और मगध दोनों का स्वामी माना गया है। पालित्रिपिटक में अग और मगध को एक साथ रख कर 'अंग-मगधा' द्वन्द्व समास के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[१] चम्पेय जातक के अनुसार चम्पा नदी अंग और मगध की विभाजक प्राकृतिक सीमा थी, जिससे पूर्व और पश्चिम में ये दोनो जनपद बसे हुए थे। अंग जनपद की पूर्वी सीमा राजमहल की पहाड़ियाँ, उत्तरी सीमा कोसी नदी और दक्षिण में उसका समुद्र तक विस्तार था। पार्जिटर ने पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग को भी अंग जनपद में सम्मिलित माना है।[२]

अंग जनपद के नाम का कारण बतलाते हुए 'सुमंगल विलासिनी' में लिखा है कि इस प्रदेश में अंग नामक लोग रहते थे। अतः यह जनपद उनके नाम पर अंग कहलाया। अंग लोगों ने यह नाम अपने अंगों-शरीर अवयवों की सुन्दरता के कारण पाया था। शनैः शनैः यह नाम रूपि-द्वारा उन लोगों के स्थान के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। महाभारत में बताया गया है कि अंग नामक राजा के नाम पर इस जनपद का नाम अंग पड़ा था। अतः महाभारत में अंग का महत्व विशेष रूप में आया है।[३] इसके एक अन्य सन्दर्भ के अनुसार इसका अन्य नाम चम्पा भी ज्ञात होता है। रामायण में बताया गया है कि क्रुद्ध शिव से भयभीत हो कर मदन यहाँ भाग कर आया था और यहीं अपने अंगों को छोड़ कर अनंग हुआ था। अतः मदन के अंग का त्याग होने से यह प्रदेश अंग कहलाया।[४] स्पष्ट है कि ब्राह्मण और महाकाव्य युग में अंग देश का प्रमुख स्थान था।

अवन्ती-स्वप्नवासवदत्तम् ५।१ तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण

अवन्ती जनपद वर्तमान मालवा का वह भाग है, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। मत्स्य पुराण में इसका नाम वीतिहोत्र कहा गया है। महा-

---

१. दीघनिकाय, ३।५, मज्झिम निकाय, २।३।७, थेरीगाथा, बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण गाथा, ११०
२. जनरल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, सन् १८५७, पृ० ६५
३. महाभारत, गीताप्रेस संस्करण, १।१०४, ५३-५४
४. रामायण, गीताप्रेस संस्करण, १।२३।१४

भारत में नर्मदा के दक्षिण तट पर इस प्रदेश का अस्तित्व माना गया है, जो महानदी के पश्चिम तट पर है। मत्स्य पुराण के अनुसार कार्तवीर्यार्जुन के कुल में अवन्ति नामक राजकुमार उत्पन्न हुआ था, उसी के नाम पर इस प्रदेश का नामकरण हुआ।[1] पाणिनि ने इसे मध्य भारत का प्रसिद्ध जनपद माना है।[2] बौद्ध साहित्य में उज्जयिनी से माहिष्मती तक का प्रदेश अवन्ती जनपद के अन्तर्गत माना गया है। दीघनिकाय के महागोविन्दसुत्त से यह ज्ञात होता है कि बुद्ध पूर्व काल में जनपद, दक्षिण में नर्मदा नदी की घाटी तक, फैला हुआ था, क्योंकि इस नदी के किनारे स्थित माहिष्मती नगरी को इस सुत्त में अवन्ती की राजधानी बताया गया है, जिसे राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने बुद्ध पूर्व काल में स्थापित किया था।[3] भास के समय में अवन्ती जनपद एक समृद्ध भू-भाग था।

प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य भी अवन्ती का शासक था। इसके साथ कितनी ही लोक कथाओं का सम्बन्ध है। पाण्डवों के समय में विन्द और उपविन्द नामक दो भाई शासन करते थे। यह जनपद नर्मदा के दक्षिणी तट पर स्थित था।

उत्तरकुरु-उत्तरकुरुवास मयानुभूयते (स्वप्नवासवदत्तम्, चतुर्थ अंक, पृ० ९८)

सम्भवतः यह कुरुदेश था, जिसका निर्देश ऋग्वेद में आया है। कुछ विद्वान् इसे उत्तर गढ़वाल से सम्बद्ध मानते हैं। मूलतः यह कोई हिमालयीय प्रदेश है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार उत्तरकुरु उत्तर मद्रास के कहीं पड़ोस में स्थित था। रामायण[4] में पूर्वी तुर्किस्तान को उत्तरकुरु बतलाया है और महाभारत में तिब्बत को। महाभारत के समय में इसे हरिवर्षभ भी कहा गया है। ब्राह्मण और महाकाव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस जनपद का महत्त्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से कश्मीर अथवा तिब्बत को उत्तरकुरु माना जा सकता है। यह जनपद पौराणिक आख्यानों की दृष्टि से विशेष प्रसिद्ध था और यहाँ का जीवन सभी प्रकार से सुखी और सानन्द था।

---

१. हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, प्राकृत शोधसंस्थान, वैशाली, पृ० ३५३
२. अष्टाध्यायी, ४।१।१७६ गणपाठ ४।२।८२, ४।२।१२७
३. बुद्धकालीन भा० भू०, पृ० ४५०
४. रामायण, ५।४०

कम्बोज—काम्बोजकुलेषु—कर्णभारम् १।१३

अफगानिस्तान या उसके आस-पास का उत्तरी भाग कम्बोज या काम्बोज कहा गया है। यह हिमालय और सिन्धु नदी के बीच का जनपद है। कनिंघम और राय चौधरी के अनुसार वर्तमान रामपुर-राजोरी कम्बोजों की राजधानी थी। महाभारत के अनुसार काम्बोज गणराज्य था। कम्बोज जनपद के क्षत्रिय काम्बोज कहलाते थे तथा इन्हीं के नाम पर इस प्रदेश का उक्त नाम पड़ा होगा। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने आधुनिक पामीर और बदख्शाँ का सम्मिलित प्राचीन नाम कम्बोज जनपद माना है।[1]

प्रो० लासें ने कम्बोज की पहचान काशगर के दक्षिणी प्रदेश से की है। पाणिनि ने भी इसे एक व्यवस्थित जनपद माना है। भास ने कम्बोज के राजकुमारों के साथ अश्वों की भी प्रसिद्धि बतलायी है। डॉ० राइस डेविड ने कम्बोज की राजधानी द्वारका मानी है।[2]

काशी—काशिराज—प्रतिज्ञा० २।८, अविमारक, षष्ठ अङ्क, पृ० १६७

इस जनपद में वाराणसी, मिर्जापुर, जौनपुर, आजमगढ़, गाजीपुर जिलों का भू-भाग सम्मिलित था। काशी और कोशल के अठारह गण राजाओं ने वैशाली के राजा चेटक की ओर से कुणक के विरुद्ध युद्ध किया था। काशी के राजा शंख का उल्लेख इस जनपद की समृद्धि और कलाप्रियता पर प्रकाश डालता है। बुद्ध के पूर्व काशी की राजनीतिक शक्ति अत्यधिक थी। ब्राह्मण काल में काशी जनपद का राजा धृतराष्ट्र था, जिसने अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था। महाभारत में बताया गया है कि काशी का राजा प्रतर्दन था। जातक साहित्य से ज्ञात होता है कि कोशल में राज्य करने वाला ब्रह्मदत्त काशी का ही राजा था। इस जनपद की राजधानी वाराणसी थी।

कुन्तिभोज-अविमारक-विशेषतः, षष्ठ अङ्क, पृ० १४७-१७४, २।१, पृ० ५१

डे० के मतानुसार इसे भोज भी कहा गया है। यह प्रदेश प्राचीन समय में मालव के अन्तर्गत था। यह एक छोटी नदी-अश्वनदी या अश्वार्थानदी के तट पर स्थित था, यह नदी चम्बल नदी में जा कर मिलती थी। अविमारक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कुन्तिभोज समृद्ध प्रदेश था। महाभारत के समय

---

१ पाणिनिकालीन भारत, हिन्दी संस्करण, पृ० ६१

२. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० २८

मे यह चर्मण्वती नदी के तट पर अवस्थित था। सम्भवतः यह ग्वालियर जनपद से सम्बद्ध था।

कुरु-पञ्चरात्रम्, पृ० ४, ऊरुभंग १।२१

भास ने कुरु और कुरुजागल[1] इन दो जनपदो का उल्लेख किया है। गगा-यमुना के बीच मेरठ कमिश्नरी का भू-भाग इस जनपद मे सम्मिलित था, इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। थानेश्वर, हिसार, अथवा सरस्वती-यमुना-गगा के बीच का प्रदेश कुरुजागल कहलाता था। वस्तुतः कुरु जनपद और कुरुजागल एक दूसरे से सटे हुए थे। पाणिनि ने भी कुरु जनपद का निर्देश किया है। इस जनपद मे हिरण्यवती, कौशिकी, अरणा, अप्या और सरस्वती नदियाँ प्रवाहित होती थी।[2]

यह जनपद तीन भागो मे विभक्त था—(१) कुरुक्षेत्र (२) कुरु और (३) कुरुजागल। कुरुक्षेत्र थानेश्वर मण्डल से सम्बद्ध था और इसमे सोनपत, पानीपत, अमीन और कर्नाल पडते थे। यह सरस्वती और दृशद्वती के मध्य मे स्थित था। वैदिक युग मे आसनदीवत जिस स्थान पर स्थित था, आजकल उसी स्थान पर थानेश्वर स्थित है। ऊरुभग मे अश्वत्थामा ने बृहत् कुरु जनपद मे युद्ध किया था।[3]

कोशल—अभिषेक और प्रतिमा

अवध देश को कोशल जनपद माना गया है। अयोध्या, श्रावस्ती, लखनऊ आदि नगर कोसल जनपद मे सम्मिलित थे। रामायण के अनुसार श्रीरामचन्द्र जी ने श्रावस्ती का राज्य लव को और दक्षिण कोशल की कुशावती का राज्य कुश को दिया था। दक्षिण कोशल को विदर्भ या महाकोशल भी कहा गया है। बौद्ध और जैन साहित्य में सोलह जनपदो मे कोशल की गणना की गयी है। अचिरावती नदी कोशल तथा मल्लदेश की सीमा को विभक्त करती थी। भास की दृष्टि मे राम का जन्म कोशल में होने से यह बहुत पवित्र है। राम-कथा का सम्बन्ध इसी जनपद के साथ है।

---

१. कुरुजागल, मध्यम व्यायोग, पृ० २८
२. राय चौधरी, पॉलिटिकल ऐंसियेन्ट इण्डिया, द्वितीय संस्करण, पृ० १२
३. वूलनर और सरूप, तेरह त्रिवेन्द्रम रूपक, भाग २, पृ० ४५

केकय—प्रतिमा नाटक, भरत केकय देश—ननिहाल में गये थे

पंजाब के व्यास और सतलज के मध्य का भाग केकय कहा गया है। यह सिन्ध देश की सीमा से मिलता है। पार्जिटर ने केकय की स्थिति मद्र देश के पास मानी है। कनिंघम ने इसकी पहचान झेलम जिले के गिरिजक[1] से की है। इस जनपद की स्थिति गान्धार के उत्तर तथा मद्र के पश्चिम में सम्भव है। पाणिनि ने भी केकय जनपद का निर्देश किया है।[2] यह झेलम शाहपुर और गुजरात का पुराना नाम है। उपनिषदों में ब्रह्मवादी केकय अश्वपति का नाम मिलता है।

गान्धार—ऊरुभंग १।१, पञ्चरात्रम्, पृ० २६

गान्धार जनपद का सोलह जनपदों में उल्लेख आया है। इस जनपद का उल्लेख अशोक के पञ्चम शिलालेख में मिलता है। मज्झिम निकाय की अट्ठकथा में गान्धार जनपद को सीमान्त जनपद कहा गया है।[3] गान्धार की स्थिति स्वात नदी से झेलम नदी तक व्याप्त थी। इस प्रकार इस जनपद में पूर्वी अफगानिस्तान और पश्चिमी पंजाब सम्मिलित थे। गान्धार की राजधानी तक्षशिला शिक्षा और व्यापार इन दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण थी। जीवक वैद्य तक्षशिला का प्रसिद्ध स्नातक था। भास ने गान्धार देश की निवासिनी होने के कारण धृतराष्ट्र की पत्नी को गान्धारी कहा है।

जनस्थान—प्रतिमा नाटक, पृ० १४६, १७२

सम्भवतः यह स्थान निजाम राज्य के औरंगाबाद मण्डल में अवस्थित है। गोदावरी और कृष्णा नदी के तट पर स्थित पंचवटी का भू-भाग जनस्थान कहलाता है। रामायण में दण्डकारण्य के भू-भाग को जनस्थान कहा है। पार्जिटर ने गोदावरी के उभय तट पर स्थित प्रदेश को जनपद कहा है।

दक्षिणापथ—अभिषेक-तृतीय-अङ्क, पृ० २३, पञ्चरात्रम्—दक्षिणापथ परिघभ्नतो,-प्रथम अङ्क, पृ० २३

यह दक्षिण भारत का द्योतक है। ऋग्वेद[4] में इसे दक्षिण पथ कहा गया है।

---

१. आर्किओलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग २, पृ० १४ तथा एथनिक सेटलमेण्ट इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ० ८९

२. वही, अष्टाध्यायी, ७।३२

३. मज्झिम निकाय, जिल्द दूसरी, पृ० ९८२

४. ऋग्वेद, १०।६१।८

डॉ० डी० आर० भण्डारकर ने दक्षिण भारत के पथ मे दक्षिणापथ का निर्देश माना है। पाणिनि ने इसे दाक्षिणात्य कहा है। बौधायन सौराष्ट्र और दक्षिणापथ को संयुक्त रूप से एक मानता है। पर ऐसा कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिला है, जिससे दक्षिणापथ को एक माना जा सके। ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि विन्ध्य को पार कर आर्य दक्षिण की ओर गये थे, जिसमें विदर्भ भी सम्मिलित था। यों विदेह के नमि नृपति के समय में विदर्भ का स्वतन्त्र अस्तित्व भी प्राप्त होता है। भास के ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दक्षिणापथ दक्षिण प्रदेश के लिए प्रयुक्त है, जिसकी सीमा कलिंग मानी गयी है।

मगध—प्रतिज्ञा०, २।८, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अङ्क, पृ० ३३

इस जनपद की सीमा उत्तर में गंगा, दक्षिण में शोण नदी, पूर्व में अंग और पश्चिम में सघन जंगल तक व्याप्त थी। एक प्रकार से दक्षिण बिहार मगध जनपद था। इसकी राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी। महाभारत में मगध का नाम कीकट देश आया है। वायु पुराण के अनुसार राजगृह को कीकट कहा गया है। शक्ति संगम तन्त्र में कालेश्वर-काल भैरव वाराणसी से सीताकुण्ड—मुंगेर तक मगध देश माना गया है।[२] इस तन्त्र के अनुसार मगध का दक्षिणी भाग कीकट और उत्तरी भाग मगध बताया गया है।[३] प्राचीन मगध का विस्तार पश्चिम में कर्मनाशा नदी और दक्षिण में दमोदर नदी के स्रोत तक रहा है। ह्वेनच्वांग की गणना के अनुसार मगध जनपद की परिधि मण्डलाकार रूप में ८३३ मील थी। इसके उत्तर में गंगा, पश्चिम में वाराणसी, पूर्व में हिरण्य पर्वत और दक्षिण में सिंहभूमि वर्तमान थी। मगध जनपद के नामकरण का कारण बतलाते हुए आचार्य बुद्धघोष ने लिखा है—बहुधा पपञ्चानी—अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती में कहा गया है कि जब राजा चेतिय असत्य भाषण के कारण पृथ्वी में प्रविष्ट होने लगा, तब जो व्यक्ति उसके पास खड़े हुए थे, उन्होंने कहा—'मागधम् पविस'—पृथ्वी में प्रवेश मत करो। इसीके समान एक अन्य किंवदन्ती है कि

---

२. कालेश्वरं समारभ्य तन्त्रकुण्डान्तकं शिवे। मगधाख्यो महादेशो यात्रायां नहि दुष्यति॥

३. दक्षिणोत्तरक्रमेणैव क्रमात्कीकटमागधौ॥— शक्तितन्त्र, ३।७।११

जब राजा चेतिय धरती में प्रविष्ट हो गया तो जो लोग पृथ्वी खोद रहे थे, उन्हें देख कर वह कहने लगा—'मागधं करोथ'—इन अनुश्रुतियों के साथ तथ्य यही प्रस्फुटित होता है कि 'मगधा' नामक क्षत्रिय जाति की निवास भूमि होने के कारण यह जनपद मगध कहलाया।[१]

मत्स्य

बौद्ध साहित्य में मत्स्य[२] की गणना सोलह जनपदों में की गयी है। डॉ० भण्डारकर[३] ने मत्स्य को अलवर, जयपुर और भरतपुर के भू-भाग में अवस्थित माना है किन्तु डॉ० राय चौधरी ने अलवर की गणना शालव की सीमा के अन्तर्गत की है। डॉ० लॉ और डे ने किसी तरह अलवर को मत्स्य के अन्तर्गत ही समाविष्ट किया है। ऋग्वेद में वताया गया है कि मत्स्य सुदास का विरोधी था। शतपथ ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में भी मत्स्य का उल्लेख आया है। कौटिल्य के समय में मत्स्य ने अपनी राजतन्त्रात्मकता खो दी थी और यह गणतन्त्र के रूप में परिवर्त्तित हो गया था।

मद्र ऊरुभंग १।४०

'मद्र' जनपद वहुत वड़ा था। रावी से झेलम तक उसका विस्तार था। वीच की चिनाव नदी उसे दो हिस्सों में वाँटती थी। स्वभावत. झेलम और चिनाव के वीच का पश्चिमी भाग अपर मद्र गुजरात जिला और चिनाव एवं रावी के वीच का भाग स्यालकोट गुजराँवाला पूर्व मद्र कहलाता था। मद्र जनपद की राजधानी शाकल थी। महाभारत में वताया गया है कि भीष्म मन्त्रियों, ब्राह्मणों और सेनाओं के साथ इस प्रदेश में आये थे तथा उन्होंने मद्र राज्य शल्य से पाण्डु के लिए माद्री का वरण किया था।[४] मद्र जनपद के व्यक्ति युधिष्ठिर के लिए भेंट ले कर आये थे।[५] कर्ण ने मद्र और वाहीक आदि देशों की आचार-भ्रष्टता के कारण निन्दा की है। ऊरुभंग में मद्र का उल्लेख एक समृद्ध जनपद के रूप में आया है।

---

१. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३६१
२. रामयण, १।३२।७, महाभारत, १।६३।६०
३. कारमाइकल लेक्चर्स, पृ० ५२-५३।
४. महाभारत आदि पर्व ११२।२७
५. वही, सभापर्व ५२।१४

मिथिला—प्रतिज्ञायौगन्धरायण २।८

मिथिला जनपद विदेह का एक अंग था और यह विदेह की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध था। ब्राह्मण-काल तक मिथिला में राजतन्त्र-शासन था। रामायण के अनुसार मिथिला का राज्य निमि द्वारा स्थापित किया गया था। जनक के पिता का नाम मिथि था और दादा का नाम निमि। जातकों के अनुसार विदेह के विस्तृत राज्य में तीन सौ मण्डल और सोलह हजार गाँव थे। बौद्ध साहित्य के सोलह जनपदों में मिथिला का भी नाम आया है। सीता के पिता जनक मिथिला के ही निवासी थे। इसकी पश्चिमी सीमा सदानीरा थी। जनकपुर अथवा मिथिला विदेह की राजधानी थी। आज भी नेपाल की सीमा से लगा हुआ जनकपुर नामक एक छोटा नगर है। यह मुजफ्फरपुर से दक्षिण में दरभंगा से मिलता है। डे० का अभिमत है कि कालान्तर में विदेह की राजधानी वाराणसी हो गयी थी।

लंका 'प्रतिमा' नाटक और 'अभिषेक' रावण की नगरी

लंका की पहचान के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वान इसे मध्य भारत में मानते हैं, कुछ मिस्र में और कुछ सिलोन में। डे० ने कुछ प्रमाण दे कर यह सिद्ध किया है कि लंका और सिलोन दोनों एक नहीं हैं। पुराणों में लंका और सिंघल को अलग-अलग माना गया है। वराहमिहिर ने लंका और उज्जैन को एक ही रेखांश में माना है, पर सिलोन रेखांश से पूर्व पड़ता है। अतः अनेक मत-भिन्नताओं के रहते हुए प्राचीन लंका का निर्णय करना सम्भव नहीं है।

वंग—प्रतिज्ञायौगन्धरायण २।८

वंग की गणना प्राचीन जनपदों में की गयी है। यह बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ जलमार्ग और स्थलमार्ग से माल का यातायात होता था। यह जनपद अंग के पूर्व और सुम्ह के उत्तर पूर्व में स्थित था। महावंश नामक बौद्धग्रन्थ में वंग जनपद के राजा सिंहबाहु का उल्लेख आया है। इस जनपद की पहचान कुछ विद्वानों ने ब्रह्मपुत्र और पद्मा के बीच स्थित भू-भाग से की है। मजुमदार का अभिमत है कि वंग पश्चिम में ब्रह्मपुत्र, उत्तर में गंगा, पूर्व में मेघना और दक्षिण में खसी पर्वत से घिरा हुआ था। पार्जिटर ने आधुनिक मुर्शिदाबाद जिले को वंग कहा है। इसमें नदिया, जैसोर और फरीदपुर के कुछ अंश भी सम्मिलित थे। महाभारत में भी वंग का उल्लेख मिलता है।

शौरसेन—प्रतिज्ञायौगन्धरायण २।८ तथा बालचरितम्

शौरसेन जनपद की स्थिति मथुरा के आस-पास थी। मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, आगरा इसी जनपद में सम्मिलित थे। महाभारत में आया है कि दक्षिण-दिग्विजय के समय सहदेव ने इन्द्रप्रस्थ से चल कर सर्वप्रथम शूरसेन-वासियों पर आक्रमण किया था और विजय प्राप्त की थी।[1] इस जनपद के लोग युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी सम्मिलित हुए थे।[2] जैन-साहित्य में भी शूरसेन प्रदेश का महत्त्व वर्णित है। यहाँ देव-निर्मित स्तूप थे, जिनके अवशेष आज भी विद्यमान हैं। ग्रीक इतिहासकारों ने भी शौरसेन प्रदेश का महत्त्व स्वीकार किया है। शक्ति-संगम क्षेत्र में शूरसेन का विस्तार उत्तर-पूर्व में मगध तथा पश्चिम में विन्ध्य तक बतलाया गया है। महाभारत और पुराणों से यह भी अवगत होता है कि यदु अथवा यादव नाम की जाति शूरसेन में निवास करती थी। इस जनपद के नाम का कारण यह बतलाया जाता है कि वसुदेव के पिता का नाम शूर था और इन्हीं के नाम से यह प्रदेश शौरसेन या शूरसेन कहलाया। वायु पुराण के अनुसार शूरसेन के पश्चात् शत्रुघ्न के पुत्र ने इसे उक्त नाम से प्रसिद्ध किया। वर्तमान में प्राचीन शौरसेन की पहचान मथुरा, भरतपुर, खिरौली, धौलपुर और ग्वालियर के अंश के सम्मिलित भूभाग से की जा सकती है।

सौराष्ट्र—प्रतिज्ञायौगन्धरायण २।८

सौराष्ट्र वर्तमान काठियावाड़ से सम्बद्ध था। यह गुजरात का एक हिस्सा है। रामायण-काल में सौराष्ट्र सिन्धु से भड़ौच तक व्याप्त था। महाभारत के दक्षिण दिशा के तीर्थों के वर्णन-प्रसंग में सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत चमसोद्भेद, प्रभास-क्षेत्र, पिण्डारक एवं उज्जयन्त पर्वत आदि पुण्य स्थानों का उल्लेख आया है। यह जनपद व्यापार का भी केन्द्र था और यहाँ दूर-दूर के व्यापारी माल खरीदने के लिए आते थे। सौराष्ट्र प्रदेश पर मौर्यों का अधिकार था। परम्परा में बताया गया है कि कृष्ण का विवाह रुक्मिणी के साथ कठियावाड़ के माधवपुर में हुआ था। प्रभासपट्टन वर्तमान सूरत के नाम से प्रसिद्ध है।

---

१. महाभारत, सभा पर्व, ३१।१-२

२. वही, सभापर्व १३।१७५ तथा एथनिक सेटिलमेन्ट इन एन्सियेण्ट इण्डिया पृ० ४३

सौवीर—अविमारक नाटक, प्रथम अङ्क, २१ पृ०

सौवीर की वर्तमान पहचान के सम्बन्ध मे बहुत ही मतभेद है। कनिंघम का मत है कि 'बादरी' अथवा ईडर का ही नामान्तर सौवीर है। राय डेविडस् ने सौवीर की स्थिति काठियावाड के उत्तर मे मानी है और कच्छ को इसके अन्तर्गत बताया है। अन्य विद्वानो का मत है कि सिन्धु सौवीर वर्तमान सिन्ध ही है। पण्डित भगवान् लाल इन्द्र जी का मत है कि सिन्धु देश तो वर्तमान सिन्धु है और सौवीर सिन्धु के ऊपरी भाग को मानना चाहिए। मार्कण्डेय पुराण मे निर्देश किया है कि सिन्धु और सौवीर दक्षिणी भारत के गान्धार, मद्र आदि प्रदेश होने चाहिये। नन्दलाल डे० ने अलबरूनी की शोध खोज के आधार पर मुलतान और जहरवार को सौवीर कहा है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने सिन्धु प्रान्त या सिन्ध नदी के निचले काठे का पुराना नाम सौवीर माना है। इसकी राजधानी रोरुव वर्तमान रोडी मानी गयी है।[1] पाणिनि ने भी सौवीर का निर्देश किया है।[2] यह सत्य है कि सौवीर जनपद प्राचीन समय में व्यापार की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। यह सिन्धु और झेलम नदी के पूर्व में मुलतान तक फैला हुआ था।

भास द्वारा वर्णित नगर

नाटककार भास ने प्रदेशो के समान ही नगरो और ग्रामो का भी उल्लेख किया है। प्राचीन समय मे जिस ग्राम में सौ कुटुम्ब निवास करते थे वह छोटा गाँव और जिसमें पाँच सौ कुटुम्ब निवास करते थे, वह बड़ा गाँव कहलाता था। बड़ा ग्राम छोटे ग्राम की अपेक्षा अधिक समृद्ध होता था। इसमे सभी प्रकार के पेशेवाले व्यक्ति निवास करते थे। छोटे ग्राम की सीमा एक कोस की और बड़े ग्राम की सीमा दो कोस की होती थी। जिसमें परिखा, गोपुर, अटारी, कोट और प्राकार निर्मित हो तथा सुन्दर-सुन्दर भवन बने हों, वह नगर कहलाता था। नगर में वाटिका, बन, उपवन और सरोवरो का रहना आवश्यक था। नगर शब्द की व्युत्पत्ति—'न गच्छतीति नगः, नग इव प्रासादा सन्त्यत्र' की जा सकती है। अर्थात् जिनमे उन्नत प्रासाद हो और जो पक्के बनाये गये हों तथा जिनकी दिवालें तथा छतें पाषाण शिलाओ से निर्मित हो,

---

1. पाणिनिकालीन भारत, पृ० ६४
2. अष्टाध्यायी, ४।१।१४८

उन्हें नगर कहा जाता है। मानसार में बताया है—'जहाँ पर क्रय-विक्रय आदि विभिन्न व्यापार सम्पन्न होते हों, अनेक जातियों और परिवारों के व्यक्ति निवास करते हों विभिन्न श्रेणियों के कर्मकार वसते हों, वह नगर है'। भास ने अपने समय के नगरों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया है। प्रमुख नगरों का विवेचन निम्न प्रकार है।

अयोध्या—प्रतिमा नाटक ५।१ और अभिषेक

अयोध्या नगरी दशरथ की राजधानी और राम-लक्ष्मण आदि की क्रीड़ा भूमि एवं जन्मभूमि के रूप में प्रसिद्ध है। अयोध्या की गणना तीर्थ-भूमियों के रूप में की गयी है। यह सरयू के दक्षिण तट पर स्थित थी। रामायण में भी इस नगरी का विशेष महत्त्व आया है। इस नगरी की स्थापना मानवेन्द्र मनु ने की थी और इक्ष्वाकु इसके पहले शासक थे। इसके चारों ओर एक विशाल परकोटा और जल से भरी अगाध खायी थी, जिसके कारण यह शत्रुओं के लिए अजेय थी। अयोध्या नगरी में व्यवस्थित और विस्तृत मार्ग थे उनके दोनों ओर 'सुविभक्तान्तरापणा'—दोनों ओर दूकानों और गृहों की पंक्तियाँ शोभित होती थीं। यहाँ वड़े-वड़े विशाल रतन-जटित भवन थे। अयोध्या नगरी अपने सौन्दर्य के कारण सभी प्रकार से प्रसिद्ध थी।

उज्जैनी-"स्वप्नवासवदत्तम्" द्वितीय अंक, पृ० ६९, ४।१, पंचम अंक, पृ० १७८

उज्जैनी नगरी प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रही है। इसका शाब्दिक अर्थ विजयिनी है अर्थात् 'उत्+जयिनी' उत्कर्ष के साथ विजय करने वाली। स्कन्दपुराण के अवन्ति खंड के २८वें अध्याय में इसका विशेष वर्णन आया है। यह अवन्ति प्रदेश की राजधानी थी। अवन्ति के देव-अध्यक्ष ने महादेव के त्रिपुरी के शक्तिशाली राक्षस-अध्यक्ष पर विजय पा लेने के स्मृति-स्वरूप अवन्तिपुर का नाम उज्जयिनी कर दिया था। यदि रूपक को अवगत करने की चेष्टा करें तो यह दन्तकथा इस वात की ओर स्पष्ट निर्देश करती है कि अवन्ति के लोगों ने त्रिपुरी की शासक जाति पर विजय प्राप्ति के उपलक्ष्य में इसका नाम उज्जैनी रखा था। उज्जैनी प्राचीन प्रसिद्ध नगरी है और यह सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रही है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के अनुसार वत्स जनपद के राजा उदयन ने उज्जैनी के प्रद्योत राजा की कन्या वासवदत्ता का अपहरण किया था। कथा-सरित्सागर के लेखक सोमदेव इस नगरी के नाम पद्मावती, भोगावती एवं हिरण्यावती बतलाते हैं। बौद्धकाल में भी इस नगरी की प्रसिद्धि

थी। उत्तर से दक्षिण की ओर जानेवाले व्यापार मार्ग पर यह विश्राम-स्थल थी। इस व्यापार-मार्ग का उत्तरी छोर मगध की राजधानी राजगृह था और दक्षिणी छोर प्रतिष्ठान था, जो कि गोदावरी के उत्तरी किनारे पर बसा हुआ है। इस व्यापार-मार्ग पर पड़ने वाले विश्राम-गृहों मे प्रथम सरयू तट पर साकेत था, द्वितीय कौशाम्बी, तृतीय तुम्बुवन, चतुर्थ गोनद, पचम विदिशा, षष्ठ उज्जैनी और सप्तम माहिष्मती था। इस प्रकार बौद्धकाल तक इस नगरी की प्रसिद्धि वर्तमान थी। वर्तमान मे उज्जयिनी तीर्थभूमि के रूप मे प्रख्यात है।

काम्पिल्य स्वप्नवासवदत्तम्, पचम अङ्क, पृ० १८१

यह नगर वर्तमान कपिल नगर से सम्बद्ध है। इसकी स्थिति उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद जिले मे मानी जा सकती है।[१] यहाँ का राजा ब्रह्मदत्त था, जिसका उल्लेख जातक ग्रन्थो मे भी आया है। यह नगर द्रुपद की राजधानी था, जो दक्षिण पाञ्चाल का राजा था। दक्षिणी पाञ्चाल की अहिच्छत्र राजधानी थी और इसका सामरिक महत्त्व था। जब हर्षवर्धन ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और इस नगर की समृद्धि बढने लगी तो काम्पिल्य का महत्त्व समाप्त हो गया। आजकल काम्पिल्य का अवशेष कपिल या कपिला नगरी के रूप मे माना जा सकता है।

किष्किन्धा—'अभिषेक' प्रथम अङ्क, पृ० ६

वानर वंश की राजधानी किष्किन्धा एक महापुरी थी। प्रस्रवण गिरि के निकट वह एक पर्वतीय प्रदेश के रूप मे स्थित थी। हिंस्र पशुओ और नदी नालों से भरे एक घने जगल मे हो कर ही नगरी तक पहुँचा जा सकता था। रावण के गुप्तचर शुक ने किष्किन्धा को समस्त पर्वतीय दुर्गों मे सबसे अधिक दुर्गम और गहन वृक्षो से आवृत्त बताया था।[२] नगर से सटा हुआ एक घना वन था, जिसके पेडो की ओट ले कर राम ने बाली को मारा था।

किष्किन्धा की सुरक्षा-योजना सभी अन्य नगरो के समान ही थी। नागरिक सुख-सुविधा और रचना-सौन्दर्य उसमें भरपूर था। पुष्पित उद्यानो से सुशोभित, रत्नों से खचित, कोठे और अटारियों से युक्त, सब प्रकार के फल देने वाले कुसुमित वृक्षो से सज्जित तथा काम-रूपी वानरो से आबाद

---

१. कनिघम, ऐंशियन्ट जॉग्रफी, पृ० ७०४

२. रामायण, ६।२८।३०

किष्किन्धा नगरी को आदि कवि ने 'अतुलप्रभा' कहा है। इसके राजमार्ग चन्दन, अगरु, और कमलों की गन्ध से सुवासित तथा मधु-मैरेय मद्यों की वास से आमोदित थे।

इस नगरी की स्थिति विलारी जिले में हंपो से चार मील दूर तुंगभद्रा नदी पर स्थित वर्तमान अनागोन्दी मानी जा सकती है।

कौशाम्बी—प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रथम अङ्क, पृ० ३२

कौशाम्बी की पहचान रायबहादुर दयाराम साहनी के द्वारा निश्चित रूप से कर ली गयी है। यह नगर वर्तमान में यमुना के बांयें तट पर कोलम नामक ग्राम अवशेष के रूप में विद्यमान है। यह इलाहाबाद से दक्षिण-पश्चिम तीस मील की दूरी पर स्थित है। यह नगर वत्स देश की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित था। बौद्ध और जैन-साहित्य में सोलह जनपदों के अन्तर्गत इसकी गणना की गयी है। शतपथ ब्राह्मण में भी इस नगर का निर्देश आया है। कौशाम्बी की गणना भारत के दस बड़े नगरों में की गयी है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध वार्त्तिककार वररुचि अथवा कात्यायन का जन्म कौशाम्बी में हुआ था, यह नन्द राजाओं के मन्त्रियों में सम्मिलित था। यह स्थिति उस समय की है जब गंगा हस्तिनापुर को बहाकर ले गयी थी। जनमेजय के प्रपौत्र निचक्षु ने अपनी राजधानी कौशाम्बी में स्थानान्तरित की थी।[1] भास के नाटकों के अनुसार वत्सनरेश उदयन की राजधानी भी कौशाम्बी थी। भास के नाटकों के अनुसार उदयन के पिता का नाम शतानीक और दादा का नाम सहस्रानीक था।

पाटलिपुत्र—पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः—चारुदत्तम्, द्वितीय अङ्क, पृ० ६०

गंगा के तट पर अवस्थित बहुत पुराना नगर है। जैन साहित्य में बताया गया है कि कुणिक के परलोक गमन के पश्चात् उसका पुत्र उदायी चम्पा का शासक नियुक्त हुआ। वह अपने पिता के सभा-स्थान, क्रीडा-स्थान, शयन-स्थान, आदि को देख कर पूर्व स्मृति जागृत हो जाने से उद्विग्न रहता था। अतएव उसने अपने प्रधान अमात्य से अनुमति ले कर प्रवीण नैमित्तिकों को नूतन नगर-निर्माण के लिए स्थान निश्चित करने हेतु आदेश दिया। वे भ्रमण करते हुए गंगा-तट पर आये। गुलाबी पुष्पों से सज्जित छवियुक्त पाटलि वृक्षों

---

१. गङ्गयापहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये ।
त्यक्त्वा निचक्षुर्नगरं कौशाम्बीयां स निवत्स्यति ॥

—महाभारत ९।१३।४० तथा पार्जिटर-
डानिस्टीस् ऑव कॉलऐ,ज पृ० ५

को देख कर वे आश्चर्यचकित हुए। तरु की टहनी पर चाष नामक पक्षी मुँह खोले बैठा था। कीडे स्वयं उसके मुंह मे आ पडते थे। इस घटना को देख कर वे नैमित्तिक सोचने लगे कि यहां नगर का निर्माण होने से राजलक्ष्मी वृद्धिगत होगी, फलतः उस स्थल पर नगर बसाया, जिसका नाम पाटलिपुत्र रखा गया।[१] मौर्यकाल मे यह नगर समस्त मौर्यराज्य की राजधानी रहा है। वर्तमान मे भी पटना नगर बिहार राज्य की राजधानी है।

मथुरा—बालचरितम्—प्रसुप्ता मथुरायां सर्वजना.—प्रथम अङ्क, पृ० ११, मथुरावासिनः, पञ्चम अङ्क, पृ० १००

शौरसेन प्रदेश की राजधानी के रूप मे मथुरा प्रसिद्ध रही है। यह यमुना के तट पर अवस्थित थी। वर्तमान मथुरा प्राचीन मथुरा के स्थान पर नही है। यमुना के प्रवाह की दिशा के बदल जाने से मथुरा की अवस्थिति भी परिवर्तित है। मथुरा का सम्बन्ध भगवान् कृष्ण के साथ रहा है। व्रज प्रदेश के अनेक नगरों और स्थानो का सम्बन्ध कृष्ण कथा के साथ है।

राजगृह—स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अङ्क, पृ० १४

राजगृह के अन्य नाम क्षिति-प्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर तथा कुशाग्रपुर भी मिलते हैं। इसे गिरिव्रज भी कहा गया है। मगध की राजधानी के रूप में यह नगरी प्रसिद्ध रही है। राजगृह पाँच पहाडियों से आवृत है। सरस्वती नदी इस नगर के मध्य से प्रवाहित होती थी और बाणगंगा दक्षिण की ओर से। रामायण के समय में शोण नदी भी राजगृह से प्रवाहित होती थी। उदायी के पहले राजगृह की समृद्धि विशेष रूप से रही है। मौर्यकाल मे राजगृह की समृद्धि क्षीण हो गयी और पाटलिपुत्र ने उसका स्थान प्राप्त किया। बुद्धकाल में वेणुवन विहार राजगृह के पास ही था। बिम्बसार या श्रेणिक के समय में राजगृह ने पूर्ण विकास किया था। यह नृपति पहले बुद्ध का भक्त था, पर बाद में तीर्थंकर महावीर का उपदेश सुन कर उनका शिष्य हो गया था। तीर्थंकर महावीर की धर्मसभा राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर होती थी, जिसका प्रधान श्रोता श्रेणिक रहता था। जैन पुराणो की अधिकांश कथाओं में श्रेणिक का वर्णन आया है। भास ने मगध के राजा दर्शक की राजधानी राजगृह को बताया है। इस नगर के बाहर आश्रम थे। राजमाता आत्मसाधना के लिए तापसी आश्रम में निवास करती थीं।

---

१. विविध तीर्थकल्प, पृ० ६७

लंका-अभिषेक, ४।१, द्वितीय अङ्क, पृ० २८ तथा प्रतिमा नाटक

लंका प्रदेश की राजधानी लंका थी। लंका नगरी की समृद्धि और सुन्दरता का वर्णन हनुमान ने किया है। हनुमान कहते हैं :—

कनकरचितचित्रतोरणाढ्या
मणिवरविद्रुशोभितप्रदेशा ।
विमलविकृतसञ्चितैर्विमानै—
र्वियति महेन्द्रपुरीव भाति लङ्का ॥[1]

लंका में सोने के बने विचित्र तोरण हैं, इसका प्रदेश मणियों तथा प्रवाल से शोभित है। निर्मल तथा संचित विमानों से यह नगरी आकाश में अवस्थित स्वर्गपुरी की तरह मालूम पड़ती है।

रामायण के अनुसार लंका नगरी बीस योजन लम्बी और दस योजन चौड़ी थी। धूप के समान उज्ज्वल वर्ण के प्राकार से घिरी, त्रिकूट पर्वत पर स्थित तथा चमचमाते सोने के प्रासादों से अलंकृत होने के कारण लंका नगरी ऐसी जान पड़ती थी, जैसे वह अन्तरिक्ष में बनी पुरी हो, जो व्योम-मण्डल को भेदती हुई ऊपर तक चली गयी है।

नगरी में सुव्यवस्थित मार्ग, रथ्याएँ, उप-रथ्याएँ एवं चर्याएँ बनी हुई थीं। लंका के केन्द्रीय राजमार्ग पर हरी दूब, फल-पुष्पों से युक्त सुगन्धित तरुवर तथा रमणीय उद्यान सुशोभित थे। हनुमान ने गृह-मध्यवर्ती उद्यानों, गृहों, विमानों, स्नानागारों, प्रासादों आदि का भी निर्देश किया है। प्रमदवन का वर्णन करते हुए कहा है :

कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैः
विकृतमहाद्रुमपंक्तिचित्रदेशा ।
रुचिरतरनगा विभाति शुभ्रा
नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥[2]

विराटनगर—विराटनगराद्दूतः—पञ्चरात्रम्, प्रथमोऽङ्कः, पृ० ४३

विराट नगर मत्स्य जनपद की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध है। यह विराट या

---

१. अभिषेक नाटकम्, २।२

२. वहीं, २।५

वैराट नगर जयपुर मण्डल के अन्तर्गत स्थित है। दिल्ली से १०५ मील दक्षिण-पूर्व और जयपुर से उत्तर इकतालीस मील की दूरी पर अवस्थित है। अशोक के कई प्रसिद्ध शिलालेख वैराट नगर मे प्राप्त हुए हैं। रायबहादुर दयाराम साहनी के तत्त्वावधान मे जयपुर राज्य मे हुई खुदाई मे अनेक ऐसी वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं, जिनका विराट नगर के महत्त्व को अवगत करने की दृष्टि से विशेष मूल्य है।

वैरन्त्य—वैरन्त्य नाम नगरमप्यस्ति—अविमारकम्, षष्ठ अंक, पृ० १६१

भास के मतानुसार यह कुन्तिभोज की राजधानी थी। हर्षचरित मे इसे रन्तिदेव की राजधानी के रूप में वर्णित किया गया है। चम्बल नदी की शाखा गोमती के तट पर स्थित रन्तिपुर के नाम से इसकी पहचान की जा सकती है।

भास ने लिखा है—

पिता कुरङ्ग्या भूपालो वैरन्त्यनगरेश्वर.।
दुर्योधनस्य तनयः कुन्तिभोजो भवान् ननु ॥[1]

कुरगी के पिता वैरन्त्य नगर के स्वामी, दुर्योधन के पुत्र कुन्तिभोज थे।

शृंगवेरपुर—प्रतिमानाटकम्, द्वितीय अंक, पृ० ६२

यह नगर इलाहाबाद से बाइस मील उत्तर-पूर्व गगा के तट पर 'सिंगरौर' के नाम से आज भी पहचाना जा सकता है। इस नगर को रामचौरा के नाम से जाना जा सकता है। सुमन्त्र राम को यहाँ तक पहुँचा कर लौट आये थे। उस समय इस नगर की समृद्धि थी। 'अवध' जनपद के साथ इसका सम्बन्ध रहने से यह लोकप्रिय नगर रहा होगा।

हस्तिनापुर—हस्तिनापुरनिवासाच्छीलज्ञो भगवान्—पंचरात्रम्, द्वितीय अंक, पृ० ६१

यह नगर कुरुजागल जनपद की राजधानी बतलाया गया है। इसकी समृद्धि स्वर्ग के समान थी। यह कुरु देश की राजधानी के रूप मे ख्यात रहा है, इसे हास्तिन नाम के राजा ने बसाया था। गगा के दक्षिण तट पर मेरठ से

---

१. अविमारकम्, ६।१३

२२ मील दूर उत्तर-पश्चिम कोण में और दिल्ली से ५६ मील दक्षिण-पूर्व में आज भी खण्डहरों के रूप में विद्यमान है।

जैन साहित्य में बताया गया है कि आदि तीर्थंकर ऋषभ देव के सौ पुत्र थे। जब उन्होंने दीक्षा ग्राह्य की तो अयोध्या के पट्ट पर अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत का राज्याभिषेक किया, तथा बाहुबली को तक्षशिला का पट्ट प्रदान किया। शेष पुत्रों को यथायोग्य राज्य प्रदान किया। अंगकुमार ने जिस देश को प्राप्त किया, वह अंग देश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुरु नामक पुत्र के नाम कुरुक्षेत्र या कुरुराज्य. एवं वंग, कलिंग, शूरसेन तथा अवन्ति के नाम से तत्तत् देश प्रसिद्ध हुए। कुरु का पुत्र हस्ति नामक राजा हुआ, जिसने हस्तिनापुर को बसाया।[1] यहाँ गंगा नामक पवित्र जल वाली नदी प्रवाहित होती थी। पौराणिक दृष्टि से इस नगर का अत्यधिक महत्त्व है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का नायक दुष्यन्त भी यहीं का निवासी था। इस नगर के साथ संस्कृत वाङ्मय की शताधिक कथाएँ जुड़ी हैं।

भास ने इस नगर को कौरवों की राजधानी के रूप में अंकित किया है।

पर्वत और नदियाँ

भास ने हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र, मलय, त्रिकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलास और सुवेल का निर्देश किया है। नदियों में गंगा, यमुना और नर्मदा के नाम आये हैं।

ग्रामों में कुरुजांगल देश के अन्तर्गत उद्यापक और यूपग्राम का कथन आया है। वेणुवन, नागवन, वालुकातीर्थ और मदयन्तिका का उल्लेख वत्स राज्य से मालवा की यात्रा में किया गया है। लावाणकग्राम वत्सराज्य का सबसे अधिक प्रभावशाली ग्राम था, जिसमें वैदिक शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध था। इस ग्राम का शिक्षा की दृष्टि से भास ने विशेष महत्त्व बतलाया है।

इस प्रकार भास की कृतियों में भौगोलिक तथ्य उपलब्ध हैं। इनसे नगर, नगर-रचना और नागरिक जीवन का परिज्ञान प्राप्त होता है। नागरिक जीवन की, उसकी प्रेरक शक्तियों और प्रवृत्तियों की, मूर्त्तिमान अभिव्यक्ति होने के कारण मानवीय कला और सौन्दर्य भावना का सर्वोत्कृष्ट स्मारक नगर और जनपद हैं। प्राचीन समय में जीवन और निवास संकटापन्न होने के कारण

---

१. विविधतीर्थ कल्प के अन्तर्गत-हस्तिनापुर कल्प, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, प्रथम संस्करण, पृ० २७

नगरो को प्राकार-चहारदीवारों और परिखा-खाइयो से सुरक्षित किया जाता था। प्राचीन काल मे नगरो का उद्भव और विकास व्यापारिक और सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। राजगृह के चारो ओर खाइयो का वर्णन मिलता है। भास ने इस प्रकार अपने युग का जीवन-चित्र प्रस्तुत करने के लिए उक्त तथ्यो का समावेश किया है।

भास द्वारा प्रतिपादित सामाजिक सस्थाएँ

समाज के विभिन्न आदर्श नियन्त्रित जन-रीतियों, प्रथाओ और रूढ़ियो के रूप मे पाये जाते हैं। अतः कार्य-कलापों मे व्यवस्था स्थापित करने एव पारस्परिक निर्भयता बनाये रखने के हेतु यह आवश्यक है कि इनको एक विशेष कार्य के आधार पर सगठित किया जाय। इस सगठन का नाम ही सामाजिक सस्था (Social Institution) है। चार्ल्सहॉर्टनकूले ने सामाजिक सस्था का स्वरूप-निर्धारण करते हुए लिखा है—'सामाजिक सस्था किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामाजिक विरासत मे स्थापित सामूहिक व्यवहारों का एक जटिल तथा घनिष्ठ सगठन है।' स्पष्ट है कि मानव सामूहिक हितो की रक्षा एव आदर्शों के पालन करने के लिए सामाजिक सस्थाओं को जन्म देता है। ये सस्थाएँ समूह, समिति, श्रेणी आदि से भिन्न होती हैं। इनके निर्माण का आधार कोई निश्चित आचार-व्यवहार एव समान हित सम्पादन की प्रवृत्ति ही होती है। सामाजिक सस्थाएँ एक व्यक्ति के व्यवहार पर निर्भर नहो करती, किन्तु बहु-सख्यक मनुष्यो के व्यवहारो के पूर्ण चित्र के आधार पर ही उनका प्रादुर्भाव होता है।

आशय यह है कि सामाजिक सस्थाएँ मनुष्यों की सामूहिक क्रियाओ, सामूहिक हितों, आदर्शों एव एक ही प्रकार के रीति-रिवाजो पर अवलम्बित हैं। अनेक व्यक्ति जब एक ही प्रकार की जन-रीतियो और रूढ़ियो के अनुसार अपनी प्रवृत्ति करने लगते हैं, तो विभिन्न प्रकार की सामाजिक सस्थाएँ जन्मग्रहण करती हैं। प्रत्येक सामाजिक सस्था का एक ढाँचा होता है, जिसमे कार्यकर्त्ताओं, उत्सवो, सस्कारो एव सामाजिक सम्बन्धो का समावेश रहता है।

मनुष्यों के व्यवहारो पर प्रवृत्तियो को नियन्त्रित करने के लिए आचारसहिता अपेक्षित होती है। इस सहिता के धरातल पर भी सामाजिक सस्थाओ का गठन होता है। भास की कृतियो मे निम्नलिखित सामाजिक सस्थाओ का निर्देश मिलता है—

(१) वर्ण या जाति-संस्था
(२) आश्रम-संस्था
(३) विवाह-संस्था
(४) संस्कार-संस्था
(५) परिवार-संस्था
(६) पुरुपार्थ-संस्था
(७) कुल-संस्था

वर्ण या जाति-संस्था

वर्ण-व्यवस्था श्रम-विभाजन के आधार पर प्रतिष्ठित थी। यह विभाजन आधारवत् था लम्बवत् नहीं। वैदिक युग में एक ही परिवार के अन्तर्गत कई वर्णो के लोग साथ-साथ रहते थे, ऊँच-नीच का भाव नहीं था। वर्ण-परिवर्तन सम्भव और सरल था। समाज तरलावस्था में था। पर उत्तर वैदिक काल में सामाजिक वर्ग दृढ़ और स्थिर होने लगा। वर्ण क्रमशः जन्मगत माना जाने लगा। डॉ० राजवली पाण्डेय ने इसके कारणों का विवेचन करते हुए लिखा है—'एक तो एक ही परिवार में एक ही व्यवसाय को स्थायी रूप से बनाये रखने की प्रवृत्ति और दूसरे, वर्गों का निहित सामाजिक और आर्थिक स्वार्थ। तीसरे, समाज में क्रमशः आर्येतर तत्त्वों का प्रवेश। रक्त की शुद्धि और प्रजातीय अभिमान बनाये रखने के लिए सामाजिक भेद-प्रभेद स्थायी होने लगे।'[१]

स्पष्ट है कि वर्ण-विभाजन सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से क्रियात्मक और श्रमगत था। सभी वर्ण अपने-अपने स्थान में महत्त्वपूर्ण थे। अपने जीवन में चरम लक्ष्य निःश्रेयस की प्राप्ति वर्ण-धर्म के पालन से ही सम्भव थी।

वर्ण और जाति ये दोनों भिन्नार्थक हैं। जब व्यक्तियों का एक समुदाय कई सन्ततियों से वंश-परम्परागत प्रणाली के अनुसार एक ही देश में रहता हो तब उसे जाति (Race) कहा जाता है। प्रत्येक जाति के मानसिक गुण पृथक्-पृथक् होते हैं। जाति रक्त-सम्बन्ध रखने वाले प्राणियों का ऐसा वर्ग है, जो अपने शारीरिक चिह्नों की विशेषता द्वारा दूसरे से भिन्न दृष्टिगोचर होता है। जाति में जन्म से भौतिक लक्षण, आकार-प्रकार, माप-तौल, परिमाप, शिरोरूप,

---

१. भारतीय नीति का विकास, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६५, पृ० ५०

त्वचा, रंग आदि समान पाये जाते हैं। समाज-शास्त्रियों ने जाति की उक्त परिभाषा ग्रहण नहीं की है। वे इसे वर्ग-चेतना के निर्वाहनार्थ मानव-समूह (Caste) के रूप में ग्रहण करते हैं। 'अतएव जाति, कुटुम्बों का वह समूह है जिसका अपना एक निजी नाम है, जिसकी सदस्यता पैतृकता द्वारा निर्धारित होती है जिसके भीतर ही कुटुम्ब विवाह करते हैं और जिसका या तो अपना निजी पेशा होता है या जो अपना उद्भव किसी पौराणिक देवता या पुरुष से बताते हैं।'[१]

रक्त-सम्बन्ध पर आधारित जाति और वर्ण इन दोनों में मौलिक भेद है। एक संस्था बल देती है प्रकृति के आधार पर वृत्ति के चुनाव पर और दूसरी विवाह और भोजन के आधार पर। वर्ण वैचारिक संस्था है और जाति ऐतिहासिक। वैचारिक संस्थाओं को चलाने के लिए ज्ञान और तपस्या की आवश्यकता होती है। जब इनका अभाव होता है तब वैचारिक संस्थाएँ शिथिल पड़ जाती हैं। जाति का आधार प्राकृतिक रक्त-सम्बन्ध है। इसकी ओर सहज प्रवृत्ति होती है। इसको चलाने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं। सामान्यतः वर्ण और जाति को एक समझा जाता है।

ब्राह्मण

नाटककार भास ने वर्ण-चतुष्टय की शृंखला स्वीकार की है। उन्होंने—'चतुर्णां वर्णानामयम्'[२] द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और वैश्य इन चारों वर्णों को महत्त्व दिया है। ये चारों वर्ण जब अपने-अपने कर्त्तव्य और अधिकारों का अनुसरण करते हैं, तो समाज में पूर्ण शान्ति स्थापित होती है। भास ने ब्राह्मण वर्ण को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने मध्यम व्यायोग में लिखा है कि ब्राह्मण समस्त पृथ्वी में सदा पूजनीय हैं। यदि वह किसी कारणवश अपराध भी करे तो ब्राह्मण वध्य नहीं होता। बताया है :

जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्।[३]

× ×

सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तम।[४]

---

१. डॉ० राजेश्वर प्रसाद अर्गल, समाज-शास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, हॉस्पिटल रोड, आगरा, सन् १९५३, पृ० २०१

२. प्रतिमा नाटक, ४।७

३. मध्यमव्यायोग, १।९

४. वही, १।३४

स्पष्ट है कि ब्राह्मण वर्णों में ही नहीं अपितु समस्त पृथ्वी पर पूज्य माना गया है। क्षत्रिय, शूद्र और वैश्य—ये तीनों वर्ण ब्राह्मण की आराधना, पूजा एवं अभ्यर्चना करते थे। राजा विशिष्ट ब्राह्मणों के सत्कारार्थ आसन से उठ जाया करता था। ब्राह्मण के समस्त अपराध क्षम्य थे। हत्या का अपराध करने पर भी ब्राह्मण अवध्य माना जाता था। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों के प्राणों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करना भी धर्म समझते थे।[१] अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह, ब्राह्मण के ये षट्कर्म थे। ये जीवन-चर्या के अंग थे। विद्या ब्राह्मण का भूषण और विद्याध्ययन उसका परम कर्तव्य था। वेद-वेदाङ्गों के अनुशीलन और वेदमन्त्रों के पठन-पाठन का प्रमुख अधिकारी ब्राह्मण ही था। अध्ययन के साथ अध्यापन करना भी ब्राह्मण का कर्तव्य था। गो, प्रतिव्रता स्त्री एवं ब्राह्मण--इन तीनों को पवित्रता और पूज्यता की दृष्टि से समान स्थान प्राप्त था। कर्णभार रूपक में कर्ण ब्राह्मण को महत्त्व देता हुआ कहता है कि ब्राह्मण होने पर मैं याचक को सर्वस्व दे सकता हूँ—'अक्षयोऽस्तु गोब्राह्मणानाम्। अक्षयोऽस्तु पतिव्रतानाम्। अक्षयोऽस्तु रणेष्वपराङ्-मुखानां योधपुरुषाणाम्।[२]

द्रोणाचार्य ने ब्राह्मण होने के कारण ही दुर्योधन का यज्ञ सम्पन्न कराया था। ब्राह्मण को तेजस्वी कर्तव्यपरायण बताया गया है। भीष्म द्रोण के साथ अपनी तुलना करते हुए कहते हैं कि आप ब्राह्मण होने से ही श्रेष्ठ और पूज्यतम हैं।[३]

ब्राह्मण नित्य दैनिक हवन, यज्ञादि का अनुष्ठान करता था।[४] राजा यज्ञों में ब्राह्मणों को आमन्त्रित करते थे और यज्ञावसान पर उन्हें प्रभूत दक्षिणा देते थे।[५] ब्राह्मण को दक्षिणा देना पवित्र कार्य समझा जाता था। बिना दक्षिणा के अनुष्ठान की सफलता नहीं मानी जाती थी।

यज्ञोपवीत द्विज का महत् उपकरण था। इसके बिना कोई ब्राह्मण नहीं

---

१. क्षत्रियकुलोत्पन्नोऽहम्। पूज्यतमाः खलु ब्राह्मणाः। तस्माच्छरीरेण ब्राह्मणशरीरं विनिर्मातुमिच्छामि।—वही, पृ० ३४

२. कर्णभार, पृ० १३-१४

३. पञ्चरात्रम्, १।२७

४. भोः नैत्यकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि........प्रतिमागृहं प्रविष्टः
—प्रतिमा०, अङ्क ३, पृ० ७७

५. पञ्चरात्रम्, १।४८

माना जाता था। यष्टि भी ब्राह्मण-वेश का एक आवश्यक उपकरण थी।[1] ब्राह्मण आजीवकोपार्जन के लिए व्यापारादि साधनों को स्वीकार करता था। चारुदत्त नाटक के नायक ने ब्राह्मण होने पर वाणिज्य-व्यापार को स्वीकार किया है।

क्षत्रिय

समाज में ब्राह्मण वर्ण के पश्चात् क्षत्रिय वर्ण का महत्त्वपूर्ण स्थान था। जो प्रजा का रक्षण करने में निपुण हो, शूर और पराक्रमी हो और दुष्टों का दमन करने में समर्थ हो वे क्षत्रिय कहलाते थे। भास के नाटकों के नायक राजाओं में क्षत्रियोचित सभी गुण पाये जाते थे। प्रतिमा नाटक में जब रावण सीता का हरण कर ले जाता है तो सीता कहती है कि यदि राम को क्षात्र-धर्म में आस्था है तो मेरी रक्षा करें।[2] क्षत्रिय की सम्पत्ति उसके शस्त्र होते थे।[3] क्षत्रिय केवल प्रजा के पालन के लिए सम्पत्ति का अर्जन करता था। यहाँ तक कि अपना सर्वस्व तक ब्राह्मणों को दान में दे देता था।[4] वह अपने प्राणों द्वारा भी ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए सदा तत्पर रहता था।[5] प्रतिज्ञा-पालन क्षत्रियों का व्रत था।[6] क्षत्रिय-कुमार के लिए शस्त्र-विद्या एवं धनुर्विद्या का ज्ञान परमावश्यक था।

वैश्य

चारुदत्त नाटक में 'श्रेष्ठिचत्वरे'[7] आया है, जिससे ब्राह्मण और क्षत्रियों के समान वैश्य का भी समाज में उच्च स्थान प्रतीत होता है। व्यापार और वाणिज्य उनका प्रमुख व्यवसाय था। संवाहक अपना परिचय देते हुए भी कहता है—'प्रकृत्या वणिगहम्। ततो भागधेयपरिवृत्ततया दशया संवाहकवृत्ति-

१. पञ्चरात्रम्, १।५
२. क्षत्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम्, प्रतिमा० ५।२१
३ बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः........पञ्चरात्रम्, १।२४
४ वही, १।२४
५. मध्यमव्यायोग, अङ्क १, पृ० ३४
६ तस्मात् प्रतिज्ञां कुरु वीर। सत्या सत्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरूणाम्॥
—पञ्चरात्रम्, १।४६
७. चारुदत्त, अङ्क ४, पृ० १११

मुपजीवामि'।[१] स्पष्ट है कि वणिक् को कार्य-व्यापार व्यवसाय करना था, पर भाग्य प्रतिकूल होने से संवाहक को नौकरी करनी पड़ी। भास के उल्लेखानुसार उज्जयिनी में समृद्ध सार्थवाह पुत्र रहते थे। चारुदत्त मूलतः ब्राह्मण था, पर वह सार्थवाह की वृत्ति करता था। संवाहक ने उसे 'सार्थवाह पुत्र'[२] कहा है, इससे कुछ व्यक्ति यह भी अनुमान करते हैं कि चारुदत्त वणिक् था, किन्तु आगे उसकी पत्नी ब्राह्मणी आती है, अतएव चारुदत्त को वर्ण की दृष्टि से ब्राह्मण ही माना गया है। संवाहक के कथन से ऐसा भी ज्ञात होता है कि चारुदत्त निर्धन हो जाने पर कुटुम्ब का भरण-पोषण, अपने त्याग, चरित्र की रक्षा करता हुआ, वणिक् कुल में निवास करने लगा।

स्पष्ट है कि भास के समय में वणिक् कुल पृथक् रहते थे। ये देश को समृद्ध करने के लिए व्यापार में संलग्न रहते थे। अनेक नगरों में व्यापार करने जाते थे और अपने वैभव का विस्तार करते थे। 'सार्थ' शब्द व्यापारियों के समुदाय के लिए प्रयुक्त होता था और इस समुदाय का प्रधान 'सार्थवाह' कहलाता था। भास ने धन-प्रधान व्यवसाय के कारण वैश्यों को स्वभावतः कठोर, लोभी, शिष्टजनद्वेषी एवं व्यवसाय में कठोर बतलाया है। यथा :

> लुब्धोऽर्थवान् साधुजनावमानी वणिक् स्ववृत्तावतिकर्कशश्च ।
> यस्तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये भवामि दुःखोपहता चचित्ते ॥[३]

शूद्र

वर्ण-परम्परा में शूद्र का चतुर्थ स्थान है। समाज में यह चारों वर्णों में अधम माना गया है। प्रतिमा नाटक में आया है कि शूद्र देवार्चन के समय वेद मन्त्रों का उच्चारण किये विना ही देवताओं को प्रणाम करते थे।[४] 'पञ्चरात्रम्' में आया है कि शूद्र को अस्पृश्य-सा समझते थे।[५] शूद्रों का सान्निध्य वे स्वीकार नहीं करते थे। शूद्र भी कुलीन व्यक्तियों के साथ आदरपूर्वक अभिभाषण आदि करते थे।[६]

---

१. चारुदत्त, द्वितीय अङ्क, पृ० ६०

२. वही, अङ्क २, पृ० ६१

३. वही, ३।७

४. वार्पलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः, प्रतिमा नाटकम्, ३।६

५. द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते, पञ्चरात्रम्, १।६

अन्त्यज

भास ने चतुर वर्णों के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्तियों का भी उल्लेख किया है, जिनकी गणना अन्त्यज में होती थी। ये अस्पृश्य होने के कारण नगर से बाहर प्रच्छन्न रूप में निवास करते थे। ये कुल-विकल और कुल-भ्रंश होते थे। अर्थात् उनका कोई कुल नहीं होता था। रूप, ज्ञान बल, सम्पत्ति सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी उनका चरित्र विशुद्ध नहीं होता था। अविमारक में बताया गया है :

श्रुतमस्माभिरन्त्यज इति।[१]

× ×

देव रूप ब्रह्मज तस्य वाक्य
क्षात्र तेज सौकुमार्यं बल च।
यद्येव स्यात् सत्यमस्यन्त्यजत्व
व्यर्थोऽस्माक शास्त्रमार्गेषु वेद.॥[२]

ऋषियों के शाप से कोई भी व्यक्ति च्युत हो कर अन्त्यज अवस्था को प्राप्त करता था। सौवीरराज ऋषि के अभिशाप से ही अन्त्यज अवस्था को प्राप्त हुआ था। भास ने इस परिस्थिति का बहुत ही सुन्दर निरूपण किया है। विदूषक अपने मित्र अविमारक को कुरंगी से प्रेम करने के अवसर पर उपालम्भ देता है। वह कहता है कि यह राजकुमार अवस्था-परिवर्तन को भी नहीं समझते हैं? यही कारण है कि ऋषि के शाप से कुलभ्रंश हो कर अन्त्यज कुल में प्रवास करते हुए भी यह अविमारक ज्ञान को प्राप्त नहीं कर रहा है।[३]

अन्त्यजों के अन्तर्गत चाण्डाल भी परिगणित थे।[४] समाज में इनका स्थान अत्यन्त निम्न था।

---

१. अविमारक, प्रथम अङ्क, पृ० १७

२. वही, १।७

३. ऋषिशापेन कुलपरिभ्रंशमन्त्यजकुलप्रवासमात्मनो विज्ञान गुरुजन चाचिन्तयन्।

४. यस्माद् ब्रह्मर्षिमुख्योऽह श्वपाक इतिभाषित,
तस्मात् सपुत्रदारस्त्व श्वपाकत्वमवाप्स्यसि॥ —अविमारक, ६।६

+ +

ब्रह्मर्षिणा प्रकृष्टेन श्वपाकत्व तदा कृतम्।
तस्मात् नैनैव रूपेण न सर्वं भस्मसात् कृतम्॥—अविमारक, ६।७

भास प्रतिपादित वर्ण-संस्था की विशेषताएँ

(१) भास के युग में वर्ण-व्यवस्था अधिक कठोर थी। कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण का परित्याग नहीं कर सकता था और न अनुलोम या प्रतिलोम विवाह ही प्रचलित थे। कालिदास या कालिदास उत्तर युग में वर्ण की उपेक्षा होने लगी थी। पर भास ने वर्ण-व्यवस्था पर बहुत जोर दिया है।

(२) भास के युग में जाति-भेद का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। इस जाति-भेद का मूलाधार अन्तर्जाति विवाह-पद्धति है जिसके प्रचलन से वर्ण-संकरता का जन्म होता है। यह वर्ण-संकरता ही जाति-भेद की जननी है। भास की कृतियों के अध्ययन से वर्ण-संकरता की गन्ध नहीं आती है। इसके अतिरिक्त व्यवसायों तथा उद्योगों के कारण ही जाति-भेद को प्रोत्साहन मिला था, पर भास के समय में धावर, लुब्धक, नापित, चर्मकार, जैसी जातियों का भेद विकसित नहीं हुआ था। एक वर्ण के भीतर ही अनेक जातियों का विकसित होना भास के समय तक प्रतीत नहीं होता है। अतः स्पष्ट है कि भास ने जाति-भेद की उपेक्षा की है। यह सार्वजनीन सत्य है कि कालिदास युग में जाति-वर्णन मिलता है, पर भास के नाटकों में नहीं।

आश्रम-संस्था

भास ने प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय-हेतु आश्रम-व्यवस्था का विधान किया। यों तो यह व्यवस्था वैदिक काल से ही चली आ रही थी, पर भास ने इस व्यवस्था का समर्थन कर इसे सामाजिक संस्था का रूप दिया। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम वास्तव में मानव जीवन की चार आवस्थाएँ हैं, जिनके द्वारा पशुता और पार्थिवता से मनुष्य मुक्त और परिष्कृत हो कर पूर्ण आध्यात्मिक जीवन के लिए तैयार होता है। मानव-शरीर और मानव-जीवन को अध्यात्म का माध्यम बनाना ही आश्रम-व्यवस्था का उद्देश्य है। अध्यात्म से प्रकाशित जीवन ही मानव कहलाने का अधिकारी है। अध्यात्म का प्रकाश-ग्रहण करने के लिए कठोर नैतिक साधना की आवश्यकता होती है। जीवन की प्रथम अवस्था ब्रह्मचर्य में ही कठोर नैतिक साधना का संस्कार डाला जाता है। ब्रह्मचारी गृह-त्याग कर व्रतों का पालन करता हुआ गुरु-सेवा करता है। नित्य अध्ययन, संयम, ऋजुता, शुचिता आदि इसके गुण हैं। यहाँ शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक माना गया है। यह समाज और संसार का प्रथम सोपान है। जीवन-प्रारम्भ इसी आश्रम से होता है। नाटककार भास ने

ब्रह्मचर्य आश्रम का उल्लेख 'स्वप्नवासवदत्तम्' नामक नाटक में किया है। ब्रह्मचारी और यौगन्धरायण के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में वेद-वेदागो का अध्ययन गृह-त्यागी हो कर व्यक्त करता था और मानवीय गुणो को प्राप्त करने के लिए यहाँ पूर्णतया सचेष्ट रहता था। नाटककार ने लिखा है :

ब्रह्मचारी—राजगृहतोऽस्मि। श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि।

यौगन्धरायण—अथ परिसमाप्ता विद्या ? यद्यनवसिता विद्या, किमागमन-प्रयोजनम् ?

इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम के सम्बन्ध मे परिज्ञान प्राप्त होता है।

गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने पर अतिथि-सत्कार, यज्ञादि क्रियाएँ, पूजन, अर्चन आदि विधि विधान के साथ आजीविका के लिए पुरुषार्थ किया जाता था। सन्यास-आश्रम के वर्णन मे हम दो प्रकार के सन्यासियों को भास की रचनाओ मे प्राप्त करते हैं। एक तपस्विन्, जो तपोवन में रहते थे तथा दूसरे परिव्राजक, जो कि भ्रमण करते थे। तपस्वियो मे आजीविका हेतु भी सन्यास-वृत्ति लेने का वर्णन प्राप्त होता है। 'स्वप्नवासवदत्तम' मे यौगन्धरायण कहता है कि मैंने आजीविका के लिए यह वेश धारण नहीं किया है।[1] इससे स्पष्ट है कि कुछ व्यक्ति आजीविका के लिए भी सन्यास-वृत्ति धारण करते थे। स्त्रियों के भी आश्रम में सन्यासिनियो के रूप में वास करने के प्रसंग मिलते हैं। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में पद्मावती आश्रम मे मिलने के लिए अपनी माता के पास आती है, तथा उसकी माता एक सन्यासी के रूप मे वहाँ वास करती है। भास के युग मे सन्यासियों का समाज मे बड़ा आदर था। रावण जब परिव्राजक वेश मे राम के समीप पहुँचता है, तो राम भगवान् शब्द का प्रयोग कर उनका स्वागत करते हैं और वे सीता से कहते हैं कि भगवान् की सेवा करो। रावण जो-जो बातें राम से कहता है राम उन सब का विश्वास कर लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि भास के युगो मे सन्यासियो के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी।[2] अविमारक में यज्ञोपवीत से ब्राह्मण, चीवर मे रक्तपट तथा वस्त्र-रहित से श्रमणक के परिज्ञान का बोध कराया है।[3] अवैदिक को सदा तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था।

---

१. नहि काषाय वृत्तिहेतो. प्रपन्नः, स्वप्नवासवदत्तम्, १।९

२. प्रतिमा नाटक पञ्चम् अङ्क, पृ० १३४, ३५, ३६

३. यज्ञोपवीतेन ब्राह्मण:, चीवरेण रक्तपट:, अविमारक

वानप्रस्थ आश्रम के सम्बन्ध में प्रतिमा नाटक और अभिषेक नाटक से जानकारी प्राप्त होती है। दशरथ राम का राज्याभिषेक कर स्वयं वानप्रस्थ रूप में जीवनयापन की इच्छा व्यक्त करते हैं।[1] इस प्रकार आश्रम-संस्था के सम्बन्ध में भास ने सामान्य परिज्ञान प्रस्तुत किया है।

विवाह-संस्था

विवाह-संस्था के सम्बन्ध में विशेष परिचय तो प्राप्त नहीं होता, पर इतना सत्य है कि भास के युग में कन्या-विवाह की समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। विवाह-विधि को सम्पन्न करने के लिए माता-पिता चिन्तित दिखलायी पड़ते हैं। 'अविमारक' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'—इन दोनों ही नाटकों में माता-पिता कन्या-विवाह के लिए चिन्तित हैं। उन्हें इस बात के लिए बहुत बड़ी परेशानी है कि योग्य वर की उपलब्धि किस प्रकार हो? प्रतिज्ञायौगन्धरायण में प्रद्योत अपनी पट्ट महिषी के साथ बैठ कर विचार करता है कि वासवदत्ता का विवाह किस प्रदेश के राजकुमार के साथ किया जाय? काशी-नरेश के पुरोहित जैवन्त अपने राजकुमार के लिए वासवदत्ता की याचना हेतु उज्जैनी में आते हैं। महासेन विचार करता है :—

कन्याया वर-सम्पत्तिः पितुः (प्रायः) प्रयत्नतः।
भाग्येषु शेषमायत्त दृष्टपूर्वं न चान्यथा॥[2]

इसी प्रकार अविमारक में भी बताया गया है—

विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति। कुतः,[3]
जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात्।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कुलद्वयं क्षुब्धजला नदीव॥[4]

स्पष्ट है कि राज-परिवारों में विवाह एक समस्या थी। राजाओं को राजकन्या

१. प्रतिमा नाटक
२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, २।५
३. अविमारकम्, प्रथम अङ्क, पृ० ६
४. वही, १।२

के विवाह की सतत् चिन्ता रहती थी।[१] राज-कन्या के विवाह के लिए विभिन्न राजकुलों से प्रतिदिन दूत आते रहते थे।[२] किन्तु उनको प्रत्युत्तर देना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। विवाह में वर का चयन विचार-विमर्श और परीक्षण के पश्चात् ही किया जाता था। विवाह-सम्बन्ध के निश्चय करते समय गुण, गौरव, तात्कालिक स्थिति तथा भविष्य का विचार, तत्परता और दीर्घसूत्रता का परित्याग-देश, कालानुसार कार्य करना आदि बातें आवश्यक मानी जाती थीं।[३] विवाह सवर्ण में ही होता था। वर के लिए कुलीनता, दयालुता, गौरव, सौन्दर्य, उदग्रवीर्य, प्रजावत्सलता आदि गुण आवश्यक थे।[४]

भास के नाटकों में धर्मशास्त्र प्रचलित आठ प्रकार के विवाहों में से ब्राह्म, क्षत्र, गान्धर्व, राक्षस एवं असुर विवाह के उदाहरण प्राप्त होते हैं। 'स्वप्न-वासवदत्तम्' में पद्मावती और वत्सराज उदयन का विवाह ब्राह्म विवाह है। इस विवाह में वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कन्या विद्या-प्रवीण एवं आचारशील व्यक्ति को प्रदान की जाती थी। यह विवाह समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। इस विवाह का दूसरा उदाहरण उत्तरा और अभिमन्यु के विवाह का है। 'पञ्चरात्रम्' में विराट नरेश अपनी कन्या उत्तरा का विवाह अर्जुन से करना चाहते हैं, पर अर्जुन उनके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर अभिमन्यु के साथ विवाह की स्वीकृति प्रदान करते हैं। समस्त राजाओं को विवाह में आमन्त्रित किया जाता है और अग्नि-साक्ष्यपूर्वक विवाह सम्पन्न होता है। इसी प्रकार जयवर्मा और सुमित्रा का विवाह भी ब्राह्म विवाह है। काशी नरेश ने अपने कुमार जय वर्मा के लिए कुन्तिभोज से कन्या की याचना की थी। नारद मुनि के परामर्श से कुन्तिभोज अपनी छोटी कन्या सुमित्रा का विवाह गुरुजनों के समक्ष वैदिक विधिपूर्वक सम्पन्न करते हैं। यह विवाह-विधि भी ब्राह्म विवाह के अन्तर्गत है।

अविमारक और कुरंगी का पारस्परिक प्रेमाकर्षण है। वे दोनों एक-दूसरे के रूप-गुणों में आसक्त हो कर गुरुजनों की आज्ञा प्राप्त किये बिना गान्धर्व-

---

१ कन्या पितुर्हि सततम् बहुचिन्तनीयम्, अविमारक, १।२

२ प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क २, पृ० ४३

३ गुणबाहुल्य तदात्वमायतिं चावेक्ष्य त्वरतो दीर्घसूत्रता च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्य कार्यमित्यर्थः, अविमारक, अङ्क १, पृ० २०

४ प्रतिज्ञायौगन्धरायण

विधि से विवाह सम्पन्न कर लेते हैं। अतः इस प्रकार के विवाह को प्रेम-विवाह या गान्धर्व विवाह माना जा सकता है। न तो अविमारक ने अपने पिता सौवीरराज से विवाह की स्वीकृति प्राप्त की है और न कुरंगी ने ही अपने पिता कुन्तिभोज से स्वीकृति ली है। गान्धर्व विवाह का दूसरा उदाहरण उदयन और वासवदत्ता के प्रेम-विवाह का भी है। उदयन वासवदत्ता को वीणा-वादन की शिक्षा देता है और इसी प्रसंग में उन दोनों में परस्पर प्रेमाकर्षण हो जाने से गान्धर्व विवाह सम्पन्न होता है।

राक्षस विवाह का उदाहरण भी वासवदत्ता और उदयन का विवाह है। उदयन बलपूर्वक वासवदत्ता का अपहरण करता है और महासेन की सेना को पराजित कर वासवदत्ता को वत्स देश में ले आता है। अतः इस उदाहरण को हम राक्षस विवाह के अन्तर्गत रख सकते हैं।

प्रतिमा नाटक में दशरथ और कैकेयी के विवाह का कथन आया है। कैकेयी शुल्क चुकाने का वचन ले कर दशरथ के साथ विवाह करती है। इस शुल्क का दुष्परिणाम निकलता है। अतएव कैकेयी और दशरथ के विवाह को असुर विवाह के अन्तर्गत माना जायगा।

ऊरुभंग में[1] स्वयंवर के उल्लेख से ज्ञात होता है कि राजकुल में स्वयंवर रीति से विवाह सम्पन्न होते थे। इस प्रकार के विवाह देव विवाह के अन्तर्गत परिगणित थे।

सज्जलक और मदनिका तथा चारुदत्त और वसन्तसेना के विवाह को अनुलोम विवाह माना जायगा।

विवाह की विधियों तथा उस अवसर पर होने वाले अनुष्ठानों का परिचय भी नाटककार भास ने प्रस्तुत किया है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में पद्मावती के विवाह के लिए वासवदत्ता सौभाग्यमाला का गुम्फन करती है। इसमें वह 'अविधवाकरण' जड़ी को गूंथती है। सपत्नी-मर्दन ओषधि का गुम्फन नहीं करती। विवाह सम्पन्न होने पर वर-कन्या को अन्तःपुर में ले जाया जाता था। यहाँ धार्मिक विधि पूरी की जाती थी।

भास के समय में 'बहुविवाह' की प्रथा भी प्रचलित थी। 'प्रतिमा' में राजा दशरथ की कौसल्यादि तीन रानियों का वर्णन मिलता है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में राजा महासेन की सोलह रानियों का निर्देश आया है।[2]

---

१. युद्धेष्वप्सरसां स्वयंवरसभां शौर्यप्रतिष्ठां नृणाम्—ऊरुभंग, १।४

२. षोडशान्तः, पुरज्येष्ठा पुण्या नगर देवता—स्वप्नवासवदत्तम्, ६।६

संस्कार-संस्था

संस्कार शब्द धार्मिक क्रियाओं के लिए प्रयुक्त है। इसका अभिप्राय बाह्य धार्मिक क्रियाओं, अनुशासित अनुष्ठान, व्यर्थ आडम्बर, कोरा कर्मकाण्ड, राज्य द्वारा निर्दिष्ट प्रचलन, औपचारिकताओं एवं अनुशासित व्यवहारों से नहीं है, किन्तु आन्तरिक और आत्मिक सौन्दर्य से है। संस्कार शब्द व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों से सम्बद्ध है।

जन्म दो प्रकार का माना जाता है—शरीर-जन्म और संस्कार-जन्म। शरीर का प्राप्तिरूप शरीर-जन्म है और संस्कारों द्वारा अपने को पवित्र करना संस्कार-जन्म है। संस्कार द्वारा व्यक्ति समाज के लिए उपयोगी बनता है। अतः संस्कार जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक विधेय हैं।

मध्यमव्यायोग में बताया गया है कि यूप ग्राम का निवासी केशवदास नामक ब्राह्मण उद्यामक-ग्राम-निवासी अपने मामा यज्ञबन्धु के पुत्र के उपनयन-संस्कार में सम्मिलित होने के लिए जा रहा है।[1] इस कथन से यह स्पष्ट है कि भास के समय में उपनयन संस्कार का प्रचार था। इस संस्कार के बिना विद्याध्ययन भी आरम्भ नहीं हो सकता था। उपनयन-विधि के सम्पादित होने पर ही व्यक्ति द्विजन्म या द्विज कहलाता था।

परिवार-संस्था

परिवार शब्द परि+वृ+घञ्—परिव्रियतेऽनेन—जिससे व्यक्ति आवृत्त रहे, ऐसा समूह या गठन। इस व्युत्पत्ति के अनुसार परिवार व्यक्तियों का सबसे छोटा और महत्त्वपूर्ण संगठन है। यह विशाल समाज का घटक या मूल है। समाज-शास्त्रियों की समाजपरक विवेचना के अनुसार यह समाज की अनिवार्य इकाई है। समाज को संगठित करने एवं सुसंचालित करने में परिवार सहयोग देता है।

यह संस्था काम की स्वाभाविक वृत्ति को लक्ष्य में रख कर यौन सम्बन्ध और सन्तानोत्पत्ति की क्रियाओं को नियन्त्रित करती है, यह भावनात्मक घनि-

---

१. यूपग्रामवास्तव्यो... .. चरणशाखाध्वर्यु, केशवदासो नाम ब्राह्मणः। तस्य ममोत्तरस्यां दिशि उद्यामकग्रामवासी मातुल ... ... यज्ञबन्धुनामास्ति। तस्य पुत्रोपनयनार्थं सकलत्रोऽस्मि प्रस्थितः।

—मध्यमव्यायोग, पृ० २८

ष्ठता का वातावरण तैयार कर बालकों के समुचित पोषण और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। इस प्रकार व्यक्ति के सामाजीकरण और सांस्कृतीकरण की प्रक्रिया में परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। परिवार-संस्था के निम्नलिखित कार्य हैं :

(१) स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध को विहित और नियन्त्रित करना।
(२) वंश-वर्द्धन के लिए सन्तानोत्पत्ति, संरक्षण और उसका पालन करना।
(३) गृह और गार्हस्थ्य में स्त्री-पुरुष का सहवास नियोजित करना।
(४) सहयोग और सहकारिता के आधार पर जीवन को सुखी और समृद्ध बनाना।
(५) ऐहिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना।
(६) आर्थिक स्थायित्व के हेतु उचित आय का सम्पादन।
(७) प्रेम, सेवा, सहयोग, सहिष्णुता, शिक्षा, अनुशासन आदि मानव के महत्त्वपूर्ण नागरिक एवं सामाजिक गुणों का विकास करना।

नाटककार भास ने राज परिवार और सामान्य परिवार, इन दोनों का ही चित्रण किया है। सामान्य परिवारों में संयुक्त परिवार-प्रथा प्रचलित थी। इसका आधार पारस्परिक प्रेम एवं सहयोग की भावना थी। परिवार के समस्त सदस्य माता-पिता, चाचा-ताऊ, बहिन-भाई आदि सम्मिलित रूप से रहते थे और प्रेम एवं सहयोग से जीवन-यापन करते थे। अहंभाव या स्वार्थ लेश-मात्र भी नहीं होता था। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व त्यागमय होता था। एक सदस्य दूसरे सदस्य की रक्षा के लिए अपने प्राणों तक का बलिदान करने को उद्यत रहता था।

सामान्य परिवार

'मध्यमव्यायोग' में केशवदास नामक ब्राह्मण के परिवार में त्याग की ऐसी ही उदात्त भूमिका परिलक्षित होती है। ब्राह्मण-परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने परिवार की रक्षा के लिए प्राण त्यागने को उद्यत है। वृद्ध पिता अपने शरीर द्वारा पुत्र के जीवन की रक्षा करना चाहता है।[1] पत्नी अपने सौभाग्य

१. कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम्।
राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी होष्यामि विधिसंस्कृतम्॥
—मध्यमव्यायोग, १।१५

की रक्षा के लिए अपना बलिदान करने को उद्यत है।[१] पुत्र गुरुजनों के प्राणो की रक्षा के लिए अपने प्राणो का त्याग करना चाहते हैं।[२] भास ने परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का अपूर्व त्याग एव दायित्व चित्रित किया है। केशवदास का परिवार एक आदर्श परिवार है।

सयुक्त परिवार मे वयोवृद्ध व्यक्ति गृहपति की सज्ञा से विभूषित होता था। वह परिवार का मुखिया एव सर्वेसर्वा माना जाता था। उसका प्रभुत्व सम्पूर्ण परिवार-जन पर रहता था। उसकी आज्ञा ही सर्वमान्य होती थी। आयु, अनुभव एवं ज्ञान की श्रेष्ठता के कारण उसके अधिकार सुरक्षित रहते थे। गृहपति की आज्ञा से कोई भी सदस्य मृत्यु-मुख मे भी जाने को उद्यत रहता था। मध्यमव्यायोग में मध्यम पुत्र को राक्षसी का आहार बनना इसी बात का प्रमाण है।[३] गृहपति का परिवार के समस्त सदस्यो पर नियन्त्रण रहता था।

परिवार में गृहपति के पश्चात गृहिणी का महत्त्वपूर्ण पद था। माता परिवार की स्वामिनी होती थी। परिवार की बाह्य व्यवस्था गृहपति सँभालता था और आन्तरिक व्यवस्था का भार गृहिणी के कन्धो पर रहता था। गृहिणी ही गृह की आन्तरिक नीति का परिचालन करती थी। वही परिवार के व्यक्तियो के आहार-विहार, आवास-निवास और रहन-सहन का प्रबन्ध करती थी। पारिवारिक सयोजन की आधारशिला गृह-स्वामिनी ही थी। वह गृहपति को धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक सभी कार्यों मे सहयोग देती थी। माता का महत्त्व इसी कारण भास ने स्वीकार किया है।[४]

---

१. पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रतेति नाम।
गृहीतफलेनैनेन शरीरेणार्यं कुल च रक्षितुमिच्छामि ॥
—मध्यमव्यायोग, अङ्क १, पृ० १४

२ विनिमाय गुरुप्राणान् स्वं. प्राणैर्गुरुवत्सल।
अकृतात्मदुरावाप ब्रह्मलोकमवाप्नुहि ॥ —वही, १।२१

३ धन्योऽस्मि यद् गुरुप्राणा स्वैः प्राणै. परिरक्षिता.।
बन्धुस्नेहाद्धि महत॰ कायस्नेहस्तु दुर्लभ ॥ —वही, १।२०

४. माता किल मनुष्याणा देवताना च दैवतम्।
मातुराज्ञा पुरस्कृत्य वयमेता दशा गता. ॥ —वही, १।३७

घटोत्कच की मातृभक्ति की भीम स्वयं प्रशंसा करता है। गृह-स्वामिनी माता की आज्ञा से घटोत्कच अधम कृत्य करने को भी प्रस्तुत है।[१]

भास ने पारिवारिक जीवन में शिष्टाचार एवं सदाचार का पूर्ण ध्यान रखा है। परिवार में प्रत्येक सदस्य अपने गुरुजनों या अनुजों को बड़े शिष्ट एवं सभ्य रूप से सम्बोधित करते थे। छोटे व्यक्ति बड़ों का अभिवादन करते समय तात[२], आर्य[३], 'अभिवादये'[४] आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। गुरुजन आशीर्वाद के रूप में 'वत्स'-सम्बोधन का व्यवहार करते थे। पत्नी पती को 'आर्य'[५] या 'आर्यपुत्र' कह कर सम्बोधित करती थी।

राजपरिवार

प्राचीन समय में राजपरिवार का सामान्य परिवार की अपेक्षा विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण स्थान था। जनता राजपरिवार को सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखती थी। इस परिवार को जीवन की सामान्य एवं दैनिक सुविधाओं के साथ-साथ भोग-विलास के सभी साधन उपलब्ध थे। राज-परिवार की जीवन-पद्धति ही उसकी सुख-समृद्धि की सूचक होती थी। उसकी वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, आवास-निवास सभी से वैभव एवं ऐश्वर्य परिलक्षित होता है।[६]

प्रत्येक अभ्यागत को राज-प्रासाद में आने के पूर्व द्वारपाल या प्रतिहारी द्वारा राजा को सूचना भेजनी पड़ती थी और राजा की अनुमति प्राप्त होने पर ही उसे प्रवेश मिलता था। अन्तःपुर में विशेष रूप से आगन्तुकों का प्रवेश वर्जित था। कंचुकी जैसे विश्वासपात्र और वयोवृद्ध अनुचर ही राजकीय अन्तः-पुर में प्रवेश कर सकते थे।[७]

---

१. कथं मातुराज्ञेति। अहो गुरुशुश्रूषुः खल्वयं तपस्वी।
—मध्यमव्यायोग पृ० ३१

२. भोस्तात। अभिवादये —वही, अङ्क १, पृ० १७

३. आर्य मा मैवम् —वही, अङ्क १, पृ० १५

४. मध्यमव्यायोग, अङ्क १, पृ० १७

५. वही, पृ० १४

६. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, २।१२

७. अविमारक, अङ्क ४, पृ० ६३

कन्यान्तःपुर की देख-भाल के लिए अमात्य विश्वस्त रक्षकों का प्रबन्ध करता था। राजपरिवारों में पर्दा-प्रथा भी प्रचलित थी। रानियाँ कंचुकी से आवृत शिविका या प्रवहण में बैठ कर विहारार्थ या देवदर्शन के लिए जाती थीं। पर्दा-प्रथा का सामान्यतः निर्वाह किया जाता था। पर यज्ञ, विवाह, विपत्ति और वन में पर्दे का त्याग निर्दोष समझा जाता था। यथा—

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च॥[1]

कन्यादर्शन सदैव निर्दोष समझा जाता था। अतः राजकुमारियों की शिविका से कंचुक हटा दिया जाता था।[2] राजा और उसके परिवार के व्यक्ति जहाँ कहीं जाते थे, वहाँ परिचारकगण अंगरक्षक के रूप में उनके साथ रहते थे।[3] राजाओं के लिए मर्यादा-पालन अत्यन्त आवश्यक था। मर्यादा का उल्लंघन करने पर समाज और परिवार में उनकी निन्दा होती थी।

राजपरिवार का केन्द्र-बिन्दु राजा था। परिवार में उसका ही प्रमुख प्रभुत्व रहता था। समाज पारिवारिक सदस्य तथा राजमहिषियाँ, राजपुत्र, राजकन्याएँ आदि उसका अत्यन्त सम्मान करते थे। राजमहिषियाँ भी राजा के आने पर खड़ी हो जाती थीं। परिवार में राजा की इच्छा ही सर्वमान्य होती थी। परिवार के लोग उसकी इच्छा के समक्ष अपनी भावनाओं तक का दमन कर डालते थे। 'प्रतिमा नाटक' में राम अपने पिता की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए वल्कल धारण कर वनवास जाते हैं।[4]

पारिवारिक समस्याओं के समाधान के लिए राजा रानी से भी परामर्श करता था। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में राजा महासेन-पुत्री वासवदत्ता के वर-निर्णयार्थ रानी को परामर्श के लिए सभा-भवन में बुलवाते हैं।[5] रानी के

---

१. प्रतिमा०, १।२९

२. तत्र भवती वासवदत्ता नाम राजदारिका धात्रीद्वितीया कन्यकादर्शनं निर्दोषमितिकृत्वाऽपनीतकञ्चुकाया शिविकायाम्
—प्रतिज्ञायौगन्धरायण, तृतीय अङ्क, पृ० ६३

३. ततः प्रविशति रावणः सपरिवारः —अभिषेक, अङ्क २, पृ० ५१
ततः प्रविशति देवी सपरिवारा —प्रतिज्ञा०, अङ्क २, पृ० ५१

४. प्रतिमा, अङ्क १, पृ० २१।४६

५. दुहितृप्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः। तस्मात् देवी तावदाहूयताम्।
—प्रतिज्ञा०, अङ्क २, पृ० ५०

मन के विरुद्ध अथवा राज-मर्यादा के विपरीत कार्य करने पर उसे भय भी रहता था। प्रजाजन के सामने पारिवारिक सदस्यों के प्रति भी राजा कर्त्तव्य-निष्ठ रहता था। पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वाह वह भी भली-भाँति करता था। सन्तान की समुचित शिक्षा-दीक्षा एवं उसकी भावी उन्नति के लिए राजा सर्वदा चिन्तित रहता था।[1] राजपुत्रों के लिए राजोचित एवं रुच्य-नुकूल विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। राजकुमार विभिन्न विषयों में पाण्डित्य-लाभ करते थे। परिवार के विकास की दृष्टि से राजा कन्याओं की शिक्षा का भी पूरा प्रबन्ध करता था।[2] प्रजा-पालन एवं राजकीय कार्यों में व्यस्त रहने पर भी राजा अपने परिवार की समस्याओं का समाधान करता था। कन्याओं की शिक्षा-व्यवस्था संरक्षण, विवाह आदि को समय पर सम्पन्न करने के लिए वह सदैव सचेष्ट रहता था।

राज-परिवारों में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। अनेक महिषियों के रहने पर भी अन्तःपुर में शान्ति रहती थी। प्रतिमा नाटक को छोड़ अन्यत्र कहीं भी कलह के उदाहरण नहीं मिलते हैं।

परिवार में अतिथि-सत्कार

राज-परिवार और सामान्य परिवार, दोनों में ही अतिथि-सत्कार का बड़ा महत्त्व था। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथम अङ्क में कंचुकी का ब्रह्मचारी से 'प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः' कहना एक आगन्तुक के प्रति सामान्य व्यवहार में विशिष्टता का परिचायक है। इसी नाटक के छठे अङ्क में यौगन्धरायण के ब्राह्मण-वेष में आने पर राजा उसे 'शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण' कह कर सत्कार प्रदर्शित करता है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में राजा उदयन के पकड़े जाने पर महासेन कंचुकी से उसे उचित सत्कार द्वारा प्रवेश कराने का आदेश देता है।[3] इतना ही नहीं महासेन यह कहता है कि सत्कार इस प्रकार से किया जाना चाहिये, जिससे

---

१. अर्थशास्त्रगुणग्राही ज्येष्ठो गोपालकः सुतः ।
गान्धर्वद्वेषी व्यायामशाली चाप्यनुपालकः ॥ —प्रतिज्ञा० २।१३

२. राजा – वासवदत्ता क्व ? देवी—उत्तरायाः वैतालिकायाः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत् । —प्रतिज्ञा०, अङ्क २, पृ० १२

३. गच्छ, कुमारविधिविशिष्टेनसत्कारेण वत्सराजमग्रतः कृत्वा प्रवेश्यताम् ।
—प्रतिज्ञा०,द्वितीय अङ्क, पृ० ६१

राजा उसका महत्त्व समझ सके। इस कथन में कवि की सत्कार के प्रति दृढ़ आस्था व्यक्त होती है। प्रतिमा नाटक में राम रावण 'स्वागतमतिथये' कहते हैं तथा ब्राह्मणोचित सत्कार के लिए सीता को 'भगवान् की सेवा करो' आदेश देते हैं। अभिषेक नाटक में राम विभीषण के आगमन को सुन कर उसे सत्कार-पूर्वक प्रवेश कराने का आदेश देते हैं।[1] 'पञ्चरात्रम्' में राजा विराट् और युधिष्ठिर वार्तालाप में अपने धन के सामर्थ्य से अतिथि को पूजार्ह बतलाते हैं। मध्यमव्यायोग में वृद्ध ब्राह्मण भीम के द्वारा रक्षित होने पर अन्त में अतिथि-सत्कार का वर्णन करता है। इस प्रकार परिवार के मध्य अतिथि सत्कार का विशेष महत्त्व बतलाया गया है।

पारिवारिक सम्बन्धों का निर्वाह

पारिवारिक सम्बन्धों का निर्वाह पूर्णतया किया जाता था। ऊरुभग नाटक में दुर्योधन की जाँघ के चूर-चूर हो जाने पर उसके माता पिता, रानियाँ एवं पुत्र रणभूमि में उससे मिलने आते हैं। वह इस घायल अवस्था में भी अपने माता-पिता का अभिवादन करता है, पत्नियों को सान्त्वना देता है तथा पुत्र को उप-देश देता है कि तुम भी पाण्डवों की सेवा करना, पूजनीया माता कुन्ती की आज्ञा मानना, अभिमन्यु की माता और द्रौपदी को अपनी माँ की तरह पूजना।[2] दुर्योधन के 'धृता बान्धवा'[3] पद से भी यही ध्वनित होता है कि परिवार में सगे-सम्बन्धियों का पूरा सहयोग रहता था, अतः परिवार का प्रधान सभी को आश्रय देता था। उनके सुख-दुःख का ध्यान रखता था। पारिवारिक सम्बन्धों के निर्वाह-निर्देश 'दूतघटोत्कच' में भी प्राप्त होता है।[4] घटोत्कच धृतराष्ट्र का अभिवादन करना चाहता है, पर जब उसे इस बात का स्मरण

---

१. सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः।

—अभिषेक, चतुर्थ अङ्क, पृ० ७२

२ अहमिव पाण्डवाः शुश्रूषयितव्याः तत्रभवत्याश्चाम्बायाः कुन्त्या निदेशो वर्तयितव्यः। अभिमन्योर्जननी द्रौपदी चोभे मातृवत्पूजयितव्ये।

—ऊरुभग, पृ० ४७

३. ऊरुभग, १।५२

४. पितामह ! अभिवादये घटोत्क—(इत्यर्धोक्ते) न न अयमक्रमः। युधिष्ठिरादयश्च मे गुरवो भगवन्तमभिवादयन्ति। पश्चाद्घटोत्कचो-ऽभिवादये।

—दूतघटोत्कच, पृ० ३०

आता है कि प्रथम गुरुजनों के अभिवादन का निवेदन करें तत्पश्चात् अपना अभिवादन। घटोत्कच के इस अभिवादन क्रम से भी परिवार के मधुर सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है।

परिवार में नारी का स्थान

नर और नारी दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों की प्रकृति और कृति भिन्न हो सकती है, पर दोनों का लक्ष्य एक है। अतः परिवार में नारी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। नारी की कर्मभूमि गृह एवं परिवार है। भास ने इसके लिए कुटुम्बिनी[1] शब्द का प्रयोग किया है। इससे यह व्यञ्जित होता है कि नारी का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होने पर भी परिवार तक सीमित था। वह घर की स्वामिनी और प्रवर्तिका थी। गृहिणी कुल के लिए वरदान-स्वरूपा होती थी। वह अपने कर्त्तव्य-पालन एवं शुद्धाचरण से पितृकुल एवं पतिकुल दोनों वंशों को उज्ज्वल करती थी। दुश्चरित्रा और दुराचारिणी नारी कुल के लिए आधिस्वरूपा होती थी और अपने दुराचरण से कुलद्वय—पितृकुल एवं पतिकुल—को कलंकित करती थी।

'अभिषेक नाटक' में पतिव्रता सीता अपने दुःखों का चिन्तन कर राम के विषय में आशंकित होती हुई कहती है—'हे हनुमान्! तुम राम से मेरी अवस्था का इस प्रकार वर्णन करना, जिससे वे शोकाकुल न हो उठें।'[2]

'स्वप्नवासवदत्तम्' में महारानी वासवदत्ता अपने पति के उत्कर्ष के लिए समस्त राज-भोग का त्याग कर प्रच्छन्न वेश में रहती हैं और पद्मावती के साथ अपने पति का विवाह कराने में सहायक सिद्ध होती हैं।[3] पति का सम्मान एवं स्नेह प्राप्ति ही पतिव्रता नारी का चरम ध्येय था। भर्तृ-स्नेह की अधिकारिणी नारी मर जाने पर भी अजर-अमर मानी जाती थी।[4] नारी को चरित्र अधिक प्रिय था। वह अपनी चरित्र-शुद्धि के प्रत्ययार्थ कठोर-से-

---

१. अद्य अर्धरात्रेऽस्माकं कुटुम्बिन्या यशोदया।
—बालचरित, अङ्क १, पृ० ११

२. भद्र! एतां मेऽवस्थां श्रुत्वार्यपुत्रो यथा शोकपरवशो न भवति, तथा मे वृत्तान्तं भण। —अभिषेक, अङ्क २, पृ० ४२

३. स्वप्नवासवदत्तम्, १।१४

४. धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता, भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा॥
—स्वप्नवास०, १।१३

कठोर परीक्षाएँ देने को तत्पर रहती थी। अभिषेक नाटक में सीता राम के विश्वास के लिए अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है।

भार्या रूप मे नारी पति के सुख-दुःख की सहचरी थी। जीवन की सभी अवस्थाओ मे वह पति की अनुगामिनी थी।[1] वह वस्तुतः अपनी अर्द्धाङ्गिनी सज्ञा को चरितार्थ करती थी।[2] सकटकाल में तो वह अपने स्वामी का सच्ची सहचरी थी। विपत्ति मे वह तन-मन और धन सब कुछ पति पर न्योछावर कर देती थी। प्रतिमा नाटक में सीता वनवास-गमन मे राम का ही अनुवर्तन करती है। 'पञ्चरात्रम्' में द्रौपदी भी पाण्डवो के साथ गुप्तवास करती है। चारुदत्त मे ब्राह्मणी अपने पिता को चोरी के कलक से बचाने के लिए अपना बहुमूल्य मुक्तावली हार तक दे देती है।[3]

गृहिणी एव पत्नी के अतिरिक्त नारी का प्रेयसी रूप भी दृष्टिगोचर होता है। प्रेयसियाँ दो प्रकार की थीं—एक तो वे जो विवाह के पश्चात् पति को आराध्य समझ कर उसी से एकनिष्ठ प्रेम करती थी। इस श्रेणी मे अगारवती, ब्राह्मणी, सीता, कौसल्या, सुमित्रा, गान्धारी, दुश्शला, पौरवी, मालती, यशोदा, देवकी आदि परिगणित हैं। जो विवाह से पूर्व ही किसी पुरुष को अपना तन-मन समर्पित कर देती थी। वे दूसरे प्रकार की प्रेयसी हैं। इस श्रेणी में कुरगी और वासवदत्ता के नाम आते हैं। भास ने उक्त दोनों प्रकार की प्रेयसियों के चित्रण किये हैं।

माता का स्थान

नारी की चरम परिणति मातृत्व है। माता बनने पर ही नारी अपने जीवन को सार्थक समझती है। यही कारण है कि नारी सदा वीर-प्रसविनी बनने की कामना करती है। पुत्र-दर्शन से माता का हृदय पुलकित हो जाता है। मातृरूपा नारी का समाज मे यथेष्ट सम्मान था। माता मनुष्यो के लिए देवताओ की भी देवता मानी जाती थी।[4] उसकी आज्ञा सभी अवस्थाओ मे शिरोधार्य होती थी। पुत्र माता के आदेश से अकार्य तक करने के लिए प्रस्तुत

---

१ कुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि।—प्रतिमा०, अङ्क ५, पृ० १२६

२. शरारार्धेन, प्रतिमा०, १।१०

३. चारुदत्त, तृतीय अङ्क, पृ० ९९

४. माता किल मनुष्याणां दैवतानां दैवतम्।— मध्यमव्यायोग ९।३७

हो जाता था। मध्यमव्यायोग में घटोत्कच अपनी माता के व्रतपारणार्थ उसके आदेश से ब्रह्महत्या तक के लिए उद्यत हो जाता है।[१]

ऊरुभंग में घायल दुर्योधन को देखने के लिए जब रणभूमि में गान्धारी पहुँचती है, तो दुर्योधन उसे प्रणाम कर कहता है :

नमस्कृत्य वदामि त्वां यदि पुण्यं मया कृतम् ।
अन्यस्यामपि जात्यां मे त्वमेव जननी भव ॥[२]

मैं प्रणाम कर के तुमसे कहता हूँ कि यदि मेरा कुछ भी पुण्य हो तो अगले जन्म में तुम ही मेरी माँ बनो।

स्पष्ट है कि भास की दृष्टि में मातृरूपा नारी का विशेष स्थान है। नारी का यह रूप वैदिक युग के समान ही समादरणीय और पूज्य था। यों सामान्यतः नारी का स्थान वैदिक युग की अपेक्षा कुछ हीन हो गया था, पर माता को सर्वत्र पूज्य और आदरणीय माना जाता था। नारीत्व का यथार्थ विकास माता के रूप में ही हुआ था। भास के रूपकों में जहाँ भी माता का वर्णन आया है, वहाँ उसके प्रति आदर प्रदर्शित किया जाता है। भरत कैकेयी की तभी तक भर्त्सना करते हैं जब तक उन्हें शाप की बात मालूम नहीं होती। वास्तविकता अवगत कर लेने पर भी वे अपनी माँ के प्रति श्रद्धावनत हो जाते हैं।

विधवा नारी

नाटककार भास ने अपनी कृतियों में गृहिणी एवं पत्नी का ही अधिक चित्रण किया है। विधवा की स्थिति पर उन्होंने बहुत कम प्रकाश डाला है। इसका कारण यह हो सकता है कि सहचर एवं जीवन-सखा के विनाश से विधवा का समाज में कोई विशेष स्थान नहीं रह जाता था। विधवा स्त्री या तो पति के साथ सती हो जाती थी अथवा वह पति की मृत्यु के पश्चात् तपस्विनी-सम जीवन व्यतीत करती थी। मांगलिक कार्यों में भी विधवा की उपस्थिति मांगलिक नहीं मानी जाती थी। विवाहादि अवसरों पर सौभाग्वती स्त्रियाँ ही समस्त मांगलिक कृत्य सम्पन्न करती थी।[३] दुर्योधन के घायल होने

---

१. मध्यमव्यायोग १।६

२. ऊरुभंग, १।५०

३. एवं जामाता अविधवाभिः अभ्यन्तरचतुश्शालां प्रवेश्यते ।

—स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क ३, पृ० ८२

पर पौरवी अपने सती होने की इच्छा व्यक्त करती है। वह कहती है कि पति के अभाव मे मैंने चिता की अग्नि मे प्रवेश करने का दृढ निश्चय कर लिया है।[१] दुर्योधन मालवी को समझाता हुआ कहता है कि तुम वीर क्षत्रियाणी हो। तुम्हारे पति ने वीर-गति प्राप्त की है। अत तुम्हें रुदन नही करना चाहिये। मालवी अपने को अबोध बतलाती हुई इस दु ख का सहन करने मे असमर्थ कहती है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि विधवा की स्थिति भास के समय मे सामान्यत उत्तम नही थी।

कन्या

भास के पारिवारिक जीवन का अध्ययन करने से अवगत होता है कि कन्या की स्थिति उस समय के समाज मे उन्नत थी। कन्या को माता-पिता वैसा ही प्यार करते थे जैसा पुत्र को। कन्या की स्थिति के सम्बन्ध मे नाटककार भास ने विशेष नहीं लिखा है, पर जो भी निर्देश प्राप्त होते हैं उनसे स्पष्ट है कि कन्या जन्म माँ-बाप के लिए अभिशाप नहीं था। स्मृति-ग्रन्थो से स्पष्ट है कि षोडश सस्कारो मे पुसवन सस्कार सब से महत्त्वपूर्ण था। इस से ध्वनित होता है कि कन्या की स्थिति स्मृति-ग्रन्थकारो ने पुत्र की अपेक्षा हीन मानी थी। पुसवन सस्कार पुत्रप्राप्ति के लिए किया जाता है। गर्भस्थ सन्तान पुत्र रूप मे प्राप्त हो, इसकी कामना प्रत्येक माता-पिता करता है और इस इच्छा की पूर्ति के लिए पुसवन-सस्कार की विधि सम्पन्न की जाती है। नाटककार भास ने उपनयन सस्कार का ही उल्लेख किया है, अन्य सस्कारों का नहीं। अत निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता कि भास का पुसवन सस्कार के प्रति क्या विचार है ?

'दूतघटोत्कच' नामक नाटक मे कन्या की महत्ता के सम्बन्ध मे धृतराष्ट्र अपने विचारो को व्यक्त करते हुए कहते हैं—

> एका कुलेऽस्मिन्बहुपुत्रनाथे लब्धा सुता पुत्रशताद्विशिष्टा ।
> सा बान्धवाना भवता प्रसादाद् वैधव्यमश्लाघ्यमवाप्स्यतीति ॥[२]

अनेक पुत्रों वाले इस कुल में सौ पुत्रो से भी अधिक प्यारी एक कन्या है और वह तुम भाइयों की कृपा से निन्दनीय वैधव्य को प्राप्त करेगी।

---

१. एक कृतप्रवेशनिश्चया। —ऊरुभग, अङ्क १, पृ० ३८

२. दूतघटोत्कच, १।१६

नाटककार भास ने धृतराष्ट्र के शब्दों द्वारा कन्या की महनीयता पर प्रकाश डाला है।

गणिका

भास के नाटकों से गणिका के सम्बन्ध में बड़े उदार विचार प्राप्त होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भास के समय में वेश्या और गणिका इन दोनों की पृथक्-पृथक् स्थिति थी। मौर्यकाल में वारांगना को वेश्या की अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता था। भास की गणिका वसन्तसेना पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहती है। उसकी माँ उसे सार्वजनीन पद ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती है और जब राजा का साला शकार उसके घर जा कर धन का प्रलोभन देता है तो उसकी माँ वसन्तसेना को अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए प्रेरित करती है। पर वसन्तसेना के हृदय में इस सार्वजनीन पेशा के प्रति घृणा है। उसमें मानवता के सभी गुण विद्यमान है। चारुदत्त की उदारता से वह प्रभावित होती है और उसके साथ विवाह कर भद्र जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह पुण्य स्त्री बनना स्वीकार नहीं करती। सागर की लहर के समान चंचल और सायंकालीन मेघ की तरह अस्थिर उसका अनुराग नहीं है। न वह धनापहरण कर सामन्त और श्रीमन्तों को ठगना ही चाहती है। वह गणिका वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है और उनमें क्रान्ति की शंख-ध्वनि कर उन्हें जागृत करती है। उसमें कुलांगना के समान स्नेह, ममता, सेवा, त्याग आदि सभी गुण विद्यमान है।

गणिकाएँ नृत्य और संगीत में कुशल होती थीं।[१] सामान्यतया इन्हें सर्व-साधारण की भोग्य वस्तु समझा जाता था। उत्सवों में इनकी उपस्थिति आव-श्यक मानी गयी है।

धात्री

धनी एवं सामन्त परिवारों में सन्तान के लालन-पालन के लिए धात्री की नियुक्ति की जाती थी। धात्री के निम्नलिखित पाँच कार्य थे, जिन्हें वह योग्यता-पूर्वक सम्पन्न करती थी।

(१) मज्जन
(२) मण्डन

---

१. 'एषा रंगप्रवेशेन कलानां चैव शिक्षया'। —चारुदत्त, १।२४

(३) स्तन्य

(४) सस्कार

(५) क्रीडन

मज्जन से तात्पर्य स्नान-क्रिया से है। धात्री को शिशुओ को किस प्रकार स्नान कराना चाहिये, इस विधि से वह पूर्ण अनभिज्ञ होती थी। इसी कारण धात्री की नियुक्ति शिशुओ के सवर्द्धनार्थ की जाती थी।

मण्डन विधि का तात्पर्य शिशुओ को वस्त्राभूषण पहनाने की क्रिया मे है। वस्त्र पहनाने ॰ अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है, जो धात्री शिशुओं को कलात्मक ढङ्ग से वस्त्र पहनाने में जितनी सजग होती थी, उसे धात्री कार्य मे उतना ही निपुण समझा जाता था।

स्तन्य क्रिया में धात्री शिशुओ को प्रेमपूर्वक दुग्ध पान कराती है। भास के युग मे धात्रियाँ गो-दुग्ध पान कराने के साथ स्वय स्तनपान भी कराती थो। राज-परिवारो मे शिशुओ को स्तनपान कराने के लिए धात्री को रखा जाता था।

तैल-मर्दन करना, नेत्रो मे अजन लगाना एव शरीर मे उबटन लगाना, सस्कार-विधि मे परिगणित है। यह कार्य भी धात्रियो द्वारा सम्पन्न किया जाता था।

क्रीडन-विधि मे विभिन्न प्रकार के क्रीडनको-खिलौनो द्वारा शिशु का मनोरजन किया जाता था। धात्रियों का कार्य केवल दुग्धपान कराना ही नहीं था, अपितु शिशुओ का मन-बहलाव कराना, उन्हें स्नान कराना, वस्त्र पहनाना एव अजन-टीका लगाना आदि भी था। भास ने अविमारक नाटक में धात्री का उल्लेख किया है। यह धात्री कुरगी की सखी हितैषिणी माता के रूप में प्रस्तुत होती है। अविमारक के प्रेम से जब कुरगी विह्वल हो जाती है और उसके बिना उसका जीवन सकटापन्न हो जाता है, तो वह चेटी के साथ स्वय अविमारक को ढूंढने के लिए चल देती है। अविमारक जब अपनी योग चर्चा की बात कहता है तो वह भी उस योग-क्रिया को राज-भवन मे सम्पन्न करने के लिए निवेदन करती है। स्पष्ट है कि यहाँ धात्री का कार्य नर्म साचिव्य के रूप मे सम्पन्न कराया गया है। वह कुरगी की आन्तरिक व्यथा से पूर्ण परिचित है। अतएव उसकी प्राण-रक्षा के लिए वह कन्यान्त पुर मे अविमारक का प्रवेश कराती है।[१]

---

१ अविमारक, द्वितीय अङ्क, पृ० ३६ से ५४ तक

इस प्रकार नाटककार भास ने धात्री की स्थिति प्रतिष्ठित रूप में अङ्कित की है, जब कन्याओं का विवाह सम्पन्न होता था, उस समय धात्री को वैसी ही प्रसन्नता होती थी जैसी कन्या की माता को।[1]

शिक्षा—धर्म—राजनीति और नारी

भास के युग में नारियाँ शिक्षित होती थीं। इनकी शिक्षा पुरुषों की शिक्षा के समान ही आवश्यक थी। नारी को आदर्श एवं विदुषी माता बनाने के लिए शिक्षा अपेक्षित थी। भास की सभी नारियाँ शिक्षित हैं। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में जब सन्तान की शिक्षा का प्रश्न आता है तो महासेन कहता है कि मैंने अपनी कन्या वासवदत्ता के लिए संगीत-शिक्षा का प्रबन्ध किया है। कुरंगी भी शिक्षिता है और वह भी अपने मनोभावों को लेख द्वारा प्रकट करती है। अविमारक जब राज-भवन में पहुँचता है, तो वहाँ उसे शिक्षित नारी की संगीत-ध्वनि सुनायी पड़ती है और वह उस ध्वनि को सुन कर विभोर हो जाता है। नारी की शिक्षा-विधि के सम्बन्ध में नाटकों से कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है पर इतना सत्य है कि भास के समय में नारियों को लिखना-पढ़ना, संगीत, नृत्य आदि सिखलाया जाता था। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में वीणा-वादन की आचार्या उत्तरा नामक वैतालिका का कथन आया है।[2] वसन्तसेना को भी विविध कलाओं में दक्ष बताया गया है।[3] अतः नारियों की शिक्षा के सम्बन्ध में आशंका की आवश्यकता नहीं है।

धर्म-क्षेत्र में नारी को समान अधिकार प्राप्त था। वह सहयोगिनी और सहधर्मचारिणी के रूप में मान्य थी।[4] धर्मानुष्ठान एवं धार्मिक क्रियाएँ पत्नी के बिना सम्पन्न नहीं हो सकती थीं। प्रत्येक धार्मिक संस्कार पत्नी के साथ ही सम्पन्न होता था। अतः सहधर्माचरण के लिए भास के युग में नारी का पाणिग्रहण आवश्यक था।

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र के समान नारी का राजनीतिक क्षेत्र में भी योग था। इस क्षेत्र में भास के समय में सक्रिय एवं प्रत्यक्ष सहयोग तो नहीं

---

१. अविमारक षष्ठ अङ्क, पृ० १४२ से १४६ तक।

२. उत्तराया वैतालिक्याः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्।
—प्रतिज्ञा० अङ्क २, पृ० ५२

३. चारुदत्त, १।२४

४. ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्। —प्रतिमा०, अङ्क १, पृ० ३९

रहा, किन्तु उसने अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक संघर्ष एवं उथल-पुथल को जन्म अवश्य दिया। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में वासवदत्ता का अपहरण उदयन और राजा महासेन के मध्य संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देता है। इसी प्रकार अभिषेक नाटक में राम-रावण के भीषण एवं विनाशकारी युद्ध में सीता का हरण ही कारण बनता है। अभिषेक नाटक में सुग्रीव और बालि के मध्य संघर्ष का हेतु भी नारी ही है। अतः नारियाँ स्वयं तो राजनीतिक क्षेत्र में आगे नहीं आयीं पर उनके द्वारा युद्ध एवं संघर्ष के कार्य अवश्य हुए हैं।

पुरुषार्थ-संस्था

पुरुषार्थ का अर्थ है, वह वस्तु जिसे मनुष्य अपने प्रयत्न द्वारा प्राप्त करना चाहता है। अतः मानव-जीवन के वास्तविक स्वरूप, महत्त्व और लक्ष्य का निर्धारण पुरुषार्थ द्वारा ही होता है। अतएव जीवन को सुसंस्कृत करने और अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिये। पुरुषार्थों का सम्बन्ध वर्णाश्रम धर्म के साथ है। इन चारों पुरुषार्थों में मोक्ष परम लक्ष्य है। अर्थ और काम उस लक्ष्य तक पहुँचने के साधन हैं और इन साधनों के समुचित प्रयोग करने की विधि धर्म है। धर्म मनुष्य की पाशविक और दैविक प्रकृति के बीच की शृंखला है। यही अर्थ और काम को नियन्त्रित करता है।

मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की समस्त आवश्यकताएँ, इच्छाएँ और उद्देश्य पुरुषार्थ के अन्तर्गत हैं। निस्सन्देह सामाजिक व्यवस्था में धर्म अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली अवधारणा है। यह जीवन को सुसंस्कृत और परिमार्जित करता है। मानव-जीवन में अनेक प्रकार की इच्छाएँ एवं संघर्षात्मक आवश्यकताएँ होती हैं। धर्म का उद्देश्य इन समस्त इच्छाओं को व्यवस्थित, नियमित एवं संयोजित करना है। अतएव, धर्म वह है जो जीवन की विविधताओं, भिन्नताओं, अभिलाषाओं, लालसाओं, भोग, त्याग, मानवीय आदर्श एवं मूल्यों को नियमबद्ध कर नियमितता प्रदान करता है। यह मनुष्य के वर्णाश्रम कर्त्तव्यों की ओर संकेत करता है। उनका अभिमत है कि 'हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति'[1] दान और यज्ञ आदि पुण्य कार्य सदैव विद्यमान रहते हैं। 'कर्णभारम्' में कर्ण ने पुरुषार्थों की व्यञ्जना करते हुए अपने द्वारा उपकृत हुए इन्द्र के सम्बन्ध में कहा है। भास जीवन का चरम लक्ष्य पुरुषार्थ सिद्धि ही

---

१. कर्णभारम्, १।२२

मानते हैं। यही कारण है कि 'ऊरुभंग' में क्षत-विक्षत दुर्योधन अपने पुरुषार्थ साफल्य की ओर संकेत करता है। 'कर्णभारम्' का निम्नलिखित पद्य पुरुषार्थ सिद्धि की ओर संकेत करता है।

अनेकयज्ञाहुतितर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसंघमर्दनः।
सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलि—
र्मया कृतार्थः खलु पाकशासनः॥[1]

इस प्रकार नाटककार भास ने ब्रह्मचर्य अवस्था को धर्म पुरुषार्थ का प्रथम अनुष्ठान माना है। गार्हस्थ्य, धर्म, और काम पुरुषार्थ का अनुष्ठान स्थल है। गृह, सम्पत्ति, पुत्र, कलत्र, और समस्त सामाजिक सम्बन्धों एवं दायित्व का निर्वाह इसी अवस्था में होता है। पति-पत्नी का साहचर्य जहाँ एक ओर याज्ञिक अनुष्ठान था, वहाँ दूसरी ओर जीव और ब्रह्म के तादात्म्य का रूपक है। स्त्री-पुरुष का प्रेम, सन्तानवात्सल्य, धार्मिक कृत्य अनुष्ठान, सामाजिक कर्तव्यों का बोध, ये सब मिल कर स्वतः आध्यात्मिक साधना के रूप हैं। यह गार्हस्थ्य की साधना मध्यममार्गी है। अतः इसे छोड़ संन्यास मार्ग ग्रहण करना अध्यात्म-साधना का अगला चरण है। नाटककार भास ने अपने नाटकों में ऐसे संन्यासियों और त्यागियों के आश्रमों का निर्देश किया है, जहाँ सांसारिक प्रलोभनों का पूर्णतया त्याग कर आध्यात्मिक स्वराज्य प्राप्त किया जाता था। और यहीं से चरम पुरुषार्थ मोक्ष की उपलब्धि होती थी। अतः मानव-जीवन के चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय क्रमशः चारों आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास के पालन से सुचारु रूप से हो जाता है।

कुल या गोत्र संस्था

समाजशास्त्र की दृष्टि से कुल या गोत्र संस्था की भी आवश्यकता है। आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए यह संस्था कम उपयोगी नहीं है। शास्त्रों में पिता की वंशशुद्धि का नाम कुल बताया गया है। कुलाचार का योग्य रीति से पालन करते हुए पुत्र-पौत्रादि सन्तति में एकरूपता का बना रहना कुल-शुद्धि के अन्तर्गत है। कुल और परिवार में अन्तर है, कुल संस्था

---

१. कर्णभारम्, १।२३

परिवार सस्था से बड़ी है। एक कुल या गोत्र के अन्तर्गत सहस्रों परिवार हो सकते हैं। नाटककार भास ने कुल सस्था का निर्देश किया है। यदुकुल[१], कुरुकुल[२], के कथन के साथ कुलविग्रह[३] और कुलतिलक[४] शब्द भी प्रयुक्त हैं।

कुल की कुछ परम्पराएँ होती थी जिनका पालन उस कुल मे उत्पन्न हुए व्यक्ति भली प्रकार करते थे। प्रतिमा नाटक मे राम कहते हैं—'मैं पिता की आज्ञा से वन आया हूँ, वत्स ! न तो मैं अभिमान से यहाँ आया हूँ न भय से और न चित्तविभ्रम से। हमारा कुल सत्य का पुजारी होता आया है, फिर तुम उससे उतर कर नीच पथ पर क्यो उतरना चाहते हो ?'[५] स्पष्ट है कि राम रघुकुल की मर्यादाओ का पालन कर रहे हैं। रघुकुल मे सत्य-रक्षा के लिए प्राण दे देना कर्तव्य मे सम्मिलित था, अत राम ने अपने कुलाचरण का पालन किया है। महान् कुलो का आचार भी उच्चकोटि का होता था।

गोत्रो का उल्लेख माठर और कौशिक के रूप मे मध्यमव्यायोग रूपक मे आया है। गोत्र सस्था का अस्तित्व भी प्राचीन काल में विद्यमान था।

परशुराम को भृगुवशी कहा गया है। इससे भी भास के युग मे कुल गोत्र सस्था के अस्तित्व की पुष्टि होती है।

सास्कृतिक जीवन—जीवन-पद्धति एवं जन-विश्वास

सास्कृतिक जीवन में आचार, रुचियो का परिष्करण, आहार-पान, रहन-सहन, वस्त्राभूषण आदि परिगणित हैं। सस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की वह विशेषता या विशेषताओ का समूह है, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को सभी दृष्टिकोणो से महत्वपूर्ण बनाती है। जो व्यक्ति जीवन-दर्शन को समझना चाहता है, उसे अपने प्राकृतिक जीवन को सास्कृतिक जीवन के रूप मे परिवर्तित कर

---

१. हा वत्स यदुकुलप्रवाल, दूतघटोत्कचम, पृ० ३२
२ हा वत्स कुरुकुलप्रदीप. ., वही, पृ० ३२
३. पुरुषक्षयकारके कुलविग्रहे वर्त्तमाने, वही, पृ० ६
तत्कुलस्यास्य वैराग्निर्वलिष्वपि, वही, १।२४
४. कुरुकुलतिलकभूत', ऊरुभगम्, पृ० ५१
५. पञ्चरात्रम्, १।४१

देना पड़ता है। अतएव सौन्दर्य-बोध, जातीय चेतना, जीवन-मूल्य, आध्यात्मिक विकास की गणना भी सांस्कृतिक जीवन में की जाती है।

संस्कृति मानवता को परिष्कृत कर उसमें सुविचारों का अंकुर उत्पन्न करती है। यही अंकुर कालान्तर में कल्प-पादप बन सुस्वादु फलों को प्रदान करता है। अतएव भोज-पान, आचार-विचार, वस्त्राभूषण, उत्सव, क्रीड़ाएँ आदि को सुसंस्कृत कर जीवन-यापन करना सांस्कृतिक प्रेरणा का प्रतिफल है। मानवता अपने आन्तरिक भाव-तत्त्वों से ही निर्मित होती है और इन भाव-तत्त्वों का विकास मनुष्य की भूपण-भूत चेष्टाओं द्वारा सम्पन्न होता है।

नाटककार भास ने अपनी रचनाओं में अपने युग के सांस्कृतिक जीवन का सम्यक् चित्रांकन किया है। उन्होंने अपने युग की जीवन-पद्धति को प्रस्तुत करते हुए भोजन-पान, आचार-विचार आदि का सांगोपांग निरूपण किया है। भोजन और पान द्वारा शरीर की पुष्टि के साथ मन एवं मस्तिष्क का भी संवर्द्धन होता है। हम जैसा भोजन करते हैं, वैसे ही हमारे विचार और क्रिया-कलाप होते जाते हैं। सात्त्विक भोजन करने वाले व्यक्ति के विचार अहिंसक होते हैं। वह अपने कार्य-व्यापारों द्वारा अन्य व्यक्तियों के कार्यों में सहायक और सहयोगी बनता है। लोक में भी कहावत प्रसिद्ध है—'जैसा खावे अन वैसा होवे मन, जैसा पीवै पानी वैसी होवे वानी।' अतः भोजन-पान की शुद्धि एवं समृद्धि सांस्कृतिक जीवन-यापन करने के लिए आवश्यक है। विवेक द्वारा ही व्यक्ति, खाद्य-अखाद्य, पेय-अपेय आदि का विचार करता है। सुन्दर सुस्वादु पक्वान्न उसकी सांस्कृतिक चेतना के ही फल हैं। जिस समाज के व्यक्ति जितने अधिक सुसंस्कृत होते हैं उस समाज का भोजन-पान एव रहन-सहन उतना ही अधिक उन्नत होता है। हम चौके को देख कर व्यक्ति के सांस्कृतिक जीवन का अनुमान लगा सकते हैं। यद्यपि समृद्ध भोजन का सम्बन्ध सभ्यता के साथ है, संस्कृति के साथ नहीं, यह सौन्दर्य एवं ऐन्द्रियिक रुचि, परिष्कार उसे सांस्कृतिक कोटि में ही ले आते हैं। इस प्रकार सभ्यता भी सीमा के क्षेत्र को संस्कृति के क्षेत्र में मिला देने के लिए प्रयत्नशील होती है। वर्गीकरण की दृष्टि से हम आहार-पान और वस्त्राभूपणों को भौतिक संस्कृति में परिगणित कर सकते हैं और भाव-विचार एवं सौन्दर्य-बोधों को आध्यात्मिक संस्कृति में अन्तर्भूत किया जा सकता है।

नाटककार भास ने अपने युग में प्रचलित खान-पान का निरूपण किया है।

आहार-पान

चारुदत्त नाटक मे नटी अपने व्रत के अवसर पर ब्राह्मण-भोजन के हेतु स्वादिष्ट व्यञ्जनो का निर्माण करती है।[१] सामान्यत भास के नाटकों में सामिष और निरामिष दोनो ही प्रकार के भोजनो का कथन आया है। निरामिष भोजन मे अन्न, दाल, शाक, दुग्ध, तण्डुल आदि का समावेश किया गया है। शाकाहार सात्त्विक एव सरल भोजन होता है। इसमे अन्न या अनाज प्रमुख खाद्य है। चारुदत्त मे यव, तण्डुल, दधि, गुड आदि का निर्देश मिलता है।[२] खाद्यान्नो मे सबसे प्रसिद्ध तण्डुल था। यह जनता का अत्यन्त प्रिय आहार था। शालि, कलम आदि इसके विशेष भेद थे। चावल से अनेक प्रकार के व्यञ्जन तैयार किये जाते थे। चावलो को उबाल कर उनका भक्त या भात बनता था।[३] गुड के साथ मिला हुआ भात गुडौदन कहलाता था। चावल दही और घृत के साथ मिला कर भी खाया जाता था। पायस—दूध मे चीनी या गुड और चावल डाल कर खीर बनाई जाती थी, जिसे पायसान्न कहते थे।[४]

मसाले

भोजन को सुस्वादु बनाने के लिए मसालो और सुवासित चूर्णों का उपयोग किया जाता था। मसाले के लिए 'वर्णक' शब्द प्राप्त होता है। मसालों में नमक, मिर्च, हींग, जीरा, सोंठ आदि के नाम प्राप्त होते हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे 'घृतमरिचलवणरुचितो' द्वारा प्रमुख मसालो की ओर सकेत किया है।[५] वस्तुतः नाटककार भास ने अपने युग मे प्रचलित मसालो का कथन किया है। 'चारुदत्त' मे 'धूपित'[६] शब्द आया है जिसका अर्थ हिङ्ग्वादि सुगन्धित द्रव्य है। दाल को सुस्वादु करने के लिए हींग, मिरच आदि मसाले प्रयुक्त होते

१. चारुदत्त, प्रथम अङ्क, पृ० २-८
२ घृतगुडदधि सुसमृद्ध धूपितसूपोपदशसम्भिन्नम् ।
सत्कारदत्तमिष्ट भुज्यता भक्तमार्येण ॥, चारुदत्त, १।१
३. चारुदत्त, अङ्क १, पृ० ७
४. अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायस भुङ्क्ते, बालचरितम्, अङ्क १, पृ० २२
५. प्रतिज्ञा०, अङ्क ४, पृ० १०४
६. धूपितसूपोपदंशसम्मिलितम्, चारुदत्त, अङ्क १, पृ० ८

थे। इसी स्थल पर भास ने 'उपदंश'[1] का भी प्रयोग किया है। इसका अर्थ मूली और अदरक है। भोजन को सुपाच्य और स्वास्थ्यप्रद बनाने के लिए उक्त पदार्थों का प्रयोग किया जाता था। दाल को 'धूपित' करने का कथन आया है। यहाँ 'धूपित' शब्द भी विचारणीय हैं। हमारी दृष्टि से इसका अर्थ हींग, जायपत्र, नागकेशर आदि सुगन्धित द्रव्यों से दाल में छौंक लगाना है।[2] यों तो धूपित का अर्थ 'वासित' है। अतः 'सुगन्धित द्रव्यविशेषण वासितः' व्याख्या के अनुसार दाल को सुगन्धित पदार्थों द्वारा छौंकना अर्थ निष्पन्न होता है।

तैल और घृत

मसालों के समान तैल और घृत भी भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए प्रयुक्त होते थे। ये आहार्य पदार्थों में चिक्कण तत्त्व का संचार करते थे। तैल दीपक आदि जलाने में भी प्रयुक्त होता था। 'चारुदत्त' में तैल[3] और घृत[4] इन दोनों के व्यवहार का वर्णन आया है।

पक्वान्न और फल

भास के समय में पक्वान्न और फलों का भी व्यवहार किया जाता है। भास ने 'चारुदत्त' में 'सम्पन्नमशनमशितव्यं भविष्यति'[5] का प्रयोग आया है। यह 'सम्पन्नमशन' पक्वान्न का सूचक है। 'बालचरितम्' में मधु, गुड़ और खण्ड (खाण्ड) का उल्लेख आया है।

मिष्ठान्न में मोदक का विशेष स्थान था। यह खाद्य-पदार्थ ही नहीं था, किन्तु दैवोपायन के रूप में भी इसका उपयोग होता था। भास के विदूषकों को मोदक विशेष प्रिय है। 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण' में मोदक-चर्चा विशेष रूप से आयी है। विदूषक कहता है—मैं शिवालय के चबूतरे पर अपने लड्डुओं के

---

१. उपदंशयभक्ष्येणकन्दमूलादिना च सम्भिन्नम्, वही, अङ्क १, पृ० ८
२. नानाविधैर्हिङ्गुविद्धैरुद्गारसुगन्धिभिः, वही, अङ्क १, पृ० १०
३. तरंगतैलपूर्णभाजनम्, चारुदत्त, अङ्क १, पृ० ३८
४. वही, ११
५. चारुदत्त, अङ्क १, पृ० ६

पात्र को रख कर चला गया था। वापस लौटने पर मुझे मोदक नहीं मिले।[1] इससे स्पष्ट है कि मोदकों का प्रचार प्राचीन भारत में विशेष रूप से था।

भास ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' में 'स्निग्ध भोजन'[2] की चर्चा की है। यह स्निग्ध भोजन भी घी-चीनी से निर्मित मिष्ठान्न ही है। विदूषक वसन्तक को इसीलिए यह प्रिय है कि यह विशेष सुस्वादु होता था। फलों में आम[3] के अतिरिक्त पिचुमन्द[4] (नीबू), कदली[5], ताल[6], और कपित्थ[7] फलों के नाम आये हैं। 'वासवदत्तम्' नाटक से ज्ञात होता है कि तपोवन में वन्य फल और कन्द-मूल आदि आश्रमवासियों के प्रमुख आहार थे।

दुग्ध

निरामिष आहार में दूध की गणना एक पौष्टिक एवं शक्तिप्रद पेय पदार्थ के रूप में की गयी है। भास के युग में गोधन का प्राचुर्य था, जिससे दूध, दही, घी, मक्खन, तक्र आदि पदार्थ प्रभूतमात्रा में उपलब्ध होते थे। 'पञ्चरात्रम्' नाटक में विराट नरेश के जन्म दिवस पर गोदान के लिये अगणित गायें नगर वाटिका के मार्ग पर सजा दी गयी।[8] कौरवों ने गो-धन के अपहरण के लिए ही विराट पर आक्रमण किया था। बालचरित में गोपालों की एक पृथक् बस्ती का उल्लेख आता है। आभीर ग्राम गायों की बहुलता के कारण ही ख्यात था। दूध से निर्मित पदार्थों में दधि, नवनीत, तक्र और घृत का उल्लेख 'बालचरित' में मिलता है।[9]

१. देवकुलपीठिकायां मम मोदकमल्लकं निक्षिप्य""इदानीं मोदकमल्लकं न प्रेक्षे, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क ३, पृ० ७३
२. स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति, स्वप्नवासवदत्तम्, चतुर्थ अङ्क, पृ० १४५
३. चारुदत्तम, अङ्क १, पृ० ६
४. पिचुमन्दा जायन्ते, चारुदत्त, अङ्क ४, पृ० १०४
५. पंचरात्रम् १।१६
६. वही, १।१८
७ भक्तकपित्थ शीर्यन्ते, चारुदत्त, अङ्क १, पृ० ४२
८. पञ्चरात्रम्, अङ्क २, पृ० ५१
९. एकस्मिन् गेहे गत्वा क्षीरं पिबति। अन्यस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति। अपरस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिलति।
अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते।
इतरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते।—बालचरितम्, अङ्क १, पृ०२८

सामिष भोजन

प्राचीन काल से ही भारत में सामिष भोजन का व्यवहार होता रहा है। मांस के साथ मदिरा का भी उल्लेख मिलता है। सामान्यतया मांस और मदिरा का गहन सम्बन्ध माना जाता था। भास के युग में मांस भी भोज्य वस्तु में परिगणित था। नाटकों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि आश्रम-वासी तपस्वियों को छोड़ शेष व्यक्ति मांसाहार से परहेज नहीं करते थे। सामान्यतया मांस तीन श्रेणियों में विभक्त था। (१) पशु-मांस, (२) पक्षि-मांस और (३) मत्स्य-मांस। पशु-मांस में मृग, शूकर और सिंह का मांस प्रमुख था। राजन्य वर्ग के व्यक्ति आखेट करने जाते थे और वहाँ के पशु-पक्षियों का संहार कर मांस प्राप्त करते थे। प्रतिमा नाटक में राम संन्यासी वेशधारी रावण से अपने पिता का वार्षिक श्राद्ध करने के हेतु कौन-सी चीज उत्तम हो सकती है, इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं। रावण अपने को श्राद्धकल्प-चेतस कहता हुआ राम से निवेदन करता है "विरूढेषु दर्भाः, ओषधिषु तिलाः, कलायं शाकेषु मत्स्येषु महाशफरः पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशुषु गौः खड्गो वा, इत्येते मानुषाणां विहिताः"[1] घासों में कुश, ओषधियों में तिल, शाकों में कलाय, मछलियों में महाशफर, पक्षियों में वार्ध्रीणस और पशुओं में गाय या गेंड़ा मनुष्यों के लिए विहित हैं।

इस कथन से यह व्यञ्जित होता है कि मत्स्य-मांस में महाशफर-मांस विशेष प्रिय था। पक्षि-मांस में वार्ध्रीणस अर्थात् जिस पक्षी की गर्दन नीली हो, लाल सिर हो, कृष्ण पाद हो, और श्वेत पङ्ख हों ऐसे पक्षी का मांस विशेष स्वादिष्ट होता था। पशुओं में गो-मांस और गण्डक-मांस का भी कथन आया है। रावण आगे भी अपने कथन को प्रभावक बनाता हुआ कहता है कि हिमालय की सातवीं चोटी पर शिव के मस्तक से पतित होने वाली गंगा के जल का पान करने वाले वैडूर्य सदृश्य, श्याम पृष्ठ वायु-तुल्य शीघ्रगामी, कांचन-पार्श्व नामक मृग के मांस से पितरों का श्राद्ध करना अधिक पुण्यप्रद होता है इस मांस से तर्पित पितर बहुत सन्तोष लाभ करते हैं और स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।[2]

---

१. प्रतिमा नाटक, पञ्चम अङ्क, पृ० १३५

२. तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते, हित्वा जरां खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः। तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवास-मावर्तिभिश्च विषयैर्न बलाद् ध्रियन्ते ॥ प्रतिमा नाटकम्, ५।१०

नर-मास भक्षण की प्रवृत्ति राक्षसो मे प्रचलित थी। मध्यमव्यायोग मे जब घटोत्कच ब्राह्मण के तीन पुत्रो मे से एक को अपनी माता के व्रतपारणार्थ ले जाने की इच्छा करता है तब ब्राह्मण कहता है कि मैं अपने गुणवान् पुत्र को नरभक्षी को दे कर किस प्रकार शान्ति लाभ प्राप्त करूँगा।[१]

मास-भक्षण की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं। मास अग्नि में भून कर अथवा तैल और मसालो में तल कर उपयोग मे लाया जाता था।[२] मास को पकाने की विधि अनेक रूपो मे प्रचलित थी। तले हुए मास का स्वाद मदिरा के साथ लेते थे।[३] आखेट आदि मे जहाँ मास पकाने का कोई साधन उपलब्ध नही होता था, वहाँ शूल्य मास का प्रयोग किया जाता था।

मदिरा

भास के युग मे मदिरा-पान का भी प्रचार था। समाज मे सभी वर्गों के मनुष्य मद्यपान करते थे। राजाओ से ले कर सामान्य अनुचरो तक को मदिरा पीने की स्वतन्त्रता थी। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' मे राजभृत्य, गात्र-सेवक मदिरोन्मत्त और जपा-पुष्प के सदृश रक्त लोचन दिखलायी देता है। मदिरा-पान के लिए पानागार[४] या मदिरालय स्थापित थे। इनमे मदिरा का विक्रय होता था और एक साथ बहुत से व्यक्ति बैठ कर सुरापान का आनन्द लेते थे। आपानक भी मदिरा-गृह थे, इसे हम एक प्रकार से पान-गोष्ठी भी कह सकते हैं। मदिरा के कई रूप प्रचलित थे। इन रूपो मे सुरा, मदिरा और सुधा विशेष प्रिय थे। सुरा के सम्बन्ध मे बताया गया है कि चावल, शर्करा आदि के द्वारा यह निर्मित की जाती थी।[५] सुरापान पुरुषो के साथ स्त्रियाँ भी करती थीं। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' मे बताया गया है कि मधु पी कर पुत्र-वधू भी ससुर से प्रेम करने लगती है। इसी नाटक में स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु आदि सभी के सुरापान का

---

१. पुत्रप्रदस्य दरवाह कथ निर्वृतिमाप्नुयाम्, मध्यमव्यायोग, १।१३
२ चारुदत्त, १।८
३. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क, ४, पृ० १०४
४. पानागारान्निष्क्रान्तो दृष्टोऽस्मि,

प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चतुर्थ अङ्क, पृ० १०४

कथन किया गया है। सुरा के सम्बन्ध में विशेष विवेचन करता हुआ नाटककार कहता है—

धन्याः सुराभिर्मत्ता धन्या सुराभिरनुलिप्ताः ।
धन्याः सुराभिः स्नाता धन्याः सुराभिः संज्ञापिताः ॥[१]

मनुस्मृति या अन्य ग्रन्थों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि कदम्ब वृक्ष के पुष्पों से निर्मित विशेष प्रकार की 'सुरा' कादम्विनी कहलाती थी। पके गन्ने के रस से निर्मित शराव 'सीधु' कहलाती थी। गुड़ से निर्मित 'गौड़ी', चावल की पिष्टी से वनी 'पैष्टी' एवं महुआ के फूल से निर्मित 'माध्वी' कहलाती थी। आसव नामक मद्य विना पके इक्षु के रस से तैयार किया जाता था।

खाने-पीने और भोजन के लिए वर्त्तनों की अत्यन्त आवश्यकता थी। भास के नाटकों में वर्त्तन के लिए भाण्ड[२] शब्द आया है। वर्त्तनों में कलश, घट, शराव, लोही और कटाह प्रधान हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में पद्मावती घोषणा करती हुई ऋषियों से कहती है कि कलश की किसे आवश्यकता है ? क्योंकि जल भरने का कार्य कलश से ही चलता है। भास के युग में कलश आवश्यक पदार्थ था। इसके दो अर्थ थे घट और कमण्डलु। अतः यह स्पष्ट है कि कलश का निर्देश नाटककार भास ने उक्त दोनों अर्थों में किया है।[३] भास ने अपने प्रतिमा नाटक में घट शब्द का भी प्रयोग किया है। राम के राज्याभिषेक के समय तीर्थ-जल से परिपूर्ण घटों की चर्चा की है।[४] राज्याभिषेक के अवसर पर अम्बुपूर्ण घटों से राजकुमार का अभिसेचन किया जाता था।[५] 'शराव' सम्भवतः लोक प्रचलित सकोरा ही था। शराव में जल भरने का कार्य सम्पन्न किया जाता था। लोही[६] शब्द लोह निर्मित कलछी या चमचे के लिए प्रयुक्त हुआ है। कड़ाही को कटाह द्वारा अभिहित किया गया है।

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ४।१
२. वालचरित, अङ्क, १, पृ० १८
३. कस्यार्थः कलशेन, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अङ्क, पृ० २३
४. सदर्भकुसमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः ।
—प्रतिमा नाटक, प्रथम अङ्क, पृ० ७
५. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ४।२
६. लौहीपरिवर्त्तनकालसारा भूमिः, —चारुदत्त, अङ्क १, पृ० २

ये पात्र स्वर्ण, लौह, कास्य और मृत्तिका द्वारा निर्मित होते थे। धनी-मानी स्वर्ण और कास्य के पात्रों का व्यवहार करते थे और दरिद्र व्यक्ति लौह एव मृण्मय पात्रों का।

भोजन समय पर ही प्राय किया जाता था। असमय मे भोजन करने से शारीरिक दोष उत्पन्न हो जाते थे। भोजन दिन में तीन बार किया जाता था। प्रात कालीन अल्पाहार, प्रातराश या कल्यवर्त कहलाता था।[१] चारुदत्त नाटक में सूत्रधार क्षुधा से व्याकुल हो कर नटी से प्रातराश के विषय मे पूछता है।[२] दूसरी बार का भोजन दोपहर मे किया जाता था। भोजन का अन्तिम समय रात्रि का था। अन्य समयो मे भोजन किये जाने का उल्लेख नहीं मिलता है।

आवास

मानव जीवन की आवश्यकताओ मे भोजन-पान के अतिरिक्त आवास की आवश्यकता भी प्रमुख है। इसकी गणना जीवन की प्रथम आवश्यकताओ मे की जाती है। शीत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु से सुरक्षा की दृष्टि से आवास मानव के लिए परम आवश्यक है। साथ ही इससे मानव सभ्यता और सस्कृति के विकास के इतिहास का भी ज्ञान प्राप्त होता है। भास के नाटको से तत्कालीन स्थापत्य कला की उन्नति का पूर्ण परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। भवन-निर्माण की कला अपने चरम विकास को प्राप्त कर चुकी थी। आवास-गृहो का सृजन सुनिश्चित एव सुनियोजित रचना शैली के आधार पर होता था। भवनो का आकार-प्रकार, विस्तार, उन्नति एवं भव्यता नागरिक के सामाजिक पद और स्तर को द्योतित करती है। राजाओं और धनिको के भव्य एव कलात्मक प्रासाद उनके अतुल ऐश्वर्य का परिचय देते थे। राजभवनों का विस्तार और गगनचुम्बी ऊँचाई को देख कर दृष्टि जडीभूत हो जाती थी। प्रासादो के प्रसग मे राज-प्रासादो के लिए भास के नाटको मे राजकुल[३], नृप भवन[४],

---

१ भो. सुख नामयपरिभूतमकल्पवर्तञ्च,

—स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क ४, पृ० ६६

२ चारुदत्त, अङ्क १, पृ० ३

३. अविमारक, अङ्क ३, पृ० ७५

४. वही, ३।१४

नृपगृह' आदि अभिधानों का प्रयोग हुआ है। राज-भवन सामान्य गृहों और सार्वजनिक इमारतों की तुलना में निराले ही होते थे। इनकी अनोखी 'श्री' होती थी। ये अत्यन्त विशाल और उन्नत होते थे। इनमें इतनी मंजिलें होती थीं कि ये गगन का स्पर्श करते थे।[२]

राज-प्रासाद दो भागों में विभक्त होता था। एक अन्तर भाग कहलाता था और दूसरा बहिर्भाग। अन्तर भाग में अन्तःपुर या राजकीय हर्म्य होता था और बहिर्भाग में राजप्रासाद एवं सभा-भवन होते थे। अन्तःपुर राजमहिषियों के निवास और विहार का स्थल होता था। यह राजप्रासाद से पृथक् होता था। इसमें महिषियों के लिए पृथक्-पृथक् प्रासाद या कक्ष होते थे। अन्तःपुर-सम्बद्ध एक विहारोद्यान होता था, जो प्रमद वन कहलाता था। यहाँ राजा-रानी एकान्त में प्रणय-लीला करने आते थे।[३] कभी-कभी राजा अपनी प्रेयसी के विरह में व्याकुल हो कर व्यथापनोदन के लिए यहाँ आता था। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में बताया है कि जब उदयन का विवाह पद्मावती के साथ होने लगा तो वासव-दत्ता अपना मन बहलाने के लिए प्रमद वन में चली आयी और यहाँ एकान्त में बैठ कर अपनी आत्मकथा का चिन्तन करने लगी।[४] प्रमद वन में उद्यान, लता-मण्डप आदि भी रहते थे। 'अभिषेक' नाटक में ऐसा भी ज्ञात होता है कि यहाँ दीर्घिकाएँ भी होती थीं।[५] हनुमान् रावण के प्रासाद के भीतरी भाग का चित्रण करता हुआ कहता है कि स्वर्ण विद्रुम तथा इन्द्र नील मणि से बना हुआ बड़े वृक्षों की कतार से विचित्र यह स्वच्छ प्रमद वन इंद्र के विहार-स्थल के समान प्रतीत होता है। यहाँ सरोवरों में नाना प्रकार के पक्षी कलरव-क्रीडा

---

१. अविमारक, ३।१४

२. विपुलमपि मितोपमं विभागान्निविडमिवाभ्युदितं क्रमोच्छ्रयेण ।
नृपभवनमिदं सहर्म्यमालं जिगमिषतीव नभो वसुन्धरायाः ॥
—अविमारक, ३।१३

३. बन्धनमिदानीं प्रमदवनं सम्भाव्य प्रवृत्तो रागलीलाम् कर्तुम् ।
—प्रतिज्ञायौगन्ध०, अङ्क ३, पृ० ६५

४. स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क ३

५. कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैर्विकृतमहाद्रुमपङ्क्तिचित्रदेशा । रुचिरतर-नगा विभाति शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥ नानावारिच-राण्डजैर्विरचिता दृष्टा मया दीर्घिकाः,
अभिषेक नाटकम्, पृ० २१५, ६,

कर रहे हैं। नित्य पुष्पित और फलित होने वाले वृक्ष भी सुशोभित हैं तथा दीर्घिकाओ का सम्बन्ध भी विद्यमान है।[१]

रावण के प्रमद वन के चित्रण से उसकी समृद्धि का पूर्ण परिज्ञान होता है। इन प्रमद वनो मे विलास की समग्र सामग्रियाँ सचित रहती थी। यहाँ एक दोलागृह भी होता था, जिसमे किसी उत्सव या समारोह के अवसर पर राज-परिवार के व्यक्ति झूलने का आनन्द लेते थे। प्रमद वन की रक्षा के लिए उद्यान-पालक भी नियुक्त रहते थे।

अन्त पुर का एक भाग ही कन्या अन्त.पुर कहलाता था।[२] इसका निर्देश नाटककार भास ने 'अविमारक' नाटक में किया है। इससे ज्ञात होता है कि भास युग मे राजभवन मे राज-कन्याओ के लिए पृथक् प्रासाद की व्यवस्था थी। कन्यापुर मे राज-कन्या, उसकी सखियाँ, परिचारिकाएँ और धात्री रहती थी। अविमारक मे कन्यान्त पुर में राजकुमारियाँ कुरंगी के साथ उसकी धात्री और नलिनिका आदि सखियाँ रहती हैं। कन्यान्त.पुर का प्रधान रक्षक अमात्य होता था जिसके अधीनस्थ अनेक भृत्य होते थे। अमात्य की अनुपस्थिति मे अमात्य भृत्य[३] रक्षण का भार सम्हालते थे। राज-कन्याओ का प्रासाद भी अपनी समृद्धि के कारण इन्द्रपुरी से स्पर्धा करता हुआ प्रतीत होता था।[४]

राजकुल के बहिर्भाग मे दर्शनीय वस्तु राजप्रासाद होता था। इसमे राजा के वैभव के अनुसार अनेक गृह और भवन होते थे, जिनका अपना-अपना वैशिष्ट्य था। ये सभी भवन सुन्दर और सुसज्जित होते थे। इन भवनो को प्रधान रूप मे निम्नलिखित वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है।

(१) मणिहर्म्य-मानसार के अनुसार यह एक मंजिल, स्फटिक और रत्न-जटित होता था।

(२) मयूरयष्टि प्रासाद—इस प्रासाद मे मयूरो के विश्रामार्थ यष्टियाँ लगायी जाती थी, इसमे कक्ष होते थे।[५]

---

१. नित्य पुष्पफलाढ्यपादपयुता, अभिषेक नाटकम्, २।६
२. अथैव प्रवेष्टव्यम् कन्यापुरम्. —अविमारक, अङ्क २ पृ० ४३
३. अमात्य प्रस्थित इति कश्चिदमात्यभृत्य: कन्यापुररक्षणार्थम् नाभ्यागत , अविमारक, अङ्क ३, पृ० ६३
४. अविमारक, अङ्क ३, पृ० ७७
५. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क २, पृ० ६६

(३) समुद्रगृह—इस भवन में धारायन्त्रों के साथ कृत्रिम जलाशयों का भी निर्माण किया जाता था। ग्रीष्मकाल में यह शीत और आरामप्रद होता था।

(४) सूर्यमुख प्रासाद—स्वास्थ्य की दृष्टि से इसमें सूर्य-किरणों का प्रवेश निरन्तर होता रहता था। मतान्तर से इसमें सूर्यदेवी की प्रतिमा अंकित रहती थी।

(५) मेघप्रतिच्छन्द—यह दस मंजिलों का विशिष्ट उन्नत प्रासाद होता था।[१]

(६) देवच्छन्दक—यह भी मेघ-प्रतिच्छन्दक जैसा ही होता था।

(७) शान्तिगृह—अभ्यागतों के विश्रामार्थ शान्ति गृह बनाया जाता था।[२]

(८) उपस्थानगृह या आस्थान मण्डप[३]—इसका अर्थ है—'यत्र स्थित्वा राजा प्रकृतिभिरुपास्यते' अर्थात जहाँ प्रजा देववत् राजा की उपासना करती थी। इस गृह में राजा का दरबार लगता था, जिसमें राजा की पट्ट महिषी को देवी शब्द से सम्बोधित किया जाता था। भवन में सर्वसाधारण का निर्बाध प्रवेश अनुमत था।

(९) मन्त्रशाला[४]—गुप्त मन्त्रणाओं के लिए यह स्थान निश्चित था, यहाँ गूढ़ विषयों पर परामर्श होता था।

(१०) अग्निगृह—धार्मिक क्रियाओं के सम्पन्न हेतु अग्निगृह निर्मित होता था। इस स्थान पर तपस्वियों और व्रतविदों की अभ्यर्चना की जाती थी। सामान्यतः यज्ञशाला के लिए अग्निगृह का प्रयोग आया है।

(११) शयनागार—शयन कक्ष होता था।

(१२) शस्त्रशाला[५]—आयुधागार होता था।

(१३) हस्तिशाला[६]—हाथियों के रहने का स्थान। इसे गजशाला भी कहा जाता था।

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १, पृ० ४१
२. वही, अङ्क १, पृ० ४१
३. अविमारक, अङ्क १, पृ० ८, १५
४. दूतवाक्यम्, १।२ तथा अङ्क १, पृ० ३
५. दूतवाक्यम्, १।११
६. अविमारक, अङ्क ३, पृ० ७५

(१४) संगीतशाला[१]—यहाँ नृत्य, गीत और वाद्य का प्रदर्शन किया जाता था।

(१५) चतुःशाला[२]—बैठक खाना।

इस प्रकार नाटककार भास ने राजाओं के आवास के सम्बन्ध में विस्तार-पूर्वक विचार किया है। नाटकों से ऐसा भी ज्ञात होता है कि सामान्य व्यक्तियों के आवास-स्थान उनके जीवन-स्तर के अनुकूल ही होते थे। ईंटें पकी हुई और बिना पकी हुई दोनों ही प्रकार की उपयोग में लायी जाती थीं। मिट्टी और काष्ठ का भी उपयोग होता था। प्रतिमा नाटक में बताया गया है कि सुधावलेपन करने वाले सुधाकर कहलाते थे। भवनों में कलात्मकता लाने के लिए सम्भ्रान्त व्यक्ति रत्न और मणियों का भी उपयोग करते थे।

वस्त्र-आभूषण - वेश-भूषा

सांस्कृतिक जीवन के अन्तर्गत वेश भूषा भी परिगणित है। वस्त्रों का जैसा वर्णन आया है उससे यह स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है कि भास के युग में सिले हुए कपड़े पहने जाते थे या नहीं। यह सत्य है कि सूती, ऊनी और रेशमी—तीनों प्रकार के वस्त्रों का व्यवहार किया जाता था। राज-परिवार में विशेष प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों का प्रचार था और सामान्य जनता साधारण वस्त्रों का व्यवहार करती थी। भास ने अपने नाटकों में क्षौम्य[३] का प्रयोग किया है। क्षौम्य वस्त्र जैसा कि इसके नाम से प्रसिद्ध है कि क्षुमा या अलसी नामक पौधे के रेशे से तैयार किया जाता था। डॉ० मोतीचन्द्र[४] ने भी इसे बहुत महीन और सुन्दर वस्त्र स्वीकार किया है। इसे अलसी की छाल के रेशों से बनाया हुआ बतलाया है। यह अधिक कीमती, मुलायम और सूक्ष्म होता था। हमारा अनुमान है कि क्षुमा नामक एक घास के रेशों से बनाया जाता था, जो घास आसाम में उत्पन्न होती थी। आसाम के कुमार भास्कर वर्मा ने हर्ष के लिए जो उपहार भेजे थे, उसमें क्षौम्य वस्त्र भी शामिल थे। यह विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर प्रयुक्त होता था।

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १ और २
२. अविमारक, अङ्क २, पृ० ३६
३. स्पृष्ट्वा चैव युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षौमापसव्यं भुजम्, ऊरुभंग, १।५३
४. डॉ० मोतीचन्द्र, प्राचीन वेश-भूषा, भूमिका, पृ० ५

दुकूल वस्त्र भी भास के युग में प्रचलित था। यह वस्त्र दुकूल वृक्ष की छाल के रेशे से वनता था, वंगाल का वना हुआ दुकूल स्वेत वर्ण का होता थ। नील, लाल और श्वेत वर्ण के दुकूल का भी व्यवहार पाया जाता था। वाण के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि दुकूल पुण्ड्र देश वंगाल से वन कर आता था।[१] दुकूल[२] के वने हुए थान में से काट कर चादर, धोती या अन्य वस्त्र वनाये जाते थे। साड़ियां, पलंग पोश आदि भी दुकूल के वनते थे। देशी शब्दों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि दुकूल दोहरी चादर या थान के रूप में विक्रयार्थ आने के कारण इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है। दुकूल के अतिरिक्त ऊर्ण वस्त्रों के व्यवहार का भी प्रचार था।[३] ऋग्वेद में भेड़ को ऊर्णवती कहा गया है। अतः इसका अर्थ ऊनी वस्त्र भी हो सकता है। डॉ० मोतीचन्द के अनुसार यह नाटक नागवृक्ष, लकुच, वकुल और वटवृक्ष के छाल के रेशों से तैयार होता था। इसका रंग क्रमशः गेहुआँ, सफेद और मक्खन का-सा होता था।[४] वासुदेव शरण अग्रवाल इसे पटोर रेशम मानते हैं।[५] क्षीर स्वामी ने इसे कीड़ों की लार से उत्पन्न कहा है। मौर्य युग में पत्रोर्ण का प्रचार था।[६] नाटककार भास ने अविमारक में इस वस्त्र के व्यवहार करने का उल्लेख किया है।[७]

कौशेय पत्रोर्ण वस्त्र दो प्रकार के वस्त्रों से मिल कर वनता था। कौशेय कोशकार देश का वना रेशमी वस्त्र होता था और पत्रोर्ण ऊनी वस्त्र का एक प्रकार था। अतः कौशेय पत्रोर्ण ऐसा वस्त्र होगा, जिसका निर्माण ऊन और रेशम को मिला कर किया जाता होगा।

अंशुक का प्रयोग भी भास के युग में होता था। यह अत्यन्त झीना और स्वच्छ वस्त्र था। कुछ विद्वान् इसे मलमल भी मानते हैं। यह दो प्रकार का होता था—एक भारतीय और दूसरा चीन देश से लाया हुआ, जो चीनांशु कहलाता था। अंशुक रेशमी या सूती वस्त्र है, इस सम्बन्ध में जैन ग्रन्थ अनुयोग

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७०
२. श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः, दूतवाक्यम्, १।३
३. ऋग्वेद, १।६७।३
४. प्राचीन वेष-भूषा, भूमिका, पृ० ९
५. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८८
६. 'वकुलवटादिपत्रेषु' कृमिलालोर्णं कृतं, क्षीर स्वामी
७. भर्तृदारिकायै सुमनोवर्णकं मया नीयते।

—अविमारक, अङ्क ४, पृ० ८५

द्वारा सूत्र से आलोक प्राप्त होता है। कीटज वस्त्र पाँच प्रकार के बताये गये हैं—पट्ट, मलय, अंशुक, चीनांशुक और कृमिराग। इस विवेचन से स्पष्ट है कि पट्ट रेशम के कीड़ों द्वारा निर्मित कोई वस्त्र है।

पगड़ी[1] पहनने का प्रयोग भी भास के नाटकों में प्राप्त होता है। यह पगड़ी रेशम से बनायी जाती थी। स्त्रियाँ स्तनांशुक धारण करती थीं, जो कि अंगिया या एक प्रकार का ब्लाऊज था। कूर्पासक चोली के रूप में प्रयुक्त है।

आभूषण

भास के युग में नाना प्रकार के आभूषणों के धारण करने का प्रचार था। आभूषणों के लिए आभरण, अलंकार मंडन आदि अनेक शब्द आये हैं। रानियाँ बहुमूल्य रत्नाभूषण धारण करती थीं। रत्नों में मणि, सुवर्ण और मुक्ता का प्रयोग हुआ है। कर्णाभूषणों में कर्ण-चूलिका का व्यवहार किया जाता था। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के द्वितीय अङ्क में कंदुक क्रीडा के समय पद्मावती की कर्णचूलिका कान के ऊपर चढ़ जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आजकल के झुमके जैसा कान के नीचे तक लटकने वाला आभूषण कर्णचूलिका कहलाता था।[2] गले में भी मोतियों और रत्नों के नाना प्रकार के हार पहने जाते थे। स्वप्नवासवदत्तम् से ज्ञात होता है कि मौक्तिकलम्बक, मुक्तावली और एकावली प्रमुख थे। मौक्तिकलम्बक नाम ही इस बात का द्योतक है कि यह हार लम्बा होता था।[3] इसके मध्य में मोतियों के बीच-बीच में प्रवाल या मूंगे पिरो दिये जाते थे। मोतियों की एक लड़ी मुक्तावली कहलाती थी।[4] चारुदत्त नाटक में बताया है कि वसन्तसेना के आभूषण चोरी में चले जाने पर चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी ने उसके सम्मान की रक्षा के हेतु अपना मुक्तावली हार वसन्तसेना के पास भेज दिया था। मुक्तावली का प्रचार उस समय अधिक रूप में था। राज-घराने और श्रेष्ठ परिवार

---

१. पञ्चरात्रम्, अङ्क १, पृ० ४

२. इयभर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसंजातस्वेदबिन्दुविचित्रेन।
स्वप्नवासवदत्तम् अङ्क २, पृ० ६३

३. ते कुसुमिता. नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकालीम्बकैःरचिता।
वही, अङ्क ४, पृ० ६०

४. तस्तस्य अलङ्कारस्य मूल्यभूतामिमां मुक्तावलीं प्रतीच्छतु भवती।
चारुदत्त चतुर्थ अङ्क पृ० ११६

की महिलाएँ मुक्तावली का व्यवहार करती थीं। मुक्तावली में मोतियों की प्रधानता रहने पर भी माणिक्य, पन्ना, नीलम और हीरक आदि मणियाँ भी जटित रहती थीं।

अविमारक नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पैर और हाथों में भी आभूषण धारण किये जाते थे। पादाभूषणों में नूपुरों का स्थान था। वे आजकल के पाजेब के समान होते थे। चलते समय इनसे आवाज होती थी। कटि-आभूषणों में मेखला, कांची और रशना भी इसी प्रकार के आभूषण थे। अविमारक जब कुन्तिभोज की नगरी में पहुँच जाता है और वहाँ के दृश्यों को देखता है, तो अभिसार करती हुई नायिका का वर्णन करता हुआ कहता है—'नायिका के परिजन उसे धीरे बोलने के लिए कहते हैं। आभूषणों की आवाज सुनायी पड़ती है। पाद और कटि के आभूषण विशेष रूप से ध्वनि करते हैं।'[१]

सुवर्ण के आभूषण बनाये जाते थे, इस बात की सूचना प्रतिमा नाटक से भी मिलती है। प्रतिमा नाटक में 'सौवर्णिकमिव वल्कलं[२] संवृत्तम्' तथा 'किमर्थं विमुक्तालंकारासि' आये हुए उद्धरणों से स्पष्ट है कि स्वर्णालंकारों का प्रयोग बहुलता से होता था। करालंकारों में अंगुलीयक विशेष प्रिय आभूषण था। यह आभूषण कई प्रकार का होता था। अविमारक को विद्याधर से इस प्रकार का विचित्र अंगुलीयक प्राप्त होता है, जिसे एक हाथ में धारण करने से वह छिप जाता है और जब इसी को वह दूसरे हाथ की अंगुली में धारण कर लेता है तो दिखलायी पड़ने लगता है। अंगद[३] केयूर के व्यवहार का भी कथन मिलता है। राजा लोग मुकुट पहनते थे।[४]

पुष्प एवं अवलेपन

प्रसाधन की सामग्री में पुष्पों का प्रमुख स्थान है। ये शृङ्गारिक उपकरण माने जाते हैं। अन्तःपुर की नारियाँ ऋतु के अनुसार पुष्पों से अपने केश और शरीर को अलंकृत करती थीं। पुष्पों के अवतंस और हार अधिक प्रचलित

---

१. अविमारकम्, ३।८
२. प्रतिमा, अङ्क १, पृ० १३
३. पीतांगदैः, स्वप्नवासवदत्तम्, २।२
४. मुकुटतटविलग्नम, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, २।३

आभूषण थे। भास ने अपने अविमारक नाटक मे लिखा है—'परिजनेन सम परिलोपनिमित्त बकुलसरलसर्जार्जुनकदम्बनीपनिचुलप्रभृतीनि'।[१]

स्पष्ट है कि बकुल, देवदारु, वेतस, कदम्ब, सर्जन आदि पुष्पो का व्यवहार किया जाता था। पुष्पमालाओ[२] के व्यवहार का भी कथन मिलता है। काश-पुष्प का निर्देश भी मिलता है।[३] माधवी पुष्प का उल्लेख आया है।[४] शेफा-लिका, हरसिंगार के पुष्पो का चयन किया जाता है।[५]

अवलेपनो मे रक्त चन्दन, अलक्तक, कालागुरु, चन्दन, ओष्ठराग[६] आदि अवलेपन का प्रयोग शीतलता और सुगन्धि के लिए होता था।

वेश-भूषा के अन्तर्गत यतिवेश, समरवेश, अभिसारिकावेश, दस्युवेश, प्रतिहारी-वेश मृगया-वेश एव गोपालक-वेश आदि का सामान्य विचार कर लेना भी आवश्यक है।

यतिवेश

यति या तपस्वी नगर के कोलाहल से दूर शान्त आश्रमो मे निवास करते थे। अत इनकी वेशभूषा भी सासारिकता से परे वैराग्य और साधना की प्रतीक थी। अभिषेक नाटक मे भास ने लिखा है कि राम वनवास रूप धर्म-कार्य के लिए राजोचित वस्त्रों का परित्याग कर वल्कल पहनते हैं।[७] तपस्वियो को तप-सिद्धि के लिए वल्कल अत्यधिक उपयोगी होते थे। प्रतिमा नाटक मे लिखा है कि वल्कल तपस्वियो के लिए तप-रूप सग्राम मे कवच, सयम-रूप गज के वशीकरण मे अकुश और इन्द्रिय-रूप अश्व के निग्रह मे लगाम का कार्य करते थे। बताया है—

> तप. सग्रामकवच नियमद्विरदाकुशः।
> खलीनमिन्द्रियाश्वाना गृह्यता धर्मसारथिः॥[८]

---

१. अविमारकम्, पञ्चम अङ्क, पृ० १२३
२. स्वप्नवासवदत्तम्, ५।३
३. वही, ४।७
४. वही, अङ्क ४, पृ० १२४
५. इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान्, स्वप्नवासवदत्तम्, पृ० १२३
६ कालागुरुचन्दनार्द्र...., अविमारक, ५।१
७. अभिषेक, १।१४
८. प्रतिमा, १।२९

काष्ठ-निर्मित चरणपादुका की गणना भी मुनिवेश के रूप में की गयी है। वनवास-काल में राम पैरों में पादुका ही पहनते हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में श्रमणक-वेश का चित्रण आया है। यह वेश भी वौद्ध संन्यासी का है। कुछ स्थानों पर श्रमणक नग्न दिगम्बर वेश-धारी कहा गया है। कर्णभार में परशु-राम की जिस वेश-भूषा का चित्रण है, उससे भी ज्ञात होता है कि संन्यासी विद्युल्लता के समान पीली जटाएँ रखते थे।

समरवेश

कर्णभार नाटक में नाटककार भास ने रणभूमि में जाने वाले योद्धाओं की वेशभूषा 'समरपरिच्छद'[१] की चर्चा की है। धनुष, वाण आदि अस्त्र, कवच और अंगुलित्राण समरवेश में परिगणित थे।[२] योद्धा दधिपिण्डवत् श्वेतच्छत्र भी धारण करते थे।[३]

प्रतिहारी-वेश

प्रतिमा नाटक में प्रतिहारी की वेशभूषा का निर्देश मिलता है वताया गया है—

> चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा
> मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥[४]

अर्थात्, प्रतिहारी श्वेत अंशुक धारण करती थी। अन्तःपुर का द्वार-रक्षक कंचुकी कहलाता था। लम्बा कंचुक धारण करता था। वृद्ध होने के कारण छड़ी रखता था।

वाहन

महाकवि भास के नाटकों में वाहनों के उपयोग का उल्लेख पाया जाता है। मानव अपनी सीमित शक्ति के कारण देशकृत दूरी को पैरों द्वारा नहीं नाप सकता है, अतएव उसे तीव्रगामी वाहनों की आवश्यकता होती है। वाहन

---

१. अयमंगराजः समरपरिच्छदपरिवृत्तः, कर्णभारम्, अङ्क १, पृ० ४
२. पञ्चरात्रम्, २।२
३. वही, अङ्क २, पृ० ५५
४. प्रतिमा, १।२

अनेक रूपो मे प्रयुक्त किये जाते थे । राजपरिवार, सामन्त, श्रेष्ठवर्ग एव सार्थवाहो मे विशेषकर के वाहनो का प्रयोग होता था । हाथी, घोडे, रथ एव शिविका आदि साधारण व्यक्तियो के लिए दुर्लभ थे । यान और विमानो का प्रयोग विद्याधरो में होता था । विमान आकाश-मार्ग मे चलते थे और इनके चालक विद्याधर श्रेणी के व्यक्ति थे । अविमारक नाटक में भास ने विद्याधर का उल्लेख किया है । समाजशास्त्रीय दृष्टि से विद्याधर ऐसा वर्ग है, जो विज्ञानवेत्ता है और विज्ञान द्वारा विद्युत्चालित यन्त्रो का आविष्कारक है । भास ने निम्नलिखित वाहनो का निर्देश किया है—

गज[1]

सवारी के लिए गज का प्रयोग प्राय. भास के सभी नाटको मे पाया जाता है । श्वेत रंग का गज सवारी के लिए सर्वोत्तम माना गया है । उदयन को हाथी के पकडने की कला मे अत्यन्त निपुण चित्रित किया गया है । भास ने द्विप, मातग, कुञ्जर, दन्ती, द्विरद, गज, हस्तिन्, नाग आदि शब्दो का प्रयोग किया है ।

द्विप हाथियो की वह जाति है, जो आसाम के जगलो में निवास करती थी, जिसे पकडने के लिए अधिक प्रयास करना पडता था । द्विप यो तो सामान्यत गज के अर्थ में प्रयुक्त होता है, पर जिसके गण्डस्थल से मद स्रवित होने लगता है, उसे द्विप कहा गया है ।

मातग गजो की वह जाति है, जो मदन से उद्दीप्त हो कर उन्मत्त अवस्था को प्राप्त होता है । सामान्य गज को मातग नहीं कहा जा सकता । मातग मदोन्मत्त होने के कारण सरोवरों और सरिताओ में निरन्तर स्नान आदि करते हैं । यह गज सबसे अधिक शक्तिशाली होता है ।

दन्ती सामान्यतः उस गज के लिए प्रयुक्त होता था, जिसकी अवस्था बीस

---

१. रजन्या वाहनसुखाया वेलाया ......गजयूथ, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रथम अङ्क १, पृ० १५
हस्तिनोऽवतीर्य......., वही, अङ्क १, पृ० १९
नाग पद्मलतामिव, ३।८
हत्वा गजान्, वही, ४।४
वनगजप्रच्छादितशरीरम्, वही, प्रथम अङ्क, पृ० ८
वारणवधे —दूतघटोत्कच, १।३

वर्ष से अधिक की होती थी। जब गज के दाँत निकल आते हैं, तो बाहर से स्पष्टतः दिखलायी पड़ते हैं, उस समय सामान्यतः किसी भी हाथी को दन्ती कहा जाता है। सामान्यतः कदली वन में दन्तियों की प्राप्ति होती थी। दन्ती की सवारी आखेट और युद्ध के अवसर पर की जाती थी।

अश्व

अश्व का उपयोग गज के समान ही भास के युग में होता था। अच्छी तरह मार्ग तय करने वाले घोड़े शीघ्रतापूर्वक चलते थे। उनके खुरों से जो धूल उड़ती थी, उससे उनकी गति का अनुमान किया जा सकता था। भास ने घोड़ों की तीव्र गति का वर्णन किया है। अश्वों का पराक्रम अद्भुत था, उन्हें अनेक प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थीं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में आया है कि उदयन 'सुन्दरपाटल' नामक अश्व पर सवार हो कर नलागिरि को पकड़ने चल पड़े।[१]

कम्बोज देश से आने वाले काम्बोज अश्वों का उल्लेख भी पाया जाता है। कर्णभार में अश्व के लिए हय[२], वाजि[३], काम्बोज[४], तुरंग[५] या तुरग[६] शब्द प्रयुक्त हैं। अन्य नाटकों में भी अश्व का जिक्र आया है।

स्यन्दन

प्राचीन सवारियों में रथ का महत्त्वपूर्ण स्थान था। योद्धा लोग रथों में सवार हो कर युद्ध करने के लिए जाते थे। सम्भ्रान्त परिवार के व्यक्ति रथ का प्रयोग करते थे। भास द्वारा वर्णित रथ या स्यन्दनों में घोड़े ही जोते जाते थे। रथ की बनावट बहुत सुन्दर और शीत-आतप से रक्षा करने वाली होती था। ऊपर एक टप्पर होता था और चारों ओर परदे लगे रहते थे। रथ का मध्य भाग चौकोर एवं गोल होता था। इसमें चार पहिये रहते थे। बड़े रथों

---

१. नीलवलाहकाद् हस्तिनोऽवतीर्य सुन्दरपाटलं नामाश्वमारुह्यानर्धागते सूर्ये...प्रयातोभर्त्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १, पृ० १९

२. कर्णभारम्, १।१५

३. वही, १।१९

४. वही, १।१३

५. वही, १।११

६. वही, १।२

मे दस-पन्द्रह् तक सवारियाँ बैठ सकती थी और छोटे रथो मे दो-तीन या तीन-चार सवारियाँ बैठ पाती थीं। रथ चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया जाता था। भास ने 'पञ्चरात्रम्', 'दूतघटोत्कच', 'कर्णभारम्', 'अभिषेक' और 'प्रतिमा' नाटक मे स्यन्दनो के व्यवहार की चर्चा की है। 'दूतघटोत्कचम्' मे—'योधस्यन्दनवाजिवारणवधैर्विक्षोभ्य राज्ञा बलम'[1]—युद्ध के लिए रथ पर सवार हो कर जाने का कथन आया है। 'कर्णभारम्' मे कर्ण रथ पर सवार हो कर महाभारत की युद्धभूमि मे जाते हैं और उनके रथ का सचालन शल्य करते हैं। शल्य-रथ सचालन की क्रिया मे अत्यन्त निपुण हैं। 'पञ्चरात्रम्' में रथ को 'घोटक शकटिका' कहा गया है।[2]

'प्रतिमा' नाटक मे बताया गया है कि सुमन्त्र राम, लक्ष्मण और सीता को रथ में सवार करा कर अयोध्या से बाहर ले जाते हैं और शृ गवेरपुर मे उन्हें रथ से उतार देते हैं।

शृ'गवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखा स्थित्वा।[3]

यान

यान का प्रयोग भास के समय मे अवश्य होता था, क्योकि सार्थवाहो का नायक चारुदत्त व्यापार के लिए समुद्री यात्रा भी करता है।

विमान

विमान का व्यवहार 'प्रतिमा' नाटक में बताया गया है। राम रावण के पुष्पक विमान मे बैठ कर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। यह विमान स्मरण मात्र से ही समय पर उपस्थित होता है। विमान आकाश मे चलते थे और इनका प्रयोग विद्याधर ही करते थे।[4]

क्रीड़ा, विनोद, उत्सव एवं गोष्ठियाँ

आमोद-प्रमोद मे सभी लोगो की रुचि रहती है। निरन्तर कार्य करने से

---

१. दूतघटोत्कचम्, १।३

२. दधिपिण्डपाण्डरैश्छत्रैर्घोटकशकटिकामारुह्य, पञ्चरात्रम्, अङ्क २, पृ० २५

३ प्रतिमा नाटक, अङ्क २, पृ० ६२

४. सम्प्राप्त पुष्पक दिवि रावणस्य विमानम्। कृतसमयमिद स्मृतमात्रमुपगच्छतीति तत्सर्वैरारुह्यताम्, प्रतिमा नाटकम्, अङ्क ७, पृ० १८३

श्रान्त मानव क्रीड़ा-विनोद द्वारा अपनी शक्ति का अर्जन करता है और इस अर्जित शक्ति द्वारा जीवन-यात्रा में सफल होता है। भास के युग में भूषणभूत चेष्टाओं के अन्तर्गत क्रीड़ा, विनोद, उद्यान-परिभ्रमण, उत्सव, वन-विहार, जल-विहार एवं विभिन्न गोष्ठियाँ प्रचलित थीं। जीवन का सर्वांगीण विकास अंकित करने के लिए संस्कृति के सभी पक्ष चर्चित हैं।

यह सत्य है कि नीरस जीवन में कार्य-क्षमता कम हो जाती है। कार्य-क्षमता की प्राप्ति के लिए किसी-न-किसी प्रकार की क्रीड़ा या गोष्ठी अथवा उत्सव में सम्मिलित होना परमावश्यक है। नदी में वालुकामय तट पर निरुद्देश्य भ्रमण करने वाला व्यक्ति भी अपनी आन्तरिक प्रसन्नता द्वारा कार्य-क्षमता को सजग करता है। दिन-रात काम से थका और ऊबा हुआ व्यक्ति कुछ क्षणों तक गप्प कर अपनी क्रियाशीलता को जाग्रत करता है। जीवन के विकास एवं उसकी कार्यशीलता के लिए जितना आवश्यक श्रम एवं विश्राम है, उससे कहीं अधिक आवश्यक क्रीड़ा-विनोद है। दिन-रात विनोद में संलग्न रहने वाला व्यक्ति भी क्रीड़ा-प्रिय के स्थान पर व्यसनी बन जाता है। जिस प्रकार अत्यधिक सेवन किया गया मिष्टान्न शरीर-पुष्टि के स्थान पर रोग का कारण बनता है, उसी प्रकार क्रीड़ा-विनोद का अत्यधिक प्रयोग मानसिक अस्वास्थ्य का कारण होता है। इसी कारण हम उसे व्यसन कहते हैं। नाटककार भास ने क्रीड़ा-विनोदों और गोष्ठियों को मानसिक स्वास्थ्य माना है। इनके सेवन से कार्य-क्षमता वृद्धिगत होती है एवं श्रान्ति-क्लान्ति का शमन होता है।

कन्दुक-क्रीड़ा[1]

कन्दुक-क्रीड़ा भारत का प्राचीन खेल है। नर और नारियाँ दोनों ही इस खेल को खेलती थीं। पद्मावती और वासवदत्ता कन्दुक-क्रीड़ा के साथ हास-परिहास भी करती हैं। यह क्रीड़ा कई रूपों में और कई विधियों से खेली जाती थी। कन्दुक को उछाल कर और उसको दूर फेंक कर एवं तिरछे रूप में पैर द्वारा उछाल कर विनोद किया जाता था। कन्दुक कई प्रकार के होते थे। बड़े कन्दुक, जो कि आजकल के फुटबाल के समान होते थे, पुरुषों के लिए क्रीड़ा करने में व्यवहृत किये जाते थे। छोटे कन्दुकों से नारियाँ क्रीड़ा करती

---

१. हला ! एसो दे कन्दुओ। अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं। हला ! अदिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसंजादराआ परकेरआ विअ दे अत्या संवुत्ता। स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क २, पृ० ६५

थीं। प्रमद वनों में अन्तःपुर की रमणियाँ गेंद को उछाल कर दौड़-धूप द्वारा क्रीडाएँ किया करती थीं। स्वप्नवासवदत्तम् में समवयस्क सखियों के बीच कन्दुक-क्रीडा सम्पन्न की गयी है।

जल-क्रीडा[1]

ग्रीष्मर्तु में सूर्य के तीव्र होने तथा अत्यन्त प्रचण्ड एवं तीव्र वायु के चलने पर जलक्रीडा की योजना की जाती थी। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में आया है कि कुमारी वासवदत्ता जलक्रीडा के लिए तैयार हो गयी है, पर उसकी सवारी के लिए भद्रवती हस्तिनी नहीं दिखलायी पड रही है। भद्रवती को सर्वत्र ढूंढा जा रहा है। जलक्रीडा भी सखियों के साथ सम्पन्न होती थी और सखियाँ एक-दूसरे के ऊपर जल के छींटे डालती थीं। जल में तैरना, मज्जन करना, डुबकियाँ लगाना तथा सखियों को जल में तलाश करना आदि जलक्रीडा में सम्मिलित थे। मनोविनोद के लिए क्रीडा को एक आवश्यक और उपयोगी साधन माना गया है।

उद्यान-क्रीडा[2]

उद्यान-क्रीडा का अर्थ केवल उद्यान-भ्रमण नहीं है, अपितु उद्यान के वृक्षों पर चढ़ना, उन्हें हिलाना, उसके पत्र-पुष्प तोडना एवं दौड-धूप कर आनन्दित होना आदि रूपों में आनन्दानुभूति प्राप्त की जाती है। उद्यान-क्रीडा प्राचीन भारत में जीवन का एक आवश्यक अंग थी। सुस्निग्ध और सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से युक्त मनोहर नागकेशर, पुन्नाग की रेणु से पूर्ण सुगन्धित वायु, कोकिल की कूज, चम्पक की सुगन्ध, माधवीलता का माधुर्य एवं क्रमुक, नारंग, कदली, जम्बु, दाडिम, लवंग, केतक आदि की मनोहर छटा सहज में आकर्षण का केन्द्र बन जाती थी। पुष्पों की भीनी गन्ध एवं प्रकृति का रम्यरूप सहज ही आकृष्ट कर लेता था।

---

१. कः मालोऽद्य भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया उदके क्रीडितुकामाया भद्रवतीपरिचारक गात्रसेवक न प्रेक्षे। प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चतुर्थ अङ्क, पृ० १०२, १०५

२. ततो गत्वोद्यानं यथासुखमाक्रीड्या निवर्तमानाया राजसुताया दासीदासहसितकथितश्रवण ।..........,अविमारकम्, प्रथम अङ्क, पृ० ६

द्यूत-क्रीड़ा[1]

राज-परिवार के व्यक्ति मनोविनोद के लिए द्यूत-क्रीड़ा करते थे। राजा प्रायः द्यूत-क्रीड़ा के व्यसनी होते थे। जुए के अनर्थों को जानते हुए भी जुआ खेलते थे और राज्य, मान, स्त्री सभी से वंचित हो जाते थे।[2] जुआरी के सत्य, धर्म, दया आदि गुणों का लोप हो जाता था। उसकी चेतना भ्रष्ट हो जाती थी और उसे लोक में अपमानित होना पड़ता था। 'पञ्चरात्रम्' में आया है कि युधिष्ठिर धर्मपरायण और सत्यप्रतिज्ञ होते हुए भी द्यूत-क्रीड़ा में राज्य एवं स्त्री को हार जाते हैं। चारुदत्त में आजीविका के लिए भी द्यूतक्रीड़ा का कथन आया है। संवाहक आजीविका के लिए ही द्यूतक्रीड़ा करता है।

उत्सव

उत्सवों में धनुर्महोत्सव, वर्षवर्धनोत्सव, युद्धोत्सव एवं विवाहोत्सव आदि का कथन आया है। इन उत्सवों द्वारा राजा-प्रजा का मनोरंजन होता था और परस्पर एक-दूसरे के निकट आते थे।

धनुर्महोत्सव[3]

भास के समय में यह विशेष महत्त्वपूर्ण उत्सव रहा है। इस उत्सव पर राजा मनोरंजनार्थ मल्लयुद्ध की व्यवस्था करते थे, जिसमें अन्य राज्यों से भी मल्लों को आमन्त्रित किया जाता था। ये मल्ल परस्पर करण, सन्ध और आवन्ध प्रहारों से युद्ध करते थे।[4] कंस के राज-भवन में चाणूर और मुष्टिक

---

१. अत्रेदानीं धर्मच्छलेन वंचितोद्यूताश्रयवृत्तियुधिष्ठिरः......., पञ्चरात्रम्, अङ्क १, पृ० ३१

सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः ।
करोत्यपांगविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम् ॥ दूतवाक्यम्, १।८

२. यत्पुरा ते सभामध्येराज्ये माने च धर्षिताः ।
बलात्कारसमर्थैस्तैः किं रोषो धारितस्तदा ॥ पञ्चरात्रम्, १।३७

३. मथुरायां धनुर्महो नाम महोत्सवोभविष्यति, बालचरित अङ्क ४, पृ० ६४

४. अतिद्वयकरणसन्धाबन्धप्रहारैयु द्धविशेषैः सिद्धिं गच्छामः, वही, अङ्क ५, पृ० ७०

नामक दो विकट मल्ल थे। राजा अपने प्रासाद[1] में बैठ कर मल्ल युद्ध का आनन्द लेता था। राजा के आदेश से भट माला फेंक कर युद्धारम्भ की घोषणा करता था। मल्ल युद्ध आरम्भ होने से पूर्व शख-पटह बजाये जाते थे। राजनगर नववधू के समान सजाया जाता था। राजपथ ध्वजा, पताका, पुष्प, मालाओं और अगुरुधूपादि सुगन्धित द्रव्यो से मण्डित एव सुगन्धित किये जाते थे।[2]

वर्षवर्धनोत्सव

भास-युगीन समारोहों मे वर्षवर्धनोत्सव या जन्महोत्सव भी महत्वपूर्ण था। यह उत्सव आयुर्वर्धन के लिए जन्मकालिक नक्षत्र के दिन सम्पन्न किया जाता था। इस दिन राजा या सम्भ्रान्त व्यक्ति सहस्रो गायों का दान देते थे और नाना प्रकार से आमोद-प्रमोद करते थे। गोदान के लिए नगरोद्यान के मार्ग सजाये जाते थे। गोपालक और गोपबालाएँ नवीन वस्त्राभूषणों से सज-धज कर आनन्द मङ्गल मनाती थी और नाचती गाती थीं। 'पञ्चरात्रम्' मे विराटेश्वर के वर्षवर्धनोत्सव मनाने का कथन आया है—

जन्मनक्षत्रक्रियाव्यापृतस्य महाराजस्य[3]........

महाराजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्यां नगरोपवनवीथ्यामागन्तु गोधन सर्वं च कृतमङ्गलामोदा गोपदारका दारिकाश्च।

.. ...महाराजस्य विराटस्यवर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्या नगरोपवनवीथ्यामागन्तु गोधनम् तावतीं वेला गायन्तो नृत्यन्तो भवामः।... ....सुष्ठु-नर्तित, सुष्ठुगीतम्।[4]

स्पष्ट है कि शख दुन्दुभि आदि वाद्य बजते थे, ग्वालबाल नृत्य करते थे और गोपागनाएँ नृत्य, गीत आदि मे सलग्न रहती थी। उत्सव धूम-धाम-पूर्वक मनाया जाता था। नायक की आयु-वृद्धि के लिए पूजा-अर्चना की जाती थी तथा विविध प्रकार के मन्त्र-पाठ भी होते थे।

विवाहोत्सव

विवाहोत्सव भी राजोत्सव था। इस उत्सव मे अनेक नर-नारियाँ सम्मिलित

---

१. यावदहमपि प्रासादमारुह्य "युद्ध पश्यामि। बालचरित, अङ्क ५, पृ० ६८
२. वही, अङ्क ५, पृ० ६७
३. पञ्चरात्रम्, अङ्क २, पृ० ५८
४. वही, अङ्क २, पृ० ५३-५४

होती थीं और विविध प्रकार के मङ्गल-गान गाती थीं। वर-वधू को आशीर्वाद दिये जाते थे।

युद्धोत्सव

कर्णभार में युद्ध को भी उत्सव बताया गया है। भास ने लिखा है—'किं नु खलु युद्धोत्सवप्रमुखस्य....।' रण की साज-सज्जा, जयनाद, हर्षोल्लास, पराक्रम, धैर्य आदि का समावेश होने से युद्ध को उत्सव कहा है।

जन-विश्वास और लोकमान्यताएँ

मानव-जीवन के निर्माण में लोक-मान्यताओं और लोक-विश्वासों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। संस्कृति के अन्तर्गत इनका विचार करना भी आवश्यक है। जन-विश्वास किसी तर्क पर अवलम्बित नहीं होते, किन्तु इनका आधार लोकरूढ़ियाँ या परम्पराएँ ही रहती हैं। दैनिक जीवन में स्वप्न, शकुन, भूत-प्रेत, ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र, अभिशाप आदि में जन-सामान्य की अटल श्रद्धा रहती है।

स्वप्न

भास के युग में स्वप्न के शुभाशुभ फल पर आज के समान ही आस्था थी। इनसे भावी घटनाओं की सूचना मिलती थी। 'बालचरितम्'[1] में राजा कंस ज्योतिषियों से स्वप्न में दृष्ट आँधी, भूकम्प, उल्कापात और देव प्रतिमाओं का फल पूछता है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'[2] में नटी स्वप्न में अपने पितृकुल के व्यक्तियों को अस्वस्थ देख कर उनकी कुशलता के लिए चिन्तित हो उठती है।

शकुन

निमित्त और शकुन का प्रभाव प्राचीन काल से आज तक चला आ रहा है। शकुनों को प्रचलित मान्यताओं एवं मापदण्डों के आधार पर आंका जाता था तथा कार्य-सिद्धि का पूर्वाभास प्राप्त किया जाता था।

---

१. यन्मेदिनी प्रचलिता पतिताग्रहर्म्यासन्तारनौरिव विकीर्णमहोर्मिमाला।
सेव्यैः प्रधानगुणकर्मफलैर्निमित्तैः किं वाग्रतो व्यसनमभ्युदयो न तन्मे॥
बालचरितम्, २।१

२. अद्य मया स्वप्ने........प्रेषयितम्, प्रतिज्ञा०, अङ्क १, पृ० ४

'बालचरितम्'[१] मे देवकी कहती है कि इस समय उत्पन्न होने वाले शकुन मेरे पुत्र के अभ्युदय को सूचित करते हैं। इसमे आकाश मे बिजली एवं प्रचण्ड वायु से विद्ध नूतन बादलो की गर्जना से अथवा कम्पायमान पृथ्वी के घूमने से किसी महापुरुष के अवतार की सूचना दी गयी है।[२] आकाश से जलती हुई उल्काओ का गिरना अशुभ माना जाता था।[३] मरते हुए शत्रु को देखने से जन्मान्तर मे अक्षिरोग नही होता था।[४]

शुभाशुभ निमित्तो के अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रधान गुण कर्म, एव फलवाले महानिमित्त होते थे जिनका शुभाशुभ फल निश्चित नहीं था। 'बालचरितम्' मे कस ऐसे ही महानिमित्तो को देख कर भयभीत हो जाता है और इनके शुभाशुभत्व का निश्चय नहीं कर पाता।

ज्योतिष

फलित ज्योतिष और नक्षत्र-विद्या मे भी भास के युग मे आस्था थी। नवीन कार्यारम्भ के लिए ग्रह, नक्षत्र, मुहूर्त आदि के मागल्य का विशेष ध्यान रखा जाता था। राज्याभिषेक, युद्ध के लिए प्रस्थान, यज्ञारम्भ, विवाह-सस्कार आदि कार्य सदा मागलिक एव ज्योतिषसम्मत मुहूर्त मे ही सम्पन्न किये जाते थे। 'अविमारक'[५] मे अमात्य भूतिक शुभ नक्षत्र मे कुरगी के वरान्वेषण के लिए प्रस्थान करता है। 'प्रतिमा' नाटक मे भरत के नगर-प्रवेश के समय भट भरत से कृत्तिका की समाप्ति पर नगर में प्रवेश करने का अनुरोध करता है।[६]

सिद्ध पुरुष और दैवचिन्तकों के वाक्य प्रमाण माने जाते थे। 'स्वप्न-

---

१. पुत्रकस्य मे महानुभावत्व सूचयिष्यन्ति जन्मसमयसमुद्भूतानि महानिमित्तानि, बाल०, अङ्क १, पृ० ४

२. भ्रमति नभसि विद्युच्चण्डवातानुविद्धैर्नवजलदनिनादैर्मेदिनी सप्रकम्पा।
इह तु जगति नून रक्षणार्थं प्रजानामसुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः॥
वही, १।६

३ दूतघटोत्कच, १।२५

४. पञ्चरात्रम्, अङ्क २, पृ० ५२

५ अद्य नक्षत्र शोभनमिति, अवि०, अङ्क ३, पृ० ६०

६. प्रतिमा, अङ्क ३, पृ० ७४

वासवदत्तम्' में यौगन्धरायण सिद्ध वाक्यों का विश्वास कर ही वासवदत्ता के न्यास की योजना तैयार करता है और पद्मावती से उसका विवाह कराता है।[1]

तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना, शाप और दैवी विद्याओं के प्रति अटूट विश्वास था। मन्त्रवल या तन्त्रबल से व्यक्तियों के स्वेच्छानुसार अदृश्य और दृश्य हो जाने और सब कुछ जान लेने के उल्लेख भी मिलते हैं।[2] सांसारिक आधि-व्याधि के निराकरण के लिए रक्षासूत्र और रक्षा-करण्डक पहनने की प्रथा थी। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में राजमाता नागवन को गये हुए अपने पुत्र की जीवन-रक्षा के लिए समस्त बन्धुओं के हाथ से स्पर्श किया गया रक्षासूत्र भेजती है।[3] प्रतिमा नाटक में रावण अपनी माया से कांचनमृग की रचना कर राम को प्रवंचित करता है।[4] ऋषियों का शाप अमोघ माना जाता है। 'अवि-मारक' नाटक में चण्डभार्गव ऋषि के शाप से सौवीर राजपरिवार श्वपाकत्व को प्राप्त होता है।[5]

रोग और चिकित्सा

रोग दो प्रकार होते हैं—(१) मानसिक और (२) शारीरिक। मानसिक सन्ताप का कारण व्यक्ति की विशेष अवस्था या परिस्थिति होती है। शारीरिक रोग का कारण शरीरगत विकार या वात, पित्त, कफादि विकार हैं। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वातशोणित[6], शीर्षवेदना[7], और कुक्षिपरिवर्त्त[8] का

---

१. नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य, स्वप्नवासवदत्तम्, १।११
२. अविमारक, ४।१३
३. प्रतिज्ञा०, अङ्क १, पृ० १०
४. प्रतिमा, अङ्क ५, पृ० १४०-१४२
५. अविमारक, ६।६ वयस्यभावेन शापितः असि, यदि सत्यं न भणसि। स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क ४, पृ० ११६
स्वर्गंगतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः यदि सत्यं न ब्रूयाः। प्रतिमा, अङ्क ६ पृ०
६. यथा वातशोणितमथित इव वर्तते इति पश्यामि, स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क ४, पृ० ९९
७. भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता, वही, अङ्क ५, पृ० १८३
८. कोकिलानामक्षिपरिवर्त्त इव कुक्षिपरिवर्त्तः संवृत्तः।—:वही, अङ्क ४, पृ० १०२

उल्लेख आया है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे व्रण[1] एव अविमारक मे यक्ष्मा[2] का कथन मिलता है।

सामाजिक सुख-समृद्धि के लिए नीरोगता एव अनामयता अनिवार्य है। भास-युग मे रोगो को दूर करने के लिए औषध-विज्ञान एव चिकित्सा-शास्त्र वर्तमान था। समाज मे वैद्यो, भिषजो[3] एव चिकित्सको का आदरणीय स्थान था। स्वस्थ व्यक्ति के लिए समय पर भोजन और शयन आवश्यक थे। जिस व्यक्ति को समय पर भूख लगती थी और यथेष्ट निद्रा आती थी, वह व्यक्ति स्वस्थ माना जाता था। वातशोणित रोग का अर्थ वातरक्त व्याधि से है। इसे एक प्रकार से गठिया रोग मान सकते हैं। शीर्ष-वेदना उस युग का भयकर रोग था। इसका उपचार लेप या अनुलेपो का प्रयोग था। विभिन्न ओषधियो को एकत्र कर लेप तैयार किया जाता था।

कुक्षिपरिवर्त्त से तात्पर्य उदर विकार. से है। इसका उपचार उपवास के अतिरिक्त ओषधियो का प्रयोग भी था। व्रण-घाव, फोडा या अन्य किसी चोट आदि के अर्थ मे प्रयुक्त है। यक्ष्मा—क्षय रोग था, वह कठिन और असाध्य रोग था, इसको औषधि कोई निश्चित नही थी। भास के समय मे भिषज और वैद्य नाना प्रकार के रोगो की चिकित्सा करते थे।

इस प्रकार भास ने अपने समय की जीवन-पद्धति, समाज-व्यवस्था, लोक-जीवन, विश्वास एवं रोग-चिकित्सा आदि का चित्रण किया है।

शिक्षा, साहित्य और कला

शिक्षा समुदाय या व्यक्ति द्वारा परिचालित वह सामाजिक प्रक्रिया है, जो समाज को उसके द्वारा स्वीकृत मूल्यो और मान्यताओ की ओर अग्रसर करती है। सास्कृतिक विरासत की उपलब्धि एव जीवन मे ज्ञान का अर्जन शिक्षा द्वारा ही होता है। जीवन समस्याओ की खोज आध्यात्मिक तत्त्वों की छान-बीन एव मानसिक क्षुधा की तृप्ति के साधन, कला-कौशल का परिज्ञान शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। आचार और विचार का परिष्कार, उत्क्रान्ति एव शाश्वतिक सुख उपलब्धि का प्रधान साधन शिक्षा को ही माना गया है। शिक्षा वैयक्तिक जीवन के परिष्कार का कार्य तो करती है पर

---

१ क्रियतामस्य व्रणप्रतिकर्मेति, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क २, पृ० ६७

२ यक्ष्मार्ता इव पादपा, अविमारक, ४।४

३. किमाहुस्त वैद्या, न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः, प्रतिमा, ३।१

समाज को भी उन्नत बनाती हैं। डॉ० राधाकुमुद मुकुर्जी ने प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति की अलोचना करते हुए लिखा है—But education is delicate biological process of mental and moral growth, which cannot be achieved by mechanical process, the external apparatus and machinery of an organisation As is education, so in a more marked degree in the sphere of religion and spiritual life.[१]

शिक्षा का लक्ष्य आन्तरिक दैवी-शक्तियों की अभिव्यक्ति करना है। अन्तर्निहित श्रेष्ठतम उदात्त महनीय गुणों का विकास करना है तथा शरीर, मन और आत्मा को सबल बनाना है। त्याग, संयम, आचार-विचार और कर्तव्य-निष्ठा का बोध भी शिक्षा द्वारा प्राप्त होता है। सतत स्वाध्याय से ही व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियाँ प्रादुर्भूत हो जाती हैं। शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शुचिता, बौद्धिक प्रखरता, आध्यात्मिक दृष्टि, नैतिक बल, कर्मठता, एवं सहिष्णुता की प्राप्ति शिक्षा तथा स्वाध्याय द्वारा ही सम्भव है।

भास के युग में शिक्षा नगरों के बाहर अरण्यों में स्थित आश्रमों में दी जाती थी। उन दिनों में आश्रम विद्या के सर्वोत्कृष्ट केन्द्र थे। उनमें ज्ञान-विज्ञान की अजस्र धारा प्रवाहित होती थी। शान्त वातावरण में मनुष्य गुरुओं के सम्पर्क में रह कर ज्ञानर्जन करता था। आश्रमों के ऋषि और आचार्य अनेक विद्याओं और शास्त्रों में पारंगत होते थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में आया है कि ब्रह्मचारी लावाणक नाम के ग्राम में स्थित शिक्षा-केन्द्र में वेदों का विशेष अध्ययन करने के लिये जाता है। इससे स्पष्ट है कि उन दिनों में वत्स जनपद का लावाणक ग्राम वैदिक वाङ्मय के अध्ययन के लिए विशेष प्रसिद्ध था। इसी कारण मगध देश के शिक्षार्थी भी वेदाध्ययन के लिए लावाणक ग्राम में जाते थे।

आश्रमों के प्रधान अधिकारों को कुलपति कहा जाता था। समस्त आश्रम-वासी ऋषि उसकी आज्ञा उसी प्रकार शिरोधार्य करते थे जैसे परिवार के व्यक्ति अपने अभिभावक की। कुलपति आश्रम का अधिष्ठाता होता था। और इसके अधीनस्थ दस सहस्र छात्र शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करते थे।

'प्रतिमा' नाटक के सप्तम अङ्क में आया है कि राम जब रावण विजय कर

---

1. Ancient Indian Education by Dr. R. K. Mukerji, Motilal Benarsidas,

वापस हुए तो कुलपति ने राम का सत्कार करने के लिए ऋषियों को आदेश दिया। इस आश्रम में सभी प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था भी थी।[१] परम्परागत वैदिक आश्रमों के अतिरिक्त राजकीय शिक्षण संस्थाएँ भी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देती थी। राजकीय शिक्षालयों के आचार्यों को राजकोष से नियमित वेतन मिलता था। राज-परिवार के लिए राज-भवन में ही शिक्षा की व्यवस्था रहती थी। राजकुमारों को क्षात्र धर्म और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने के लिए आचार्य वहीं निवास करते थे और राजा की छत्र-छाया में ही निवास करते थे।[२]

'पञ्चरात्रम्' में द्रोणाचार्य इसी प्रकार के राजगुरु हैं। राजकन्याओं को विभिन्न कलाओं में निपुण बनाने के लिए आचार्य नियुक्त किए जाते थे। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में महासेन की महिषी अपनी पुत्री वासवदत्ता को वीणा-वादन सिखाने के लिए एक आचार्य रखना चाहती है।[३]

शिक्षा के क्षेत्र में गुरु या शिक्षक का महत्त्व अत्यधिक था। समाज ने उसे उच्च एवं विशिष्ट पद प्रदान कर रखा था। उसे समाज में सर्वोत्कृष्ट एवं पूज्यतम माना जाता था। राज-राजेश्वर तक उसका समान आदर करते थे। 'पञ्चरात्रम्' में यज्ञ की समाप्ति पर गुरुजनों का अभिनन्दन करते समय दुर्योधन सर्वप्रथम आचार्य द्रोण को प्रणाम करता है।[४]

शिष्य के चारित्रिक विकास के लिए गुरु का व्यक्तित्व बहुत महत्त्वपूर्ण था। आदर्श आचार्य ही शिष्य के भावी जीवन को आदर्श बना पाता था। विद्यार्थी विद्या समाप्त करने पर गुरु को अभीष्ट दक्षिणा देते थे। यज्ञादि धार्मिक समारोहों के समापन पर भी यज्ञकर्त्ता-गुरु को दक्षिणा दी जाती थी। 'पञ्चरात्रम्' में दुर्योधन यज्ञावसान पर आचार्य द्रोण को दक्षिणा स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है।[५]

छात्र-जीवन में संयमित जीवन-यापन करना, अनुशासन का आचरण

---

१. कुलपतिर्विज्ञापयति, स्वप्नवासवदत्तम्, सप्तम अंक, पृ० १६८
२ भो आचार्य ? धर्मे धनुषि चाचार्य, पञ्चरात्रम्, अङ्क १, पृ० २४ तथा ३०
३ आचार्यमिच्छामीति । राजा-उपस्थित विवाहकालाया, किमिदानी-माचार्येण, प्रतिज्ञा०, अङ्क २, पृ० ५३
४. पञ्चरात्रम्, अङ्क १, पृ० १६
५ वही, अङ्क १, पृ० २४

करना, कठोर श्रम द्वारा विद्या अर्जन करना, इन्द्रिय-निग्रह करना एवं दैनिक अनुष्ठानादि सम्पन्न करना आवश्यक समझा जाता था। विद्या को तप के समान अर्जित करना पड़ता था। विद्या समाप्तिपर्यन्त, उसके लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य था।

बालक के विद्यारम्भ की अवस्था शैशवास्था ही होती थी। माता-पिता अपने बालकों को विद्या-प्राप्ति के निमित्त बाल्यावस्था में ही गुरुजनों के हाथ में समर्पित कर देते थे।[१] विद्यार्थियों के विद्याध्ययन का परिसमाप्ति-काल निश्चित नहीं था। उसका दीक्षा-काल उसकी योग्यता पर निर्भर करता था। क्षत्रिय बालक जब कवच धारण करने योग्य हो जाता था, तभी विद्याध्ययन समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था।

शिक्षा के लिए पाठ्य-विषय

भास के नाटकों में गान्धर्व-विद्या, चौर्य-विद्या, संवाहन-कला, धनुर्वेद, सांगोपांग वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योग-शास्त्र, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, मेधा-तिथि का न्याय-शास्त्र, प्राचेतस श्राद्ध, कल्प, इतिहास, वेदान्त, कथा, नाट्य-कला, ज्योतिष-शास्त्र, प्रभृति विषयों की शिक्षा दी जाती थी। अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा भी राजकुमारों के लिए आवश्यक मानी जाती थी।[२] इस प्रकार नाटककार भास ने शिक्षा और साहित्य का निर्देश किया है।

कला

कला का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कला जीवन की पूरक है और जीवन कला का पूरक है। कला जीवनमय है और जीवन कलामय है। कला जीवन में लालित्य को जन्म देती है और वह स्वयं जीवन से प्रेरणा एवं चेतना ग्रहण करती है। अतएव नाटककार भास के समय में उपयोगी और ललित इन दोनों ही प्रकार की कलाओं का प्रचार था।

संगीत कला

ललित कलाओं में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह देव-विद्या होने के कारण, गान्धर्व विद्या या गान्धर्व वेद की अभिधा से विभूषित है।[३]

---

१. पञ्चरात्रम्, अङ्क १, पृ० १९

२. सांगोपांगं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधाऽतिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च, प्रतिमा०, अङ्क ५, पृ० १३४

३. दर्पयत्येनं दायाद्यागतो गान्धर्ववेदः, प्रतिज्ञा०, अङ्क २, पृ० ६३

संगीत के तीन मुख्य भेद हैं—(१) गीत, (२) वाद्य और (३) नृत्य। भास के नाटकों में गीत का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। स्वर-संक्रम, मूर्च्छना, लय आदि का संयोजन भी पाया जाता है। 'पञ्चरात्रम्' में राजा विराट के जन्म-दिन के उत्सव पर स्त्री-पुरुष गाते और नाचते हैं।[१] 'अविमारक' में संगीत-चर्चा सुन्दर रूप में आयी है। अविमारक मध्य रात्रि में जब कुन्तिभोज की नगरी में प्रवेश करता है, तो उसे गीत-ध्वनि सुनाई पड़ती है। वह कहता है कि वह कौन सुखी पुरुष है, जो अपनी प्रिया के साथ गीत का आनन्द ले रहा है? यह व्यक्ति स्वयं वीणा बजा रहा है। मकान ऊँचा है, खिड़कियाँ बन्द हैं। प्रतिध्वनि के साथ वीणा का स्वर सुनाई पड़ रहा है। उस वीणा-ध्वनि में तार, मन्द्रत्व आदि ध्वनियाँ स्पष्ट हो रही हैं।[२] इसी नाटक में गीत का अंकन करते हुए तान, लय, नाद आदि का भी कथन आया है।

तानस्तु मन्दो विशदप्रवृत्तो
जातश्च नादो मुखनासिकेन।
स्थूलोऽपि हेतुं करतालनादः
सञ्जायते सद्व्यरवनेन ॥[३]

स्पष्ट है कि इस गीत में शास्त्रीय संगीत के नियमों का निर्वाह किया गया है। गीत की ध्वनि मधुर, भावमय एवं कोमल है। स्वर-परम्परा, वर्णों के आरोह-अवरोह एवं ललित राग का पूरा ध्यान रखा गया है।

प्राचीन नाट्यशास्त्रियों ने वाद्य-यन्त्रों के आकार के आधार पर चार भेद किये हैं—(१) तत, (२) सुषिर, (३) अवनद्ध और (४) घन। तन्त्री वाद्य को तत वाद्य कहते हैं। छिद्रों में फूँक मारने से ध्वनित होने वाले अर्थात् रन्ध्रमय वाद्यों का नाम सुषिर है। चमड़े से मढ़े हुए वादन अवनद्ध कहलाते हैं। कांस्य आदि धातुओं से निर्मित वाद्य घन है। इस वर्ग के अन्तर्गत वीणा नामक वाद्य समाविष्ट है। नाटककार भास को यह वाद्य बहुत ही प्रिय है। वीणा-वादन स्वान्तः सुखाय और परहिताय दोनों रूपों में उपयोगी था। यह वाद्य

---

१. सुष्ठु गीतम्, पञ्चरात्रम्, अङ्क २, पृ० ५४

२. अये गान्धर्वध्वनिरिव श्रूयते। को नु खल्वयं सर्वकालसुखी पुरुषः कान्तया सह गान्धर्वमनुभवति। व्यक्तं स्वयं वीणां वादयति, अविमारक, अङ्क ३, पृ० ६७

३. अविमारकम्, ३।६

उत्कंठितों का मनोनुकूल मित्र, विरहातुर जनों की प्रेयसी और प्रेमियों के रागवर्द्धन का हेतु बताया गया है। 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और अविमारक में वीणा का निर्देश आया है। यौगन्धरायण वासवदत्ता को वीणा-वादन सिखलाता है और इसी संगीत के आचार्यत्व से उसका प्रेम वासवदत्ता से हो जाता है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में बताया गया है कि वासवदत्ता वैतालिका सेवीणा की शिक्षा लेने के लिए जाती है।[1] वीणा-वादन से उदयन मदोन्मत्त हाथियों को वश में कर लेता था। बताया गया है कि वीणा की मधुर झंकार से मन्त्र-विद्या के सदृश मदमत्त हाथियों के हृदयों को भी वशीभूत किया जा सकता है। यह कान को अत्यन्त सुख देने वाली तथा भाव-विभोर करने वाली बतायी गयी है।[2] सुषिर वाद्यों में शंख, शृंग और वंशी के समस्त प्रकार आते हैं। विवेच्य नाटकों में शंख, दुन्दुभि, वेणु आदि के नाम आये हैं। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' नाटक में यौगन्धरायण अपनी व्यवस्था की चर्चा करता हुआ कहता है कि उन्मत्त गण को और अधिक उन्मत्त करने के लिए शंख, तूर्य आदि वाद्यों की व्यवस्था कर दी गयी है।[3] शंख वस्तुतः सुषिर वाद्य है, यह मांगलिक माना गया है। उत्सवों तथा धार्मिक अनुष्ठानों में इसका उपयोग किया जाता था। देवालयों में देवपूजन के समय और रणांगण में उत्साह-वर्द्धन के लिए इसको फूंका जाता था। इसका निर्घोष इतना गम्भीर होता था कि उससे हाथियों तक का चित्त उद्भ्रमित हो जाता था।[4]

अनवद्य वाद्य के अन्तर्गत मुरज, पुष्कर, मृदंग, पणव, पटह डिम्डिम, दुन्दुभि, करटेक आदि का उल्लेख आया है। मुरज, पुष्कर एवं मृदंग नृत्य के अवसरों पर पदों की द्रुतगति के लिए बजाये जाते थे। पटह का उपयोग राज्याभिषेक देवार्चन आदि धार्मिक कृत्यों के साथ युद्धादि के अवसर पर किया जाता था। दुन्दुभि को रणवाद्य माना गया है। प्रतिमा नाटक के सप्तम अङ्क में दुन्दुभि का उल्लेख आया है। 'दूतवाक्यम्' में पटह, शंख आदि वाद्यों के

---

१. उत्तराया वैतालिक्याः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क २, पृ० ५२
२. श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतन्त्री। ऋषि-वचनगतेव मन्त्रविद्या गजहृदयानि बलाद्वशीकरोति, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, २।१२
३. वही, अङ्क ३, पृ० ६१
४. वही, अङ्क ३, पृ० ६१

बजने का निर्देश किया गया है।[1] घन वाद्य के अन्तर्गत 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' मे घटा का कथन आया है।[2]

नृत्य

नृत्य सगीत का एक अविभाज्य अग है। यह सगीत का जीवन रूप है। नृत्य से सगीत मे चेतना और स्पन्दन का सचार होता है। नृत्य के बिना सगीत चेतनहीन और जड माना जाता है। नृत्य के मुख्यत दो प्रकार हैं—(१) लोक-नृत्य और (२) शास्त्रीय नृत्य। लोक-नृत्य शास्त्रीय नियमो और रीतियो से निर्मुक्त रहता है। इसमे मानव-समाज की आदिम मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ, उनके हर्ष-उल्लास, शोक-विषाद, प्रेम-ईर्ष्या, भय-आशका, घृणा-ग्लानि, आश्चर्य-विस्मय आदि भाव सरल एव विशुद्ध रूप मे प्रकाशित होते हैं। शास्त्रीय नृत्य मे नृत्य-शास्त्र के कठोर नियमो का पालन किया जाता है। इसमें आगिक, वाचिक आदि अभिनय एक नियत शैली या पद्धति पर आधृत होते हैं।

भास के नाटको मे लोकनृत्य के रूप मे हल्लीसक नृत्य का उल्लेख आया है। हल्लीसक नृत्य रास-नृत्य का ही एक रूप था। धार्मिक या सामाजिक लोकोत्सवो और मेलो मे सुसज्जित नर-नारी सम्मिलित हो कर आनन्द मे झूमते हुए नगाडो की ताल पर इस नृत्य का प्रदर्शन करते थे। 'बालचरितम्' मे रंग-बिरगे वस्त्रो से विभूषित गोप-कन्याएँ श्रीकृष्ण के साथ हल्लीसक नृत्य करती हैं।[3] शकर ने मण्डली-नृत्य को हल्लीसक कहा है, जिसमे एक पुरुष नेता के रूप में स्त्री-मण्डली के बीच मे नाचता है। इसे ही भोज के सरस्वती कण्ठाभरण मे हल्लीसक नृत्य कहा गया है। हल्लीसक नृत्य कृष्ण-रास-नृत्य से जुडा हुआ था।

भास के 'बालचरितम्' से यह भी ज्ञात होता है कि गोपजन इन्द्र यज्ञ नामक लोकोत्सव पर अपने अन्तस् के आह्लाद को व्यक्त करने के लिए हल्लीसक नृत्य का आयोजन करते थे। राज्याभिषेक के अवसर पर भी ऐसा ही आयोजन किया जाता था।

---

१ सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादै:, दूतवाक्यम्, अङ्क १, पृ० ६

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क ४, पृ० १०७

३. घोषवासस्यानुरूपोऽयं हल्लीसकनृत्यबन्ध उपयुज्यताम्, बालचरितम्, ३।२, पृ० ५६

चित्रकला

संगीत-कला के समान चित्रकला भी आन्तरिक अभिव्यक्ति का सुन्दर माध्यम है। जिस प्रकार काव्य कल्पना-प्रधान है, उसी प्रकार चित्रकला भी। चित्रकार अपने चित्रों में अपने अमूर्त्त भावों को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। अव्यक्त को अभिव्यक्ति प्रदान करता है और अरूप को रूपवान् बनाता है। संक्षेप में, चित्र-रचना कलाकार के मानसिक भावों की सजीव सृष्टि या प्रतिमा है। भास के युग में चित्रकला का पूर्ण प्रचार था। राजभवनों और सार्वजनिक स्थलों में चित्रशालाएँ भी रहती थीं। चित्रकला के आधारों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(१) विषयि-गत और (२) विषयगत। चित्रकार बड़ी ही तन्मयता से चित्र में अपने भावों की मनोरम अभिव्यक्ति करता है। भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में चित्र-फलक का कथन आया है। इसी प्रकार 'दूतवाक्यम्' में चित्रपट या चित्र-फलक का उल्लेख मिलता है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में बताया गया है—'तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम् इति'।[1] स्पष्ट है कि चित्रफलक का उल्लेख भास ने विशेष आशय से किया है। भास के समय में इस कला का अनुशीलन कला या साधना की दृष्टि से कम और जीविका या व्यवसाय की दृष्टि से अधिक किया गया था। 'दूतवाक्यम्' में द्रौपदी के केशाकर्षण के चित्र का उल्लेख आया है, यह चित्र भी किसी व्यावसायिक शिल्पी द्वारा निर्मित रहा होगा। स्वयं दुर्योधन या उसके अन्य भाई ने इसे नहीं बनाया होगा।[2] अतएव यह स्पष्ट है कि भास के युग में चित्रकला की पर्याप्त उन्नति नहीं हुई थी और न सर्वसाधारण में इसका प्रचार ही था।

मूर्तिकला

भास के युग में साहित्य, संगीत आदि कलाओं के समान मूर्ति कला भी उन्नत अवस्था में थी। तत्कालीन शिल्पकार नाना प्रकार की आकृतियों और प्रतिमाओं का निर्माण करने में अत्यन्त निपुण थे। प्रतिमा नाटक में प्रतिमा-गृह का कथन आया है। प्रतापी राजाओं और मनस्वी पुरुषों की मृत्यु के पश्चात् उनकी स्मृति में उनकी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की जाती थी। ये

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क ४, पृ० १२६

२. अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः, दूतवाक्यम् अङ्क १, पृ० १६

प्रतिमाएँ मृत व्यक्तियों की स्मारक होती थीं और उनके श्लाघनीय एवं जीवन्त कृत्यो की गाथा को पुनर्जीवित रखती थीं। कला की दृष्टि से प्रतिमा नाटक में वर्णित इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की प्रतिमाएँ अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण[1] हैं। अत. स्पष्ट है कि मृत्तिका, पाषाण एवं काष्ठ इन तीनो से मूर्तियों का निर्माण कराया जाता था।

वास्तु-कला

भास के नाटको मे वास्तुकला का पूर्णतया निर्देश आया है। राजप्रासाद, देवायतन, यन्त्रचालित धारागृह, प्रपागृह, कूप, तडाग आदि के व्यवस्थित वर्णन विद्यमान हैं जिससे स्थापत्य-कला पर पूर्ण प्रकाश पडता है। हम आवास-प्रसंग मे इस कला का विवेचन कर चुके हैं।

आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन

भास का समाज आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से समृद्ध प्रतीत होता है। दारिद्र्य का उदाहरण चारुदत्त है, पर यह अपने पुण्य कृत्यो और उदारता के कारण ही दारिद्र्य अवस्था को प्राप्त हुआ है। सामान्यतः जनता कला-कुशल एवं व्यवसाय निरत थी। राजकीय कोष सम्पन्न था। देश में श्रेष्ठी लोगो का अस्तित्व धन-संग्रह की पद्धति की सूचना देता है। भौतिक विलास की प्राय. सभी सामग्रियाँ प्राप्त थीं।

भारत कृषि-प्रधान देश है। अतएव यहाँ के लोग अधिकाशतः कृषि पर ही निर्भर रहते हैं। कृषि के साथ व्यवसाय भी समृद्ध था। यहाँ की वस्तुएँ दूसरे जनपदो मे बिक्री के लिए जाती थीं। देशवासियों के जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन सदा से कृषि-उत्पादन की पूरी व्यवस्था थी। बीज, भूमि और सिंचाई का प्रबन्ध था। ऊसर भूमि को प्राय· छोड दिया जाता था। कृषि के उत्पादनों मे पक्वशालि, तिल, इक्षु, आदि प्रधान थे।

कृषि के पश्चात व्यवसाय का स्थान आता है। चारुदत्त में 'श्रेष्ठि चत्वरे'[2] का प्रयोग मिलता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि व्यापारियो का समुदाय मुहल्लो या टोलों में रहता था। युवा व्यापारी देशान्तरों मे व्यापार

---

१. प्रतिमा नाटक का सम्पूर्ण तृतीय अङ्क।

२ चारुदत्त, अङ्क ४, पृ० १११

करने जाते थे और अपने वैभव का प्रसार करते थे। देशीय व्यापार के साथ-साथ वैदेशिक व्यापार भी प्रचलित थे। चीन, कम्बोज आदि देशों से तत्कालीन भारत का सम्बन्ध था। चीन से चीनांशुक और कम्बोज से उत्तम घोड़ों का आयात होता था।[1]

क्रय-विक्रय के साधन

मुद्राएँ विनिमय के काम में आती थीं। उस समय सिक्कों का प्रचलन था। भास ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में सिक्के के लिए सुवर्ण शब्द का प्रयोग किया है।[2] यह सोने का सिक्का होता था। राधा कुमुद मुकुर्जी के अनुसार सुवर्ण एक सोने का सिक्का था, जिसका तौल अस्सी रत्ती था। चारुदत्त में सिक्के के लिए 'मापक' का प्रयोग किया गया है।[3] माषक भी उस समय की प्रचलित मुद्रा-विशेष है। अन्य उद्योगों में गोपालन भी सम्मिलित था। गोपालन की प्रथा सामान्य जनता की तो बात ही क्या, राजा-महाराजाओं में भी प्रचलित थी। इसका प्रमाण 'पञ्चरात्रम्' है।[4]

अन्य उद्योगों में संवाहक, घोषकला, सूतकार्य, उद्यानपालन, अध्यापन, ज्यौतिष, पौरोहित्य, वैद्यक आदि थे।[5]

राजनैतिक विचार

भास के नाटकों में राजकीय शासन-व्यवस्था, न्याय एवं दण्ड विधान, युद्ध एवं सैन्य-व्यवस्था पर राष्ट्रनीति आदि विषयों की जानकारी होती है। राजकीय प्रशासन का मूल शान्ति और सुरक्षा में निहित था। राजा दण्ड-विधानानुसार दुष्टों और अपराधियों को दण्ड दे कर तथा प्रजा के पारस्परिक विवादों को शान्त कर राज्य में शान्ति स्थापित करता था। राज्य के सम्बन्ध

---

१. सकलनृपतिमान्यं मान्यकम्बोजजातम्।
सपदिबहुसहस्रं वाजिनां ते ददामि॥ कर्णभारम्, १।१९

२. सुवर्णशतप्रदानेन, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १, पृ० १७

३. दक्षिणामापकाभविष्यन्ति, चारुदत्त, अङ्क १, पृ० २

४. गावो मेऽहीनवत्सा भवन्तु........नगरोपवनवीथ्यामागन्तुं गोधनं सर्वं च कृतमंगलामोदा गोपदारका दारिकाश्च, पञ्चरात्रम्, अङ्क २ पृ० ५१

५. बालचरित, अङ्क २, पृ० ३०, अङ्क १, पृ० ११, चारुदत्तम्, पृ० ६०

मे राजा कुन्तिभोज कहता है—'राजा को पहले धर्मनीति का विचार करना होता है, पश्चात् अपनी बुद्धि से मन्त्रियो की गति-विधि देखनी पडती है। राग-द्वेष को छिपाना पडता है। सरलता तथा कठोरता का यथासमय पालन करना होता है, गुप्तचर रखने पडते हैं, प्रजा की और अपनी रक्षा करनी पडती है और युद्ध के लिए सदा तैयार रहना होता है—

धर्म. प्रागेव चिन्त्य सचिवमतिगति प्रेक्षितव्या स्वबुद्धया ।
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ
ज्ञेय लोकानुवृत्त परचरनयनैर्मण्डल प्रेक्षितव्य
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुन सोऽपि नावेक्षितव्य. ॥[१]

अमात्यो का कार्य भी महत्त्वपूर्ण होता था। अमात्य ही राजा का उद्धार करते थे और उनके बुद्धिप्रभाव से ही राज्य का सचालन होता था। उदयन के पकड़े जाने पर यौगन्धरायण कहता है—'अद्य प्रभृति वत्सराजसचिवाना प्रतिष्ठितमसामर्थ्यमयशश्च । इदानीमनुत्पन्नकार्यपण्डितो रुमण्वान् क्व गतः।'[२]

इससे व्यञ्जित होता है कि मन्त्रियो की योग्यता ही राज्य के सचालन मे सहायक होती थी। मन्त्री प्रत्युत्पन्नमति और कार्य-कुशल होते थे। राजा की अपेक्षा मन्त्रियो का बुद्धिवैभव विशेष रूप से राज्य-सचालन मे सहायक होता था। योजनाएँ तैयार कराना और उनका कार्यान्वयन करना भी मन्त्री का दायित्व था। कौञ्जायन मन्त्रि-पद की गुरुता पर प्रकाश डालता हुआ कहता है—

प्रसिद्धौ कार्याणा प्रवदति जन. पार्थिवबलं
विपत्तौ विस्पष्ट सचिवमतिदोष जनयति
आमात्या इत्युक्ता. श्रुतिसुखमुदार नृपतिभि.
सुसूक्ष्म दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धा· कुपुरुषाः ॥[३]

कार्य की सिद्धि होने पर राजा के बल की प्रशसा की जाती है। यद्यपि

---

१. अविमारक, १।१२
२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १, पृ० १३
३. अविमारक, १।५

अमात्य का इस कार्यसिद्धि में पूरा योगदान रहता है। जब किसी कारणवश कार्य असफल हो जाता है तो मन्त्री की बुद्धि को दोष दिया जाता है। राजा लोग मन्त्री को अमात्य इस मधुर शब्द से सम्बोधित कर अति सूक्ष्म दण्ड ही दिया करते हैं। वस्तुतः अमात्य का शाब्दिक अर्थ बुद्धिबल से विदग्ध अथवा बुद्धिबल से वंचित पुरुष किया जा सकता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'अमात्यक्त' से है। इसका अर्थ अनुयायी, सहचर या सचिव है। कौञ्जायन के इस कथन से भास के युग में अमात्यों का महत्त्व ही व्यञ्जित होता है। राज्य की समस्त व्यवस्थाएँ अमात्य के ही हाथ में रहती थीं।

दूत और गुप्तचर-व्यवस्था

नाटककार भास ने अपने नाटकों में गुप्तचर और दूत-व्यवस्था पर सुन्दर प्रकाश डाला है। विभिन्न देशों के राजा अपने राज्य की सुरक्षा एवं आन्तरिक सुव्यवस्था-हेतु गुप्तचरों की योजना करते थे। इतना ही नहीं गुप्तचरों से राजनीति एवं शासन-प्रबन्ध के संचालन में भी सहायता प्राप्त होती थी। गुप्तचरों को एक विशेष प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिससे वे शत्रु-पक्ष के पुरुषों की मुखाकृति, बोल-चाल, कण्ठ, तालु और मूर्धा के उच्चारण से ही उनकी गति-विधियों को ज्ञात कर लेते थे। प्रतिमा नाटक में रावण के गुप्तचर राम की सेना का भेद जानने के लिए आते हैं। सुग्रीव ने सुवेल गिरि पर पहुँचते ही रामचन्द्र जी को गुप्तचर की नियुक्ति के लिए सावधान कर दिया था। हनुमान् ने लंका में प्रवेश करते ही गुप्तचरों को संन्यासी, जटाधारी तथा अन्य वेश-भूषा में आते हुए देखा था।

अविमारक नाटक से गुप्तचर-व्यवस्था पर बहुत ही सुन्दर प्रकाश पड़ता है। गुप्तचरों को रात्रिचर भी कहा गया है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' नाटक में यौगन्धरायण को राजा उदयन के कृत्रिम हाथी द्वारा पकड़े जाने के समाचार का ज्ञान गुप्तचरों द्वारा ही होता था[1], जिसके कारण वह हंसक को राजा के समीप भेजना चाहता था। अविमारक नाटक में अविमारक की तलाश करने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति का वर्णन आया है।[2] स्पष्ट है कि गुप्तचरों की व्यवस्था भास के युग में विद्यमान थी।

---

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १, पृ० ५ से १४ तक

२. गम्यास्तु देशाः सुपरीक्षिता मे न दृश्यते क्वापि चरैः कुमारः, ।
अविमारक, ६।१०

दूत-व्यवस्था का भी भास ने उल्लेख किया है। 'दूतवाक्यम्' मे श्रीकृष्ण दूत बन कर पाण्डवो का सन्देश ले कौरवो को सैन्य-शिविर मे पहुँचते हैं। 'दूतघटोत्कचम्' नाटक मे आया है कि घटोत्कच श्रीकृष्ण का सन्देश ले कर दुर्योधन की राज-सभा में पहुँचता है। प्रतिमा नाटक में हनुमान भी अपने को राम का दूत कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि भास के समय में दूत-व्यवस्था राज-नीतिक कारणों से अत्यावश्यक मानी गयी है।

सेना, सैन्य-व्यवस्था एवं सैन्य-सज्जा

शत्रुओ से राज्य की रक्षा के हेतु राजा के पास अक्षौहिणी सेना होती थी। राजा अपनी विशाल सेना के बल पर ही अपने शत्रुओ को पराभूत करता था।[१] 'स्वप्नवासवदत्तम्' में राजा प्रद्योत सेना के विस्तार के कारण ही महासेन कहलाता था।[२] राजा को विजय-प्राप्ति का आधार विशाल वाहिनी ही नही थी, अपितु सैनिकों की रक्षा के प्रति अनन्य निष्ठा एवं भक्ति भी थी। राजभक्ति से विरहित सेना निरर्थक समझो जाती थी।[३]

सेना चतुरंगिनी होती थी। गज-सेना, अश्व-सेना, रथी और पदाति—ये चार अंग थे।[४] गज भारतीय सेना के मुख्य स्तम्भ थे और राज्याधिकारी या राजा स्वयं इन्हें वनों से पकड़ कर लाते थे। कतिपय वन तो हाथियो के प्राचुर्य के कारण ही नागवन कहलाते थे।[५] अश्व भी गज के समान ही उप-योगी थे। कम्बोज देश के द्रुतगामी अश्व युद्ध की दृष्टि से उत्कृष्ट समझे जाते थे।[६] अश्व-सेना अश्वारोहणीय[७] कहलाती थी। रथ भी समर-साधन के रूप में प्रयुक्त होते थे।[८] सेना मे पदाति सैनिकों की संख्या सबसे अधिक होती थी। सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण सेना को छोटे-छोटे समूहों में विभक्त कर

---

१. दूतवाक्यम्, अङ्क १, पृ० ६
२. स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क २, पृ० ६९, ७०
३. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १।४
४. तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि,।
स्वप्नवासवदत्तम्, अङ्क ५, पृ० २०२
५. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १, पृ० ७
६. कर्णभारम्, १।१९
७. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अङ्क १, पृ० १३
८. पञ्चरात्रम्, २।१३

दिया जाता था और सैनिकों की गणना के लिए एक पुस्तक या सूची बना दी जाती थी। सेना का अधिपति सेनापति या बलाध्यक्ष कहलाता था। वह सेना में सैनिकों की नियुक्ति करता था और समराभियान के लिए सैनिकों को तैयार करता था। अभिषेक नाटक में आया है—'क्रमान्निवेश्यमानासु सेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात् कुतश्चिदप्यविज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौ गृहीतौ। वयं न जानीमः कर्तव्यम्।'[1]

इसी नाटक में बलाध्यक्ष का भी निर्देश आया है।[2] युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने वाले योद्धाओं को सैनिक सम्मान प्राप्त होता था। उनके रण-कौशल वीरकृत्य पुस्तक में अंकित किये जाते थे।[3] युद्ध में आहत वीरों की वेदना के विचारणार्थ उनको समुचित सम्मान एवं पुरस्कार प्रदान किया जाता था।[4]

अस्त्र-शस्त्र की व्यवस्था के लिए आयुधागार[5] और शस्त्र[6] शालाओं की व्यवस्था थी। विभिन्न आयुधों के नाम 'कर्णभारम्', 'दूतवाक्यम्' और 'ऊरुभंग' में आये हैं। सैनिक वेश-भूषा में 'कर्णभारम्' में समरपरिच्छद[7] कहा गया है। नर्म[8] (कवच), गोधा[9] (व्याघात वारण), अंगुलित्राण[10], छत्र[11] और शस्त्रास्त्र[12] और समरवेश के अन्तर्गत थे। शस्त्रास्त्रों में धनुष[13], बाण, तलवार[14], चर्म[15] (ढाल), तोमर[16], कुन्त[17], शक्ति[18], प्रास[19], परशु[20], भिण्डीपाल[21], शूल[22], मूसल[23], मुद्गर[24], वराहकर्ण[25], कणय[26], हल[27], शंकु[28], त्रासि[29], गदा, कुलिश[30], आदि प्रमुख थे।

धर्म दर्शन

भास ने अपने युग से सम्बद्ध ब्राह्मण-धर्म की चर्चा की है। वेदों और

१. अभिषेक नाटकम्, अङ्क ४, पृ० ८२
२. वही, अङ्क ४, पृ० ६७
३. दृष्टपरिस्पन्दानां योधपुरुषाणां कर्माणि पुस्तकमारोपयति कुमारः। पञ्चरात्रम्, अङ्क २, पृ० ७९
४. वही, २।२८
५. उरुभंगम्, १।८
६. दूतवाक्यम्, १।१५
७. कर्णभारम्, अङ्क १, पृ० ४
८. १२. पञ्चरात्रम्, अङ्क २, पृ० ५५
१३. ३०. ऊरुभंगम्, अङ्क १।१२ तथा १।१४, १५

शास्त्रों में जनता का अटल विश्वास था। जीवन के क्रिया-कलापों में शास्त्र-वचन प्रमाण माने जाते थे।[1] वैदिक कर्मकाण्ड की प्रधानता एवं यज्ञादिक को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। सर्वसाधारण में धार्मिक क्रियाओं और यज्ञ विधानों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। यज्ञानुष्ठान ही इस पृथ्वी पर स्वर्ग-साधन के सोपान माने जाते थे। 'पञ्चरात्रम्' में दुर्योधन यज्ञरूप धर्मकृत्य करने से इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग-सुख का अनुभव करता है। यज्ञ-क्रियाओं में दया दाक्षिण्यादि गुणों को समाहित माना जाता था और उनसे मानव के समस्त कल्मष धुल जाते थे। उस युग में गृहस्थ की दिनचर्या में यज्ञों का महत्त्व था। चारुदत्त का नित्य गृहस्थोचित देवपूजन, देव-बलि-अर्पण एवं सन्ध्या जपादि धर्माचरण उसकी धर्मनिष्ठा के द्योतक हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण, कार्तिकेय आदि देवताओं को विशेष महत्त्व प्राप्त था। 'बालचरितम्' में वैष्णव धर्म की झलक मिलती है। उसमें बताया गया है कि विष्णु पृथ्वी पर धर्म के संस्थापन और अधर्मियों के विनाश के लिए अवतार ग्रहण करते हैं। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में बलराम की भुजाओं से रक्षा के लिए निवेदन किया गया है। भास शैव धर्म की अपेक्षा वैष्णव धर्म की ओर विशेष आकृष्ट हैं।[2] कुछ आलोचकों ने इन्हें पञ्चरात्र धर्म का अनुयायी बताया है और इन पर पूर्णतः पञ्चरात्र का प्रभाव सिद्ध किया है। श्री जगदीशदत्त दीक्षित का अभिमत है—'भास पञ्चरात्र परम्परा से इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने 'पञ्चरात्रम' नामक नाटक की रचना की। पञ्चरात्रधर्म भागवत सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही आता है।[3]

भास के अध्ययन से इतना तो स्पष्ट है कि इन्होंने अपने 'पञ्चरात्रम्' नाटक में भगवान् के पाँचों आयुधों का विशिष्ट वर्णन किया है। ये पञ्च आयुध अंश रूप में ऋषियों की तपस्या के प्रतिनिधि हैं। आयुध निर्जीव है, किन्तु उनमें सजीवता का सन्निवेश पञ्चरात्रधर्म की उत्पत्ति का सूचक है। आयुधों के आने का वर्णन सजीव पात्र के रूप में किया गया है। 'दूतवाक्यम्' में भी भगवान् श्रीकृष्ण के सुदर्शनचक्र, शार्ङ्ग, कौमोदकी और पाञ्चजन्य के

---

१. अविमारक, अङ्क २, पृ० ५१
२. इह तु जगति नूनं रक्षणार्थं प्रजानामसुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः।
बालचरितम्, १।९
३. भास की भाषा सम्बन्धी तथा नाटकीय विशेषताएँ, आर्य बुक डिपो, १० नाईवाला, करोल बाग, नयी दिल्ली ५, प्रथम संस्करण, पृ० २३५

आने और वार्त्तालाप करने का निर्देश आया है। इसी प्रकार 'बालचरितम्' नाटक के द्वितीय अङ्क में कात्यायनी के परिवार में कुण्डोदर, शूल, नील और मनोजव का वार्तालाप भी प्राप्त होता है। पञ्चरात्रधर्म से प्रभावित हो कर ही भास ने शाप जैसी निर्जीव वस्तु को भी सजीव पुरुष की भाँति कंस से वार्तालाप करते हुए चित्रित किया है। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भास पञ्चरात्रधर्म से प्रभावित हैं। इस धर्म का अस्तित्व लोकमान्य तिलक के अनुसार ई० पू० ६०० में विद्यमान था। भागवत सम्प्रदाय के रूप में भी यह विद्यमान रहा है।

यज्ञों में अग्निष्टोम, इन्द्रयज्ञ आदि प्रमुख रूप में उल्लिखित हैं। इस प्रकार भास ने अपने नाटकों में समाज और संस्कृति का चित्रण कर जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा की है।

● ●

उपसंहार एवं निष्कर्ष

उपसंहार एवं निष्कर्ष

भास का जन्मस्थान मगध और उज्जयिनी में से उज्जयिनी ही अधिक सम्भव है। उज्जयिनी की जिन भौगोलिक सूक्ष्म विशेषताओं का भास ने निरूपण किया है, उनका यथार्थ रूप से तब तक चित्रण सम्भव नहीं है, जब तक नाट्य-कार ने वहाँ की भूमि में क्रीडा न की हो। उज्जयिनी के विभिन्न स्थानों का सजीव चित्रण ही उन्हें वहाँ का निवासी सिद्ध करता है। हाँ, इस सत्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भास ने कुछ काल तक मगध की राज-धानी राजगृह में निवास किया हो। चारुदत्त नाटक में प्रदिपादित उनका संवाहक पाटलिपुत्र का निवासी है। वह उज्जयिनी की समृद्धि से आकृष्ट हो कर ही पाटलिपुत्र से वहाँ गया था। मगध के रीति-रिवाजों का सजीव चित्रण ही उन्हें वहाँ का प्रवासी अवश्य सिद्ध करता है। भास की प्राकृत भाषा में पूरबी बोली का पुट भी उन्हें मगध से सम्बद्ध सिद्ध करता है।

भास के समय के सम्बन्ध में अभी तक तीन मान्यताएँ प्रमुख रूप से प्रचलित हैं—

१—पूर्व मौर्यकाल

२ —मौर्यकाल

३—अश्वघोष और कालिदास का मध्यवर्ती काल।

इन तीनों मान्यताओं में से भास का समय मेरी दृष्टि से मौर्यकाल है। यतः मौर्यकालीन संस्कृति, जीवन-पद्धति और जीवन-मूल्यों का समावेश इनकी रचनाओं में पाया जाता है। इन्होंने लोक-परम्परा के प्रतिनिधित्व का पूर्णतया निर्वाह किया है। हास्य और प्रहसन के साथ-साथ काव्यत्व की योजना इनकी प्रमुख विशेषता है। इन्होंने इसी कारण लोक-कथाओं को अपने नाटकों का विषय चुना है जिससे जनानुरंजन के साथ नाटकों का प्रसार सुगमता से हो सके। भास के समय में उदयन, अविमारक और चारुदत्त की कथाएँ सामा-जिक मनोरञ्जन का साधन थीं। उदयन की लोककथा का आधार ऐतिहासिक

घटना भी है। अतः भास ने तत्कालीन उपादेय कथा-सामग्री का नाटकीय उपयोग कर अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया है।

इनकी कृतियों मे सर्वोत्तम कृति 'स्वप्नवासवदत्तम्' है। इसमे शुद्ध प्रेम का चित्रण है तथा एक पत्नीव्रत का आदर्श वर्णित है, जो कि मौर्यकाल की उल्लेखनीय विशेषता है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'स्वप्नवासवदत्तम्' का पूर्वभाग है। इसमे महासेन अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह वत्सनरेश उदयन से करना चाहता है, पर उदयन अपनी कला एव अन्य क्षमताओ के कारण महासेन से बात नहीं करना चाहता। महासेन षड्यन्त्र द्वारा उदयन को उज्जयिनी में पकड कर बुला लेता है और वहाँ से उदयन वासवदत्ता को ले कर लावाणक ग्राम में लौट आता है। नाटकीय गुणो का समावेश कवि ने बहुत ही सुन्दर रूप मे किया है। मानसिक स्थितियो का तनाव, घटनाचक्र की गत्यात्मकता एव नाटकीय कुतूहल की पूर्णतया रक्षा की गयी है। अन्य नाटकों मे भी कवि ने अपनी नाट्य-कला का पूर्ण समावेश किया है। शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से भी भास के नाटक सफल प्रतीत होते हैं। वस्तु-विन्यास का अद्भुत कौशल दिखलायी पडता है। लोकरजन और लोकरक्षण की भावना सभी नाटकों मे प्राप्त है।

कथाओ के पारम्पर्य के सामान्यतया दो आधार हैं—

(१) प्रेमाख्यानको पर आधारित,

(२) आध्यात्मिक आधार पर लिखित।

भास के नाटकों में लोक-कथाओं का समावेश आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के साथ किया गया है। 'प्रतिमा' नाटक मे राम-सीता और लक्ष्मण सत्य, शील और भक्ति के मूर्त्त रूप हैं। बुद्धधर्म मे बुद्ध, धर्म और संघ—ये तीन रत्न माने गये हैं। सम्भवत', इन तीनों का प्रभाव ही प्रतिमा नाटक के तीनों चरित्रों पर है। भास की लोकप्रियता, राग और त्याग के समन्वय के कारण है। इन्होंने उक्त दोनो का सामजस्य उपस्थित कर कथावस्तु के परिवर्त्तन मे नया कौशल प्रदर्शित किया है।

नेता और पात्र-चयन की मौलिकता भी भास की विशेषता के अन्तर्गत है। इन्होंने प्रतिमा नाटक में राम को दशरथ तथा कैकेयी के प्रति अत्यन्त सहिष्णु, सीता को राज्याभिषेक के विरुद्ध होने पर भी शान्त, लक्ष्मण को क्रोधी और भरत को करुण रस की प्रतिमा के रूप में अंकित किया है। 'पञ्चरात्रम्' मे दुर्योधन के चरित्र का गुणात्मक परिवर्त्तन किया गया है। 'कर्णभारम्' मे कर्ण और शकुनि के चरित्र में भी पर्याप्त परिवर्त्तन है। 'ऊरुभगम्' में दुर्योधन

के चरित्र का पूर्ण विकास हुआ है। दुर्योधन का आत्मालोचन उसके उदात्त चरित्र का प्रतिष्ठापक है। नायक और पात्रों के चरित्र की दृष्टि से भास अत्यन्त सफल हैं।

रस औचित्य की दृष्टि से भास के नाटकों में कथा के अनुरूप ही रस का विकास होता है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में शृंगार और शान्त रस का मंजुल समन्वय हुआ है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के आरम्भ में ही वीर रस के उद्रेक के लिए हंसक उदयन का समाचार ले कर यौगन्धरायण के समीप आता है। घटना के अनुसार रस का समावेश करने के लिए हंसक उदयन के आहत होने के वृतान्त को अपूर्व शैली में प्रतिपादित करता है। नाटक के मध्य में महासेन की कन्या-विवाह की चिन्ता तथा विवाहोपरान्त कन्या-वियोग के दुःख का वर्णन करुण रस का द्योतक है। इस प्रकार नाटककार भास ने अपने सभी नाटकों में रस-औचित्य का निर्वाह किया है।

अभिनेयता की दृष्टि से भी भास के सभी नाटक सफल हैं। इन्होंने रूपक के विभिन्न भेदों की रचना की है। अभिनेयता का सर्वप्रथम कारण संवाद तत्त्व है। भास के संवाद अत्यन्त संक्षिप्त एवं रुचिवर्द्धक हैं।

इनके सभी नाटक रंगमंच की उपयुक्तता की दृष्टि से उपादेय हैं। संवादों के साथ पात्रों की संख्या भी अल्प है। पद्य इतने मनोहर हैं कि वे अपने लय और संगीत तत्त्व के कारण समाजिकों को रसोद्‌बोध कराने में पूर्ण समर्थ हैं। संक्षेप में हम भास को संस्कृत नाट्य-साहित्य का ऐसा आचार्य मानते हैं, जिससे कालिदास, अश्वघोष, श्रीहर्ष, भवभूति आदि ने भी प्रेरणा प्राप्त की है।

भास की त्रुटियां और उनकी समीक्षा

भास के नाटकों में कुछ त्रुटियाँ भी पायी जाती है। सबसे पहली त्रुटि तो यह है कि भास के नाटकों में कालान्विति पर ध्यान नहीं दिया गया है। घटनाओं में दीर्घकालीन समय बिखरा पड़ा है। 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'चारुदत्तम्', 'बालचरितम्' एवं 'अभिषेक नाटकम्' आदि में कालान्विति का अभाव है। 'बालचरितम्' में आया है कि जब वसुदेव नन्द-गोप को बालक दे कर लौटते हैं, उस समय प्रभात हो रहा है, पर जब वे आभीरग्राम से मथुरा पहुंचते हैं, तो उस समय कवि घने अंधकार का चित्रण करता है और जन-समाज को सोता हुआ बतलाता है। इस वर्णन में पूर्वापर विरोध होने से काल-दोष है। कवि को यहाँ प्रभात का उल्लेख नहीं करना चाहिए था।

नाटको मे काचुकीय, धात्री एव चेटी आदि का प्रवेश बडी शीघ्रता से होता है। इस शीघ्रता के फलस्वरूप कथानको मे जितनी तीव्रता आनी चाहिए थी उतनी तीव्रता नाटककार नही ला सका है। इस क्षिप्रता का परिणाम यह निकला है कि कथा-वस्तु मे नाटकीय तनाव की स्थिति विकसित नही हो पायी है। फलत. गतिमत्व धर्म उत्पन्न नहीं हो सका है।

आकाश-भासित का अस्तित्व भी निरापद नही है। इसका मूल उद्देश्य रगमच को निरर्थक विस्तार से बचाने का है। नाटककार अभिनेयता गुण को सम्पन्न करने के लिए सूच्य कथानक की सूचना आकाश-भासित द्वारा उपस्थित करता है। भास ने आकाश-भासितो का प्रयोग कर कथा-वस्तु मे चमत्कार के स्थान पर अपरूपता की ही योजना की है। फलतः कथानको मे प्रभावशीलता नहीं आने पायी है।

भास के कतिपय ऐसे पात्र भी हैं, जो निरर्थक प्रतीत होते हैं। रगमंच पर उनकी कोई आवश्यकता नहीं। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' मे भट का प्रवेश होता है। यह सूचित करता है कि उदयन वासवदत्ता को ले कर भाग गया है। यह सूचना ऐसे पात्र से मिलती है, जिसकी योजना रंगमच पर नहीं की गई है। इसी प्रकार वासवदत्ता के हरण के पश्चात् होने वाले युद्ध की सूचना भी अस्वाभाविक रूप मे दी गयी है।

भास के नाटको में कुछ उपमान और रूपक ऐसे आये हैं, जो परम्परागत भुक्त हैं, जिन्हे हम पिष्टपेषित भी कह सकते हैं। यदि नाटककार चाहता तो ऐसे उपमानों को परिवर्तित कर सकता था और उनके स्थान पर नये उपमानो का सयोजन किया जा सकता था।

भूगोल को दृष्टि से भास का चित्रण एकागी प्रतीत होता है। उत्तर भारत का जैसा सागोपाग चित्रण किया है, वैसा दक्षिण भारत का नहीं। दक्षिण भारत का ज्ञान भास को अत्यल्प है। उनके पात्रो की क्रीडा-भुमि और लीला-भूमि उत्तर भारत ही है दक्षिण नहीं। यो भास राष्ट्रीय नाटककार हैं, इनके नाटको मे समूह की वाणी समूह रूप मे समवेत हो कर अभिव्यक्त हुई है। कृषि और कृषक जीवन का यथास्थान चित्रण भी भास ने किया है। देश-गौरव एव देश-भक्ति के उद्‌गार भी प्राय· सभी भरत-वाक्यो मे अभिव्यक्त हुए हैं। अतः दक्षिण भारत का अत्यल्प चित्रण रहने पर भी नाटककार भास राष्ट्रीय कवि हैं। वन-पर्वत, नदी-नद-नाले आदि के चित्रण के साथ राष्ट्रीय सम्पत्ति, गोधन, का अद्‌भुत चित्रण भास ने किया है। राष्ट्रीयता के प्रतीक हिमालय, विन्ध्य, वन, सघन अरण्य

एवं विभिन्न पेशों के व्यक्तियों को मान्यता दे कर भास ने यथार्थ रूप में राष्ट्रीयता का अङ्कन किया है।

भास की जो त्रुटियाँ दिखलायी पड़ती हैं, वे उनकी कला की न्यूनता की सूचक नहीं हैं। अपितु परम्परा के व्यामोह के कारण उनसे वे त्रुटियाँ हुई हैं। कालान्विति के निर्वाह का अभाव एक ऐसी त्रुटि है, जिसे हम कलागत न्यूनता मान सकते हैं, पर अनेक गुणों के रहते हुये यह न्यूनता उसी प्रकार गुण रूप में परिवर्तित हो जाती है, जिस प्रकार गन्दे नालों का जल परम पावन मंदाकिनी में मिल गंगाजल का रूप ग्रहण कर लेता है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
९	११	दुतंचदत्तंचतथैव तिष्ठति	हुतंच दत्तंच तथैव तिष्ठति
१४	२९	दुर्वाङ्कर	दूर्वाङ्कुर
२८	२६	संज्ञविदा	संज्ञविदा
३६	५	भूमिके:	भूमिकैः
३६	६	देवकुलेखि	देवकुलैखि
४०	२०	सनक्षत्रमिवोद्यस्थम्	सनक्षत्रमिवोदयस्थम्
६०	२१	इमाम्	इमां
६०	२२	महोमेकातपत्राकाम्	महीमेकातपत्रकां
९१	१८	भेद्यामिदं	भेद्यमिदं
९३	४	वन्चित:	वञ्चित:
९८	१९	जावित निरपेक्षाणां	जीविते निरपेक्षाणां
१०७	२	आकार्यमेतच्च	अकार्यमेतच्च
१०९	२६	पल्या	पत्न्या
११०	२७	पद्य १२	पद्य १३
११३	३	विघते	विद्यते
१२२	९	वृकोदरयाङ्कगत:	वृकोदरस्याङ्कगत:
१२४	१९	वहुगुणमिहैवैष	वहुगुणमिहैवैष
१२५	१७	तैंहृतम्	तैर्हृतम्
१२६	३	निष्कम्पश्चय	निष्कम्पश्च
१२६	१०	ला लैपा	लीलैषा
१३५	८	हन्त: तथा अनेनाहि	हन्त तथा अनेनहि
१३५	९	प्रमत्याधिकं	प्रमज्याधिकं
१४३	१६	तवाधं	तवाद्यं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१४५	१७	ब्लाध्यक्ष	बलाध्यक्ष
१९३	६	पुष्पकाभद्रादिभिरादेशिकैरा-दिष्टा	पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकै-रादिष्टा
२०२	१२	सुरद्विपस्फालनकंशङ्गलि	सुरद्विपस्फालनकर्कशङ्गुलि
२३९	२६	शरशतकठिन	शरशतकठिनं
२४३	५	वर पुरुषविशेष	वरपुरुषविशेषं
२४३	१४	मुत्का	मुक्ता
२५०	६	कार्यों	कार्यौ
२५५	१०	भ्रात्रा	भ्रात्रा
२५५	२४	भरतमातृं	भरतमातं
२६४	२२	कस्मिश्चित	कस्मिश्चित्
२६४	२२	पूरयमाणो वन-	पूरयमाणो वन-
२७२	७	पार्थिवासौ	पार्थिवोऽसौ
२७२	८	किंवक्ष्यतीति	किं वक्ष्यतीति
२७६	१८	श्रुतिसुखमुदारमृपतिभि:	श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभि:
२८१	१२	चाह	चाहम्
२८२	२०	निग्रहेरत.	निग्रहे रत.
२८५	१७	अहमपि	अहमपि च
३०१	२३	"पध्यमव्यायोग"	"मध्यमव्यायोग"
३०५	७	शाङ्गंपणे	शाङ्गंपाणे
३०५	१०	प्रतिगृस्यताम्	प्रतिगृह्यताम्
३१७	२७	नाटकचत्रम्	नाटकचक्रम्
३१८	१७	भास्करकरैरापीतसरा	भास्करकरैरापीतसारा
३२९	२७	वुद्धि	बुद्धि
३४१	१३	प्रहयुगलनिभाश:	ग्रहयुगलनिभाश:
३४१	१९	लाङ्गलाकारनासृ	लङ्गलाकारनास:
३४८	२५	सहस्र:	सहस्रै:
३४९	२	स्थ्यात्	स्यात्
३४९	२१	प्रिय	प्रियं
३५८	१५	यस्यभक्ति:	यस्य भक्ति:

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
३५८.	१६	व्योघः	मोघः
३५८	१७	स्यन्मोक्षयित्या	स्यान्मोक्षयित्वा
३५९	२३	असह्य ं	असह्यं
३६०	२१	निवापमेधा	निवापमेघा
३६२	७	कालविपर्यासाध्यन्द्रो वाह्लिवमागतः	कालविपर्यासाच्चन्द्रो वाह्लित्वमागतः
३७४	१	अलंकरारोतु	अलंकरोतु
३७४	२३	हेत्युच्चैंलपनमुहुः	हेत्युच्चैर्लपन्मुहुः
३७४	२४	तामेय	तामेव
३७५	२४	अङ्ग	अङ्गं
३७९	३	दत्तो में	दत्तो मे
३८०	२३	यमस्यच	यमस्य च
३८२	२०	मुष्टिकमघ	मुष्टिकमद्य
३८३	११	विषदहनशिखायिर्यन्मुखात्	विषदहनशिखा-भिर्यन्मुखात्
३८५	३	प्रमाद	प्रमादं
३८५	१९	दृढ़ सन्निरुद्धा	दृढ़सन्निरुद्धा
३८५	२०	रात्रिपुर्कि	रात्रिपु कि
३८९	६	अनुण्मवलवीयरूपवन्तं	अनुपमवलवीर्यरूपवन्त
३८९	८	चरणरजोञ्चिताग्रकैशो	चरणरजोञ्चिताग्रकेशो
३८९	१८	भावाञ्छ्वपाक	भावाञ्छ्वपाकः
३८९	२५	पृ० ६/३	६/३
३९४	२१	देहान्तरेष्वापि	देहान्तरेष्वपि
३९६	९	यञ्श्रभीतः	यञ्च भीतः
३९७	२१	हरादिववदलङ्कारास्तेऽनुप्रा-सोपमादयः	हरादिवदलङ्का-रास्तेऽनुप्रासोपमादयः
४०१	३	त्वमपिसञ्जय कर्ण ! कर्णो	त्वमपि सञ्जय कर्ण ! कर्णो
४०१	१५	उत्सादयिष्यन्निवसर्वराज्ञः	उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः
४०१	२७	११२	११३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
४०२	३	करैनंन्दकारव्य:	करैनंन्दकाख्य:
४०२	६	गम्भीर घोष:	गम्भीरघोष:
४०२	६	शङ्खराट्पाञ्चजन्य:	शङ्खराट् पाञ्चजन्य:
४०४	२५	गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो	गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो
४०५	४	सशब्दोऽयङ्कुता	सशब्दोऽयकुत्तो
४०५	२०	स्वच्छन्दमृत्युर्निरतो	स्वच्छन्दमृत्युर्निहतो
४१३	८	द्विजाच्छिष्टैरन्नै.	द्विजोच्छिष्टैरन्नै:
४१३	२३	हुत्ताशनोऽसो	हुताशनोऽसौ
४१४	११	कुलविरोध	कुलविरोधे
४१५	२	कुतार्तनादकुलित	कुतार्तनादाकुलित
४१७	१६	नौ विपिन्ना	नौविपन्ना
४१९	४	दुद्धिणविणट्ठजोहृणा	दुद्दिणविणट्ठजोहृणा
४१९	५	पम्पाउदप्पसुत्ता	पपाउदप्पसुत्ता
४२१	४	हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गी	हस्तिकरशीकर- शीतलाङ्गी
४२३	१४	ससक्तदिलगतकण्टक- भीतचेता	ससक्तनालगतकण्टक- भीतचेता
४२५	२१	वृक्षस्यनुपहतसञ्चाररभस	वक्षस्यनुपहतसञ्चार- रभस:
४२९	२	खल्वासि	खल्वसि
४३१	१७	मध्यमानाद्	मथ्यमानाद्
४३९	२७	रथ	रथं
४४०	१५	भूयिष्ठ	भूयिष्ठं
४४१	२४ तथा	क्वाचित्, क्वाचिदपि,	क्वचित्, क्वचिदपि,
	२५	क्वाचिच्चद्ब्राकीर्णं:	क्वचिच्चद्ब्राकीर्णं:
४४५	१२	हुतशनोऽसौ	हुताशनोऽसौ
४४५	१७	स्रग्भाण्डमरणी	स्रग्भाण्डमरणी
४५८	१५	निर्दोपदश्या	निर्दोपदृश्या
४६१	१	विपादा	विवाहा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
४६३	१	व्याघ्रानुसारचकिता	व्याघ्रानुसारचकिता
४६३	११	भ्रातृदाराभिमर्शनम्	भ्रतृं दाराभिमर्शनम्
		दण्डयम्	दण्ड्यम्
४९२	२७	ब्रह्मर्पिमुख्योऽहं	ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं

० ०